बचा है। रामायण, भागवत, महाभारत, हरिवंश, भगवद् गीता जैसे ग्रन्थों का सारांश भी इसमें दिया गया है। स्वयं इस पुराण में ही इसकी विशेषताओं का जो विवरण दिया गया है, उसमें इसका महत्त्व बतलाते हुए कहा है—

"वेदान्त का विषय इसमें इतनी उत्तम रीति से वर्णित है कि उससे बढ़कर अन्यत्र कहीं नहीं है। पुराणों में भी यह सर्वोत्तम है। यह इतना उत्कृष्ट है कि इससे दुर्लभ वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं है। इस 'आग्नेय महापुराण' में सब विद्याऐं बतलाई गई हैं। मत्स्यावतार से प्रारम्भ करके सभी अवतारों का वर्णन इसमें है। गीता, रामायण, हरिवंश, महाभारत आदि का परिचय दे दिया गया है। वैष्णव-आगम का इसमें पूर्णरूप से विवेचन किया गया है, उसकी पूजा पद्धति, दीक्षा, विधान, प्रतिष्ठाविधि, पवित्रारोहण का क्रम और प्रतिमा के लक्षण आदि सब बातें इसमें दी गई हैं। भोग और मोक्ष देने वाले मन्त्र भी इसमें बतलाये हैं। इसी प्रकार शैवागम में शिव की अर्चना पद्धति, शक्ति-आगम में देवी की उपासना, सौर-आगम में सूर्य की पूजा का विषय प्रकट किया गया है। प्रतिसर्ग निरूपण में ब्रह्माण्ड का रूप दर्शाया गया है, समस्त भुवनों, द्वीपों, वर्षों, नदियों, तीर्थों आदि का वर्णन किया गया है। ज्योति चक्र, ज्योतिष विद्या, युद्ध में जय प्राप्त करने का शास्त्र, मन्वन्तर चारों वर्णों के धर्म, अशौच, द्रव्यशुद्धि, प्रायश्चित्त, राजधर्म, दान-धर्म, व्रत, व्यवहार, चारों वेदों का विधान, सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक शास्त्र गान्धर्व-वेद, अर्थशास्त्र, मीमांसा, न्याय, छन्द, व्याकरण, अलङ्कार, निघण्टु शिक्षा, काव्य आदि सब कुछ इसमें मौजूद है।"

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में जब कि ग्रन्थ बहुत कम मिलते थे, अधिकांश पुस्तकें लोग याद ही कर लिया करते थे और जो जिस विषय को जानता था वह उसे दूसरों को बहुत कठिनाई से बतलाता था, उस समय इतने विषयों का ज्ञान एकत्रित कर सकना एक बहुत बड़ी सफलता और लोकहित का कार्य था। किसी एक ग्रन्थ में समस्त उपयोगी विषयों की जानकारी या सूचनायें मिल जाना कम महत्त्व की बात नहीं थी।

ब्रह्मज्ञान का विवेचन—

जैसा इस पुराण के माहात्म्य में कहा गया है इसमें वेदान्त संबंधी विवेचन विस्तार के साथ किया गया है, जिससे सामान्य ज्ञानवाला पाठक भी उसका तत्त्व ग्रहण कर सकता है। शरीर और आत्मा की पृथकता पर विचार करते हुए बतलाया है कि—"चक्षु आदि इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हो सकतीं क्योंकि ये करण (यन्त्र) के समान हैं। मन और बुद्धि भी आत्मा नहीं है क्योंकि ये दीपक की तरह मार्ग-दर्शन के साधन हैं। प्राण भी आत्मा नहीं हो सकता, क्योंकि स्वप्नावस्था में उसे नहीं जाना जाता। इसलिये इन्द्रिय आदि आत्मा नहीं है वरन् यह कहना चाहिए कि ये सब आत्मा के हैं। जिस प्रकार यह देह आत्मा नहीं हो सकता उसी प्रकार अहङ्कार भी आत्मा नहीं कहा जा सकता। इन समस्त देह, इन्द्रिय आदि से पृथक् यह आत्मा सबके हृदय में स्थित होती है। मननशील मुनि को समाधि के प्रारम्भिक-काल में इसी प्रकार चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी होती है। इसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर होता है। अपञ्चीकृत से पञ्चीकृत भूत हुए (जो स्थूल शरीर के कारण हैं") इससे स्थूल शरीर का ध्यान करके ब्रह्म में लय होने का चिन्तन करे।"

इस प्रकार पुराणकार ने सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति के विकास का अति संक्षेप में जो क्रम बतलाया है वह सभी प्राचीन खोजों और आधुनिक विज्ञान के अनुकूल है। सभी ने पञ्चतत्त्वों की उत्पत्ति आकाश से पृथ्वी-तत्त्व तक मानी है और चैतन्य (आत्मा) को उससे पृथक् स्वीकार किया है। यह जीवात्मा, परमात्मा का ही अंश है और मुनि, ऋषि, साधक, ज्ञानी व्यक्ति जो कुछ जप, ध्यान समाधि आदि करते हैं उसका उद्देश्य स्थूल और सूक्ष्म जगत् दोनों के बन्धन से छुटकारा पाकर अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्म' को प्राप्त कर लेना होता है। इसके लिये *'अग्निपुराण' ज्ञान-मार्ग को ही सत्य बतलाता है।* उसने स्पष्ट कह दिया है कि—"ब्रह्म, विज्ञान (सत्य ज्ञान) द्वारा ही प्राप्त होता है, कर्म (कर्मकाण्ड) द्वारा प्राप्त नहीं होता।" यही सिद्धान्त 'भगवत् गीता' में भी बतलाया गया है—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

(२-५-१)

"बुद्धियोग (ज्ञान-योग) पर आरूढ़ ज्ञानीजन कर्मों से सम्बन्धित फल को त्याग कर, जन्म-मरण रूप बन्धन से छुटकारा पाकर, निर्दोष (अमृतमय) को प्राप्त होते हैं ।"

इससे आगे चल कर उस ध्यान, चिन्तन को बतलाया गया है जिसको भावना जगत् मे दृढ़ कर लेने से मनुष्य शरीर-भाव से हटकर आत्म-भाव में स्थित हो सकता है । उसका उद्देश्य यही है कि साधक प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म अवस्था से आत्मस्वरूप को पृथक् समझ कर सांसारिक प्रपञ्चों का त्याग करे । इस प्रकार के चिन्तन का एक नमूना देखिये—

'मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो श्रोत्र, त्वक् और चक्षु से रहित हूँ । मैं ब्रह्म-परज्योति हूँ जो सब प्रकार गन्ध, स्पर्श और शब्द से विवर्जित हूँ । मैं ब्रह्मपरज्योति हूँ जो प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान—पाँचों प्राणों से वर्जित हूँ । मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार से वर्जित हूँ । मैं ब्रह्म-पर ज्योति हूँ जो जरा, मरण, शोक, मोह, भूख प्यास, स्वप्न, सुषुप्ति आदि समस्त अवस्थाओं से रहित हूँ । मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो कार्य कारण से विवर्जित हूँ । मैं केवल नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द, अद्वय ब्रह्म हूँ ।"

पर इस प्रकार की भावना केवल कथन मात्र से दृढ़ नहीं होती न वह किसी के उपदेश से एकाएक प्राप्त हो सकती है । पूर्व जन्मों के साधक और योग सम्पन्न अपवाद स्वरूप थोड़े से व्यक्तियों को छोड़ कर शेष सबको इस अवस्था तक पहुँचने के लिये क्रमशः ही अभ्यास करना पड़ता है । इसीलिये धर्मशास्त्रों में देवाराधन, पूजा, उपासना, व्रत, उपवास, जप, तप, वैराग्य, संन्यास आदि की अनेक विधियाँ बतलाई गई है जिनमें से प्रत्येक मनुष्य अपने स्तर के अनुकूल साधन को ग्रहण करके आत्मोत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है और अन्त मे अद्वैत-स्थिति को प्राप्त कर सकता है । 'अग्नि पुराण ने

अर्थों में प्रयुक्त हुआ है और 'ग' का प्रयोग 'गमयिता' नेता—सृजन करने वाला के अर्थ में किया गया है। इस प्रकार 'भग' शब्द का अर्थ पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य होता है। इस प्रकार 'भगवान्' शब्द हरि या विष्णु को ही प्रकट करता है, क्योंकि उपर्युक्त छः ऐश्वर्य उन्हीं में होते हैं। प्राणियों की उत्पत्ति, प्रलय, अगति, गति, विद्या, अविद्या को जो जानता है वही 'भगवान्' कहा जा सकता है। ज्ञान की शक्ति, परमैश्वर्य, वीर्य और तेज जहाँ पूर्ण मात्रा में होते हैं उसी के लिये 'भगवान्' शब्द का प्रयोग किया जाता है।"

इस प्रकार 'ब्रह्म भूत हरि' का ध्यान करने से भी मन सांसारिक विषयो से हट जाता है और मनुष्य निष्काम भाव से संसार के व्यवहारों को करता हुआ भी उससे निर्लिप्त रहता है। इस स्थिति का अभ्यास करने के लिये 'योग-मार्ग' का आविष्कार किया गया है। इस सम्बन्ध में कहा गया है—

"मन की गति का ब्रह्म मे जो सयोग होता है वही योग कहा जाता है। जो स्थिर होकर समाधि मे स्थित हो जाता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इसके लिये यम-नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को वश मे करके ब्रह्मभूत हरि मे चित्त को लगाना चाहिए। वह ब्रह्म, मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) दो तरह का होता है। जैसे सनक, सनन्दन आदि निराकार ब्रह्म की भावना से युक्त थे और दूसरे देवादि कर्म की भावना वाले थे। पर प्रारम्भ में रूप रहित ब्रह्म का ध्यान नहीं किया जा सकता, निराकार पर मन टिक नहीं पाता इस लिये मूर्त ब्रह्मनाम ही सर्व प्रथम चिन्तन करना चाहिए। 'मद्भाव' को प्राप्त हो जाने पर मनुष्य परमात्मा के साथ भेद रहित हो जाता है। जो भी भेद होना है वह तो अज्ञान के द्वारा ही हुआ करता है। जब ज्ञान हो जाता है तब कोई भी भेद नहीं रहता।"

चाहे मनुष्य ज्ञान-मार्ग का आश्रय ले और चाहे कर्म मार्ग का, चाहे निराकार ब्रह्म का ध्यान करे चाहे साकार की उपासना, उसका अन्तिम उद्देश्य आत्मा और परमात्मा का सयोग ही होना चाहिए। जब सौवीर नरेश ने जड़ भरत से आत्मा के श्रेय का मार्ग पूछा तो उसने यही कहा—

'आप मुझसे 'श्रेय' न पूछ कर परमार्थ क्यों नहीं पूछते ? सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थ में ही निहित रहता है। हे नृप ! देवों की आराधना करके जो धन-सम्पत्ति की इच्छा किया करता है, पुत्र की चाह करता है, राज्य की कामना करता है, उससे क्या मनुष्य का श्रेय होना है ? लोक दृष्टि से तो वह इन्हीं बातों को श्रेय समझता है, पर विवेकशील व्यक्ति केवल परमात्मा के साथ संयोग होने को ही श्रेय कहते हैं। यज्ञ आदि की क्रिया भी श्रेय नहीं है और बहुत-सा धन इकट्ठा कर लेना भी श्रेय नहीं कहा जा सकता। परमार्थ की दृष्टि से तो आत्मा और परमात्मा का संयोग ही श्रेय है। वह आत्मा एक-व्यापी, सम, शुद्ध, निर्गुण प्रकृति से पर, जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगत, अव्यय, पर, ज्ञानमय, गुणजाति आदि से असङ्ग और विभु होता है।"

वर्णाश्रम धर्म--

समाज में रहने वाले सब मनुष्यों को अपने-अपने वर्ण और आश्रम के नियमों का पालन करना आवश्यक है। इसी से व्यक्ति और समष्टि का कल्याण सम्भव है। यद्यपि आज परिस्थितियों के बदल जाने से हमको चार वर्णों का विभाजन हानिकारक जान पड़ने लगा है और आश्रम-धर्म का पालन तो असम्भव या अव्यावहारिक हो ही चुका है, पर एक समय था कि इन्हीं के आधार पर हमारा देश संसार में सर्वोच्च पदवी पर विराजमान था और विद्या, कला, वीरता, उदारता आदि सभी गुणों में आदर्श माना जाता था। 'अग्नि पुराण' में चारों वर्ण और चारों आश्रमों के धर्म का जो परिचय दिया गया है उसमें कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातें ऐसी हैं जिनका अनुकरण वर्तमान समय में भी समाज को उच्च बनाने वाला सिद्ध हो सकता है। वैसे तो इस समय यन्त्रों के प्रचार और बड़े-बड़े कारखानों में अनोपयोगी सामग्री का निर्माण होने की प्रणाली से समाज की काया पलट हो ही गई है, और अब प्राचीन 'सामाजिक संस्थाओं का पुनर्जीवन हो सकना सम्भव नहीं रहा। तो भी उनमें से जितनी बातें यत्किञ्चित् परिवर्तन करके समयानुकूल बन सकें तो उनसे लाभ उठाना हमारा कर्त्तव्य है। इनमें सबसे मुख्य ब्रह्मचर्य-आश्रम ही है जो व्यक्ति और

समाज के लिये 'नींव के पत्थर' की तरह था और आज जिसकी बड़ी दुर्दशा हो रही है। ब्रह्मचर्य के नियमों की कुछ विशेष बातें ये हैं—

"ब्राह्मण का उपनयन और ब्रह्मचर्य तथा आश्रम-प्रवेश आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवे में तथा वैश्य का बारहवे वर्ष मे होना चाहिए। गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य को सर्वप्रथम शौच (स्वच्छता) और आचार की शिक्षा दे। प्रातःकाल और सायंकाल संध्योपासन तथा हवन आदि नित्य कर्म करे और कभी अपवित्र न रहे। किसी प्राणी की हिंसा (मारना या शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट पहुँचाना) अथवा दूसरो की बुराई करना, विशेष रूप से अश्लील शब्द मुख से निकालना निषिद्ध है।"

इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम यह होता था कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् एक सुयोग्य और सभ्य नागरिक बनने के योग्य हो जाता था। उस समय किताबी शिक्षा का स्थान गौण था, और अधिक ध्यान इस पर दिया जाता था कि विद्यार्थी कर्मठ और जीवन मे धीरता-वीरता प्रदर्शित करने वाला बने। संभव है उस समय शिक्षा का क्षेत्र वर्तमान समय की अपेक्षा संकुचित रहा हो और अधिकाश विद्यार्थी साधारण धर्म-कर्म की शिक्षा तथा व्यावहारिक-जीवन के लायक लिखना-पढना, हिसाब आदि सीख कर ही ससार मे प्रविष्ट हो जाते हों, पर वे जो कुछ सीखते थे वह ठोस और आजीवन साथ देने लायक होता था। जब कि वर्तमान समय में कहने के लिये तो दस बारह वर्ष के बच्चे को भी साहित्य,गणित,इतिहास,भूगोल,अर्थशास्त्र,समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों का ज्ञाता' बना दिया जाता है, पर वह उनमे से अधिकाश विषयों को स्कूल से निकलते ही भूल जाता है और जीवन-संघर्ष में सफल होने की दिशा मे उसे बहुत ही कम उपयोगी ज्ञान आधुनिक स्कूलों और कालेजों से मिल सकता है। इतना ही नहीं आज कल को ये शिक्षा संस्थाऐं तो अनेक दुर्व्यसनों और दुराचारों का 'शिक्षण' देने का स्थल बन गई हैं जिनका विषमय परिणाम हम आजकल के नवयुवक विद्यार्थियों के रहन-सहन में प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

गृहस्थ के सम्बन्ध में विचार करने पर उसमें भी पूर्वापेक्षा त्रुटियाँ ही अधिक दिखाई देती हैं। उस समय गृहस्थ सामान्यतया ऐसे नियमों पर चलते थे जिनसे समाज में सुख, शान्ति और सुव्यवस्था का समावेश होता था। यद्यपि उस समय आज की तरह कानूनों, अदालतों और पुलिस आदि की इतनी विशाल व्यवस्था नहीं थी, तो भी लोग अपने सामाजिक-धर्म का पालन करके आज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार के धार्मिक-जीवन का विवेचन करते हुए पुराणकार ने कहा है—

"धर्म वही है जिससे भोग और मोक्ष—इहलोक और परलोक दोनों का सुख प्राप्त हो सके। वैदिक धर्म दो प्रकार का है—एक प्रवृत्ति प्रधान और दूसरा निवृत्ति प्रधान। जो कर्म किसी कामना (इच्छा) के हृदय में रखकर कर्म किया जाता है वह 'प्रवृत्ति' वाला कहा जाता है और ज्ञान के साथ जो कर्म किया जाता है वह निवृत्ति वाला माना गया है। वैसे वेदों का अभ्यास तपश्चर्या, ज्ञान की प्राप्ति, इन्द्रियों को काबू में रखना, हिंसा न करना, गुरुजनों की सेवा करना आदि कर्म सदैव कल्याणकारी माने गये हैं। इन समस्त कर्मों मे आत्म-ज्ञान प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ है। वह सम्पूर्ण विद्याओं में शिरोमणि है और अमृतत्व प्रदान करने वाला है। संसार के समस्त प्राणियों में अपने आपको देखना, अर्थात् सबको आत्मीय की तरह समझना और उनके सुख-दुःख को अपने ही सुख-दुःख की भाँति अनुभव करना मनुष्यत्व की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है और यह सर्वोच्च पारलौकिक गति प्राप्त कराने वाला मार्ग है।"

समाज में रहने वाले प्रत्येक गृहस्थ को अपना दैनिक कार्यक्रम किस प्रकार रखना चाहिए इसका उपदेश करते हुए कहा है कि—"ब्रह्ममुहूर्त में शैया से उठकर इष्टदेव का स्मरण करना चाहिए। मल-मूत्र का त्याग दिन के समय उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके करे और रात्रि के समय दक्षिण दिशा की तरफ मुँह करके। मार्ग, जलाशय के समीप, चरागाह आदि में कभी मल त्याग न करे। मिट्टी से शुद्धि करके कुल्ला-दाँतुन करे। प्रातःकाल स्नान करना आवश्यक है। उस समय गायत्री आदि मन्त्र का जप करना भी उचित है। कोई बोझा उठा कर आ रहा हो, गर्भवती स्त्री आ रही हो अथवा कोई गुरुजन आ

रहा हो तो मार्ग छोड़कर उन्हें प्रथम जाने को रास्ता देना चाहिए। स्नानादि के समय किसी नग्न स्त्री को कदापि न देखे। सर्वदा मुख से 'भद्र-भद्र' अर्थात् मङ्गलकारी शब्द ही उच्चारण करना चाहिए। अनिष्ट या अभद्र वचन मुख से नहीं निकालना चाहिए। जो कोई भी हीन अङ्ग वाले हों या हीन स्थिति वाले हों उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। मल मूत्र आदि के वेग को रोकना तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अन्य प्रकार से लापरवाही करना अनुचित है।

गृहस्थ-आश्रम सर्व प्रधान, और समाज को उन्नत बनाने वाली समस्त प्रवृत्तियों का आधार है। आजकल तो समाज-कल्याण की अधिकांश प्रवृत्तियाँ सरकार ने अपने हाथ में ले रखी हैं, पर उनमें वेतन भोगी कर्मचारी कर्तव्य-निष्ठा का कितना कम पालन करते हैं यह हम सबको विदित है। पर प्राचीन काल में ये कार्य प्रायः सम्पन्न गृहस्थों द्वारा या उनके सहयोग से किये जाते थे और उनमें प्रायः सच्ची सेवा-भावना का परिचय मिलता था। इसीलिये मानव-धर्म के आदि व्याख्याता भगवान् मनु ने भी गृहस्थ आश्रम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वं आश्रमाः॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥

अर्थात्—"जिस प्रकार समस्त प्राणी प्राण-वायु के आश्रय से जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम के आश्रय से अन्य सब आश्रमों का निर्वाह होता है। ये तीनों आश्रम गृहस्थियों की सहायता से अपना जीवन-निर्वाह करने में समर्थ होते हैं इसलिये यही आश्रम सबसे बड़ा माना जाना चाहिए। जो व्यक्ति पारलौकिक कल्याण की इच्छा रखते हैं और इस संसार में भी सुखोपभोग चाहते हैं उनको सदा प्रयत्न पूर्वक गृहस्थ-धर्म को धारण करना

चाहिए, दुर्बल-इन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रियों को वशीभूत करने में असमर्थ हैं, इस आश्रम के कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते।"

गृहस्थ आश्रम का यह एक श्रेष्ठ आदर्श है और जिस देश तथा समाज में ऐसे कर्तव्यपरायण सद्गृहस्थों की बहुतायत होगी वह अवश्य उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा। वर्तमान समय में यद्यपि धन तथा साधनों की बहुत अधिक वृद्धि हो गई है, पर आजकल साधन-सम्पन्न लोग समाज के प्रति अपने उत्तर-दायित्व का बहुत कम अनुभव करते हैं। वे अपनी शक्ति और साधनों को अपने और अपने परिवार के ही सुखोपभोग में ही अधिक से अधिक काम में लाते हैं और यदि समाज-कल्याण के कार्यों में कुछ भाग लेते भी हैं तो उसमें अपना कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष स्वार्थ अवश्य रखते हैं। यही कारण है कि इस समय समाज में असंतोष और अशान्ति की निरन्तर वृद्धि होती जाती है। यदि हम अपने व्यवहार में प्राचीन आदर्शों को भी स्थान देते रहें तो इससे वर्तमान स्थिति मे बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

यह भी कहा गया है कि जब "गृहस्थ आश्रम में रहते हुए पुत्र के भी पुत्र (अर्थात् नाती) का जन्म हो जाय तब मनुष्य को घर का बन्धन त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लेना चाहिए।' प्राचीन काल में जब देश में जङ्गल और वनों की अधिकता थी और उनमे प्राप्त सामग्री से व्यक्ति अपना निर्वाह करके स्वतन्त्रतापूर्वक लोकोपकार के कार्य कर सकते थे, तब वैसा ही विधान बनाया गया था। पर वर्तमान समय मे वनों का अभाव हो गया है और जनसंख्या की अतिवृद्धि के कारण तरह-तरह के उपायों से प्रत्येक घटिया-बढ़िया भूमि जोती-बोई जा रही है, इसलिये अब वानप्रस्थों के लिये वनवासी होना सम्भव नहीं रहा।

फिर भी इस आश्रम का मूल स्वरूप और उसका उद्देश्य बहुत उत्तम और श्लाघ्य है। गृहस्थ-आश्रम मे साधारण स्थिति के व्यक्तियों को अपनी अधिक शक्ति अपने परिवार और निकट सम्बन्धियों के भरण-पोषण में ही लगानी पड़ती है और समाज-सेवा का अवसर उसको बहुत कम मिल पाता है, इसलिये घर मे पुत्रों के सब तरह समर्थ हो जाने पर मनुष्य को अवश्य

अपनी कार्य-प्रणाली बदल देनी चाहिए और गृहस्थी का भार पुत्रों को देकर स्वयं समाज की निःस्वार्थ और निःशुल्क सेवा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। इसी प्रकार जन हितकारी कार्यों में सहयोग देने से मनुष्य समाज के ऋण से उऋण हो सकता है।

अध्यात्म का सार—

अन्त में सब धर्मों के सार मे यही बतलाया गया है कि 'जो प्रभु हृदय में दीपक की भाँति आत्मा के रूप मे स्थित हैं उसी का ध्यान करना चाहिए और मन तथा इन्द्रियों को सासारिक विषयों से हटा कर परमार्थ में लगाना चाहिए। अपने मन को विभिन्न प्रकार की स्वार्थ युक्त वृत्तियों से रहित करके आत्मा को परमात्मा के ध्यान मे लगाना ही उत्तम योग है। जो इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं अर्थात् सासारिक विषयों की ओर प्रवृत्त हुआ करती हैं, उन इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके मन में ही लगादेवे और फिर उस मन को आत्मा मे योजित कर देना चाहिए। इस प्रकार सब विषयों से छुटकारा पाकर परम तत्त्व का ध्यान करना यही सबसे बड़ा लक्ष्य है, शेष सब बातें तो ग्रन्थों का विस्तार करने वाली हैं। इस प्रकार जिस ब्राह्मण ने इस कर्तव्य (परमार्थ-धर्म) का पूर्ण पालन किया है उसने उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ, तप—इन सबका फल प्राप्त कर लिया ऐसा समझो। एकाक्षर अर्थात् 'ॐ' परम ब्रह्म है और प्राणायाम परम तप होता है। ब्राह्मण के लिये गायत्री से बढ़कर कुछ नहीं है, वह पवित्रता प्रदान करने में सर्वश्रेष्ठ है।'

अध्यात्मका अर्थ लोक सम्पर्क का त्याग कर किसी निर्जन स्थान में जा बैठना कदापि नही है। वहाँ सिवाय पत्थर, मिट्टी के परमात्मा कहाँ दिखाई पड़ेगा? उसका निवास तो विवेक-युक्त मानवों के भीतर ही है और उन्ही के सम्पर्क मे रह कर उसका सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है। कहा गया है कि परमात्मा प्रेम-स्वरूप, करुणा-स्वरूप है। तो प्रेम और करुणा का भाव तो हृदय मे तभी उत्पन्न होगा जब उसका कोई पात्र सम्मुख उपस्थित होगा। इसलिये अध्यात्मवाद का प्रयोग और उसकी वृद्धि जन-समाज में रह

कर ही सम्भव है और प्राचीन ऋषि तथा मध्यकालीन सन्त इसी आदर्श को समाज के सामने उपस्थित करते आये हैं। पुराण आदि सभी धर्म ग्रन्थ भी यही उपदेश देते हैं। कष्ट पीड़ित, अभाव ग्रस्त प्राणियों का उपकार करना ही सच्चा धर्म और आध्यात्मिकता का परिचायक है।

उदारता का दृष्टिकोण—

कई साम्प्रदायिक पुराणों में धर्म विषयक प्रश्नों पर बहुत सङ्कीर्णता और कट्टरता का परिचय दिया गया है, पर यह पुराण इस दृष्टि से काफी उदार है। इसमें किसी सम्प्रदाय और उसके इष्टदेव को न तो बहुत अधिक बढ़ाया गया है और न गिराया गया है। विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश सब की पूजा, उपासना का इसमें समता के भाव से वर्णन किया गया है। इसमें सबसे बड़ा नाम परमात्मा—परब्रह्म का ही माना गया है, जिससे कोई समझदार इनकार नहीं कर सकता।

यही बात इसकी प्रायश्चित्त तथा विभिन्न त्रुटियों के परिमार्जन के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है। इसमें विभिन्न दोषों के जो प्रायश्चित्त दिये गये हैं वे अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत सरल हैं और अन्त में यह भी कह दिया गया है—

"परदारा, पराया धन और जीवहिंसा का कोई पाप बन पड़े तो मनुष्य की शुद्धि का मुख्य प्रायश्चित्त भगवान् की स्तुति होता है। "विष्णवे-विष्णवे-विष्णवे नित्यं नमः" यह कहे, अर्थात् भगवान् विष्णु के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है। चित्त में स्थित रहने वाले विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ और अहंकार मे रहने वाले हरि को प्रणाम करता हूँ। चित्त मे रहने वाले ईश को, जो अव्यक्त हैं, अनन्त है, अपराजित हैं उनको मेरा नमस्कार है। पूर्णतया पूजनीय विष्णु को नमस्कार करता हूं। अनादि निधन और विभु भगवान् को मेरा नमस्कार है। वह भगवान् विष्णु ध्यान किये जाने पर पाप का हरण किया करते हैं। स्वप्न में भी देखे जाने पर भावना मात्र से वे पाप को दूर कर देते हैं। उन उपेन्द्र विष्णु को जो प्रणतों के दुःख को दूर करने वाले हैं,

मैं प्रणाम करता हूँ। इस निराधार जगत् मे जो कि नीचे अन्धकार में डूब रहा है हाथ का अवलम्बन स्वरूप परात्पर विष्णु हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। हे सब ईश्वरो मे भी ईश्वर ! हे विभो ! हे परमात्मन् ! हे अधोक्षज ! हे हृपीकेश ! तुम्हारे लिये बारम्बार नमस्कार है। हे नृसिंह ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे केशव ! जो भी मेरी दोषयुक्त उक्ति हो या कोई पाप हो, उसको बिना ध्यान किये आप शान्त कर देवें। "··········· इस स्तोत्र को जो भी कोई पढता है या श्रवण करता है, वह शरीर, मन अथवा वाणी से होने वाले पापों से निश्चय ही मुक्त हो ज ता है ॥'

इसी प्रकार अन्य स्थान पर लिखा है कि—"भगवान् हरि का स्मरण करने से चाहे कोई संस्कार किया हुआ हो या असंस्कृत हो सबका मोक्ष होता है और स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है।" इसका अर्थ यह नही कि इससे लोगों को पाप करने की छुट्टी मिल जाती है या पाप-प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा रहा है। वरन् इसका आशय यही है कि जिस व्यक्ति के विचार शुद्ध हैं, पर किसी परिस्थिति अथवा आकस्मिक घटनावश जिससे कोई दोष हो गया तो उसको स्मृतियों मे बतलाई गई बहुत लम्बी और खर्चीली प्रायश्चित की प्रक्रिया में डाले बिना हार्दिक पश्चात्ताप से पुनः शुद्ध होने का अवसर दिया जाय, और विचार किया जाय तो वास्तविक प्रायश्चित्त यही है। धन खर्च करके पण्डित, पुरोहितो द्वारा प्रायश्चित्त का विधान कराने मे तो दिखावा ही अधिक होता है। फिर प्रायश्चित्त सम्बन्धी निर्णय का दूसरा पहलू विशेष परिस्थितियाँ भी हैं। जैसे युद्ध अथवा उपद्रवो के समय बहुत से स्त्री-पुरुषो के धर्म जबर्दस्ती नष्ट कर दिये जाते है। मूर्ख और स्वार्थी 'पण्डित' ऐसे अवसरों पर भी 'सब को एक ही लकड़ी से हांकने' की जिद् करते है यद्यपि इससे देश और समाज का घोर अकल्याण होता है। ऐसी मूर्खता के परिणाम स्वरूप मुसलमानी शासनकाल में लाखो नर नारी हिन्दू-समाज से पृथक् हो गये और आगे चल कर उन्हीं के वंशधर हिन्दू-समाज की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने वाले बने।

इस सम्बन्ध में एक नहीं अनेक उदाहरण हिन्दू-समाज के मौजूद है। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान की सीमा के समीप रहने वाले कई लाख मलखाने

और मेव इसी प्रकार हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये गये थे। उनके कुओं में मुसलमान आक्रमणकारियों ने गोमांस फेंक दिया और भूल से अथवा विवश होकर उनका पानी पी लेने से उन सबको हिन्दू-समाज से बहिष्कृत मान लिया गया। महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के पूर्वजों मे से किसी को जबर्दस्ती बादशाह का खाना सुंघाया गया, इस पर लोगों ने उनको समाज-बहिष्कृत मान लिया और ब्रह्म-समाज सम्बन्धी विवाद में ऐसे 'मूर्खों, ने कहा कि 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के पिता) तो नाम के ही ब्राह्मण हैं।' ऐसे मूर्ख जो अपने हठ के आगे समस्त हिन्दू जाति की हानि पहुँचाने में सङ्कोच नहीं करते वास्तव में स्वय सबसे बड़े पापी हैं। 'अग्नि पुराण' में इस प्रकार की घटनाओं को उनके वास्तविक रूप में देखा गया है और उनका प्रायश्चित्त वैसा ही सरल बतलाया है। उसमें एक स्थान पर दूषित स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है—

बलात्कारोपयुक्ता चेद्वैरिहस्तगताऽपि वा।
स त्यजेद् दूषितां नारी ऋतुकालेन शुध्यति॥

अर्थात्—"यदि किसी स्त्री को कोई बलपूर्वक भ्रष्ट कर दे अथवा वह शत्रु के हाथ में पड़ जाय तो उस समय उसे त्याग दे। पर ऋतुकाल (मासिक धर्म) हो जाने पर जब वह शुद्ध हो जाय तब उसे ग्रहण करले। इसी प्रकार यदि किसी स्त्री के अन्य वर्ण वाले का गर्भ रह जाय तो प्रसव हो जाने पर रजोधर्म द्वारा वह फिर शुद्ध हो जाती है।"

यह पुराण पति द्वारा त्यागी हुई और विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह को शास्त्र सम्मत बतलाता है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥
मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया॥

अर्थात्—पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, सन्यास ग्रहण कर लेने पर, क्लीव (नपुंसक) हो जाने पर और पतित हो जाने पर इन पाँच आपत्ति की अवस्थाओं में स्त्रियों को अन्य पति बनाने का विधान है। पति के मृत हो

"राजा को प्रजा के प्रति सर्वदा ऐसा ही रहना चाहिए जैसे गर्भिणी और सहधर्मिणी होती है। वह अपने गर्भस्थित बच्चे और पति के सुख का ही सदा ध्यान रखती है। उस राजा के यज्ञों और तपश्चर्या से क्या लाभ जिसकी प्रजा ही रक्षित न रहती हो। जिस राजा की प्रजा भली-भांति रक्षित है उसके लिये गृह स्वर्ग के समान ही होता है। जिस राजा की प्रजा सुरक्षित एवं सुखी नहीं उसका मन्दिर भी नरक तुल्य है। प्रजा के सुकृत और दुष्कृत दोनों का छठा भाग राजा लिया करता है। प्रजा की सुरक्षा करने से राजा धर्म को प्राप्त करता है और प्रजा की रक्षा न करने से पाप की प्राप्ति होती है।

"राजा को अपनी प्रजा के छोटे बालकों की सम्पत्ति की व्यवस्था पूरी ईमानदारी से करनी चाहिए और जब वे वयस्क हो जायें और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें तब वह उनको दे देनी चाहिए। विधवा और रोगग्रस्त स्त्रियों की सम्पत्ति को यदि उनके सम्बन्धी हरण करें तो उनको चोर के समान दण्ड देना चाहिए। यदि चोर किसी की सम्पत्ति चुरा ले जायें तो उसकी पूर्ति राजा को स्वयं करनी चाहिए और चोरों से रक्षा करने का जो अधिकारी हो उससे करानी चाहिए। जिस तरह पिता अपनी और पुत्र की रक्षा किया करता है उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। राजा से संरक्षित प्रजा धर्म करती है उससे राजा की आयु, धन वैभव की वृद्धि होती है। राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है, इसलिये प्रजा का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवन की सफलता है। भरण-पोषण किया हुआ बालक जिस तरह बलवान् कर्म के योग्य होता है उसी प्रकार भली-भांति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मशील होता है।"

यद्यपि वर्तमान समय में छत्र धारण करके सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं की परम्परा का अन्त हो गया है, फिर भी जो कोई शासन-पद पर नियुक्त किया गया हो उसका उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य राजा की तरह है। इतना ही नहीं पहले राजा अकेला होता था और मन्त्रियों के होने पर भी प्रत्येक विषय का अन्तिम निर्णय वह स्वयं करता था और इसलिये प्रत्येक

अच्छे बुरे परिणाम का वही एक मात्र उत्तरदायी माना जाता था पर आजकल राज्य का कार्य भार एक के हाथ में रहने के बजाय अनेक मन्त्रियों के हाथो मे बँटा रहता है और इसलिये एक की नहीं सबकी समान रूप से जिम्मेदारी होती है। पर खेद है कि आज एक की जगह अनेक 'राजा' होने पर भी प्रजा का जीवन न तो सुखी है न सुरक्षित। वरन् अधिकांश मन्त्री प्राय: निजी स्वार्थ साधन के दोषी भी पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जनता के हित को कहाँ तक सुरक्षित रख सकते हैं इस सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिये यद्यपि हम वर्तमान समय मे एक तन्त्र-शासन पूर्णतया त्याग चुके हैं, तो भी न्याय की दृष्टि से स्वीकार करना पड़ता है कि उस युग मे जो राजा उपर्युक्त राजधर्म का पालन करते थे, उनका शासन प्रजा के लिये वर्तमान जन-तन्त्र से अनेक गुना सुख-सुविधाजनक होता होगा।

मनुष्यों के लिये सामान्य कल्याणकारी नीति----

संसार मे मनुष्यों के लिये सबसे अधिक कल्याणकारी मार्ग धर्मानुकूल आचरण करना ही है, "धर्मो रक्षति रक्षितः" की उक्ति हमारे यहाँ सदैव सत्य और सर्वोत्तम मानी गई है। जो धर्म का पालन करेगा वह कभी आपत्तियों अथवा पतन को प्राप्त नहीं हो सकता। उसे यदि संयोगवश कभी विपरीत परिस्थितियों का सामना भी करना पड़ेगा तो अन्त मे वह अधिक श्रेष्ठता और उच्च पदवी को ही प्राप्त होगा। सर्वसाधारण को ऐसे धर्माचरण करने के लिये इसमें जो भगवान् राम के आदेशों का सङ्कलन किया गया है वह विशेष महत्त्व-पूर्ण और व्यवहारोपयोगी है। भगवान् राम लक्ष्मण को नीति-धर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

"न्याय से धन की कमाई करना, उस न्यायार्जित धन का बढ़ाना और उस बढ़े हुए धन की रक्षा करनी चाहिए। इसके पश्चात् उस धन का प्रयोग तथा दान किसी सत्पात्र में करना चाहिए। धन की यही चार गतियाँ हैं। नय (न्याय) का मूल विनय होता है। शास्त्र के निश्चय से विनय आता है। इन्द्रियों का जीतना भी विनय है। सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये अनेक गुणों का

होना आवश्यक होता है। शास्त्र का ज्ञान, बुद्धि, धीरज, दक्षता प्रगल्भता, धारणा, उत्साह, वाग्मिता, उदारता, सहनशीलता, पवित्रता, मैत्रीभाव, त्याग, कृतज्ञता, शान्त स्वभाव, इन्द्रिय-संयम—ये सब गुण सम्पत्ति प्राप्ति के हेतु होते हैं। सर्वत्र फैले हुए विषय रूपी जङ्गल में दौड़ लगाते हुए विषयों में मग्न इन्द्रिय रूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश से वश में करना चाहिए।

"काम, क्रोध, लोभ, हर्षातिरेक, अभिमान, मद इन षड् वर्ग का त्याग कर देना चाहिए। शासन-कर्त्ता को आन्विक्षिकी और त्रयी विद्याओं अर्थात् धर्म-अधर्म, वार्त्ता, दण्ड-नीति, नय-अनय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अहिंसा, मधुर-भाषण, सत्य, शौच, दया, क्षमा ये समस्त चारों वर्ण वालों का और चारों आश्रमों का सामान्य-धर्म कहा गया है। राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा पर पूर्ण अनुग्रह रक्खे। साधु पुरुषों और सत्पुरुषों का हित-साधन सज्जनों का प्रधान लक्षण है। राजा को अपना सुख त्याग कर भी प्रजा के सुख के लिये प्रयत्न करना चाहिए। सज्जनों और प्रियजनों से तो सद्व्यवहार किया जाता है पर साधु व्रतधारी अपने से द्वेष रखने वालो के साथ भी कटु व्यवहार नहीं करता। जो सर्वदा प्रिय वचन ही बोला करते हैं वे देवता के समान माननीय होते हैं। इसके विपरीत क्रूर वचन बोलने वाले साक्षात् पशु ही होते हैं।

गुरुजनों की पूजा देवता की भाँति करनी चाहिए और मित्रजन का सम्मान आत्मवत् करना चाहिए। प्रणिपात द्वारा गुरु को, सद्व्यवहार द्वारा सेवकों को, सत्कर्मों से देवताओं को, सद्भाव से मित्रों को, आदर सत्कार से बान्धवों को, प्रेम से स्त्री को, दान से निम्न वर्ग वालो को और चातुर्य द्वारा अन्य सब लोगों को अपने अनुकूल बनाये रखना चाहिए। स्वधर्म पालन करते हुए दूसरों की निन्दा से बचे, कृपण लोगों पर कृपा रखे, सबसे मधुर वचन बोले और जो सच्चे विश्वासपात्र मित्र हों उनका प्राणपण से उपकार करे। अपनी समृद्धि की दशा में घमण्ड नहीं करना चाहिए और दूसरों की वृद्धि देख कर कभी द्वेष-भाव न रखे। दोषारोपण किये जाने पर सहिष्णुतापूर्वक व्यवहार करे और बन्धुगणों को सदैव सहयोगी बना कर रखे। महान् आत्मा

में जो नियम बताये गये हैं और जो 'दम' आदि विशेष नियम हैं उनका 'व्रत' के रूप में पालन करना बहुत बड़ा तप होता है। ये इन्द्रियों को वश मे रखने मे बहुत सहायक होते है। जो ब्राह्मण परिस्थितियों वश अग्नि होत्र आदि वैदिक कर्मों को छोड़ चुके हैं उनके लिये ये 'व्रत' ही तपश्चर्या का उद्देश्य पूरा कर देते हैं।

"व्रत के समय परान्न और स्त्री-सहवास त्याग देना चाहिए। उस समय पुष्प, अलङ्कार नवीन वस्त्र आदि का भी प्रयोग न करे। बहुत अधिक जल पीना और दिन में सोना नियम विरुद्ध है। धर्म के दश लक्षण कहे गये हैं उनका व्रत काल मे ध्यान पूर्वक पालन करना चाहिए। ये दश लक्षण इस प्रकार हैं—क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-संयम, देवपूजा, अग्निहरण, सतोष, अस्तेय। उपवास के दिन पवित्र मन्त्रों का जप करे और सुविधा हो तो हवन भी करे।"

पुराणों में अधिकांश व्रत कामनाओं की पूर्ति करने वाले ही बताये गये हैं। एक पुराण मे तो वेश्याओं के लिये 'अनङ्गदान-व्रत' का भी विधान विस्तार पूर्वक दिया गया है। एक अन्य व्रत मे विष्णु भगवान् से यह प्रार्थना की गई है कि—"जिस प्रकार आपकी शैय्या सदैव लक्ष्मीजी से अशून्य (युक्त) रहती है उसी प्रकार मेरी शैय्या भी सदा अशून्य रहे।" इसका नाम 'अशून्य शयनम्' व्रत है। इस प्रकार अनेक वाममार्गी लेखकों ने धर्मशास्त्रों की दुर्गति कर डाली है। पर 'अग्नि पुराण' के व्रत-विधान में ऐसी कोई बात नहीं मिलती। उसमें व्रत के अवसर पर जो प्रार्थना की जाती है वह काफी गम्भीर और धार्मिक भावों की वृद्धि करने वाली है। उसमें कहा गया है—

"हे व्रतपते ! मैं कीर्ति, संतान, विद्या, सौभाग्य, आरोग्य की वृद्धि, निर्मलता, भोग और मुक्ति के उद्देश्य से यह व्रत करता हूँ। हे जगत्पते ! मैंने यह श्रेष्ठ व्रत आपके सम्मुख ग्रहण किया है। आपके प्रसाद से यह निर्विघ्न समाप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है। इस श्रेष्ठ व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह अपूर्ण रहे और मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसाद से वह पूर्ण हो जाय।

समस्त सिद्धि प्राप्त करने के लिये मैं व्रत-मूर्ति और जगत्मूर्ति का मण्डल में आवाहन करता हूँ। आपके लिये मेरा नमस्कार हो। हे केशव! आप मेरे सान्निध्य में स्थित रहें। मन के द्वारा कल्पित और भक्तिपूर्वक समर्पित पञ्चगव्यों से, शुभ जलों से, पञ्चामृतों से मैं आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापों के हनन करने वाले होवें। उसी प्रकार गन्ध और पुष्पोदक (मानसिक) से यह शुभ अर्घ्य अर्पित किया जाता है। इस अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन को आप ग्रहण करें और सर्वदा मुझे अर्घ्य देने योग्य बना देवें। हे वस्त्र-पते! इस परम पवित्र वस्त्र को स्वीकार करें और सर्वदा अच्छे वस्त्र आदि तथा सुन्दर आभूषण आदि से मुझे समाहित करे। हे गन्धमूर्ते! आप इस सुगन्धित और विमल गन्ध को ग्रहण कीजिये और मुझे पापों की गन्ध से विहीन बनाइये। आप इन परम सुगन्धित पुष्पों को स्वीकार करें और मुझे सर्वदा पुष्पादि से परिपूर्ण करने की कृपा करें। इस धूप को ग्रहण करें। हे धूपित! आप मुझे सुन्दर धूप से सदा धूपित करें। इस ऊपर की शिखा वाले दीप को स्वीकार करें। हे दीपमूर्ते! आप मुझ प्रकाश से समन्वित और सर्वदा ऊर्द्ध गति करे। हे प्रभो! मन्त्रों से रहित, क्रिया से हीन और भक्ति से शून्य मैंने जो आपकी पूजा की है, वह सब पूर्ण मानी जानी चाहिए।"

"आप मुझे धर्म प्रदान करें, धन देवें और सद्गुणों से युक्त संतान देवें। कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष मुझे प्रदान करें। हे व्रतों के स्वामिन्! मेरी समर्पित इस अर्चना को ग्रहण करके आप यहाँ से पधारें। हे प्रभो! आपको विसर्जित तो करता हूँ, किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वर प्रदान करेंगे इसी भावना को लेकर इस समय आपको विदा कर रहा हूँ।"

इस प्रकार की भावना से जो भी व्रत किये जायेंगे वे निश्चय ही आत्मिक शान्ति और धर्म-भाव को दृढ़ करने वाले होंगे।

स्वप्न और शकुन—

मनुष्य की शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में स्वप्न भी बड़ा गूढ़ विषय है। एक स्थान पर पड़े हुए और बाह्य ज्ञान से शून्य होने पर भी मनुष्य

संसार भर के ऐसे-ऐसे अनूठे दृश्य देख लेता है जिन की जागृत अवस्था में सम्भावना भी नहीं हो सकती। यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने इस सम्बन्ध में कुछ खोजबीन की है, पर स्वप्न दर्शन की अनेक घटनायें ऐसी विचित्र होती हैं कि उनका समाधान वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा नहीं होता। उदाहरणार्थ अमरीका के प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिंकन की पत्नी ने स्वप्न में देखा कि उसके पति की हत्या कर दी गई है। एक दिन बाद ही लिंकन को एक आततायी ने नाटक देखते हुए मार डाला। इसी प्रकार और भी कई स्वप्न इतिहास में प्रसिद्ध हैं जिनमें स्वप्न में देखी हुई बात आगे चल कर ठीक निकली।

इस तथ्य के आधार पर भारतीय मनीषियों ने स्वप्न को सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित मान कर विविध प्रकार के स्वप्नों को शुभ और अशुभ स्वप्नों की श्रेणी में बांट दिया है और उनके फल भी लिखे हैं। 'अग्नि-पुराण' में भी स्वप्नो के फल के सम्बन्ध में एक अध्याय है जिसमें शुभाशुभ स्वप्नों का विवेचन किया है। उसमें कहा है कि—"नाभि को छोड़ कर कर शरीर के अन्य भागों में तृण तथा वृक्ष उत्पन्न होना' मुण्डित अथवा नग्न होना, मैले वस्त्र धारण करना, शरीर में तैल मर्दन, कीच में लिपटना, ऊँचे से गिरना, विवाह होना गीत-गान होना, झूला पर चढ़कर झूलना, पक्षी-मांस का भक्षण, माता के पेट में प्रवेश करना, चिता का दर्शन, लाल पुष्पों की माला धारण करना, वाराह, घोड़ा, गधा, ऊँट की सवारी, चन्द्रमा, सूर्य का नीचे गिर जाना, गोबर के पानी से स्नान करना, स्याही से स्नान करना, घर का गिर जाना, गेरुआ वस्त्र धारण करना आदि अशुभ स्वप्न हैं। उनको किसी से कहना नहीं चाहिए। उनको देखने पर फिर सो जाना चाहिए। भगवान् का स्मरण करने, देव स्तुति अथवा पुरुष सूक्त का पाठ आदि करने से उनका दोष मिट जाता है।"

"पहाड़, महल, हाथी, वृषभ पर चढ़ना, श्वेत पुष्पों के पेड़ पर चढ़ना, बाल सफेद हो जाना, बहुत श्वेत वस्त्र धारण करना, सूर्य, चन्द्र का ग्रहण, जुआ या संग्राम में जीत होना, खीर खाना, रुधिर में स्नान करना, दूध पीना,

राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, बैल, गाय आदि का देखना शुभ स्वप्न होते हैं।"

यह भी कहा गया है कि रात्रि के प्रथम प्रहर मे दिखाई पडने वाले एक वर्ष मे, दूसरे पहर के छः मास मे, तीसरे पहर के तीन मास में और चौथे पहर वाले आधे मास मे फल देने वाले होते हैं। जो स्वप्न प्रातः होते ही दिखाई दें उनका फल दस दिन में ही प्रकट हो जाता है। पर सब स्वप्न सच्चे नहीं होते और यदि एक रात मे दो बार स्वप्न दिखाई पड़ें तो उनमें से पिछला ठीक माना जाता है। जो स्वप्न शरीर की अस्वस्थ दशा मे या पेट के भारीपन आदि के कारण दिखाई दें वे भी निरर्थक होते हैं। शुभ या अशुभ घटनाओं की पूर्व सूचना देने वाले स्वप्न कभी-कभी बहुत गम्भीर अवसरों पर ही दिखाई देते हैं। अनेक व्यक्ति सदैव भाँति-भाँति के स्वप्न देखा करते हैं, जिनमे से अधिकांश जगने पर याद भी नहीं रहते, उनको निरर्थक मानना चाहिए। वे एक प्रकार से शारीरिक अस्वस्थता के चिह्न हैं, जिनका यदि यथोचित ढङ्ग से उपचार किया जाय तो वे बन्द हो सकते हैं।

हमारे देश में कौआ से शकुन का सम्बन्ध बहुत अधिक जोड़ा गया है। "जब कौआ घर पर बार-बार आकर बोलता है तो इसे प्रायः किसी के परदेश से आने की सूचना का शकुन समझना चाहिए। इसी प्रकार यदि वह बाँयी तरफ भयभीत होकर रोता-सा बोलता हो तो किसी विशेष दुर्घटना का चिह्न है। उसका दाँयी ओर बोलना धन की हानि करने वाला होता है। कौआ यदि बीच मे गला हो तो इसे उत्तम कहा गया है। "कुत्ते को भी शकुन का साधन माना गया है। कुत्ते का रोना शहर या गाँवों मे किसी के मरने या बीमार होने का चिह्न माना जाता है। "यदि कुत्ता मुँह मे जूता लिये दिखाई दे तो यह उत्तम है। बिना किसी कारण के रात का अचानक रैंभाना, उसके स्वामी के लिये किसी भय का सूचक होता है, रात्रि में रैंभाये तो चोरों का भय मानना चाहिए।" इसी प्रकार घोड़ा और हाथियों की चेष्टाओं को देख कर अनेक प्रकार के अनुमान किये जाते हैं। पर आश्चर्य है कि बिल्ली के सम्बन्ध मे कोई शकुन इस अध्याय मे नहीं दिया गया जिसका 'मार्ग काटना' आज-

कल एक बहुत प्रसिद्ध शकुन माना जाता है। वायु और वर्षा के चिह्नों से भी शुभ-अशुभ की सूचना मिल सकती है। रत्नों में भी शुभ-अशुभ का ध्यान रखने को कहा गया है। प्राचीन काल में राजा और बड़े लोग रत्नों की मालायें और अन्य आभूषण प्रायः धारण करते थे। अब भी धनी लोग अंगूठी में हीरा, लाल, आदि के नग जड़ाते हैं। 'रत्न-परीक्षा' के अध्याय में हीरा, मरकत और मोती को पहिचानने की कई विधियाँ दी गई हैं। उनमें विशेष रूप से उनकी चमक, आभा और रङ्ग देखा जाता है। जो स्वाभाविक और सुन्दरता युक्त होती है वही उत्तम माना गया है। योरोप के बादशाह भी अभी तक अपने मुकुटों में बहुमूल्य हीरे लगाया करते थे। इङ्गलैण्ड के राजमुकुट में लगा कोहनूर हीरा तो जगत् प्रसिद्ध है और अनेक व्यक्ति उसे वहाँ के राज्यवंश के लिये बड़ा कल्याणकारी मानते हैं। इसी प्रकार अनेक हीरों को योरोपीय लेखकों ने बहुत अशुभ बतलाया है।

पुरुष और स्त्रियों के लक्षण--

इस देश में किसी समय शुभाशुभ का विचार इतना अधिक बढ़ा हुआ था कि वह केवल स्वप्न, शकुन आदि जैसी सूक्ष्म क्रियाओं और पशु-पक्षियों तक ही सीमित न था वरन् पुरुष और स्त्रियों के अङ्गों के शुभाशुभ का निर्णय भी भिन्न-भिन्न चिह्नों के आधार पर किया जाता था। इस सम्बन्ध में कुछ बातें बड़ी कौतूहल जनक हैं—

'नेत्रों को छोड़कर जिसके नेत्र और दन्त शुक्ल होते हैं वह 'द्विशुक्लक' होता है। जिसके उदर में तीन वलि होती हैं वह 'त्रिवलीमान्' कहलाता है। छाती, मस्तक और वस्त्र जिसका चौड़ा होता है, उसे 'त्रिविस्तीर्ण' कहते हैं। अंगुलियाँ, हृदय, पृष्ठभाग और कटि जिसके प्रशस्त हों वह 'चतुःसम' होता है। जिसकी चार दाढ़ चन्द्र की सी आभावाली होती हैं वह 'चतुर्दंष्ट्र' होता है। दोनों नेत्रों की तारिकाएं, भौंहें और बाल जिसके काले होते हैं उसे 'चतुःकृष्ण' कहते हैं। रूखा और मांस से रहित देह अशुभ माना जाता है। वह पुरुष धन्य है जिसकी वाणी मधुर और गति मस्त हाथी के समान होती है। जिसके

एक रोमकूप हैं एक ही रोम रहता वह भय से रक्षित रहता है ।"

इसी प्रकार स्त्रियों के लिये कहा गया है कि—"सुनील केशों वाली, पतले अङ्गों वाली, बिना लोम वाली, जिसके पैरों के तलवे समान रूप से भूमि को स्पर्श करते हैं,वह स्त्री शुभ होती है । जिसका उदर लम्बायमान हो और रोमों से रूक्ष न हो वह शुभ होती है । जिसकी भृकुटियाँ जुड़ी हुई और कुटिल हों वह शोभन नहीं मानी जाती । जिस स्त्री की कनिष्ठिका उँगली भूमि का स्पर्श नहीं किया करती वह साक्षात् मृत्यु के समान होती है ।" कुछ विद्वानों ने तो शरीर अङ्गों के लक्षणों को सामुद्रिक शास्त्र (हस्तरेखा शास्त्र) का एक अङ्ग ही बना दिया है ।

स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्साशास्त्र—

इस पुराण में चिकित्साशास्त्र का वर्णन भी किया गया है और रोग निवारण के लिये अनेक औषधियाँ बतलाई गई हैं । स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी ज्ञान मनुष्य के लिये आवश्यक है और इस दृष्टि से अन्य विषयों के साथ इसका वर्णन उचित ही है । इस दृष्टि से 'गरुड़-पुराण' का नाम भी उल्लेखनीय है । उसमें औषधियों का वर्णन इतने विस्तार के साथ किया गया है जिससे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है । पर 'अग्नि पुराण' में केवल नुस्खे ही नहीं दिये गये हैं वरन् स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धान्तों और औषधि-तत्व का भी विवेचन किया गया है और रोग निवारण की अन्य विधियाँ भी बताई गई हैं । विभिन्न प्रकार की व्याधियों का भेद दर्शाते हुए इसमें कहा गया है—

"समस्त व्याधियाँ मानसिक, शारीरिक, आगन्तुक और सहज-चार प्रकार की हुआ करती हैं । ज्वर, खाँसी, कुष्ठ आदि शारीरिक व्याधियाँ हैं । क्रोध आदि मानसिक हैं । चोट आदि लग जाने से जो व्याधि पैदा हो जाती है । वह आगन्तुक हैं । भूख और वृद्धता आदि सहज व्याधियाँ हैं और समयानुसार स्वाभाविक रूप से हुआ करती हैं । शारीरिक और मानसिक व्याधियों के लिये घृत, गुड़, लवण आदि दान करना चाहिए । चन्द्रवार के दिन में विप्र को अम्यन्न का दान करने वाला समस्त रोगों से छुटकारा पा जाया करता है ।

शनिवार के दिन तेल का दान करे। आश्विन में गोरस और अन्न का दान करना चाहिये। त्रिमधुर (दूध, घृत और मधु) से डूबा हुआ कर दूब को गायत्री मन्त्र द्वारा अग्नि में हवन करना चाहिए। जिस नक्षत्र में व्याधि-घात हो उसके शुभ स्थल में बलि (विभिन्न पदार्थों की) देनी चाहिए। जो मानसिक रोग क्रोध, चिन्ता आदि होते हैं उनका निवारण करने के लिये भगवान् के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए। इससे मानसिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

"अब वात, पित्त कफ—ये तीन महादोष दौड़ लगाया करते हैं उनके विषय में श्रवण करो। जो भी अन्न खाया जाता है आमाशय में पहुँच कर उसके दो भाग होते हैं। उसका एक अंश तो किट्ट रूप में हो जाता है और दूसरा रस रूप में। पहले भाग का मल बन जाता है जो विष्ठा, मूत्र, पसीना आदि के रूप में बाहर निकलता है। नाक का मैल, कान का मैल, देह का मैल आदि की गणना भी उसी में की जाती है। दूसरे रस भाव से रक्त, मांस, मेद, अस्थि आदि की क्रम से उत्पत्ति होती है। अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है, जिससे राग और ओज बनता है। देश, व्याधि बल, शक्ति, काल और मानव की प्रकृति को जान कर और औषधि की शक्ति को समझ कर वैद्य को चिकित्सा करनी चाहिए। चिकित्सा के आरम्भ में वैद्य को रिक्ता, तिथि, भौम वार, नन्द, दारुण और उग्र नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए। फिर हरि, गौ, द्विज, चन्द्र' सूर्य और देवगण आदि की अर्चा करके विद्वान् वैद्य को औषध का प्रयोग आरम्भ करना चाहिए। वैद्य को कहना चाहिए कि—"जब मैं इस औषध' को देता हूँ तो ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, समस्त ऋषिगण औषध समूह और भूत सङ्घ तेरी (रोगी की) रक्षा करें। ऋषियों की रसायन की भाँति, देवों के अमृत की तरह, नागों की सुधा की तरह यह औषध तेरे लिये प्रभाव वाली हो।"

वर्तमान समय में इन नियमों का प्रायः लोप हो गया है। खास कर डाक्टरी चिकित्सा में तो दैवी-शक्ति की तरफ किसी तरह का ध्यान देना

आवश्यक ही नही माना जाता। पर यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो ये नियम बहुत कुछ लाभदायक हैं। दैवी शक्तियों का ध्यान करने और उनकी कृपा प्राप्त करने की भावना रखने से किसी प्रकार की हानि तो हो ही नहीं सकती। वरन् मनःक्षेत्र मे एक साहस, उत्साह की भावना उत्पन्न होती है जो स्वास्थ्य के सुधारने मे सहायक होती है। अनेक व्यक्ति तो मानसिक प्रेरणा से ही अपनी और दूसरो की व्याधियो का निवारण करने में समर्थ होते हैं। इसलिये चिकित्सा करते समय प्रेरणाप्रद मानसिक वातावरण बना लेना हर दृष्टि से उपयोगी है।

पुराणकार ने यह भी कहा कि—"व्याधि का मूल कारण जान कर उसको मिटाने के लिये ही औषध करनी चाहिए।" इसके लिये वैद्य को पहले रोगी की प्रकृति का पता लगाना होता है। आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य तीन प्रकृतियों के होते हैं—वात, पित्त और कफ।" वायु रूक्ष, शीत और मल होता है, पित्त उष्ण और कटु होता है, कफ स्निग्ध और मधुर कहा गया है। इन तीनों के समान रहने पर स्वास्थ्य उत्तम रहता है और देह की वृद्धि होती है और जब ये विपरीत हो जाते हैं तो इससे उल्टा परिणाम दिखाई पडने लगता है। मधुर रस वाले पदार्थ कफ की वृद्धि करने वाले होते हैं, कड़वे, चटपटे और कसैले वायु के बढाने वाले और कफनाशक होते हैं, कटु, अम्ल, लवण रस पित्त को बढ़ाने वाले होते हैं। तिक्त, मधुर और कसैले पित्त के नाशक होते है। यह केवल रस का ही गुण नही होता वरन् उसके विपाक का हुआ करता है जो पदार्थ वीर्योष्ण होते हैं वे कफ और वात के नाशक होते हैं और जो शीतवीर्य होते हैं वे पित्त के नाशक होते हैं। शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म मे क्रम से कफ का सचय, प्रकोप और उपशम हुआ करता है। वर्षा, शरद और हेमन्त मे क्रम से पित्त का सचय, प्रकोप और उपशम होता है।"

यह भी कहा है कि—"अत्यधिक भोजन कर लेने से और बिल्कुल भोजन न करने से भयकर रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। वेगो को रोकने से भी रोगों की उत्पत्ति होती है। नाभि के ऊपर और नीचे जो गुद-श्रोणियाँ हैं

इन्हीं को कफ, पित्त, वायु का स्थान बताया गया है तो भी ये समस्त शरीर में गमन करने वाले होते हैं और वायु तो विशेष रूप से देह भर में रहता ही है। सभी मनुष्य वात, पित्त और कफ स्वरूप हुआ करते हैं। मैथुन से रक्त-पित्त होता है। बहुत अधिक कार्य करने, रूक्ष भोजन तथा शोक से वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेष दाह करने वाले पदार्थ, उष्ण भोजन तथा मार्ग चलने से पित्त प्रकुपित हो जाया करता है। मद्य से भी पित्त प्रकुपित होता है। अधिक जल पीने वाले, भारी अन्न के भोजन करने वाले तथा खाकर शयन करने वालों का कफ प्रकुपित हो जाता है। इस प्रकार वायु आदि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोगों को भली भांति समझ कर, जो कि लक्षणों द्वारा जाने जाते हैं, शमन करने का प्रयत्न करे।"

आगे चलकर इन तीनों दोषों के कारण उत्पन्न लक्षणों को भी बताया गया है। "हड्डी का टूटना, मुख का कसैला स्वाद, मुख का सूखापन, जँभाइयों का आना, रोमहर्ष (रोंगटे खड़ा होना) ये सब कफ जन्य व्याधियों के लक्षण होते हैं। नख, नेत्र, शिराओं का पीलापन, मुख का कड़ुआ जायका, तृष्णा (प्यास अधिक लगना), दाह और उष्णता की अधिकता ये सब पित्त-प्रकोप के लक्षण हैं। आलस्य रहना, भारीपन, मुख का मीठा स्वाद रहना, गर्म-गर्म वस्तुओं के सेवन की इच्छा रहना ये सब-प्रकोप वायु से उत्पन्न रोगों के लक्षण होते हैं। इन लक्षणों का शमन किस प्रकार हो सकता है? स्निग्ध और उष्ण भोजन, अभ्यङ्ग. तैल मर्दन आदि से वायु शान्त होती है। घृत, दूध और मिश्री आदि तथा चन्द्रमा की किरणों का सेवन पित्त के प्रकोप का शमन करने वाले हैं। शहद के साथ त्रिफला का सेवन, तैल मर्दन और व्यायाम आदि कफ के प्रकोप से होने वाले रोगों का शमन किया करते हैं। अन्त में समस्त रोगों को शान्त करने का उपाय भगवान् का ध्यान और पूजन होता है।"

तीर्थों की उपयोगिता—

भारतीय-धर्म में तीर्थ-यात्रा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वर्त-

मान समय में तीर्थों का स्वरूप बहुत विकृत हो गया है जिसे देख कर विचारशील लोग उनका विरोध करते हैं और कितने ही ग्रन्थों में भी उनके धर्म को साधन का सबसे छोटा उपाय माना है। अध्यात्मवादियों का कथन है—

> अप्सु देवा बालानां दिवि देवा मनीषिणाम्।
> काष्ठलोष्ठेषु मूर्खाणां युक्तस्यात्मनि देवता॥

अर्थात्—"सामान्य बुद्धि वाले भगवान् को नदी कुण्डों आदि में समझते हैं, विद्वान् उसे दिव्य (सूक्ष्म) शक्तियों के रूप में मानते हैं, बुद्धिहीन काष्ठ पाषाण को ही भगवान् मान लेते हैं, पर अध्यात्म योग का ज्ञाता उसे अपनी अन्तरात्मा में ही अनुभव करता है।"

इस प्रकार प्राचीन और नवीन विद्वान् तीर्थों के महत्व की न्यूनता प्रकट करते हैं पर अभी तक भारतीय जनता का बहुत बड़ा भाग उनसे प्रभावित है और उन्हें पुण्य-प्राप्ति का साधन मानता है। 'अग्नि-पुराण' में भी भारत के मुख्य तीर्थों का वर्णन किया है, पर साथ ही यह भी कह दिया है कि केवल अन्धश्रद्धा से तीर्थ-यात्रा कर आने वाला कोई विशेष लाभ नहीं पा सकता—

"तीर्थ भोग और मोक्ष देने वाले हैं। पर जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ तथा मन भली-भाँति संयम में रहने वाले होते हैं वही तीर्थों का उत्तम फल प्राप्त किया करता है। जो प्रतिग्रह (किसी का दान) नहीं लेता, लघु आहार करता है और संयम का पालन करता है वह तीर्थ यात्रा द्वारा वही फल प्राप्त कर लेता है जो यज्ञ करने से प्राप्त हुआ करता है।"

'अग्नि-पुराण' में सबसे पहला स्थान पुष्कर और कुरुक्षेत्र को दिया है। इनके अतिरिक्त काशी, प्रयाग, राजगृह, वटेश्वर, शोण (सोनपुर) कोल्लगिरि, महाद्रि, मलयगिरि, नर्मदा, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, वरदा, नासी, रेवा, दण्डकारण्य, कालंजर, मुंजव, चित्रकूट, शृङ्गवेरपुर, अवन्ती, अयोध्या आदि का नाम भी है। पर आश्चर्य है कि जिन चार धामों, बद्रीनारायण, द्वारका, जगन्नाथ, रामेश्वर को आज सबसे बड़ा तीर्थ माना जा रहा है उनका

उल्लेख कहीं नहीं है। इसी प्रकार व्रज (मथुरा, वृन्दावन) का नाम भी कहीं नहीं आये हैं। प्रयाग के वर्णन में एक बात सबसे अधिक महत्त्व की यह है कि इसमें 'त्रिवेणी' का नाम नहीं आया है और स्पष्ट रूप से केवल गङ्गा और यमुना का सङ्गम बतलाया गया है। इसमे लिखा है—

"अब मैं परम भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाले प्रयाग का माहात्म्य बताऊंगा प्रयागराज में ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवगण और मुनि-वर्ग स्थित रहा करते हैं। वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं, उनके बीच में जाह्नवी बड़े वेग से बहती है और समस्त तीर्थ उसके साथ रहते हैं। वहाँ सूर्य पुत्री यमुना भी बहती है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। गङ्गा और यमुना इन दोनों नदियों के मध्य का भाग पृथ्वी की जाँघ कहा गया है। उनके मध्य में प्रयाग की स्थिति है ऐसा श्रुतियों का कथन है।"

इसी प्रकार काशी के वर्णन में हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्री पर्वत, महालय, चण्डेश्वर, केदार आदि का नाम दिया है, पर जो विश्वनाथ, दशाश्वमेघ, मणिकर्णिका आदि आजकल सबसे प्रमुख हैं उनका उल्लेख कहीं नही है। इससे इस पुराण की प्राचीनता अथवा इन तीर्थों की नवीनता का आभास होता है।

दान के विषय में विवेकशीलता—

अन्य पुराणों की भाँति इसमें भी दान का माहात्म्य बतलाया गया है और कई प्रकार के दानों का वर्णन मिलता है, पर तो भी जिस प्रकार अन्य कई पुराणों में सुवर्ण-पर्वत का दान, रत्न पर्वत का दान, समुद्र-दान, पृथ्वीदान आदि जैसे लम्बे-चौड़े दानों का वर्णन किया गया है, वैसा इसमें नही किया गया है इसमें आरम्भ मे ही कहा गया है कि—जो दान समुचित देश-काल में योग्य पात्र को दिया जाता है वही पूर्ण पुण्य देने वाला होता है।" फिर यह भी कह दिया है कि—'पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चार्जितं क्वचित्" अर्थात् जो दान अपने परिश्रम और ईमानदारी से उपार्जित धन में से दिया जाता है वही परम पुण्यदायक है।" 'पासे (जुआ) से प्राप्त, चोरी, ठगी आदि से मिलने वाला

लूट मार से उपार्जित व्याज अथवा धोखे से उपलब्ध धन का दान भिन्न प्रकार का फल देता है।"

इस पुराण में दान देने के उपयुक्त समय पर अधिक जोर दिया है कि "अयन में, विषुव मे, व्यतीपात मे, दिनक्षय में, युगादि मे, संक्रान्ति में, चतुर्दशी-अष्टमी तिथियों मे, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा, सर्वद्वादशी और अष्टकाओं मे दान दिया जाता है। अयन उत्तरायण और दक्षिणायन दो होते हैं। विषुव दो, षडशीतियाँ चार, विष्णुपदी चार और सक्रान्ति बारह परम उत्तम होती है। कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियो मे जब सूर्य की गति होती है वह भी उत्तम समय है। श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, नक्षत्रों मे जब 'नागद्वैतय मस्तक' मे रविवार होता है तो वह व्यतीपात योग कहा जाता है। अब चारों युगों के आदि को बताते है—कार्तिक मास शुक्लपक्ष मे नवमी को सतयुग की, वैसाख मास मे शुक्ल पक्ष की तृतीया को त्रेता की, माघ मास की अमावस्या को द्वापर तथा चैत्र की कृष्ण त्रयोदशी को कलियुग की समाप्ति मानी गई है। इसी प्रकार कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठ मे अष्टका नाम वाली अष्टमी पर दान करना अक्षय पुण्य देने वाला माना गया है।

दान वही श्रेष्ठ होता है जो पूर्ण श्रद्धा और बिना किसी प्रकार के स्वार्थ की भावना के दिया जाता है। इस पुराण के कथनानुसार—"धर्म का साधन श्रद्धा से ही होता है। श्रद्धा से दिया हुआ जल भी अक्षय पुण्य का कारण होता है।" ऐसी दशा में हम उन दानियो के लिये क्या कहें जो दान के साथ अपना चित्र और शिलालेख रखे जाने का विचार रखते हैं। वर्तमान समय के धनवान् अपने दान का जिस प्रकार विज्ञापन करते हैं और उसके द्वारा अपना प्रभाव बढ़ा कर आर्थिक लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं, उसका वास्तव में अधिक महत्त्व नही समझना चाहिए। इसी प्रकार पुराने ढङ्ग की रूढियों को जो भीख माँगने वाले ब्राह्मणो और पडा पुजारियों को दान देकर धर्म प्राप्त करना चाहते हैं वे गलती पर है। कहा गया है कि—"जो द्विज तप से रहित है, अध्ययन नहीं करता किन्तु दान लेने मे रुचि रखता है, उसे दान

देना ऐसा ही है जैसे पत्थर की नाव में बैठना, जो बैठने वाले को भी ले डूबती है।" दान की प्रणाली में किस प्रकार धीरे-धीरे कृत्रिमता आती गई इसका एक बड़ा सुन्दर रूपक इसमें दिया गया है—

"सतयुग में दानदाता स्वयं विद्वान् और सत्पात्र ब्राह्मण के पास जाकर दान दिया करता था। त्रेता युग में ब्राह्मण को घर बुला कर दान दिया जाता था। फिर द्वापर की अवस्था में ब्राह्मण जब याचना करता था तब दान दिया जाता था। पर कलियुग में दान देने की व्यवस्था यह है कि जो बराबर पीछे लगा रहे उसी को दान दिया जाता है।"

इससे ज्ञात होता है कि जिस काल में समाज पूर्ण रूप से संगठित था और सब लोग एक दूसरे के हित का ध्यान रखते थे उस समय दान उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाता था, जिनका मुख्य जीवनोद्देश्य समाज-सेवा और परोपकार होता था। वे अपना सम्पूर्ण समय अध्ययन और अध्यापन में लगा देते थे, जिससे समस्त समाज में ज्ञान का प्रकाश फैले और सब लोग अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन करके देश और जाति की उन्नति तथा सुरक्षा में सहयोग दे सकें। ऐसे व्यक्ति उस समय ब्राह्मण वर्ग के भीतर समझे जाते थे और लोग उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में उनके भरण पोषण का स्वयं ही पूरा ध्यान रखते थे। यही कारण था कि बिना माँगे या याचना किये सभी आवश्यक वस्तुएं उनके पास स्वयमेव पहुँचा दी जाती थीं। पर जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदलती गईं और ब्राह्मण दान को कर्त्तव्य-पालन का प्रतिफल समझने के बजाय उसे प्रतिग्रह के रूप में ग्रहण करने लगे, वैसे-वैसे ही उसमें विकृतियों तथा दोषों का समावेश होने लग गया। आज दान-प्रथा की जो दुर्दशा हो रही है उसका कारण उपर्युक्त सिद्धान्त को भुला देना ही है।

जीवनोपयोगी विषयों की जानकारी—

यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विषयों का विवेचन करना ही है और अधिकांश पुराणों को इसी दृष्टिकोण से लिखा गया है, पर 'अग्नि-पुराण' इस दृष्टि से अपवाद स्वरूप है। यद्यपि 'गरुड़-पुराण' में भी कितने ही जीवनोपयोगी विषयों का—विशेष रूप से 'औषधि-शास्त्र' का बहुत अधिक समावेश किया गया है, पर 'अग्नि-पुराण' की बात दूसरी ही है। इसके अध्य-

यन से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय यह पुराण लिखा गया उस समय देश और समाज में जितनी विद्याओं और समाजोपयोगी पेशों का प्रचलन था उन सबका काम चलाऊ परिचय देने का प्रयत्न पुराणकार ने किया है। यद्यपि समय के बदल जाने से अब उन सब बातों का महत्व पहले जितना नहीं रहा है, तो भी उनके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

इस पुराण में औषधि-शास्त्र का जो वर्णन किया गया है वह सुश्रुत और धन्वन्तरि के सम्वाद रूप में आरम्भ किया गया है। उसमें संक्षेप में चिकित्सा की समस्त मुख्य विधियाँ बतला दी गई हैं। शरीर-शोधन के लिये षट्कर्म का उल्लेख है। ज्वर तथा अन्य रोगों के पथ्य-पदार्थों का भी अच्छा वर्णन किया गया है। अधिकांश जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों से ही चिकित्सा बताई है। एक विशेष बात इस अध्याय में यह है कि इसमें 'सूची' (सुई) के इलाज का नाम भी मिलता है, जिसे हम आजकल के इन्जेक्शन के समान मान सकते हैं। इस सम्बन्ध में अध्याय ११६ के ५५ वें श्लोक में कहा है—

तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः।
सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदा हितम्॥

अर्थात् "इसी प्रकार सूची का उपचार होता है, विशेषतः बलिकर्म होता है और सूतिका-कर्म भी होता है। इस सबका उद्देश्य मनुष्यों की प्राण-रक्षा ही होनी चाहिये।"

इसमें केवल शारीरिक व्याधियों का ही वर्णन नहीं है वरन् 'मानसिक' 'आगन्तुक' तथा 'सहज' व्याधियों का भी वर्णन किया गया है और उनकी चिकित्सा भी बतलाई गई है। जैसे क्रोध, चिन्ता आदि मानस-रोगों के लिये भगवान् विष्णु के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। दूध-घी-शहद से गायत्री हवन और घी, गुड़, तेल, अन्न आदि का दान करने से रोगों की शांति का विधान बताया गया है। रोग होने के कारणों का भली प्रकार विवेचन किया गया है। और अन्तमें कह दिया गया है कि अत्यधिक भोजन करनेसे समस्त रोग हुआ करते हैं। इसी प्रकार मल, मूत्र, खाँसी, अधोवायु आदि के स्वाभाविक वेगों को रोकने

स्वास्थ्य में दोष उत्पन्न होते हैं।' व्याधि के मूल कारण को जान कर उसके विपरीत औषधि देनी चाहिये।'

हाथियों के पालन और चिकित्सा के विषय में भी लिखा गया है; क्योंकि प्राचीन काल में जब तोप और बन्दूकों का प्रचार नहीं हुआ था, युद्ध आमने-सामने खड़े होकर ही किया जाता था और उस अवसर पर गज-सेना द्वारा विजय में बहुत सहायता मिलती थी। सिकन्दर को भारत विजय करने में मुख्य बाधा हाथियों की ही जान पड़ी थी और इससे अन्त में वह वापस चला गया था। हाथियों को घी तेल की मालिश करके स्नान कराने को बताया गया है। हाथियों को चावल, जौ, गेहूँ खिलाने को कहा गया है। हाथी के लिये ईख शक्ति-प्रदायक होती है। मद बहने के कारण जो हाथी क्षीण हो गया हो उसे दूध पिलाने को कहा गया है। हाथियों के दस्त, शिरदर्द, मूत्र-भङ्ग, त्वचा-रोग आदि के लिये भी मनुष्यों की तरह औषधि देने की विधियाँ बतलाई गई हैं।

घोड़ा को तो युद्ध करने वालों का सबसे बड़ा सहायक माना गया है। इसलिए उसको ग्रहण करते समय उसकी पूजा करने का विधान है। यहाँ तक कहा गया है कि चढ़ने से पहले अश्व के चित्त में ब्रह्म; बल में विष्णु, पराक्रम में गरुड़, पार्श्व में रुद्र, मर्म भागों में देवगण; नेत्रों में चन्द्र-सूर्य; कानों मे अश्विनीकुमार, पेट में अग्नि, पसीने में स्वधा, जिह्वा में वाग्देवता; वेग में अनिल; पीठ में नाक-पृष्ठ, खुरों में समस्त पर्वत, रोम कूपों में तारागण, तेज में अग्नि, श्रोणी में रति, ललाट में जगत्-स्वामी, हिनहिनाने में ग्रहगण; उर-स्थल में वासुकि का ध्यान करना चाहिये।' इस प्रकार अश्व को मित्र की तरह समझ कर उसके आराम का सदा ध्यान रखना चाहिये और उसे किसी प्रकार का रोग हो जाय तो बहुत विचारपूर्वक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। ऐसे श्रेष्ठ व्यवहार द्वारा ही घोड़ा उत्तम गुणों से युक्त बन सकता है और युद्ध में तथा अन्य अवसरों पर भी मनुष्य का सच्चा सहायक सिद्ध होता है।

गाय का महत्व तो सर्वाधिक माना ही गया है। उस युग में समाज का आधार मुख्यतः गौ पर ही था। शारीरिक विकास और पुष्टता का मुख्य साधन गाय का दूध और घी ही था। उससे उत्पन्न बैलों द्वारा ही खेती का सारा काम किया जाता था और खाने के लिये अन्न उत्पन्न होता था। आवागमन और

से-माल के ढोने के लिये भी बैलगाड़ियों और रथ आदि का प्रयोग किया जाता था। इसलिये गौ को यहाँ एक उपयोगी पशु ही नहीं वरन् एक दैवी शक्ति मान कर सम्मानित किया गया। इस तथ्य का विवेचन करते हुए 'अग्निपुराण' का कथन है—

"ऋषियों के अग्निहोत्र और होम में गौएँ ही योजित होती हैं। समस्त प्राणियों को गौ सर्वोत्तम रक्षक होती है। गौ परम पवित्र है तथा परम मङ्गलकारी है। गौ स्वर्ग जाने की सीढ़ी है। गौ सनातन एवं परम धन्य है। श्रीमती गौओं के लिये नमस्कार है। देव, गौ, ब्राह्मण, साधु और साध्वी—इनसे ही यह समस्त जगत् सदा धारण किया जाता है।" इस प्रकार गौ की अपार महिमा बता कर उनकी सुख-सुविधा के लिये पूरा विधान बताया गया है।

× × ×

निस्सन्देह 'अग्निपुराण' उपयोगी विद्याओं और कल्याणकारी ज्ञान का भण्डार है। प्राचीन समय में जबकि पुस्तकें दुर्लभ थीं और विद्या प्राप्त करने में बहुत परिश्रम तथा त्याग-तपस्या की आवश्यकता पड़ती थी, एक स्थान पर इतनी अधिक ज्ञान-राशि का एकत्रित कर देना कम महत्त्व और प्रशंसा की बात न थी। इस एक ग्रन्थ से ही उस समय मनुष्य अनेक प्रकार की आवश्यक सूचनायें प्राप्त करके अपने कार्यों का निर्वाह कर सकते थे। इस दृष्टि से इसको 'भारतीय विद्याओं का विश्वकोष' कहना युक्तियुक्त ही है। इसके लेखक ने जिस प्रकार धार्मिक और लौकिक ज्ञान का समन्वय किया है, उससे उनकी सूझ-बूझ की प्रशंसा करनी चाहिये। लोक-कल्याण की भावना से किया गया इनका यह प्रयास निस्सन्देह आदरणीय और स्तुत्य है।

वसंत पंचमी, २०२४ वि०] —श्रीराम शर्मा आचार्य



अग्निपुराणम् ।

१—पुराणारम्भ प्रस्तावश्लोकः

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् ।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन्वासुदेवं नमाम्यहम् ॥१
नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ॥२
सूत त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥३
सारात्सारो हि भगवान्विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः ।
ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥४
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि इति चाऽऽथर्वणी श्रुतिः ॥५
अहं शुकश्च पैलाद्या गत्वा बदरिकाश्रमम् ।
व्यासं नत्वा पृष्टवन्तः सोऽस्मान्सारमथाब्रवीत् ॥६
शुकाद्यैः शृणु सूत त्वं वसिष्ठो मां यथाऽब्रवीत् ।
ब्रह्म सारं हि पृच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम् ॥७
द्विविधं ब्रह्म वक्ष्यामि शृणु व्यासाखिलात्मगम् ।
यथाऽग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्दैवतैः सह ॥८

आरम्भ मे देव प्रणाम स्वरूप वाला मङ्गलाचरण शिष्टों के आचार के अनुसार किया जाता है। ग्रन्थकार कहता है—मैं लक्ष्मी-सरस्वती-गौरी-गणेश-स्वामि कार्तिकेय-शिव-ब्रह्मा-अग्नि-इन्द्र आदि देव और वासुदेव सब को नमस्कार करता हूं ॥१॥ नैमिषारण्य में हरि भगवान् का मनन करने वाले शौनकादि ऋषिगण ने तीर्थाटन के प्रसङ्गवश समागत हुए श्री सूतजी

से कहा ॥२॥ ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप हमारे सबके पूज्य हैं और बड़े हैं इसलिये हमारे आगे सार से भी सार जो वस्तु हो उसे बतलाने की कृपा करें जिसके जानने से ही *सर्वज्ञत्व अर्थात् सब का ज्ञान उत्पन्न हो जाया* करता है ॥३॥ श्री सूत जी ने *कहा—समस्त सारों का भी सार सर्ग आदि के* करने वाले व्यापक भगवान् विष्णु हैं। उनको जानकर अर्थात् उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—इस तरह सर्वज्ञत्व उत्पन्न हो जाता है ॥४॥ जानने के योग्य ब्रह्म दो हुआ करते हैं एक तो शब्द ब्रह्म होता है और दूसरा पर-ब्रह्म होता है। दो विद्याएँ जाननी चाहिए यह और आथर्वणी श्रुति दूसरी विद्या है ॥५॥ मैं-शुकदेव और पैल आदि सब बदरिकाश्रम मे गए और वहां जाकर हम सबने श्री व्यास मुनि को प्रणाम किया और उन से पूछा था। तब उन ने हमको सार वस्तु बतलाई थी ॥६॥ व्यास जी ने कहा—हे शुक आदि के सहित आये हुए सूत ! तुम श्रवण करो—एक बार मुनियों के साथ मैंने पर-से-पर सारस्वरूप ब्रह्म के विषय मे वसिष्ठ जी से पूछा था तब उन्होंने पूछने वाले मुझको जिस प्रकार से बतलाया था वह तुम सुन लो ॥७॥ वसिष्ठ जी बोले थे हे व्यास ! समस्त आत्माओं में निवास करने वाले ब्रह्म दो प्रकार के होते हैं उनको मैं बतलाऊँगा उसका तुम श्रवण करो—पहिले अग्नि देव ने मुनिगण और देव वृन्द के सहित मुझ से जैसा कहा था वही मैं तुमको कहता हूँ ॥८॥

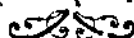
पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याऽक्षरं परम् ।
ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म सर्वदेवसुखं परम् ॥९
अग्निनोक्तं पुराण यदाग्नेयं वेदसमितम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥१०
कालाग्निरूपिणं विष्णुं ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम् ।
मुनिभिः पृष्टवान्देवं पूजितं ज्ञानकर्मभिः ॥११
संसारसागरोत्तारनावं ब्रह्मेश्वरं वद ।
विद्यासारं यद्विदित्वा सर्वज्ञो जायते नरः ॥१२

विष्णुः कालाग्निरुद्राऽहं विद्यासारं वदामि ते ।
ब्रह्माऽऽग्नेयं पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम् ॥१३
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च ।
वंशाऽनुचरितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपधृक् ॥१४

परब्रह्म विद्याक्षर आग्नेय पुराण पर है और ऋग्वेदादि अपरसमस्त देवों को सुख करने वाला परब्रह्म है ॥९॥ जो अग्निदेव के द्वारा पुराण कहा गया है वह आग्नेय पुराण वेद संमित होता है। जो इस पुराण के पढ़ने वाल तथा इसका श्रवण करने वाले मनुष्य हैं उन्हें यह पुण्य पुराण भोग तथा मोक्ष दोनों ही दिया करता है ॥१०॥ कालाग्नि के रूप धारण करने वाले पर से भी पर ब्रह्म ज्योति स्वरूप विष्णु से जो ज्ञान कर्म वाले मुनियों के द्वारा पूजित थे ऐसे देव से पूछा था ॥११॥ वसिष्ठ जी ने कहा—इस ससार रूपी सागर से उत्तरण करने के लिये नौका विद्या का सार ब्रह्मेश्वर को बताओ जिसका ज्ञान प्राप्त करके मानव सर्वज्ञ हो जाता है ॥१२॥ अग्नि देव ने कहा—मैं विष्णु कालाग्नि रुद्र हूँ तुमको विद्या का सार बताता हूँ। जो समस्त ब्रह्माग्नेय पुराण है वह सब का कारण होता है ॥१३॥ सर्ग का–प्रति सर्ग का और वंश मन्वन्तर का तथा वंशानुचरित आदि का, मत्स्य एवं कूर्म आदि रूपों के धारण करने वाले का है ॥१४॥

द्वे विद्ये भगवान्विष्णुः परा चैवापरा द्विज ।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदा अङ्गानि षड्द्विज ॥१५
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषा गतिः ।
छन्दोभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ॥१६
न्यायो वैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम् ।
अपरेयं, परा विद्या यया ब्रह्मावगम्यते ॥१७
यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम् ।
विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥१८
तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ॥१९

हे द्विज ! दो विद्या भगवान् विष्णु हैं। एक परा विद्या है और दूसरी अपरा विद्या है। ऋक्-साम-यजु और अथर्व ये नाम वाले चार वेद हैं और इनके छै अङ्ग होते हैं। १५॥ अब उन षट् वेदों के अङ्गों के नाम कहते हैं--शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द—मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, आयुर्वेद गान्धर्व, धनुर्वेद और अर्थशास्त्र यह अपरा विद्या है। परा विद्या वह है जिसके द्वारा ब्रह्म जाना जाता है अर्थात् जिससे ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है॥ १६–१७॥ जो ब्रह्म अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र चरण और ध्रुव है। पहिले ब्रह्मा जी ने देवों से कहा था और विष्णु ने मुझ से कहा था। जिस प्रकार से मुझे बताया गया है। उसी रीति से मैं मत्स्यादि रूपी हेतु को तुम्हें कहूँगा॥ १८–१६॥



२–मत्स्यावतारकथावर्णनम्।

मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्गादिकारणम्।
पुराणं ब्रह्म चाऽऽग्नेय यथा विष्णोः पुरा श्रुतम्॥१
मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वसिष्ठ शृणु वै हरे।
अवतारक्रिया दुष्टनष्ट्यं सत्पालनाय हि॥२
आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादिका मुने॥३
मनुर्वैवस्वतस्तेपे तपो वै भुक्तिमुक्तये।
एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम्॥४
तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत।
क्षेप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नृपोत्तम॥५
ग्राहादिभ्यो भयं मेऽत्र तच्छ्रुत्वा कलशेऽक्षिपत्।
मनुं वृद्धः पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे बृहत्॥६
स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाऽथोदञ्चनेऽक्षिपत्।
तत्र वृद्धोऽब्रवीद्भूपं पृथु देहि पदं मनो॥७
सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान्।
ऊचे देहि बृहत्स्थानं प्राक्षिपच्चाम्बुधौ मनुः॥८

लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत् ।
मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवांन्मनुः ॥६
को भवान्नु विष्णुस्त्वं नारायण नमोऽस्तु ते ।
मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥१०

मत्स्यावतार कथा का वर्णन है । वसिष्ठ जी ने कहा—सर्ग आदि के कारण जो मत्स्य आदि के रूप धारण करने वाले विष्णु हैं उन्हें बताइये । जिस रीति पहिले विष्णु से आपने आग्नेय-पुराण-ब्रह्म सुना है ॥ १ ॥ अग्नि देव ने कहा हे वसिष्ठ ! मैं अब तुम से हरि भगवान् के मत्स्य अवतार की कथा बताऊँगा उसे श्रवण कर लो । भगवान् के अवतार लेने का काम सत्पुरुषों के पालन करने के लिये तथा दुष्टों के संहार करने के लिये होता है ॥ २॥ व्यतीत हुए कल्प के अन्त में ब्रह्म नाम वाला नैमित्तिक लय हुआ था । हे मुने ! उस समय में वहाँ भू आदि समस्त लोक समुद्र के द्वारा उपप्लुत अर्थात् निमज्जित हो गये थे ॥ ३ ॥ वैवस्वत मनु मुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहे थे । एक बार कृतमाला नदी में जल से तर्पण कर रहे थे । उस समय वहाँ उनकी जल से भरी हुई अंजलि में एक छोटा-सा मत्स्य आ गया था । जब वे उसे जल में फेंकना ही चाहते थे तो उस समय वह मत्स्य उनसे कहने लगा—हे नृपोत्तम ! तुम मुझे जल में मत फेंको ॥४-५॥ मुझे यहाँ जल में बड़े-बड़े ग्राह आदि से भय होता है । यह मत्स्य का कथन सुन कर उनने उसे अपने कलश में डाल लिया था । फिर बढ़े हुए उस मत्स्य ने मनु से कहा मुझे कोई बड़ा स्थान दीजिए ॥ ६ ॥ मत्स्य के इस वचन को सुन कर राजा ने उसे एक जलगर्त्त में डाल दिया था । वहाँ पर भी बढ़े हुए ने फिर राजा से प्रार्थना की हे मनो ! कोई और बड़ा स्थान मुझे रहने के लिये दो । इसके पश्चात् उसे एक सरोवर में डाल दिया गया था । वहाँ पर भी वह उसी प्रमाण से युक्त होकर बढ़ गया और राजा से बोला—मुझे और भी विशाल कोई रहने के लिये स्थान दो । तब तो वैवस्वत मनु ने उसे पुनः समुद्र में डाल दिया था ॥ ७-८ ॥ वहाँ पर वह एक क्षण भर में ही एक लाख योजन के विस्तार वाला हो गया था । मनु उस अत्यन्त अद्भुत

मत्स्य को देख कर बड़ा विस्मय करके उससे बोले ॥ ९ ॥ आप कौन हैं? निश्चय ही आप विष्णु हैं, हे नारायण! आपके लिये मेरा प्रणाम है। हे जनार्दन! आप किस लिये इस अपनी परम अद्भुत माया से मुझे मोहित कर रहे हैं? ॥ १० ॥

मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतः।
अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ॥११
सप्तमेऽथ दिने ह्यब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत्।
उपस्थितायां नावि त्वं बीजादीनि निधाय च ॥१२
सप्तर्षिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मीं चरिष्यसि।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥१३
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे मत्स्यो मनुः कालप्रतीक्षकः।
स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ॥१४
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः।
नावं बद्ध्वा तस्य शृङ्गे मत्स्याख्यं च पुराणकम् ॥ ५
शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन्स्तुतिभिश्च तम्।
ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवं च दानवम् ॥१६
अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामास केशवः।
प्राप्ते कल्पेऽथ वाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः ॥१७

इस रीति से जब मनु ने मत्स्य से प्रार्थना की तो फिर उस मत्स्य ने मनु से कहा—मैं मनु तेरे पालन करने में रति रखने वाला होकर इस संसार में उत्पन्न हुए दुष्टों के नाश करने के लिये ही अवतीर्ण हुआ हूं ॥ ११ ॥ आज से सातवें दिन में यह समुद्र समस्त इस जगत् को डुबा देगा और उस समय एक नाव उपस्थित होगी उसमें तुम समस्त बीज आदि मूल वस्तुओं को रख लेना ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर सप्त ऋषियों को साथ में लेकर उसी में बैठ जाना और उस रात्रि में जो कि ब्राह्मी रात्रि के नाम से प्रसिद्ध है नाव में बैठ कर विचरण करना। मैं भी वहां प्रस्तुत रहूंगा। एक महान् सर्प से उस नौका को मेरे सींग से बांध देना ॥ १३ ॥ इतना मनु से कह कर वह

मत्स्य तो अन्तर्द्धान हो गया और मनु वैवस्वत फिर उस सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगे थे। जब वह समय आ गया तो समुद्र ने उद्वेलित होकर प्लावन करना आरम्भ कर दिया था और वह मनु मत्स्य भगवान् के कथनानुसार उस उपस्थित होने वाली नौका में बैठ गये थे ॥ १४ ॥ एक नियुत लम्बा सुवर्ण के सींग वाला वह मत्स्य वहाँ उस समय में उपस्थित हो गया था। उस नौका को उसके शृङ्ग से बांध दिया गया था। उस पुराण-पुरुष को मत्स्य इस नाम से कहा जाता है ॥ १५ ॥ समस्त पापों के नाश करने वाले उस मत्स्य भगवान् को स्तुतियों से संस्तव करते हुए उस मत्स्य से ब्रह्म वेद के हनन करने वाले हयग्रीव दानव की कथा का श्रवण किया था ॥१६॥ उस दानव का वध किया और भगवान् केशव ने फिर वेद मन्त्रादि सब की रक्षा की थी। जब फिर वाराह कल्प का आरम्भ हुआ तो उस समय में इसके पश्चात् भगवान् कूर्म का रूप धारण करने वाले अवतीर्ण हुए थे ॥ १७ ॥



३–कूर्मावतारकथावर्णनम् ।

वक्ष्ये कूर्मावतारं च संश्रुतं पापनाशनम् ।
पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥१
दुर्वाससश्च शापेन निश्रीकाश्चाभवंस्तदा ।
सुराः क्षीराब्धिगं विष्णुमूचुः पालय वै सुरान् ॥२
ब्रह्मादिकान्हरिः प्राह संधिं कुर्वन्तु चासुरैः
क्षीराब्धिमथनार्थं च अमृतार्थं श्रिये सुराः ॥३
अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
युष्मानमृतभाजोऽथ करिष्यामि न दानवान् ॥४
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथत ह्यतन्द्रिताः ॥५
विष्णूक्ताः संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः ।
ततो मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ॥६

फणिनिश्वाससंग्लाना हरिणाऽप्यायिताः सुराः ।
मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥७
कूर्मरूपं समास्थाय दध्रे विष्णुश्च मन्दरम् ।
क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ॥८

अग्निदेव बोले—अब मैं परम प्रसिद्ध और समस्त पापों के नाश करने वाले कूर्म के अवतार की कथा को बतलाऊँगा। पहले एक बार देवासुर नाम वाला महान् युद्ध हुआ था। उस युद्ध में दैत्यों ने समस्त देवों को पराजित कर दिया था ॥ १॥ उस समय में दुर्वासा मुनि ने देवों को शाप दिया था और उसके प्रभाव से समस्त देवता श्रीहीन हो गये थे। तब देवगण मिल कर क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि हम देवों की रक्षा करो ॥ २ ॥ तब भगवान् हरि ने उन ब्रह्म आदि देवों से कहा—इस समय तुम सब असुरों के साथ सन्धि कर लो। हे देवगण! यह सन्धि इसलिये कर लेनी चाहिए कि उनके साथ मिलकर अमृत और लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये समुद्र का मन्थन करना है ॥ ३ ॥ यदि कोई एक बहुत बड़ा काम करना हो तो ऐसा नियम है कि शत्रु के साथ भी मेल-मिलाप कर लेना चाहिए। मैं तुमको ही अमृत को सेवन करने वाला कर दूंगा और दानवों को उसमें से कुछ भी नहीं दूंगा ॥ ४ ॥ आप लोग तन्द्रा रहित होकर मेरी सहायता से इस क्षीर सागर का मन्थन कर डालो। इस समुद्र के मन्थन करने में मन्दर पर्वत को मन्थन करने वाला बनाओ और उसकी डोरी वासुकि सर्प को बना लो ॥ ५ ॥ इस तरह जब विष्णु ने देवों से कहा तो उनने असुरों से सन्धि करके सब क्षीर सागर पर उपस्थित हो गये थे। फिर उन सब ने उस सागर का मन्थन करना आरम्भ कर दिया। जिधर सर्प की पूँछ थी उधर देवता लोग लगे हुए थे। जब पहिले देवों ने वासुकि का मुँह पकड़ा था तो वे उस सर्प के निश्वासों से बड़े दुःखित हुए थे। भगवान् हरि ने उन्हें फिर पूँछ की ओर लगा कर सन्तुष्ट किया था। भगवान् ने देवों से कहलवाया था कि हम पूँछ न पकड़ कर मुँह ही पकड़ेंगे। इस पर दैत्य मुँह पकड़ने की हठ करने लगे और इस रीति से देवों को जो मुँह से क्षीण

से हो रहे थे, हरि ने पूँछ की ओर करा दिया था। जब मथन होने लगा तो बिना आधार वाला वह पर्वत जल में बैठने लगा था ॥ ६-७ ॥ उस समय में अपना कूर्म का रूप धारण कर विष्णु ने उस मन्दर गिरि का नीचे जाने से बचाया था और उसे अपने ऊपर धारण कर लिया था। उस मथित क्षीर समुद्र से हलाहल विष निकला था ॥ ८ ॥

हरेण धरितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभत् ।
ततोऽभूद्वारुणी देवी पारिजातश्च कौस्तुभः ॥६
गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरिं गता ।
पश्यन्तः सर्वदेवास्तां स्तुवन्तः सश्रियोऽभवन् ॥१०
ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः ।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥११
अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्द्धं प्रदाय च ।
गृहीत्वा जग्मुर्जम्भाद्या विष्णुः स्त्रीरूपधृक्ततः ॥१२
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नां दैत्याः प्रोचुर्विमोहिताः ।
भव भार्याऽमृतं गृह्य पाययास्मान्वरानने ॥१३
तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान् ।
चन्द्ररूपधरो राहुः पिबंश्चार्केन्दुनाऽर्पितः ॥१४
हरिणाऽप्यरिणा छिन्नं सबाहु तच्छिरः पृथक् ।
कृपयाऽमरतां नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ॥१५
राहुर्मत्तस्तु चन्द्रार्कौ प्राप्स्येते ग्रहणं ग्रहः ।
तस्मिन्काले च यद्दानं दास्यन्ते स्यात्तदक्षयम् ॥१६

सर्व प्रथम सागर से निकले हुए उस हलाहल विष को महादेव ने कण्ठ में धारण कर लिया था। तभी से महादेव नीले कण्ठ वाले हो गये हैं। इसके पश्चात् उस मथित समुद्र से वारुणी देवी-लक्ष्मी-पारिजात-कल्प वृक्ष और कौस्तुभ मणि प्रकट हुए थे। कामधेनु गौ और दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं। ये सब और लक्ष्मी देवी को विष्णु ने ग्रहण कर लिया था। समस्त देवों ने उनको देख कर उनकी स्तुति की और वे श्रीसहित हो गये थे ॥ ६-१० ॥

इसके पश्चात् धन्वन्तरि भगवान् विष्णु जो कि आयुर्वेद शास्त्र के प्रवर्त्तक थे, अमृत से भरे हुए कमण्डल को हाथ मे लिये हुए समुद्र से उठ कर आये ॥ ११॥ दैत्यो ने उन धन्वन्तरि भगवान् के हाथ से उस अमृत मे पूर्ण कमण्डल को ले लिया और देवगण को उसका आधा भाग देकर वे चले गये थे। इसके उपरान्त भगवान् विष्णु ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके वहाँ आगमन किया था ॥ १२ ॥ उस परम सौन्दर्य से सम्पन्न मोहिनी स्त्री को देख कर दैत्य गण मोहित हो गये और उससे कहने लगे, हे वरानने ! इस अमृत को तुम ग्रहण करके भार्या बन जाओ और हमको अपने हाथो से इसका पान करा दो ॥ १३ ॥ मोहिनी के स्वरूप को धारण करने वाले हरि ने 'ऐसा ही होगा' —यह कह कर उस अमृत के कलश को लेकर उसके अन्दर रहने वाले अमृत को देवो को पिला दिया था। उस समय उस देवों की पंक्ति के मध्य मे चन्द्र का रूप धारण करने वाले राहु नामक दैत्य ने भी उस अमृत को पीना शुरू किया था कि चन्द्र और सूर्य ने उसे बतला दिया था अर्थात् यह राहु दैत्य है—इसकी सूचना हरि को देदी थी ॥ १४ ॥ हरि ने तुरन्त ही चक्रायुध के द्वारा बाहुओं के सहित शिर काट डाला और अलग कर दिया था। कृपा करके अमरत्व को प्राप्त किये हुए तथा वरदान देने वाले हरि से वह बोला ॥ १५ ॥ मैं राहु नामक ग्रह हूँ मुझ से ये चन्द्र और सूर्य ग्रहण को प्राप्त किया करेंगे। उस ग्रहण की वेला मे जो भी कुछ दान दिया जायगा वह अक्षय होगा ॥ १६ ॥

तथेत्याहाथ तं विष्णुस्ततः सर्वैः सहामरैः।
स्त्रीरूपं संपरित्यज्य हरेणोक्त प्रदर्शय ॥१७
दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान्हरिः।
मायया मोहितः शम्भुर्गौरीं त्यक्त्वा स्त्रियं गतः ॥१८
नग्न उन्मत्तरूपोऽसृस्त्रियः केशानधारयद्।
अगाद्विमुच्य केशान्स्त्री अन्वधावच्च तां गताम् ॥१९
स्खलित तस्य वीर्यं कौ यत्र यत्र हरस्य हि।
तत्र तत्राभवत्क्षेत्रं लिङ्गानां कनकस्य च ॥२०

मायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्धरः ।
शिवमाह हरी रुद्र जिता माया त्वया हि मे ॥२१
न जेतुमेनां शक्तो मे त्वदृतेऽन्यः पुमान्भुवि ।
अप्राप्तामृतं दैत्या देवैर्युद्धे निपातिताः ॥२२
त्रिदिवस्थाः सुराश्चाऽऽसन् दैत्याः पातालवासिनः ।
यो नरः पठते देवविजयं त्रिदिवं व्रजेत् ॥२३

भगवान् विष्णु ने उससे 'ऐसा ही हो'—यह कहा और इसके उपरान्त विष्णु ने समस्त देवों के साथ में रह कर अपने उस मोहिनी स्त्री के रूप का परित्याग कर दिया था। स्त्री के रूप के परित्याग करने के पश्चात् महादेव ने भगवान् विष्णु से उस रूप को दिखाने की प्रार्थना की ॥ १७ ॥ तब भगवान् ने रुद्र को अपना स्त्री रूप पुनः धारण करके दिखाया था। उस समय माया से मोहित होकर शम्भु अपनी गौरी पार्वती का त्याग करके भगवान् विष्णु के धारे हुए मोहिनी के रूप वाली स्त्री के पीछे चल दिये थे ॥ १८ ॥ शिव ऐसे उस रूप के सौन्दर्य पर मोहित हो गये कि पीछे भागते हुए नग्न और उन्मत्त के जैसे रूप वाले हो गये तथा उस स्त्री के केशों को हाथ से पकड़ लिया था। फिर उस की चोटी के केशों को छोड़ कर गई हुई उस स्त्री के पीछे दौड़ने लगे ॥ १९ ॥ उस समय कामान्ध होकर दौड़ने वाले शिव का वीर्य भूमि पर जहाँ-जहाँ भी गिर गया था, वहाँ-वहाँ पर लिङ्गों का तथा सुवर्ण का क्षेत्र बन गया था ॥ २० ॥ अन्त में यह भगवान् विष्णु की माया है ऐसा ज्ञान प्राप्त करके शिव अपने स्वरूप में स्थित हुए। तब भगवान् विष्णु ने शिव से कहा—हे रुद्रदेव ! आपने मेरी माया को जीत लिया है ॥ २१ ॥ इस भूमण्डल में इस मेरी भुवन मोहिनी माया को तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है। जब वे दैत्य लोग उस समुद्र से निकले हुए अमृत को नहीं प्राप्त कर सके तो वे देवगण के द्वारा युद्ध में गिरा दिये गये थे ॥ २२ ॥ देवगण सब त्रिदिव अर्थात् स्वर्ग में निवास करने वाले हैं और दैत्य वृन्द सब पाताल में रहा करते हैं। जो मनुष्य इस देवों के विजय प्राप्त करने के आख्यान को पढ़ता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥ २३ ॥



४–वराहनारसिंहादीनामवताराणां वर्णनम् ।

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम् ।
हिरण्याक्षोऽसुरेशोऽभूद्देवाञ्जित्वा दिवि स्थितः ॥१
देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः ।
अभूत्तं दानवं हत्वा दैत्यैः सार्धं तु कण्टकम् ॥२
धर्मदेवादिरक्षाकृत्ततः सोऽन्तर्दधे हरिः ।
हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥३
जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत् ।
नारसिंह वपुः कृत्वा तं जघान सुरैः सह ॥४
स्वपदस्थान्सुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः स्तुतः ।
देवासुरे पुरा युद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः ॥५
जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं ते शरणं गताः ।
सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥६
स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां स क्रतुं ययौ ।
बलेः श्रीयजमानस्य, गङ्गाद्वारे गृणन्स्तुतिम् ॥७
वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् ।
निवारितोऽपि शुक्रेण बलिर्ब्रूहि यदिच्छसि ॥८

अब इस अध्याय में वराह–नारसिंह आदि अवतारों का वर्णन है। अग्नि ने कहा—मैं अब वराह के अवतार को बताऊँगा जो समस्त पापों का नाश करने वाला है। पहिले हिरण्याक्ष नाम वाला एक असुर हुआ था जो समस्त देवों को जीत कर दिवलोक में रहा करता था ॥ १ ॥ तब देवगण ने जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति की और उस असुर के बाबत प्रार्थना की थी। तब विष्णु यज्ञ रूप वाला वाराह हुए थे। उनने उस हिरण्याक्ष दानव को जो कि अन्य दैत्यों के साथ कण्टक स्वरूप देवों को दुःखदायी हो रहा था, मारकर धर्म और देवों की रक्षा की और इसके पश्चात् हरि अन्तर्धान हो गये। हिरण्याक्ष दैत्य का एक भाई हिरण्यकशिपु नामधारी था ॥ २–३ ॥ उस हिरण्यकशिपु दैत्य ने देवों के यज्ञ भाग को जीत लिया था और देवों के

समस्त अधिकारों को छीन कर अपने हाथ में ले लिया था। तब विष्णु नारसिंह शरीर धारण करके अर्थात् नृसिंहावतार रख कर सुरों के साथ वहाँ प्रकट हुए और उस हिरण्यकशिपु का वध किया था ॥ ४ ॥ देवों के द्वारा स्तुति किये गये नारसिंह ने देवों को पुनः अपने-अपने पदों पर स्थित कर दिया था। पहिले देवासुर युद्ध में बलि आदि दैत्यों के द्वारा समस्त देवता जीत लिये गये थे और स्वर्ग से परिभ्रष्ट कर दिये गये। तब समस्त देवता लोग हरि की शरण में पहुँचे। तब हरि भगवान् ने देवों को अभय रहने का वचन दिया था। इधर अदिति तथा उसके पति कश्यप ऋषि के द्वारा विष्णु की स्तुति की गई थी। फिर उस अदिति के गर्भ से वामन के रूप में समुत्पन्न होकर बलि राजा के यज्ञ में पहुँचे। वहाँ पर गङ्गाद्वार में यजमान राजा बलि की स्तुति को ग्रहण किया था ॥ ५-६ ॥ वेदों के पाठ करने वाले वामन से वरदान देने बलि बोला। यद्यपि बलि के गुरु शुक्राचार्य ने उसे रोका भी था किन्तु आचार्य की उस विशेषाज्ञा को न मान कर बलि ने वामन से कहा जो भी तुम चाहते हो माँगलो ॥ ७-८ ॥

तत्तेऽहं संप्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत्।
पदत्रयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥९
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकं च पदत्रयम् ॥१०
चक्रे बलिं च सुतले तच्छक्राय ददौ हरिः।
शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूद् ॥११
वक्ष्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज।
उद्धतान्क्षत्रियान्मत्वा भूभारहरणाय सः ॥१२
अवतीर्णो हरिः शान्त्यै देवविप्रादिपालकः।
जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्त्रपारगः ॥१३

दैत्यराज बलि राजा ने कहा जो भी तुम मागोगे मैं तुमको वही दे दूँगा। तब वामन ने बलि से कहा—मुझे गुरु के लिये तीन चरण प्रमाण भूमि दो जो कि दास्य भाव से रहने से मुझे गुरु को देनी है ॥९॥ भूमि के दान करने

के वास्ते हाथ में जल के लेने ही वह वामना (बौना) अवामन हो गया था और अपने तीन पदों से क्रम से भूर्लोक–भुवर्लोक और स्वर्लोक का नाप कर ले लिया था ॥ २० ॥ फिर राजा बलि को सुतल लोक मे भेज दिया था। हरि ने यह सब इन्द्र को दे दिया। तब इन्द्रदेव ने देवों के साथ भगवान् का स्तवन किया और भुवनों का स्वामी होकर वह परम सुखी हो गये थे ॥ ११ ॥ हे द्विज ! अब इसके आगे मैं परशुराम के अवतार का आख्यान बतलाऊँगा, उसे तुम सुनो ! क्षत्रियों को उद्धत देख कर भूमि के भार को हरण करने के लिये और संसार में शान्ति की स्थापना करने के वास्ते हरि ने अवतार लिया था क्योंकि वह देव और विप्र आदि के पूर्ण रूप से प्रतिपालक हैं। जमदग्नि ऋषि से रेणुका मे समस्त शास्त्रों के पारगामी विद्वान् भार्गव अर्थात् परशुराम अवतीर्ण हुए थे ॥ १२ १३ ॥

दत्तात्रेयप्रसादेन कार्तवीर्यो नृपस्त्वभूत् ।
सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः ॥१४
श्रान्तो निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना ।
कामधेनुप्रभावेण भोजितः सबलो नृपः ॥१५
अप्रार्थयत्कामधेनुं यदा स न ददौ तदा ।
हृतवानथ रामेण शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥१६
युद्धे परशुना राजा सधेनुः स्वाश्रमं ययौ ।
कार्तवीर्यस्य पुत्रैस्तु जमदग्निर्निपातितः ॥१७
रामे वनं गते वैरादथ रामः समागतः ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमर्षितः ॥१८
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद्विभुः ।
कुरुक्षेत्रे पञ्च कुण्डान्कृत्वा संतर्प्य वै पितॄन् ॥१९

दत्तात्रेय के प्रसाद से उस समय मे कार्तवीर्य राजा हुआ था। वह नृप कार्तवीर्य सहस्र बाहुओं वाले और इस समस्त भूमि के स्वामी थे। वह एक बार शिकार करने के लिये गये थे ॥ १४ ॥ शिकार करते हुए वे थक गये थे तब जमदग्नि ऋषि ने उस अरण्य में उनको निमन्त्रण दिया था।

उनके पास कामधेनु गौ थी उसके प्रभाव से जमदग्नि ने सम्पूर्ण सेना के साथ राजा के भोजनादि का स्वागत किया था ।। १५ ।। राजा कार्त्तवीर्य ने जमदग्नि से वह कामधेनु देने को कहा तो ऋषि ने मनाकर कामधेनु को उन्हें नहीं दिया था । जब हरण करने लगे तो परशुराम ने उसका शिर काटकर मार डाला था ।। १६ ।। परशुराम ने अपने परशु के द्वारा राजा को मार कर वापिस अपने आश्रम को प्रस्थान किया था । इसके पश्चात् कार्त्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि ऋषि का बध कर दिया था । परशुराम उस समय बन में चले गये थे । जब वे वापिस आये तो अपने पिता को मृत देखा और उन्हें पिता के नाश से महान् क्रोध उत्पन्न हुआ । उसी समय परशुराम ने सत्य प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को क्षत्रियो से रहित कर दूंगा और इक्कीस बार विभुने पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों का संहार किया था तथा कुरुक्षेत्र में पाँच कुण्डों का निर्माण कर पितरों का भली भाँत तर्पण किया था ।। १७-१८-१९ ।



५—राम कृष्ण अवतार कथा वर्णनम्

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
मरीचेः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः ।।२१
ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः ।
ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः ।।२२
रावणादेर्वधार्थाय चतुर्धाऽभूत्स्वयं हरिः ।
राज्ञो दशरथाद्रामः कौसल्यायां बभूव ह ।।२३
कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः ।
शत्रुघ्नश्चर्ष्यश्रृङ्गेण तासु संदत्तपायसात् ।।२४

श्रीरामावतार की कथा का संक्षिप्त वर्णन है—भगवान् विष्णु से कमल मे जन्म ग्रहण कर ब्रह्मा हुए । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हुए । फिर मरीचि मे कश्यप ऋषि उत्पन्न हुए । उस कश्यप मे सूर्य वैवस्वत मनु इस नाम से समुत्पन्न हुए थे ।। २१ ।। फिर उस वैवस्वत मनु से इक्ष्वाकु ने जन्म ग्रहण

किया था। उसके वंश में ककुत्स्थक उत्पन्न हुए और उस ककुत्स्थक के पुत्र रघु हुए उस रघु से अज की उत्पत्ति हुई तथा अज राजा के पुत्र दशरथ ने जन्म लिया। फिर रावण आदि दुष्ट राक्षसों के वध करने के लिये हरि भगवान् स्वयं चार रूपों में अवतीर्ण हुए थे। राजा दशरथ से कौशल्या रानी से श्रीराम ने जन्म लिया था ॥ २२–२३ ॥ कैकेयी में भरत पुत्र उत्पन्न हुए और सुमित्रा नामक रानी में लक्ष्मण हुए थे और शत्रुघ्न नाम वाले ऋष्यश‍ृङ्ग के द्वारा दिये हुए पायस से उनमें समुत्पन्न हुए थे ॥ २४ ॥

भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवतः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा योगनिद्रया ॥२५
विष्णुप्रयुक्तया नीता देवकीजठरं पुरा ।
अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्या जठराद्बलः ॥२६
सङ्क्रामितोऽभूद्रोहिण्यां रौहिणेयस्ततो हरिः ।
कृष्णाष्टम्यां च नभसि अर्धरात्रे चतुर्भुजः ॥२७
देवक्या वसुदेवेन स्तुतो बालो द्विबाहुकः ।
वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ॥२८

अब श्रीकृष्णावतार की कथा का परम संक्षिप्त वर्णन है। इस भूमण्डल के बढ़े हुए भार को उतारने के लिये देवकी में वसुदेव से छै पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे छओं पुत्र हिरण्यकशिपु गर्भ रूप में थे। उस समय भगवान् विष्णु के द्वारा प्रयुक्त योग निद्रा के द्वारा पहिले देवकी के उदर में लाये गये थे। देवकी में जो सातवाँ गर्भ बलराम के स्वरूप में था जो कि देवकी के उदर से रोहिणी के उदर में सङ्क्रामित कर दिया गया था। तब हरि रोहिणेय इस नाम से उत्पन्न हुए थ। भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में अर्द्ध रात्रि के समय में आकाश में चतुर्भुज रूप वाले दिखाई देने वाले प्रभु वसुदेव और देवकी के द्वारा स्तुति किये जाने पर दोबाहुओं बालक हो गये थे। फिर वसुदेव ने कंस राजा के भय से भीत होते हुए उसे यशोदा के शयन में पहुँचा दिया था ॥ २५–२६–२७–२८ ॥

७–जगत्सर्गवर्णनम्

जगत्सर्गादिकां क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु ।
स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः ॥१
ब्रह्माव्यक्तं सदग्रेऽभून्न खं रात्रिदिनादिकम् ।
प्रकृतिः पुरुषं विष्णुः प्रविश्याक्षोभयत्ततः ॥२
सर्गकाले महत्तत्त्वमहंकारस्ततोऽभवत् ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥३
अहंकाराच्छब्दमात्रकाशमभवत्ततः ।
स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ॥४
रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा धरित्र्यभूत् ।
अहंकारात्तामसात्तु तैजसानीन्द्रियाणि च ॥५
वैकारिका दश देवा मन एकादशेन्द्रियम् ।
ततः स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥६
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत् ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥७
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥८

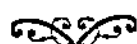
स्वर्ग आदि के करने वाला वह सर्ग का आदि और इस सृष्टि का आदि तथा सगुण और निर्गुण है ॥ १ ॥ आगे ब्रह्म अव्यक्त होता हुआ था ; न तो आकाश था और न रात और दिन आदि ही थे । उस समय प्रकृति ने पुरुष में प्रवेश किया था और उसमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया ॥ २ ॥ सर्ग के समय में महत्तत्व हुआ और फिर महत् से अहंकार हुआ था और फिर वैकारिक अर्थात् विकार से युक्त-तैजस और तामस भूतादि हुए थे ॥ ३ ॥ पहिले उस अहङ्कार से शब्द मात्र आकाश उत्पन्न हुआ था । फिर स्पर्शमात्र वायु और उससे रूपमात्र अनल (तेज) पैदा हुआ ॥ ४ ॥ रस जितनी मात्रा है वे फिर तेज से उत्पन्न हुए और फिर उससे गन्धमात्रा धरित्री हुई । तामस अहंकार

में तैजस इन्द्रियाँ हुईं ॥ ५ ॥ ये वैकारिक दश देव हैं। मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है। इसके उपरान्त सृजन की इच्छा रखने स्वयम्भू भगवान् ने अनेक प्रकार की प्रजा की सृष्टि की थी ॥ ६ ॥ आदि में जल की ही सृष्टि की थी और उनमें वीर्य का अवसृजन किया था। आपो को अर्थात् जलों को नार कहा जाता है। जल निश्चय ही नर सूनु हैं। पहिले वे जल ही जिसके अयन अर्थात् रहने के स्थान हैं इससे वह नारायण कहा गया है। उदक में शयन करने वाला वह अण्ड हिरण्य वर्ण वाला था ॥ ७-८ ॥

तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति नः श्रुतम्।
हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥९
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च।
तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ॥१०
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥११
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतिः।
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥१२
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं चाथ वक्त्रतः।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥१३
साध्यास्तैरयजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजात्।
सनत्कुमारं रुद्रं च ससर्ज क्रोधसंभवम् ॥१४
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं मानसान्सप्त ब्राह्मणानिति निश्चितम् ॥१५
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्राश्च सत्तम।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥१६
अर्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत्प्रजाः ॥१७

उसमें से स्वयं ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था। जिसका नाम हमने स्वयम्भू सुना है। हिरण्यगर्भ भगवान् ने एक परिवत्सर वहाँ निवास करके फिर

उस अण्ड के दो भाग कर दिये थे, जो एक भाग तो दिव है और दूसरा भूमण्डल है। इन दोनों अण्ड के खण्डों के मध्य में उसने आकाश की रचना की थी ॥ ९-१० ॥ जलों में परिप्लवा पृथ्वी को और दश दिशाओं को बनाया था। वहाँ पर काल मन-वाच-काम-क्रोध और रति का सृजन किया था ॥११॥ प्रजापति ने जोकि सृजन करने की इच्छा रखने वाला, तद्रूप सृष्टि का सृजन किया था। उसने विद्युत्-वज्र-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पक्षीगण-की सृष्टि की। आदि मे पर्जन्य (मेघ) की रचना की और बाद में मुख से ऋक्-साम तथा यजुर्वेद का यज्ञ की सिद्धि के लिये सृजन किया था ॥ १२-१३ ॥ जो साधना करने के योग्य पुरुष होते हैं वे उन वेदों के द्वारा देवों का यजन करते थे। ब्रह्मा ने भुजा मे उच्चावच भूत की रचना की थी। सनत्कुमार का और क्रोध से जन्म लेने वाले रुद्र का सृजन किया था। १४ ॥ फिर स्वयम्भू ने मन से उत्पन्न होने वाले मानस सात ब्राह्मणों को निर्मित किया था जिनके नाम मरीचि-अत्रि-अङ्गिरस, पुलस्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये होते हैं ॥१५. ये सात प्रजा को जनमाते थे और हे सत्तम ! रुद्रों की रचना करते थे। फिर अपनी आत्मा के देह के भाग करके आधे भाग से पुरुष हुए और आधे से नारी का रूप धारण किया था। उस नारी से उस ब्रह्मा ने प्रजाओं का सृजन किया था ॥ १६-१७ ॥



८--स्वायंभुवमनुवंशवर्णनम्

प्रियव्रतोत्तानपादो मनोः स्वायंभुवात्सुतौ।
अजीजनत्सुतां रम्यां शतरूपा तपोन्विता ॥१
काम्या कर्दमकन्यास्तः सम्राट्कुक्षिविराट्प्रभुः।
सुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ॥२
सुनीत्यां च ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे सुकीर्तये।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि हे मुने ॥३
तस्मै प्रीतो हरिः प्रादान्मुन्यग्रे स्थानकं स्थिरम्।
श्लोकं पपाठ ह्युशना वृद्धिं दृष्ट्वा स तस्य च ॥४

अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत ।
अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ॥११
प्रजार्थमृषयोऽथास्व ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेणस्य मथिते पाणौ संबभूव पृथुर्नृपः ॥१२
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥१३
स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥१४
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स पृथिवीपतिः ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥१५
तत्स्तोत्रं चक्रतुर्वीरौ, राजाऽभूज्जनरञ्जनात् ।
दुग्धा गौस्तेन सस्यार्थं प्रजानां जीवनाय च ॥१६

उन चाक्षुप मनु के दश पुत्रों के निम्न नाम हुए थे—ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अतिमन्युक ॥ ९ ॥ ऊरु नामक से पड़ाग्नेयी ने महान् प्रभा से युक्त पुत्रों को समुत्पन्न किया था जिनके नाम अङ्ग, सुमनस, स्वाति, क्रतु अङ्गिरस और गय ये थे ॥ १० ॥ अङ्ग से सुनीथा ने केवल एक वेण नामक सन्तति उत्पन्न हुई थी। वह वेण रक्षा न करने वाला तथा सदा पाप कर्मों मे रति रखने वाला था। इसलिये मुनियों ने कुशो के द्वारा उसका हनन कर दिया था ॥११ फिर ऋषियो ने प्रजा के लिये इसके दाहिने हाथ का मन्थन किया था। उस वेण के हाथ के मथित करने पर पृथु नाम का राजा उत्पन्न हुआ था ॥१२ उस पृथु को देख कर मुनिगण कहने लगे थे कि यह प्रजा को परम सुखी एव प्रसन्न करेगा और यह महान् तेज वाला महान् यश की भी प्राप्ति करेगा ॥ १३ वह धनुष तथा कवच को धारण करने वाला अपने दिव्य तेज के द्वारा जलाता हुआ उत्पन्न हुआ था। वेण के पुत्र पृथु ने जो कि क्षत्र पूर्वज था अपनी समस्त प्रजा की भली भाँति रक्षा की थी ॥ १४॥ राजसूय यज्ञ के द्वारा अभिषिक्त राजाओं मे वह पृथु सबसे प्रथम पृथ्वी का स्वामी हुआ था और उससे परम

कुशल सूत तथा मागध उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥ उन वीरों ने यह स्तोत्र किया था कि प्रजा के रञ्जन करने से राजा हुआ। प्रजा के जीवन के लिये मर्त्यों की उत्पत्ति करने को उसने इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥१६॥

सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ।
पितृभिर्दानवैः सर्वैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ॥१७
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा ।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन ॥१८
पृथोः पुत्रा तु धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाव्द्यजायत ॥१९
हविर्धाना त्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥२०
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः ।
प्राचीनबर्हिर्भगवा न्महानासीत्प्रजापतिः ॥२१
सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥२२
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥२३
प्रजापतित्वं संप्राप्य तुष्टा विष्णोश्च निर्गताः ।
भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तरुनदहंश्च ते ॥२४

देव, मुनि, गन्धर्व, अप्सरागण, पितर, दानव, सर्प, वीरु, पर्वत और जनों के साथ उन-उन पात्रों में दुह्यमान यह वसुन्धरा ने इच्छानुसार क्षीर दिया था जिससे सभी लोग प्राणों को धारण करते थे ॥ १७-१८ ॥ राजा पृथु के दो परम धर्मज्ञ अन्तर्धि और पालित पुत्र उत्पन्न हुए थे। शिखण्डिनी ने अन्तर्धान से हविर्धान उत्पन्न किया था ॥ १९ ॥ हविर्धान से षडाग्नेयी धिषणा ने छै पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था। उनके नाम ये हैं— प्राचीन बर्हि,शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन ॥ २० ॥ पृथिवी में यजन करने

वाले उसके प्राचीनाग्र कुशा थी। प्राचीन वर्हि भगवान् एक परम महान् प्रजापति हुए थे ॥ २१ ॥ सवर्णा सामुद्री ने प्राचीन वर्हि से दश पुत्रों को धारण किया था। वे सब प्रचेतस नाम वाले हुए और धनुर्वेद शास्त्र के अत्यन्त पारगामी पण्डित थे ॥ २२ ॥ एक ही धर्म के आचरण करने वाले उन्होंने समुद्र के जल में स्थिति करके दश सहस्र वर्ष तक महान् तप को किया था ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु से उन्होंने प्रजापति के होने के पद को प्राप्त किया था और फिर वे परम सन्तुष्ट होकर निकले थे। यह समस्त पृथ्वी और आकाश तरुओं से व्याप्त हो गया था अर्थात् सर्वत्र एक महान् वृक्षावलि छा गई थी। तब उन्होंने इनको जला दिया था ॥ २४ ॥

मुखजाग्निमरुद्भ्यां च दृष्ट्वा चाथ द्रुमक्षयम् ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रजापतीन् ॥२५
कोपं यच्छत दास्यन्ति कन्या वो मारिषां वराम् ।
तपस्विनो मुनेः कण्डोः प्रम्लोचायां मयैव च ॥२६
भविष्य जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलंकरी ।
अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः प्रजाः संवर्धयिष्यति ॥२७
प्रचेतसस्तां जगृहुर्दक्षोऽस्यां च ततोऽभवत् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ॥२८
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥२९
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे ह्यदात् ॥३०
तासु देवाश्च नागाद्या मैथुनात्मनसा पुरा ।
धर्मसर्गं प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ॥३१
विश्वे देवास्तु विश्वायाः साध्यासाध्यान्व्यजायत ।
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन् ॥३२

मुख से उत्पन्न अग्नि और वायु से इन द्रुमों के क्षय को देखकर राजा सोम ने त्याग कर दो मारिष आपको एक परम श्रेष्ठ कन्या देंगे। तपस्वी

कण्डु मुनि की प्रम्लोचा में मेरे ही द्वारा भविष्य को जानते हुए कुलङ्करी आपकी भार्या का सृजन किया गया है। इसके गर्भ से दक्ष की उत्पत्ति होगी जो इस समस्त प्रजा का सम्बर्धन करेगा ॥ २६–२७ ॥ प्रचेतसों ने उसको ग्रहण कर लिया था और फिर इसमें दक्ष ने जन्म धारण किया था। उसने अचरों को, चरों को, द्विपदों तथा चतुष्पदों को मन के द्वारा सृजन करके पीछे स्त्रियों का उस दक्ष प्रजापति ने सृजन किया था। उसने दशतो धर्म को दी थी और तेरह कश्यप के लिये प्रदान की थीं ॥ २८–२६ ॥ सत्ताईस सोम को दी और चार अरिष्टनेमि को प्रदान की गई थीं। दो बहु पुत्र के लिये दी गई और दो अङ्गिरस के लिये दी थी ॥ ३० ॥ उनमें मैथुन से देव और नाग उत्पन्न हुए थे। पहिले मनसे ही सृष्टि की गई थी। अब धर्म के सर्ग को बतलाऊँगा जोकि धर्म से दश पत्नियों में हुआ था ॥ ३१ ॥ विश्वा से विश्वेदेव हुए। साध्या ने साध्यों को जन्म दिया था। मरुत्वत्या ने मरुत्वानों को उत्पन्न किया और वसु से वसुगण हुए थे ॥ ३२ ॥

भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः ।
लम्बाया धर्मतो घोपो नागवीथी च यामिजा ॥३३
पृथिवीविषयं सर्वं मरुत्वत्यां व्यजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पा इन्दोर्नक्षत्रतः सुताः । ३४
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ च नामतः ॥३५
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वर्चाः सोमस्य वै सुतः ॥३६
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥३७
पुरोजवोऽनिलस्याऽऽसीदविज्ञातोऽनलस्य च ।
अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्बे व्यजायत ॥३८
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः ।
कृत्तिकातः कार्तिकेयो यतिः सनत्कुमारकः ॥३९

प्रत्यूषाद्देवलो जज्ञे विश्वकर्मा प्रभासतः ।
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ॥४०
मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम् ।
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञुषी ॥४१
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च सत्तम ॥४२
त्वष्टुश्चैवाऽऽत्मजः श्रीमान्विश्वरूपो महायशाः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥४३
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ।
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली दश चैककः ॥४४
रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥४५

भानु से भानव नामधारी पुत्र हुए, मुहूर्त्ता से जन्म लेने वाले मुहूर्त, धर्म से लम्बा का घोष, नागवीथी और यामिज यह सब पृथिवी के विषय मरुत्वती उत्पन्न हुए। संकल्पा के संकल्प, इन्दु से नक्षत्र से पुत्र हुए थे ॥ ३२-३४ ॥ आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनलप्रत्यूष और प्रभास ये आठ नाम से वसुगण कहे जाते हैं ॥ ३५ ॥ आपका पुत्र वैतण्ड्य, श्रम, शान्त, तथा मुनि हुए थे। ध्रुव के पुत्र काल और लोकान्त हुए तथा सोम का पुत्र वर्चा नामधारी हुआ था ॥ ३६ ॥ धर का द्रविण और हुतहव्य वह हुए। मनोहरा के शिशिर-प्राण तथा रमण पुत्र हुए थे ॥ ३७ ॥ अनिल का पुत्र पुरोजव नामधारी हुआ और अनल का अविज्ञात था। शरस्तम्ब मे अग्नि पुत्र और कुमार उत्पन्न हुए थे ॥ ३८ ॥ पीछे उसके पुत्र शाख-विशाख और नैगमेय नाम वाले पैदा हुए थे। कृत्तिका से कार्त्तिकेय, यति और सनत्कुमारक हुए ॥ ३९ ॥ प्रत्यूष से देवल की उत्पत्ति हुई। प्रभास से विश्वकर्मा ने जन्म ग्रहण किया था जोकि सहस्रों शिल्पों के करने वाले और देवों का वर्धकि हुए थे ॥ ४० ॥ मनुष्य भूषणादिक के निर्माण करने के शिल्प से अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं। सुरभी ने कश्यप से एकादश रुद्रों को जन्म दिया दिया था ॥ ४१ ॥ महादेव के प्रसाद से तप के द्वारा भावित सती ने अजैक-

है—विष्णु, शक्र, त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशु ये द्वादश हैं। अरिष्ट नेमि की पत्नियों के सोलह सन्तान हैं ॥ २–३ ॥ विद्वान् बहु पुत्र के चार विद्युत कही गई हैं। प्रत्यङ्गिरस से जन्म लेने वाले श्रेष्ठ हुए और कृशाश्व के सुरायुध हुए थे ॥ ४ ॥ उदय और अस्तमन के समय में जैसे सूर्य होते हैं उसी भाँति ये युग-युग में हुआ करते हैं। कश्यप ऋषि से दिति नामक पत्नी में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ सिंहिका नाम वाली एक कन्या हुई थी जो कि विप्रचित्ति का परिग्रह बनी थी। उसमें राहु प्रभृति उत्पन्न हुए थे जो सैंहिकेय इस नाम से सुने गये हैं ॥ ६ ॥ राजा हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए थे जो कि परम प्रसिद्ध ओज वाले थे। उन चारों के नाम अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद जोकि परम वैष्णव थे ॥ ७ ॥ संह्लाद नाम वाला चौथा पुत्र हुआ था। ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ था। संह्लाद का पुत्र आयुष्मान् शिवि और बाष्कल था ॥ ८ ॥

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं महामुने ॥९
पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात् ॥१०
हिरण्याक्षसुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति।
द्विमूर्धा शंकुरार्यश्च शतमासन्दनोः सुताः ॥११
स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची स्मृता।
उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥१२
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते उभे।
कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ॥१३
प्रह्लादस्य चतुष्कोट्यो निवातकवचाः कुले।
ताम्रायाः षट्सुताः स्युश्च काकी श्येनी च भास्यपि ॥१४
गृध्रिका च शुचिग्रीवा ताभ्यः काकादयोऽभवन्।
अश्वाश्चोष्ट्राश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ॥१५

विमतायाः सहस्रं तु सर्पाश्च सुरसाभवाः ।
काद्रवेयाः सहस्रं तु शेषवासुकितक्षकाः ॥१६

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नाम वाला हुआ था और फिर विरोचन से बलि ने जन्म धारण किया था। हे महामुने ! राजा बलि के एक सौ पुत्र हुए थे उनमें सब से बड़ा पुत्र बाण हुआ था ॥ ९ ॥ पुरा कल्प में बाण ने उमा के स्वामी शिव की आराधना कर उन्हें प्रसन्न कर लिया था और फिर उसने उन ईश्वर से मैं पार्श्व में विहार करूँगा—यह वर प्राप्त कर लिया था ॥ १० ॥ हिरण्याक्ष के शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शंकुरर्य्य और शमया-सन्दन ये पाँच पुत्र हुए थे ॥ ११ ॥ स्वर्भानु की कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा की शची कही गई है। उपदानवी, हयशिरा, शर्मिष्ठा, वार्ष पर्वणी हुई थीं। पुलोमा और कालक ये दो वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं। कश्यप ऋषि के दिति और अदिति नाम वाली दो भार्या थीं। उन दोनों के करोड़ों ही पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १२-१३ ॥ प्रह्लाद के चार करोड़ कुल में निवात कवच हुए थे। ताम्रा के छैं पुत्री थीं। काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा उनके नाम है। उनसे काकादि उत्पन्न हुए थे। ताम्रा के अश्व और उष्ट्र हुए। विनता के अरुण और गरुड हुए। सुरसा से जन्म लेने वाले सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए थे। काद्रवेय और सहस्र शेष, वासुकि और तक्षक आदि हुए थे ॥ १४-१५-१६ ॥

दंष्ट्रिणः क्रोधवशगा धरायाः पक्षिणो जले ।
सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणादयः ॥१७
खसायां यक्षरक्षांसि मुनेरप्सरसोऽभवन् ।
अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धि स्थिरं वरम् ॥१८
एषां पुत्रादयोऽसंख्या देवैर्वै दानवा जिताः ।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥१९
पुत्रमिन्द्रप्रहर्तारमिच्छती प्राप कश्यपात् ।
पादाप्रक्षालनात्सुप्ता तस्या गर्भं जघान ह ॥२०

छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् ।
शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ॥२१
एतत्सर्वं हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम् ।
ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ॥२२
द्विजोषधीनां चन्द्रस्तु अपां तु वरुणो नृपः ।
राज्ञां वैश्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः । २३
वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः ।
प्रजापतीनां दक्षोऽथ प्रह्लादो दानवाधिपः ॥२४

ये सब दाढ़ो वाले और क्रोध के वश मे रहने वाले उत्पन्न हुए थे। धरा से पक्षी हुए। जल में सुरभी से गौ और महिषी आदि की उत्पत्ति हुई थी। इस से तृण प्रभृति का जन्म हुआ ॥ १७ ॥ खसा में मुनि से यक्ष और राक्षस तथा अप्सराएँ उत्पन्न हुए। अरिष्टा से गन्धर्वों का जन्म हुआ था जोकि कश्यप ऋषि से हुए थे निश्चय ही यह वर स्थिर है ॥ १८ ॥ इनके अगणित पुत्र उत्पन्न हुए थे, देवों के द्वारा दानव जीत लिये गये थे। जब दिति के समस्त पुत्र विनष्ट हो गये तो उसने कश्यप ऋषि को प्रसन्न किया था ॥ १९ ॥ दिति ने कश्यप ऋषि से इन्द्र के मारने वाले पुत्र प्राप्त होने का वरदान प्राप्त किया था। दिति को बताये हुए व्रत के नियम मे एक दिन विघ्न हो गया और अपने पैरों को न धोकर ही सो गई थी। उसी व्रत भङ्ग के अवसर मे इन्द्र ने उसके गर्भ का हनन कर दिया था ॥ २० ॥ इन्द्र तो ऐसे ही छिद्र की खोज में था और उसने इस अवसर को पाकर हनन कर दिया था। वे मरुत देव हुए। ये उनचास दीप्त तेज वाले इन्द्र के सहायक हुए ॥ २१ ॥ यह समस्त वर्णन है हरि और ब्रह्मा ने राजा पृथु का अभिषेक करके स्वामी हरि ने अन्यों के राज्यों को क्रम से दे दिया था ॥२२॥ द्विज और औषधियों को राजा चन्द्रमा को बनाया और जलों का राजा वरुण को किया था। राजाओं का स्वामी वैश्रवण (कुबेर) को बनाया और सूर्यों का स्वामी ईश्वर विष्णु हुए ॥ २३ ॥ वसुओं का अधिपति पावक तथा मरुतों का इन्द्र स्वामी बना था।

प्रजापतियों का अधिपति दक्ष किया गया और समस्त दानवों के स्वामी प्रह्लाद बने ॥ २४ ॥

पितॄणां च यमो राजा भूतादीनां हरः प्रभुः ।
हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः ॥२५
गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः ।
सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ ॥२६
ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोऽथ गवामपि ।
मृगाणामथ शार्दूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः ॥२७
उच्चैः श्रवास्तथाऽश्वानां सुधन्वा पूर्वपालकः ।
दक्षिणस्यां शङ्खपदः केतुमान्पालको जले ॥२८
हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोऽयमीरितः ॥२९

पितृगणों का स्वामी यम हुए । भूत आदि के राजा प्रभु हर हुए । शैलों के अधिपति हिमवान् बनाये गये और नदियों के स्वामी सागर को किया था ॥ २५ ॥ गन्धर्वों का राजा चित्ररथ तथा समस्त नागों का स्वामी वासुकि को बनाया था । सर्पों का राजा तक्षक तथा पक्षियों का अधिप गरुड़ को किया था ॥ २६ ॥ गजेन्द्रों का स्वामी शार्दूल और वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष को बनाया था ॥ २७ ॥ अश्वों का राजा उच्चैःश्रवा को किया था । पूर्व दिशा का पालक सुधन्वा हुआ । दक्षिण दिशा में शङ्खपद तथा जल में केतुमान पालक हुआ था और सौम्य से हिरण्यरोमक हुआ था । यह प्रतिसर्ग कहा गया है ॥ २८–२९ ॥

१०–जगत्सर्गवर्णनम्

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥१
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ॥२

मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यस्ततः स्मृतः ॥३
तथार्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥४
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ॥५
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा ।
ब्रह्मतो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ॥६
ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृग्वाद्या उपयेमिरे ।
नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधाऽऽथ कथितो जनैः ॥७
प्राकृतो, दैनंदिनीयादान्तरप्रलयादनु ।
जायन्ते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि स स्मृतः ॥८

अब जगत् के सर्ग का वर्णन बताया जाता है। अग्नि ने कहा— प्रथम सर्ग महत् का होना है वह ब्रह्मा का सर्ग जानना चाहिए। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग इसके पश्चात् हुआ करता है वह भूत सर्ग कहलाता है ॥ १ ॥ वैकारिक तीसरा सर्ग होता है जो कि ऐन्द्रियक सर्ग के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्राकृत सर्ग है जोकि बुद्धि पूर्वक हुआ है ॥ २ ॥ चौथा मुख्य सर्ग होता है। इसमें स्थावरों को मुख्य कहा गया है। जो तिर्यक्स्रोता कहा गया है वह तैर्यग्योन्य नाम से कहा गया है ॥ ३ ॥ ऊर्ध्व स्रोतसों का जो छठा सर्ग होता है वह देव-सर्ग नाम से कहा गया है। इसके उपरान्त अर्वाक्स्रोतसों का सर्ग सातवाँ होता है वह मानुष-सर्ग कहा गया है ॥ ४ ॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग होता है जो सात्त्विक और तामस होता है। ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और प्राकृत सर्ग केवल तीन ही कहे गये हैं ॥ ५ ॥ प्राकृत और वैकृत दोनों का मिश्रण जिसमें होता है ऐसा नवम सर्ग कौमार नाम वाला होता है। ये नौ सर्ग होते हैं जो ब्रह्मा से हुआ करते हैं और इस जगत् के मूल हेतु होते हैं ॥६॥ ख्याति आदि दक्ष प्रजापति की कन्याएँ थीं जिनको भृगु आदि ने अपनी पत्नियाँ बनाया था। नित्य और नैमित्तिक तीन प्रकार का सर्ग मनुष्यों के

उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ सनति मे क्रतु से महान् ओज वाले वालखिल्य हुए। वे वालखिल्य अँगूठे के पर्व के समान प्रमाण वाले थे और संख्या मे साठ सहस्र हुए थे ॥ १४ ॥ और वसिष्ठ से ऊर्जा में राजा गात्रोर्द्ध्वबाहुक प्रसूत हुआ और सवन, अनघ, शुक्र, सुतपा येऋषिगण हुए। पावक पवमा न हुआ तथा शुचि स्वाहा अग्नि से हुए। अग्निष्वात्ता बर्हिषद अनग्नि और साग्नि अज से हुए थे ॥ १५–१६ ॥

पितृभ्यश्च स्वधायां ज मेना वैधारिणी सुते ।
हिसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथाऽनृतम् ॥१७
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ।
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ॥१८
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ।
वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥१९
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णांक्रोधाश्च जज्ञिरे ।
ब्रह्मणश्च रुदञ्जातो रोदनाद्रुद्रनामकः ॥२०
भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज ।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥२१
दक्षकोपाच्च तद्भार्या देहं तत्याज ना सती ।
हिमवद्दुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत्पुनः ॥२२
ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजा, स्नानादिपूर्विकाः ।
स्वायंभुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्ण्वादेर्भुक्तिमुक्तिगाः ॥२३

पितृगण से स्वधा में मेना और वैधारिणी दो पुत्रियाँ हुईं। अधर्म की भार्या हिंसा थी, उन दोनों से अनृत की उत्पत्ति हुई थी ॥ १७ उन ॥ दोनों से निकृति नाम धारिणी कन्या तथा भय और नरक, माया और वेदना इन दोनों का जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ उन दोनों में से माया ने भूतों के अपहरण करने वाला मृत्यु को उत्पन्न किया था। वेदना ने रौरव से दुःख नामक पुत्र का प्रसव किया था ॥ १९ ॥ मृत्यु से व्याधि–जरा (वृद्धावस्था) शोक–तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मा से रोता हुआ उत्पन्न हुआ और

रोदन से ही रुद्र यह नाम पड़ गया था ॥ २० ॥ हे द्विज ! वह पितामह ब्रह्मा उनको भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव इन नामों से बोले ॥ २१ ॥ और दक्ष के कोप से उन महादेव की भार्या सती ने देह का त्याग कर दिया था। फिर वही हिमवान् की पुत्री होकर शम्भु की पत्नी हुई थी। २२ ॥ नारद आदि के द्वारा कही हुई स्नानादि पूर्विका पूजा ऋषियों के लिये है उनको स्वायम्भव आदि ने करके, वे विष्णु आदि की भुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करने वाले हुए ॥ २३ ॥



११–विष्णवादिदेवतानां समान्यपूजाविधानम्

सामान्यपूजां विष्णवादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान् ।
समस्तपरिवाराय अच्युताय नमो यजेत् ॥१
धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै, निधीं तथा ।
द्वारश्रियं वास्तुनरं शक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥२
पृथिवीं धर्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च ।
अधर्मादीन्कन्दनालपद्मकेसरकर्णिकाः ॥३
ऋग्वेदाद्यं कृताद्यं न मत्त्वाद्यर्कादिमण्डलम् ।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञान क्रिया योगा च ता यजेत् ॥४
प्रह्वी सत्या तथेशा चानुग्रहाऽमलमूर्तिका ।
दुर्गागिरं गणं क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ॥५
हृदयं च शिरश्चूडां वर्म नेत्रमथास्त्रकम् ।
शंखं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥६
वनमालां श्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत् ।
इन्द्रमग्निं यमं रक्षो जलं वायुं धनेश्वरम् ॥७
ईशानं तमजं शास्त्रं वाहनं कुमुदादिकम् ।
विष्वक्सेनं मण्डलदौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ॥८

अब विष्णु आदि देवताओं के सामान्य पूजा का विधानवत लाया जाता है। श्री नारदजी ने कहा—विष्णु आदि की साधारण पूजा को

बतलाऊँगा और सभी कुछ प्रदान करने वाले मन्त्रों को भी बताते हैं। समस्त परिवार से युक्त भगवान् अच्युत के लिये नमस्कार करके फिर यजन करना चाहिए ॥ १ ॥ इसके अनन्तर धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना, निधि, द्वारश्री,, वास्तु नर, शक्ति, कूर्म, अनन्तक, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य. अधर्म आदि-कन्दनाल-पद्म-केशर कर्णिका, ऋग्वेद आदि-कृतयुग आदि-सत्व आदि-अर्क आदि मण्डल विमलोत्कर्षिणी-ज्ञान-योग-क्रिया इन सब का यजन करना चाहिए ॥ २-३-४ ॥ प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, अमलमूर्त्तिका, दुर्गागिर, गण-क्षेत्र और वासुदेव आदि का यजन करे ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त हृदय, शिर, चूड़ा, वर्म, नेत्र, अस्त्र, शंख, चक्र, गदा, पद्म और श्रीवत्स कौस्तुभ का अर्चन करना चाहिए ॥ ६ ॥ वनमाला, श्री, पुष्टि, गरुड़, गुरु का पूजन करे। इन्द्र, अग्नि, यम, रक्ष, जल, वायु, कुवेर, ईशान, तमज, शास्त्र, वाहन कुमुदप्रभृति, विष्वक्सेन की मण्डल आदि में पूजा आदि के करने से सिद्धि होती है ॥ ७-८ ॥

शिवपूजाऽथ सामान्या पूर्वं नन्दिनमर्चयेत ।
महाकाल यजेद्दुर्गा यमुनां च गणादिकम् ॥८
गिरं श्रियं गुरुं वास्तुं शक्त्यादींन्धर्मकादिकम् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलाविकारिणी ॥१०
वलविकारिणी चापि वलप्रमथिनी क्रमात् ।
सर्वभूतदमनी च मदनोन्मादिनी शिवा ॥११
हां हुं हां शिवमूर्तये साङ्गवक्त्र शिवं यजेत् ।
ही शिवाय हौमित्यादि हामीशानादिवक्त्रकम् ॥१२
ह्रीं गौरीं गं गणः शक्रमुखाश्चण्डो हृदादिका, ।
क्रमात्सूर्यार्चने मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ॥१३
उच्चैःश्रवाश्चारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् ।
सोमं संध्ये परसुखं स्कन्दाद्यं मध्यतो यजेत् ॥१४
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ।
अमोघा विद्युता चैव पूज्याऽथो सर्वतोमुखी ॥१५

अर्कासनं हि हूं खं खं सोल्कायेति च मूर्तिकम् ।
ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नम आं नमो हृदयाय च ॥१६
अर्काय शिरसे तद्वदग्नीशाश्रयवायुगान् ।
भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं कवचं स्मृतम् ॥१७

यहाँ तक विष्णु का यजन बताया गया है। अब शिव की साधारण पूजा के विषय में कहते हैं कि इसमें सबसे प्रथम नन्दी का यजन करे। महाकाल, दुर्गा, यमुना और फिर गण आदि का यजन करना चाहिए ॥ ९ ॥ गिर, श्री, गुरु, वास्तु और शक्ति प्रभृति तथा धर्म आदि एवं वामा-श्रेष्ठा, रौद्री, काली, कलाविकारिणी, बलविकारिणी, बल प्रमाथिनी, सर्वभूत दमनी, मदनोन्मादिनी, शिवा का पूजन करके—हां हूं हां शिव मूर्ति के लिये साङ्ग वक्त्र शिव का यजन करना चाहिए। 'हौं शिवाय' इत्यादि 'हामीशान' प्रभृति वक्त्र—हीं गौरी, गंगए, शक्रमुख, चण्ड और हृद आदि ये क्रम से सूर्य के अर्चन में मन्त्र हैं। इनसे यजन करना चाहिए। दण्डी और पिङ्गल की पूजा करे। उच्चैश्रवा, अरुण, प्रभूत, विमल का यजन करे। सोम, दोनों सन्ध्या, परमुख, स्कन्दाद्य का मध्य में यजन करना चाहिए ॥ १०-११-१२ १३-१४ ॥ दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी का पूजन करना चाहिए। अर्कासन, 'हूं खं ख सोल्काय'—इस मन्त्र का उच्चारण करके मूर्तिक के तथा 'ह्रा श्रीं सः' सूर्याय नमः—श्रो नमो हृदयाय-अर्काय शिरसेनमः—इन मन्त्रों के द्वारा पूजन कर इसी भाँति अग्नीश, आश्रय, वायुग का भूर्भुवः स्वर में, ज्वालिनी, शिखा, हूं कवच इस रीति से यजन बताया गया है ॥ १५-१६-१७ ॥

भां नेत्रं रस्तथाऽर्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निःस्वका ।
सोमोऽङ्गारकौऽथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः क्रमात् ॥१८
राहुः केतुस्तेजश्चण्डः संक्षेपादय-पूजनम् ।
आसनं मूर्तयो मूलं हृदाद्यं परिचारकः ॥१९
विष्वक्सनं विष्णुमूर्ते रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः ।
ह्रीं सर्वमूर्तिमन्त्रोऽममिति त्रैलोक्यमोहनः ॥२०

क्लीं हृषीकेशो हूं विष्णुः स्वरैर्दीर्घैर्हृदादिकम् ।
समस्तैः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादौ जयादिदा ॥२१
चक्रं गदां कमाच्छङ्खं मुसलं खड्गशार्ङ्गकम ।
पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥२२
श्रीं श्रीर्महालक्ष्मीस्तार्क्ष्यो गुरुरिन्द्रादयोऽर्चनम ।
सरस्वत्यासनं मूर्ति रों ह्रीं देवी सरस्वती ॥२३
हृदाद्या लक्ष्मीर्मेधा च कला तुष्टिश्च पुष्टिका ।
गौरी प्रभा मतिर्दुर्गा गणो गुरुश्च क्षेत्रपः ॥२४
तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्री श्रियै ।
ह्रीं त्वरितायै ऐं क्ली सौं त्रिपुरा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तक ॥२५
प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं बिन्दुसयुतम् ।
ॐ युता व सर्वमन्त्राः पूजनाज्जपतः स्मृताः ॥२६
होमस्तिलघृताद्यैश्च धर्मकामार्थमोक्षदाः ।
पूलामन्त्रान्पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ॥२७

भा नेत्र, र: प्रर्कास्व, राज्ञी, शक्ति, निःस्वकासोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, राहु, केतु और तेज, चण्ड इनका क्रम मे सक्षेप में पूजन करना चाहिए। आसन मूर्तियाँ, मूल, हृदादि, परिचारक, विष्णु का आसन का पूजन करना चाहिए। विष्णुमूर्ति का—'रां श्री श्री श्रीधरो हरिः ह्रीं, यह सर्व मूर्ति मन्त्र है और यह मन्त्र त्रिलोकी को मोहन करने वाला मन्त्र है इससे पूजन करे ॥ १८-१९-२० ॥ इसके उपरान्त अन्य मन्त्र इस भाँति हैं— क्लीं हृषी केश, हूं विष्णु, दीर्घ स्वरों से हृदादि का यजन करे। समस्त स्वरों से जय आदि देने वाली संग्राम आदि में पञ्चमी पूजा होती है ॥ २१ ॥ चक्र, गदा, शंख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्ग, पाश अंकुश, श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला, श्री महालक्ष्मी, तार्क्ष्य गुरु और इन्द्र आदि का पूजन करे। सरस्वती का आसन मूर्ति का अर्चन करे जिसका मन्त्र 'रोंह्री देवी सरस्वती' है ॥२१ २२-२३ हृदाद्य, लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु, क्षेत्र का अर्चन करना चाहिए। देवो में कुछ के मन्त्र ये हैं—'गंगणपतये,

ह्रीं गौर्ये—श्री—त्व त्वेरि तार्ये और ऐं क्लीं सौः त्रिपुरा—इन मन्त्रों के आगे देवता के नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति अन्त मे दे देवे और अन्त में 'नमः'—इस का प्रयोग कर देना चाहिए ॥ २५ ॥ सभी मन्त्रो के आदि मे प्रणव होता है और नाम का आद्य अक्षर विन्दु से संयुक्त है। समस्त मन्त्र "ॐ"· इस से युक्त ही पूजन और जप के लिये कहे गये है। होम तिल घृत आदि से करने से धर्म कामार्थ मोक्ष देने वाले भक्त होते हैं। जो पूजा के मन्त्रों का पाठ करता हैं वह भोगों का भोग करके स्वर्ग में जाया करता है ॥२७॥



१२–सामान्य आदिमूर्त्यादिदेवतानां पूजाविधिः ।

वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा यं कृत्वा सर्वमाप्नुयात् ।
प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यतः कृतरक्षणः ॥१
प्राङ्मुखः स्वस्तिकं वद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च ।
यंबीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ॥२
विश्लेपयेदशेषं तु ध्यायन्कायात्तु कल्मषम् ।
क्षौं हृत्पङ्कजमध्यस्थं बीजं तेजोर्निधि स्मरन् ॥३
अधोर्ध्वतिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभिः कल्मषं दहेत् ।
शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदम्बरस्थं सुधाम्बुभिः ॥४
हृत्पद्मव्यापिभिर्देहं स्वकमाप्लावयेत्सुधीः ।
सुषुम्नायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्पिभिः ॥५
शोधयित्वा न्यसेत्तत्त्वं करशुद्धिमथास्त्रकम् ।
व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽङ्गकम् ॥६
मूल देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रद्विपटककैः ।
हृदयं च शिरश्चैव शिखा वर्मास्त्रलोचने ॥७
उदरं च तथा पृष्ठं बाहूरू जानुपादकम् ।
मुद्रां दत्त्वा स्मरेद्विष्णुं जप्त्वाऽष्टशतमर्चयेत् ॥८

अब सामान्य आदि देवताओं की पूजा की विधि के विषय में बतलाया जाता है—श्री नारद जी ने कहा - हे विप्रवृन्द ! अब मैं पूजा की विधि को बतलाऊँगा जिसको करके मानव सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है। अपने पैरों को धोने वाला आचमन करके मौन होते हुऐ अपनी रक्षा करने वाला होवे ॥ १ ॥ पूर्व की ओर मुख करके स्वस्तिक बाँधे अथवा अन्य पद्म आदि का बन्धन करें। नाभि के मध्य में स्थित–धूम्र वर्ण वाला और नेत्र अनिल के स्वरूप वाले 'य' बीज को समस्त कल्मष का ध्यान करते हुए अपने शरीर से दूर करे। अर्थात् ऐसा ध्यान करे कि मेरा सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गया है। इसके अनन्तर हृदय कमल में स्थित तेज की खान "क्षौं"–इस बीज का स्मरण करे ॥ २–३ ॥ इसके पश्चात् नीचे के भाग–ऊपर का भाग और तिर्यग् भाग मे गमन करने वाली ज्वालाओ के तेज से अपने कल्मष का दाह करना चाहिए अर्थात् इस प्रकार का ध्यान करे कि मेरा ज्वालाओं से कल्मष दग्ध हो रहा है। इसके पश्चात् चन्द्र की आकृति की भाँति आकाश मे स्थित का ध्यान करे कि हृदय कमल मे व्याप्त रहने वाले सुधाम्बुओं के द्वारा विद्वान् को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि वह स्वयं पूर्णतया आप्लावित हो गया है। सुषुम्ना योनि के मार्ग से समस्त नाडी विसर्पियो के द्वारा शोधन करके शुद्धि तत्व का न्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त दोनो हाथो में मस्तक को व्यापक करे। सबसे आदि मे दक्षिणाङ्गुष्ठ से अङ्गों का न्यास करे ॥ ४–५–६ ॥ मूल को फिर देह मे बारह अङ्गों मे द्वादश मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए। हृदय, शिर, शिखा, वर्मास्त्र लोचन, उदर, पृष्ठ, बाहु, ऊरु, जानु और पाद इनमे मुद्रा देकर विष्णु भगवान् का स्मरण करे और अष्टोत्तर जाप करके फिर अर्चन करना चाहिए ॥ ७–८ ॥

वामे तु वर्द्धनीं न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे।
प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्यञ्च गन्धपुष्पान्विते न्यसेत् ॥९
चैतन्यं सर्वगं ज्योतिरस्त्रजप्तेन वारिणा।
फडन्तेन तु संसिच्य हृते ध्यात्वा हरिं परम् ॥१०

धर्म ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं वन्हिदिङ्मुखान् ।
अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादौ योग पीठके ॥११
कूर्म पीठे ह्यनन्तं च पद्मं सूर्यादिमण्डलम् ।
विमलाद्या: केसरस्था ग्रहा: कर्णिकसंस्थिता: ॥१२
पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्यार्चेच्च मण्डले ।
अर्घ्यं पाद्यं तथाऽऽचामं मधुपर्कं पुनश्च तत् ॥१३
स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं . गन्धपुष्पकम् ।
धूपदीपनैवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्यया ॥१४
यजेदङ्गानि पूर्वादौ द्वारि पूर्वे परेऽण्डजम् ।
दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोण शंखं धनुर्न्यसेत् ॥१५
देवस्यं वामतो दक्षे चेपुधी खड्गमेव च ।
वामे चर्म श्रियं दक्षे पुष्टिं वामेऽग्रतो न्यसेत् ॥१६

अर्चक जहाँ पर स्थिति करे वहाँ अपने वाम भाग में जलपात्र को रक्खे और अन्य समस्त पूजा की सामग्री को अपने दाहिने भाग में रक्खे। अस्त्र के द्वारा प्रक्षालन करके अर्घ्य को गन्ध और पुष्पों से अन्वित करके रक्खे ॥ ६ ॥ सर्वत्र गमनशील चैतन्य ज्योति को अस्त्र द्वारा अभिमन्त्रित किये हुए जल से, फट् जिसके अन्त में लगाकर सम्यक् प्रकार से सिंचन कर और इसके अनन्तर परम हरि का ध्यान करना चाहिए ॥ १० ॥ धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य और वह्निदिङ्मुखों को, पूर्वादि योग पीठ मे अधर्म आदि गात्रों को, पीठ मे कूर्म को-अनन्त, पद्म, सूर्यादिमण्डल, केसरों मे अर्थात् दलों में स्थित विमला आदि और कर्णिकाओं में स्थित ग्रह इन सब का अपने हृदय में ध्यान करे तथा फिर आवाहन करके मण्डल मे अर्चन करना चाहिए। इस विधि से अर्घ्य-पाद्य-आचमन और फिर मधुपर्क निवेदित करे। ११-१२-१३ ॥ इसके अनन्तर पुण्डरीकाक्ष की विद्या से स्नान-वस्त्र-उपवीत-भूषण-गन्ध तथा पुष्प-धूप-दीप और नैवेद्य वेदन करे ॥ १४ ॥ फिर पूर्वादि मे अङ्गों का यजन करना चाहिए। पूर्व मे पर द्वार में अण्डज को, दक्ष मे चक्र को-सौम्य में गदा को-कोण मे शङ्ख और धनुष को न्यस्त करे ॥ १५ ॥ देव के वाम

भाग में इपुधी अर्थात् धनुष और दक्ष भाग मे खड्ग वाम भाग मे चर्म और दक्षिण भाग में श्री और वाम भाग में आगे पुष्टि का न्यास करना चाहिए ॥१६॥

वनमालां च श्रीवत्सकौस्तुभौ दिक्पतीन्वहिः ।
स्वमन्त्रैः पूजयेत्सर्वान्विष्णोरर्चावसानतः ॥१७
व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्बीजेन वै यजेत् ।
जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वाऽर्घ्यं च समर्प्य च ॥१८
हृदये विन्यसेद्ध्या वा अहं ब्रह्म हरिस्त्विति ।
आगच्छाऽऽवाहने योज्य क्षमस्वेति विसर्जने ॥१९
एवमष्टाक्षराद्यैश्च पूजाः कृत्वा विमुक्तिभाक् ।
एकमूर्त्यर्चनं प्रोक्तं नवव्यूहार्चनं शृणु ॥२०
अंगुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेवं बलादिकान् ।
तर्जन्यादौ शरीरेऽथ शिरोललाटवक्त्रके ॥२१
हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये पूर्वादिकं यजेत् ।
एकपीठं नवव्यूहं नवपीठं च पूर्वजेत् ॥२२
नवाब्जे नवमूर्त्या च नवव्यूहं च पूर्ववत् ।
पद्ममध्ये च तत्स्थाने वासुदेवं प्रयोजयेत् ॥२३

वन माला और श्रीवत्स तथा कौस्तुभ एवं वाहिर दिक्पतियों का अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । विष्णु की अर्चा के अन्त में इन सब का अर्चन करना चाहिए । व्यस्त अर्थात् पृथक् रूप वाले और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण रूप वाले बीज से अङ्ग के द्वारा पूजन करना चाहिए । जाप करके और प्रदक्षिणा करके तथा स्तवन करके और अर्घ्य को समर्पित करके 'मैं ब्रह्म हरि हूँ ।' ऐसा ध्यान करके हृदय में विन्यास करे । आवाहन करने के समय में 'आगच्छ'—अर्थात् आइये और विसर्जन के समय में 'क्षमस्व'—अर्थात् क्षमा करिये इनका योजन करना चाहिए ॥ १७-१८-१९ ॥ इस रीति से अष्टाक्षरादि से विमुक्ति के चाहने वाले पुरुष को पूजा करनी चाहिए । यह एक मूर्ति के अर्चन का विधान बतला दिया गया है । अब आगे नव व्यूह के अर्चन के विधान का श्रवण करो ॥ २० ॥ अङ्गुष्ठक द्वय मे अर्थात् दोनों अंगुष्ठों में

वासुदेव का तथा वस्त्रादि का न्यास करे। तर्जनी आदि शरीर में और इस के अनन्तर शिर–मुख–ललाट में हृदय–नाभि गुह्य–जानु–चरण में मध्य में पूर्व आदि का यजन करना चाहिए। नव व्यूह एक पीठ को और पूर्व की भाँति नव पीठ को, नवीन कमल में नव मूर्ति से पूर्ववत् नव व्यूह को पद्म के मध्य में और उस स्थान में वासुदेव को प्रयोजित करना चाहिए ॥२१-२२-२३॥



१३–कुण्डनिर्माणाद्यग्निकार्यादिकथनम् ।

अग्निकार्य प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक् ।
चतुरभ्यधिकं विशमंगुलं चतुरस्रकम् ।१
सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत्खनेत्समम् ।
खातस्य मेखलाः कार्यास्त्यक्त्वा चवाङ्गुलद्वयम् ॥२
सत्त्वादिसंज्ञाः पूर्वास्या द्वादशाङ्गुलमुच्छिताः ।
अष्ट ङ्गुला व्यङ्गुलाश्च चतुरंगुलविस्तृता ॥३
योनिर्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुर्व्यङ्गुलोच्छ्रिता ।
क्रमान्निम्ना तु कर्तव्या पश्चिमाशाव्यवस्थिता ॥४
अश्वत्थपत्रसदृशी किंचित्कुण्डे निवेशिता ।
तुर्याङ्गायतं नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम् ॥५
मूलं तु त्र्यङ्गुलं योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम् ।
लक्षण चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ॥६
एकत्रिमेखलं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम् ।
कुण्डार्धे तु स्थितं सूत्रं कोणे यदतिरिच्यते । ७
तदर्धं दिशि संस्थाप्य भ्रामितं वर्तुलं भवेत् ।
कुण्डार्धं कोणभागार्धं दिशि चोत्तरतो बहिः ॥८
पूर्वपश्चिमतो यत्नाल्लाञ्छयित्वा तु मध्यतः ।
संस्थाप्य भ्रामितं कुण्डमर्धचन्द्रं भवेच्छुभम् ॥९
पद्माकारे दलानि स्युर्मेखलायां तु वर्तुले ।
बाहुदण्डप्रमाणं तु होमार्थं कारयेच्छुभम् ॥१०

श्री नारद जी ने कहा—अब मैं कुण्ड निर्माण आदि अग्नि के कार्य को बतलाऊँगा जिससे समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करने वाला मानव हो जाया करता है। चौबीस अंगुल चौकोर एक सूत से क्षेत्र को सप्रयित करके अर्थात् डोरे से भलीभाँति चारों ओर से नाप कर समान प्रमाण से खनन करना चाहिए। जब कुण्ड का खनन हो जावे तो उस खुदे हुए कुण्ड की दो अंगुल प्रमाण वाली मेखला बनानी चाहिए ॥ १–२ ॥ सत्त्वादि संज्ञा वाली पूर्व की ओर मुख से युक्त बारह अंगुल ऊँची आठ अंगुल–दो अंगुल और चार अंगुल चौड़ी बनावे ॥ ३ ॥ दश अंगुल बहुत रम्य योनि की रचना करे जो कि छै, चार और दो अंगुल ऊँची हो। इसी क्रम से इसे पश्चिम दिशा में व्यवस्थित रखते हुए निम्न अर्थात् गहरी करनी चाहिए ॥ ४ ॥ इसकी आकृति पीपल के पत्ते के समान कुछ कुण्ड में निवेशित होनी चाहिए। चार अंगुल आयत नाल हो और पन्द्रह अंगुल आयत हो ॥ ५ ॥ मूल अंगुल प्रमाण वाला और उस योनि का अग्र छै अंगुल होना चाहिए। यह एक हाथ वाले का लक्षण है और यदि दो हाथ आदि का बड़ा हो तो सब दुगुना होना चाहिए ॥ ६ ॥ अब मैं एक और तीन मेखलाओं वाले कुण्ड के वर्तुल आदि को बताता हूँ। कुण्ड के अर्ध भाग में स्थित सूत्र को जो कोण में अति रिक्त होता है उसके लिए दिशा में उसे स्थापित करके भ्रामित करे अर्थात् चारों ओर घुमा देवे तो वर्तुल हो जाता है कुण्ड के अर्ध को और कोण के अर्ध को बाहिर उत्तर की ओर से पूर्व या पश्चिम से यत्न पूर्वक विहि्नत करके मध्य में रख कर घुमावे तो अर्ध चन्द्राकृति वाला शुभ कुण्ड हो जाता है। ॥ ७–८–९ ॥ उस वर्तुल पद्म के समान आकार वाले कुण्ड की मेखला में दल होते हैं। इस प्रकार बाहु दण्ड के प्रमाण वाला कुण्ड होम कार्य को सम्पन्न करने के लिये परम शुभ बनाना चाहिए ॥ १० ॥

सप्तपञ्चाङ्गुलं वाऽपि चतुरस्रं तु कारयत्।
त्रिभागेण भवेद्गर्तं मध्ये वृत्तं सुशोभनम् ॥११
तिर्यगूर्ध्वं समं ग्रात्वा वहिरर्धं तु शोधयेत्।
अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्धार्धं तथाऽन्ततः ॥१२

खातस्य मेखलां रम्यां शेपार्धेन तु कारयेत् ।
कण्ठं त्रिभागविस्तारमङ्गुष्ठकसमायतम् ।।१३
सार्धमङ्गुष्ठकं वाऽस्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत् ।
चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ।।१४
त्रिकव्यङ्गुलकं तत्स्यान्मध्यं तस्य सुशोभनम् ।
आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभनः ।।१५
सुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद्यावत्कनीयसी ।
शेषं कुण्डं तु कर्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ।।१६
स्रुवं तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम् ।
वटुकं व्यङ्गुलं वृत्तं कर्तव्यं तु सुशोभनम् ।।१७
गोपदं तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत् ।
उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनामिकाम् ।।१८
सौम्याग्रां प्रथमां तस्यां रेखे पूर्वामुखे तयोः ।
मध्ये तिस्रस्तथा कुर्याद्दक्षिणादिक्रमेण तु ।।१९
एवमुल्लिख्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित् ।
विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिञ्शक्तिं तु वैष्णवीम ।।२०

अथवा सात-पाँच अंगुल प्रमाण वाला चौकोर निर्मित करे । मध्य में सुशोभन तीन भाग से वृत्त गर्त्त होना चाहिए ।। ११ ।। तिरछा और ऊपर समान रूप से खोद कर बाहर अर्ध भाग का शोधन करना चाहिए । अंगुलों के चतुर्थ अंश को शेष के अर्ध भाग के अर्ध भाग को अन्त तक खोद कर शेष आधे भाग से उसकी सुन्दर मेखला की रचना करावे । उसका कण्ठ तीन भाग के विस्तार वाला अंगुष्ठ के समान आयत होना चाहिए अथवा डेढ़ अंगुष्ठ वाला हो और उसके आगे मुख रहना चाहिए । चार अंगुल के विस्तार से युक्त अथवा पाँच अंगुल के विस्तार वाला होवे ।। १२-१३-१४ ।। तीन-दो अंगुल वाला उसका बहुत ही अच्छा मध्य होना चाहिए । उसके समान ही ही उसका आयाम और परम सुन्दर मध्य की गहराई होवे ।। १५ ।। कण्ठ देश में सुषिर होवे जितनी छोटी अंगुली प्रवेश करे । इसके अतिरिक्त रुचि के

अनुसार विचित्रित कुण्ड की रचना करनी चाहिए ॥ १६ ॥ होम करने का स्रुवा दण्ड से युक्त एक हाथ प्रमाण वाला रखना चाहिए। इसका वट्टक गोल दो अंगुल प्रमाण वाला बहुत अच्छा बन वे ॥ १७ ॥ अल्प पङ्क (कीच) में गोपद (गौ का खुर) जिस प्रकार डूब जाया करता है वैसा होना चाहिए उसको उपलिप्त करके वज्र नाभि का अंगुला रेखा को लिखे ॥ १८ ॥ प्रथम रेखा सौम्य की और अग्रभाग वाली हो, दो रेखाऐं उसमे पर्वाभिमुख वाली हों, उन दोनों के मध्य मे दक्षिणादि क्रम से तीन रेखाऐं बनानी चाहिएं ॥ १९ ॥ मन्त्रो के वेत्ता पुरुष को इस रीति से उल्लेख न करके फिर प्रणव के द्वारा अभ्युक्षण करना चाहिए। उसमे विष्टर बनाकर उसमे फिर उसके द्वारा वैष्णवी शक्ति को कल्पित करना चाहिए ॥ २० ॥

अलङ्कृतामृतुमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन् ।
प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य ताम् ॥२१
दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ, तत्र पात्रकम् ।
आसादयेदिध्मबर्हिर्द्वयं स्रुक्स्रुवकद्वयम् । २२
आज्यस्थालीं चरुस्थालीं कुशाज्ये च प्रणीतया ।
प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणी च गृहीत्वाऽऽपूर्य वारिणा ॥२३
पवित्रान्तर्हिते हस्ते परिस्राव्य च तज्जलम् ।
अग्निं ध्यात्वाऽथ प्रोक्षण्यां योन्या अग्रे निधाय च ॥२४
तदद्भिस्त्रिः सम्प्रोक्ष्य इध्मं विस्रस्य चाग्रतः ।
प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ॥२५
आज्यस्थालीमथाऽऽज्येन संपूर्याग्रे निधाय च ।
मन्त्रवोत्पवनाभ्यां तु कुर्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ॥२६
अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ ।
ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामंगुष्ठानामिकेन तु ॥२७
आज्यं ताभ्यां तु संगृह्य त्रिवारं चोर्ध्वमुत्क्षिपेत् ।
स्रुक्स्रुवौ चापि संगृह्य ताभ्यां प्रक्षाल्य वारिणा ॥२८

प्रताप्य दर्भे समृज्य पुनः प्रक्षाल्य चैव हि ।
निष्टप्य स्थापयित्वा तु प्रणवेनैव साधकः ॥२९
प्रणवादिनमान्तेन पश्चाद्धोम समाचरेत् ।
गर्भाधानादिकर्माणि यावदङ्गव्यवस्थया ॥३०
नामान्तं व्रतबन्धात समावर्तावसानकम् ।
अधिकारावसान वा कुर्यादङ्गानुसारतः ॥३१

इस सब के उपरान्त श्री हरि का स्मरण करते हुए अलंकृत और ऋतुमती अग्नि को उसमें डाले । फिर उसमें प्रादेशमात्र समिधाऐं देकर उसे परि समूहित करे । २१ ॥ दर्भों से (कुशाओं से) पूर्व आदि में परिस्तरण करे ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् आज्य (घृत) की स्थाली और चरु की स्थाली और कुशाज्य इनको प्रणीता के द्वारा प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी को ग्रहण करके जल से उसे भर लेवे ॥ २३ ॥ हाथ के पवित्रान्तर्हित होने पर उन जल को स्रावित करके प्रोक्षणी में अग्नि का ध्यान करे और उसे आगे रख लेवे ॥ २४ ॥ और विस्र के आगे उन जलों के द्वारा इध्म का भली भाँति प्रोक्षण करके पुष्पों से समन्वित प्रणीता में विष्णु का ध्यान करना चाहिए और उत्तर में आज्य स्थाली को घृत से भली भाँति भर कर आगे रखना चाहिए और फिर सप्लव उत्पवन के द्वारा उस घृत का संस्कार कर लेवे ॥ २५-२६ ॥ निर्गर्भ प्रादेश मात्र दो डाभों से जिनके अग्र भाग खण्डित न हों अर्थात् सावित अग्र भाग वाले हों ऊपर को उठे हुए हाथों से अंगुष्ठ और अनामिका अंगुलि के द्वारा उन दोनों कुशाग्रों में लेकर तीन बार ऊपर को और उत्क्षिप्त करना चाहिए । फिर स्रुक और स्रुवा इन दोनों को लेकर जल से उनको धोकर रक्खे ॥ २७-२८ ॥ दर्भों से प्रतप्त करे और फिर अच्छी तरह मार्जन करे और प्रक्षालन करे । साधना करने वाले व्यक्ति को निष्टप्त करके प्रणव के द्वारा ही उसे स्थापित करना चाहिए ॥ २९ ॥ फिर आदि में प्रणव और अन्त में "नमः" इसे लगा कर उनसे पश्चात् होम करना चाहिए । गर्भाधानादि समस्त कर्म जितने भी हैं अङ्ग व्यवस्था से नाम के अन्त तक अर्थात् नामकरण संस्कार की समाप्ति तक —व्रतबन्ध के अन्त तक समावर्तन के

अवसान पर्यन्त अथवा अधिकार के अन्त तक प्रक्रमानुसार करने चाहिए।
॥ ३ –३१ ॥

प्रणवेनोपचारं तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः ।
अङ्गैर्होमस्तु कर्तव्या यथावित्तानुसारतः ॥३२
गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवन स्मृतम् ।
सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामानुशासनम् ॥३३
चूडाकृति व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः ।
समावर्तनं पत्न्या च योगो यागाधिकारकः ॥३४
हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म पूज्य च ।
अष्टावष्टौ तु जुहुयात्प्रतिकर्माऽऽहुतीः पुनः ॥३५
पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्स्र चा मूलेन साधकः ।
वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ॥३६
विष्णोर्वह्निं तु सस्कृत्य श्रपयेद्वैष्णवं चरुम ।
आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान्संस्मृत्य पूजयेत् ॥३७
आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् ।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ॥३८
आधायेध्ममथाऽऽघारावाज्यावग्नीशसंनिधौ ।
वायव्यनैर्ऋताशादिप्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ॥३९
आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे ।
मध्ये तु जुहुयात्सर्वमन्त्रैरर्चाक्रमेण तु ॥४०
आज्येन, तर्पयेन्मूर्ति र्दशांशेनाङ्गहोमकम् ।
शतं सहस्रं वाऽऽज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सदा ॥४१

सब जगह साधना करने वाले व्यक्ति को प्रणव के द्वारा उपचार करना चाहिए। होम अपने वित्त के अनुसार अङ्गों के द्वारा करे ॥ ३२ ॥ सब से प्रथम संस्कार "गर्भाधान" होता है जिस में गर्भ की स्थिति की जाती है। इसके अनन्तर "पुंसवन" नामक संस्कार गर्भावस्था में स्थित बालक का किया जाता है। फिर "सीमन्तोन्नयन" संस्कार होता है। यह भी माता के

उदरस्थ बालक का ही किया जाता है। अब चतुर्थ संस्कार "जातकर्म" नाम वाला है जो कि जन्म ग्रहण करने पर होता है। इसके अनन्तर "नामकरण" संस्कार है जिसमें नवजात बालक का शास्त्र की विधि से नाम रक्खा जाता है ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर नवजात जब कुछ बड़ा होता है तो *"चूड़ा कर्म" संस्कार होता है जिसमें मुण्डन कराकर चोटी रक्खी जाती है।* फिर "व्रतबन्ध" होता है जिसमें सम्पूर्ण वेदाध्ययनादि वेद के व्रतों का पालन आरम्भ करता है और उपनयन होता है। फिर वेद व्रत को समाप्त करने के पश्चात् "समावर्त्तन" संस्कार तथा पत्नि के साथ योग "विवाह" संस्कार होता है। इसके बाद यज्ञादि करने का अधिकार प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ हृद आदि के क्रम से ध्यान करके एक–एक कर्म का पूजन करे और प्रत्येक कर्म के निमित्त आठ–आठ आहुतियाँ देनी चाहिएँ ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर स्रुक् के मूल में साधक को वौषट् अन्त में लगाकर मन्त्र के द्वारा प्लुत सुन्दर स्वर का उच्चारण करते हुए पूर्णाहुति देनी चाहिए ॥ ३६ ॥ भगवान् विष्णु की वह्नि का संस्कार करके वैष्णव चरु का श्रपन करे। स्थण्डिल में भगवान् विष्णु की आराधना करके मन्त्रों का स्मरण करते हुए पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ आसन आदि के अर्चन के क्रम से अङ्गों और आवरणों के सहित उत्तम रीति से सुरों में सर्वोत्तम देव का ध्यान करके और गन्धाक्षत पुष्पादि पूजन के समस्त उपचारों से भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ फिर अग्नीश की सन्निधि में आज्य के आधार इध्म का आधान करके वायव्य–नैर्ऋत्य आदि दिशाओं में प्रवृत्ति होने पर क्रम के अनुसार आज्य (घृत) भागों को दक्षिणोत्तर में चक्षुओं को हवन करके फिर मध्य में अर्चा के क्रम से समस्त मन्त्रों के द्वारा आज्य से हवन करना चाहिए ॥ ३९–४० ॥ होम के दशांश अङ्ग के द्वारा मूर्ति का भली भाँति तर्पण करे। सर्वदा एक शत अथवा एक सहस्र आज्य (घृत) आदि के द्वारा अथवा समिधाओं से किम्बा तिलों से हवन करना चाहिए ॥ ४१ ॥

समाप्यार्चां तु होमान्तां शुचीञ्शिष्यानुपोषितान् ।
आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्पशून् ॥४२

शिष्यानात्मनि संयोज्याविद्याकर्मनिबन्धनैः ।
लिङ्गानुवृत्तं चैतन्यं सह लिङ्गेन पालितम् ॥४३
ध्यानमार्गेण संप्रोक्ष्य वायुबीजेन शोषयेत् ।
ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ॥४४
निर्दग्धां सकलां ध्यायेद्भस्मकूटनिभस्थिताम् ।
प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाङ्मयं स्मरेत् ॥४५
तत्र शक्तिं न्यसेत्पश्चात्पार्थिवीं बीजसंज्ञिताम् ।
तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृतं पार्थिवं शुभम्॥४६
अण्डं तदुद्भवं ध्यायेत्तदाधारं तदात्मकम् ।
तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ॥४७
लिङ्गं संक्रामयेत्पश्चात्पार्श्वस्थं पूर्वसंस्कृतम् ।
विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमादवृद्धं हि चिन्तयेत् ॥४८
ततोऽण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम् ।
द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्मध्ये प्रजापतिम् ॥४९
जातं ध्यात्वा पुनः प्रोक्ष्य प्रणवेन तु तं शिशुम ।
मन्त्रात्मकतनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम् ॥५०

होम के अन्त तक होने वाली अर्चा को समाप्त करके उपोषित पवित्र शिष्यों को बुलाकर उन्हे सामने बिठावे । इसके अनन्तर अस्त्र के द्वारा पशुओं का प्रोक्षण करना चाहिए । शिष्यों को आत्मा में अविद्या कर्म निबन्धनों से संयोजित करके लिङ्ग के साथ पालित लिङ्गानुवृत्त चैतन्य को ध्यान के मार्ग से सम्प्रोक्षण करके वायु बीज के द्वारा शोषण करना चाहिए । इसके उपरान्त दहन बीज के द्वारा ब्रह्माण्ड संज्ञा वाली सृष्टि को समस्त निदग्ध और भस्म के समूह के समान स्थित है ? ऐसा ध्यान करे और यह भी ध्यान में लावे कि वह ब्रह्माण्ड की भस्म का ढेर जल से प्लावित हो गया है और फिर ससार वाङ्मय है— ऐसा स्मरण करना चाहिए ।। ४२-४३-४४-४५ ।। यह समस्त विषय अपने ध्यान करने का ही है फिर वहाँ पर बीज संज्ञा से युक्त पार्थिवी शक्ति का न्यास करना चाहिए । इसके उपरान्त समस्त तन्मात्राओं से यह शुभ

पार्थिव जगत् संवृत है। ऐसा ध्यान करे ॥ ४६ ॥ फिर उससे उद्भव प्राप्त करने वाला और तदात्मक एवं उसके आधार वाले अण्ड का ध्यान करे उस अण्ड के मध्य में प्रणव के स्वरूप वाली पौरुषी मूर्ति के स्थित होने का चिन्तन करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इसके पश्चात् पहिले संस्कार किये हुए और पास में स्थित लिङ्ग को संक्रामित करे। इसके उपरान्त इन्द्रियों के संस्थान के विभाग वाले तथा क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने वाले का चिन्तन करना चाहिए ॥ ४८ ॥ इस प्रकार के ध्यान एवं चिन्तन के पश्चात् उस अण्ड को एक वर्ष पर्यन्त स्थित करके फिर उसके दो खण्ड हो जाने का चिन्तन करे। वे दोनों खण्डों के द्यावा पृथिवी हुए हैं और उन दोनों के मध्य में प्रजापति उत्पन्न हुए हैं। ऐसा ध्यान करे। फिर उस शिशु स्वरूप प्रजापति का प्रणव के द्वारा जल से प्रोक्षण करके पहिले कथित न्यासों के अनुसार मन्त्रात्मक तनु करे ॥४६-५०॥

विष्णुहस्तं ततो मूर्ध्नि दत्त्वा तु वैष्णवम्।
एवमेकं बहून्वाऽपि जपित्वा ध्यानयोगतः ॥५१
करौ संगृह्य मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा।
नेत्रमन्त्रेणमन्त्री तानशेषानाहतेन तु ॥५२
कृतपूजो गुरुः सम्यग्देवदेवस्य तत्त्ववान्।
शिष्यान्पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवशेयेत् ॥५३
अर्चयेयुश्च तेऽप्येवं प्रसूता गुरुणा हरिम्।
क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम् ॥५४
वासुदेवार्चनं कृत्वा गुरोः हादार्चनं ततः।
विधाय दक्षिणां दद्यात्सर्वस्वं चार्धमेव वा ॥५५
गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यांस्तैः पूज्यो नामभिर्हरिः।
विष्वक्सेन तजेदीश शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५६
तर्जयन्तं च तर्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत्।
विष्णुनिर्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत् ॥५७
प्रणीताभिस्तथाऽऽत्मानमभिषिच्य च कुण्डकम्।
वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत् बुभुक्षुः
सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ ॥ ५८

इसके अनन्तर विष्णु-हस्त को माथे पर देकर तथा वैष्णव का ध्यान करके एक अथवा बहुतों का ध्यान के योग से जप करे ॥ ५१ ॥ मूल से हाथों को संगृहीत करके और वस्त्र से दोनों नेत्रों को बाँध करके मन्त्री को चाहिए कि उन समस्तों को नेत्र मन्त्र द्वारा आहृन करे ॥५२॥ इस तरह से भली भाँति देव-देव के तत्त्व वाला गुरु पूजा करके पुष्पाञ्जलि धारण करने वाले शिष्यों को पूर्व की ओर मुख किये हुए बिठावे ॥ ५३ ॥ वे भी इस प्रकार से गुरु के द्वारा प्रसूत हरि का अर्चन करें और शिष्यों को चाहिए कि वे पुष्पादि से जो पुष्पाञ्जलि है उसे वहाँ पर प्रक्षिप्त कर देवें। फिर भगवान् वासुदेव का पूजन करके गुरु के चरणों की अर्चना करें फिर सर्वस्व अथवा अर्ध भाग दक्षिणा देवें ॥ ५४-५५ ॥ गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्यों को शिक्षा देवें कि उन्हें नामों के द्वारा हरि का पूजन करना चाहिए। शङ्ख-चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् विष्वक्सेन का यजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥ मण्डल में स्थित तर्जन करने वाले को तर्जनी से विसर्जित करे। फिर समस्त भगवान् विष्णु के निर्माल्य को लेकर विष्वक्सेन के लिये अर्पित कर देना चाहिए ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त प्रणीताओं से अपने आपको और कुण्ड को अभिषिञ्चित करके तथा वह्निको आत्मा में संयोजित कर विष्वक्सेन का विसर्जन कर देना चाहिए। इस तरह यजन करने का फल यह होता है कि जो भोगेच्छा वाला बुभुक्षु होता है उसे समस्त भोगों की प्राप्ति हो जाया करती है और जो मुक्ति की इच्छा रखता है वह हरि में लीन होजाता है ॥ ५८ ॥



१४—देवालयनिर्माणफलादिः ।

वासुदेवाद्यलयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम् ।
चिकीर्षोर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत् ॥१
मनसा सद्मकर्तॄणां शतजन्माघनाशनम् ।
येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरर गृहम् ॥२
तेऽपि पापैर्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम् ।
समतीतं भविष्यं च कुलानामयुतं नरः ॥३

विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ।
वसन्ति पितरा हृष्टा विष्णुलोके ह्यलंकृताः ॥४
विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुं कृष्णस्य मन्दिरम् ।
ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम् ॥५
फलं यन्नाऽऽप्यते यज्ञैर्धाम कृत्वा तदाप्यते ।
देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेम् ॥६
देवाद्यर्थे हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम् ।
शाठ्येन पांसुना वाऽपि कृतं धाम च नाकदम् ॥७

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं वासुदेव आदि के देवालय के निर्माण के फल आदि को बतलाऊँगा। जो देवालय के निर्माण करने की इच्छा रखता है उसके एक सहस्र जन्मों के पापों का नाश हो जाया करता है ॥ १ ॥ भगवान् के मन्दिर के निर्माण करने की बात यदि कोई मन में भी लाता है अर्थात् मन से विचार करता है तो इसका ही इतना फल होता है कि सौ जन्म तक के किये हुए पापों का नाश हो जाता है। जो मनुष्य भगवान् कृष्ण के निमित्त आलय का अनुमोदन किया करते हैं वे भी पापों से विनिर्मुक्त होकर अच्युत भगवान् के लोक की प्राप्ति किया करते हैं। व्यतीत हुए और आगे होने वाले दश सहस्र कुलों को ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही विष्णु लोक को ले जाता है। हरि के मन्दिर बनवाने वाले पितर परम प्रसन्न एवं अलंकृत होते हुए विष्णु लोक में निवास किया करते हैं ॥ २–३–४ ॥ श्रीकृष्ण के मन्दिर का निर्माण कराने वाला पुरुष नारकीय समस्त यातनाओं से मुक्त हो जाता है। देवता का आलय निर्माण कराना ब्रह्म हत्या आदि भीषण पापों के समूह का घातक होता है ॥ ५ ॥ जो परम फल यज्ञों के करने से भी कभी प्राप्त नहीं होता है वह भगवद्धाम के निर्माण कराने से प्राप्त हो जाया करता है। देवागार के निर्माण कराने पर समस्त महान् तीर्थों के स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ देव मन्दिर के लिये यदि हत हो जावे तो रण में युद्ध करते हुए शत्रु के सामने मरने वाले को जो उत्तम फल मिलता है वही फल उसे भी प्राप्त हुआ करता है। पांसु के द्वारा भी यदि भगवद्धाम बनाया गया है तो वह स्वर्गप्रद होता है ॥ ७ ॥

एकायतनकृत्स्वर्गी त्र्यगारी ब्रह्मलोकभाक् ।
पञ्चागारी शंभुलोकमष्टागारसद्धरौ स्थितिः ॥८
षोडशालयकारी तु भुक्ति मुक्तिवाप्नुयात् ।
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥९
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात् ।
श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवाल्लँभेत् ॥१०
कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः ।
समुत्पाद्य धन कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम् ॥११
कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान् ।
लक्षेणाथ सहस्रेण शतेनार्धेन वा हरेः ॥१२
कारयन्भवन यानि यत्राऽऽस्ते गरुडध्वजः ।
बाल्ये तु क्रीडमाना थे पांसुभिर्भवनं हरेः ॥१३
वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः ।
तीर्थे चाऽऽयतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाऽऽश्रमे ॥१४
कर्तुं ग्यायतनं विष्णोर्यथोक्तात्त्रिगुणं फलम् ।
बन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम् ॥१५

यदि कोई एक ही देव का आयतन निर्मित कराता है तो वह स्वर्ग-लोक प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है और यदि तीन धामों का निर्माण कराने वाला हो तो ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। पाँच मन्दिरों को बनवाने वाला शिवलोक को जाता है तथा आठ यदि निर्मित करा देवे तो उसकी फिर हरि भगवान् में ही स्थिति हो जाया करती है ॥ ८ ॥ सोलह देवागारों का निर्माता भुक्ति और मुक्ति दोनों का लाभ प्राप्त करता है। बहुत छोटा-मध्यम श्रेणी का अर्थात् न तो अत्यन्त छोटा और न बहुत बड़ा ही तथा परम विशाल और श्रेष्ठ इन तीन प्रकार के देवालयों के बनवाने वाला क्रम से स्वर्ग-वैष्णव लोक और मोक्ष को प्राप्त किया करता है। श्रेष्ठ देवायतन का निर्माण कराने वाला धनवान् जो फल प्राप्त करता है निर्धन साधारण मनुष्य एक छोटे से देवालय के निर्माण से वही फल प्राप्त करता है। धन का

उत्पादन करके थोड़े से भी धन से जो सुरालय का निर्माण कराता है वह पुण्य और अधिक वरों को प्राप्त करता है। एक लक्ष रुपये से, सहस्र से, शत से अथवा उसके भी आधे रुपये से जो भगवान् हरि के मन्दिर का निर्माण कराता है वह जहाँ पर गरुड़ध्वज निवास करते हैं उस स्थान पर जाता है। बाल्य काल में क्रीड़ा करते हुए खेल ही में जो मिट्टियों के ढेलों से वासुदेव हरि का भवन बनाया करते हैं वे भी उसी लोक के गामी हुआ करते हैं। तीर्थ स्थल में पुण्य भूमि में सिद्ध क्षेत्र में तथा आश्रम में विष्णु भगवान् का मन्दिर बनाने वाले को तिगुना फल मिला करता है। बन्धूक पुष्पों के विन्यास से तथा सुधापङ्क (सफेदी) से जो विष्णु के भवन की पुताई किया करते हैं वे भी भगवान् के ही पुर को जाया करते हैं ॥ ६ से १५ ॥

ये विलिम्पन्ति भवनं ते यन्ति भगवत्पुरम् ।
पतितं पतमानं तु तथाऽर्द्धपतितं नरः ॥१६
समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम् ।
पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता ॥१७
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपभाक् ।
इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावदायतनं हरेः ॥१८
सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते ।
स एव पुण्यवान्पूज्य इहलोके परत्र च ॥१९
कृष्णस्य वासुदेवस्य य कारयति केतनम् ।
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पालितम् ॥२०
विष्णुरुद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्ता स कीर्तिभाक् ।
किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः ॥२१
दुःखार्जितैर्यः कृष्णस्य न कारयति केतनम् ।
नोपभोग्य धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम् ॥२२
नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः ।
यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः ॥२३

जो कोई मनुष्य पतित को अर्थात् गिरे हुए को – यजमान को अर्थात् पतन होने वाले को तथा अर्ध पतित को अर्थात् उसको जिसका आधा पतन हो गया हो, उठाकर हरि के मन्दिर में प्राप्त कर देता है उसको दुगुना फल होता है। पतित का कर्त्ता हो तथा पतित का रक्षित हो अर्थात् विष्णु के आयतन को जो गिर गया हो उसको बनाने वाला और जो आयतन गिरा हुआ हो उसका जीर्णोद्धार करके रक्षा करने वाला हो वह मनुष्य इस संसार मे साक्षात् विष्णु का ही स्वरूप होता है। भगवान् हरि के आयतन अर्थात् मन्दिर के निर्माण में लगी हुई ईंटों का समूह जब तक रहता है तब तक वह निर्माता मनुष्य कुल के साथ विष्णु लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है। वह ही परम पुण्य वाला और इस लोक मे तथा पर लोक में पूज्य होता है ॥ १६–१७–१८–१६ ॥ भगवान् कृष्ण वासुदेव का जो मन्दिर बनवाता है वह *ही सुकृती उत्पन्न हुआ है और उसने ही अपने कुल का पालन किया है* ॥२०॥ जो विष्णु, रुद्र, सूर्य और देवी आदि देवों के मन्दिरों का निर्माण करता है वह संसार में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया करता है। उस मूर्ख परिरक्षण करने वाले के धन–समूहों से क्या लाभ है जो अत्यन्त कष्टों से कमाये हुए धनों से कृष्ण के मन्दिर का निर्माण नही कराता है। जिसका धन पितृगण–विप्र वृन्द और देव समूह के उपभोग के योग्य नही होता है और अपने बन्धु-बान्धवों के उपभोग के लिये भी जो काम मे नही आता है वह धन व्यर्थ ही है। उस प्रकार के धन का आना बेकार ही हुआ करता है। क्योंकि जिस तरह मृत्यु का होना मनुष्यों का निश्चित होना है वैसे ही इस धन का नाश होना भी निश्चित ही है ॥ २१–२२–२३ ॥

मूढस्तमनुबध्नाति जीवितेऽथ चले धने ।
यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ॥२४
नापि कीर्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येऽथ को गुणः ।
तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ॥२५
दद्यात्सम्यग्द्विजाग्र्येभ्यः कीर्तनानि च कारयेत् ।
दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात्कीर्तनेभ्यो वरं यतः ॥२६

शिवब्रह्मार्कविघ्नेशचण्डीलक्ष्म्यादिकात्मनाम् ।
देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ॥३१
प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते ।
मृन्मयाद्दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकोद्भवे ॥३२
इष्टकोत्थाच्छैलज स्याद्धेमादेरधिकं फलम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ॥३३
देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं न स गच्छति ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ॥३४
यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः ॥३५
प्रतिमापूजादिकृतो नाऽऽनेया नरकं नराः ।
देवालयाद्यकर्तार आनेयास्ते विशेषतः ॥३६

शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, चण्डी और लक्ष्मी आदि देव देवियों के देवालयों के निर्माण कराने पर पुण्य होता है किन्तु उनकी प्रतिमाओं की रचना करा कर प्रतिष्ठापित करने से और भी अधिक पुण्य हुआ करता है ॥ ३१ ॥ प्रतिमा के स्थापन स्वरूप याग में तो फल का कोई अन्त नहीं है। मृन्मयी अर्थात् मिट्टी की बनाई हुई प्रतिमा से काष्ठ की प्रतिमा में अधिक फल होता है और काष्ठ की प्रतिमा से भी अधिक फल इष्टकाओं मे (ईंटों की) बनी हुई प्रतिमा में होता है ॥ ३२ ॥ इष्टका निर्मित प्रतिमा से पाषाण की बनी हुई प्रतिमा में और इससे भी अधिक हेमादि धातु निर्मित प्रतिमा में फल की अधिकता क्रम से हुआ करती है। सात जन्म का किया हुआ पाप तो प्रतिमा के निर्माण के आरम्भ से ही नष्ट हो जाया करता है ॥ ३३ ॥ देवालय का निर्माता स्वर्गगामी होता है और वह नरक में कभी भी नहीं जाया करता है। सात कुलों का उद्धार करके वह फिर विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है। देव मन्दिर के बनाने वालों के विषय मे यम का यमभटों के प्रति यही आदेश कहा है ॥ ३४-३५ ॥ यमराज ने कहा—जो मनुष्य या प्राणी प्रतिमा का निर्माण करावें या उनकी पूजा करें अथवा मन्दिर की रचना करावें उन्हें कभी भी नरक में नहीं ले जाना चाहिए। देवालय आदि के करने वाले विशेष रूप से स्वर्ग लाये जाने के योग्य होते है ॥ ३६ ॥

विचरध्वं यथान्यायं नियोगो मम पाल्यताम् ।
नाऽऽज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ।।३७
केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः ।
भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः ।।३८
यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ।
पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च त्याज्याः सुदूरतः ।।३९
यस्तिष्ठन्प्रस्वपन्गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते स्थिते ।
संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते च त्याज्याः सुदूरतः ।।४०
नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ।
नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता यान्ति तद्गतिम् ।।४१
ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः ।
अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गताः ।।४२
उपलेपनकर्तारः संमार्जनपराश्च ये ।
कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ।।४३

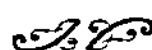
यमराज ने कहा—आप लोग न्यायानुसार सर्वत्र विचरण करो और मेरी आज्ञा का पूर्णतया पालन करो । जन्तुगण कहीं भी आज्ञा का भङ्ग नहीं करेंगे । ।। ३७ ।। केवल जो लोग इस जगत् के अधीश्वर अनन्त भगवान् के चरणों का आश्रय लिये हुए हैं, आप लोग उन्हें छोड़ देवें क्योंकि उनकी यहां कोई स्थिति नहीं है ।। ३८ ।। जहां पर भागवत लोग लोक मे हों जो भगवान् में ही चित्त लगाये हुए हैं और उसी की सेवा में तत्पर रहने वाले हैं जोकि सर्वदा विष्णु का पूजन किया करते हैं उन्हें दूर से ही आप लोगों को त्याग देना चाहिए ।। ३९ ।। जो उठते-बैठते, सोते जागते तथा गिरने पर उठ जाने पर एवं स्थित रहते हुए गोविन्द के नाम का संकीर्तन किया करते हैं उन्हें भी दूर से ही आपको त्याग देना उचित है ।। ४० ।। नित्य होने वाले या निमित्तवशाद् होने वाले कर्मों से जनार्दन भगवान् की पूजा एवं यजन किया करते हैं उन्हें आप लोग फूटी आँख से भी कभी नहीं देखें क्योंकि उसके व्रत के करने वाले प्राणी उनकी ही गति को प्राप्त किया करते हैं ।। ४१ ।। जो

मनुष्य पुष्प–धूप वस्त्र और अत्यन्त प्रिय एवं सुरम्य भूषणों के द्वारा विष्णु की अर्चना किया करते हैं उन्हे ग्रहण नही करना चाहिए क्योंकि वे कृष्णालय के जाने वाले होते हैं ॥ ४२ ॥ जो कृष्णालय में उपलेपन करने वाले तथा संमार्जन करने वाले हों उन्हें कृष्णालय में ही त्याग देना चाहिए वे ही नहीं बल्कि उनके पुत्रादि और समस्त कुल को भी निग्रहीत नही करना चाहिए॥४३

येन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् ।
पुंसां शतं नावलोक्य भवदभिर्दुष्टचेतसा । ४४
यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा ।
कारयेन्मृन्मयं वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४५
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् ।
प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ॥४६
कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम् ।
कारयन्भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् ॥४७
सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम् ।
तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान्प्रतिपद्यते ॥४८
इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ॥४९
प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ ।
देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे । ५०
यमोक्ता न नयन्त्येतं प्रतिष्ठादिकृतं हरेः ।
हयग्रीवः प्रतिष्ठार्थं देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ॥५१

जिस मनुष्य ने विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराया हो उस पुरुष के कुल में होने वाले सौ पीढ़ियों को आप लोग बुरे चित्त से कभी नहीं देखें ॥४४ जो मानव विष्णु के देवालय को लकड़ी–पाषाण से बनवाये अथवा मिट्टी से निर्माण करावे वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥ ४५ ॥ दिन–दिन अर्थात् प्रति दिन जो यज्ञ के द्वारा यजन करता है उसको जो महान् फल मिला करता है वही फल उस व्यक्ति को भी मिलता है जो भगवान् विष्णु

का मन्दिर निर्माण कराया करता है ॥ ४६ ॥ ऐसा व्यक्ति जिसने भगवदालय के निर्माण कराने का काम किया है वह आगे आने वाले सौ कुलों को तथा बीते हुए एक शत कुलों को अच्युत भगवान् के लोक में ले जाया करता है । ॥ ४७ ॥ भगवान् विष्णु सात लोको से स्वय परिपूर्ण होते हैं ऐसे विष्णु का जो घर अर्थात् निवास करने के लिये मन्दिर को बनवाता है वह अक्षय लोकों को तार दिया करता है और स्वयं भी अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥ ४८ ॥ ईंटो के समूह जितने वर्षों तक स्थित रहा करते हैं उतने ही सहस्र वर्षों तक वह व्यक्ति दिव्य लोक मे अपनी संस्थिति किया करता है ॥४९॥ विष्णु की प्रतिमा बनवा कर उसे स्थापित कराने वाला मनुष्य हरि में लीन हो जाया करता है । चाहे वह प्रत्यक्ष मे देव की प्रतिमा बनवाने वाला हो या सद्म का निर्माण कराकर उसमें उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने वाला हो ये दोनों तीनों ही हरि में लीन हो जाते हैं ॥ ५० ॥ अग्निदेव ने कहा—इस प्रकार से यमराज के द्वारा आज्ञा दिये हुए यमदूत हरि की प्रतिष्ठा आदि करने वालों को नहीं ले जाया करते हैं । हयग्रीव ने देवों की इस प्रतिष्ठा आदि का वर्णन ब्रह्मा के लिये कहा था ॥ ५१ ॥



१५—भुपरिग्रहवर्णनम्

विष्णवादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे ।
प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ॥१
व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशतिसंख्यया ।
हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।
नारदीयं च श्रीप्रश्नं शाण्डिल्यं चैश्वरं तथा ॥३
सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम् ।
स्वायंभुवं कापिलं च तार्क्ष्यं नारायणीयकम् ॥४
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथाऽऽरुणम् ।
नं तथाऽष्टाङ्गं विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥५

प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्यान्मध्यदेशादिसंभवः।
न कच्छदेशसभूतः कावेरीकोङ्कणोद्गतः ॥६
कामरूपः कलिङ्गोत्थः काञ्चीकाश्मीरके स्थितः।
आकाशवायुतेजोम्बुभूरेताः पञ्चरात्रयः ॥७
अचैतन्यास्तमोद्रिक्ताः पञ्चरात्रिविवर्जिताः।
ब्रह्माऽहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ॥८

श्रीहयग्रीव बोले—हे ब्रह्मन् ! अब मैं विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा के लिये भूमि का परिग्रहण तथा अन्य प्रतिष्ठा के कार्यों का वर्णन करूँगा जिसका तुम श्रवण करो। मैंने इसके लिये पांच रात्रि तथा सात रात्रि बताई है। लोक में मुनियों के द्वारा ये व्यस्त होती हैं जिनकी संख्या पचीस है। हयशीर्ष आद्य (प्रथम) तन्त्र है और यह तन्त्र त्रैलोक्य के मोहन करने वाला है ॥१-२॥ ऐसे अन्य तन्त्र भी हैं जिनके नाम—वैभव तन्त्र, पौष्कर प्रह्लाद, गार्ग्य तन्त्र, गालव तन्त्र, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ऐश्वर्य, सत्योक्त तन्त्र, शौनक तन्त्र, वासिष्ठ, ज्ञान सागर, स्वायम्भुव, कापिल, तार्क्ष्य, नारायणीयक, आत्रेय, नारसिंह नामक, आनन्द, अरुण, बौधायन तन्त्र, अष्टाङ्ग तन्त्र और विश्वोक्त तन्त्र हैं। इसके सार से मध्य देश आदि में उत्पन्न होने वाले द्विज को देवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। कच्छ देश और कावेरी कोङ्कण देश में समुत्पन्न द्विज को प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए ॥ ३-४-५-६ ॥ कामरूप और कलिङ्ग देश में उत्पन्न तथा काञ्ची और काश्मीर में जो स्थित है उसे भी प्रतिष्ठा का कर्म नहीं करना चाहिए। आकाश वायु, तेज, जल और भू—ये पञ्च रात्रियाँ होती है ॥ ७ ॥ अचेतन्य और तमोद्रिक्त पाँच रात्रि प्रतिष्ठा आदि कर्म में वर्जित मानी गई हैं। उस आचार्य को मैं ब्रह्मा हूँ, मैं मल रहित विष्णु हूँ ? ऐसा जानना चाहिए ॥ ८ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि स गुरुस्तन्त्वपारगः।
नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ॥९
कुरुक्षेत्रे गयादौ च नदीनां तु समीपतः।
ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्व शक्रस्य शोभनम् ॥१०

अग्नावग्नेश्च मातॄणां भूतानां च यमस्य च ।
दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदैत्यादिकस्य च ॥११
नैर्ऋते मन्दिरं कुर्यादरुणादेश्च वारुणे ।
वायोर्नागस्य वायव्ये सौम्ये यक्षगुहस्य च ॥१२
चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णाश्च सर्वशः ।
पूर्वदेवकुलं पड्यि प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ॥१३
समं वाऽप्यधिकं वाऽपि न कर्तव्यं विजानता ।
उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्राय संमिताम् ॥१४
प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद्बुधः ।
भूमौ तु शोधितायां तु कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् ॥१५
प्राकारसीमापर्यन्तं ततो भूतबलिं हरेत् ।
माषं हरिद्राचूर्णं तु सलाजं दधिसक्तुभिः ॥१६

समस्त शुभ लक्षणों से रहित भी हो किन्तु तन्त्र शास्त्र का पारगामी पूर्ण ज्ञाता हो तो वह गुरु होता है। देवों को नगर के सम्मुख स्थापित करना चाहिए कभी भी नगर के परांमुख स्थापित न करे ॥ ६ ॥ कुरुक्षेत्र में तथा गया आदि पवित्र धामों मे एव पुण्य नदियों के समीप में देव प्रतिष्ठा करनी चाहिए। नगर के मध्य में ब्रह्मा को स्थापित करे। इन्द्र की स्थापना नगर के पूर्व दिशा मे करना शुभ होता है ॥ १० ॥ अग्नि की स्थापना अग्निकोण मे, मातृगण की यम की और भूतों की स्थापना दक्षिण दिशा में करे। चण्डिका, पितृगण और दैत्य आदि की स्थापना नैर्ऋत्य कोण में करे। वरुण आदि के मन्दिर वारुण दिशा में बनवाना चाहिए। वायु का और नाग का मन्दिर वायव्य दिशा मे स्थापित करे। यक्ष और गुहा की स्थापना सौम्य दिशा मे करे ॥ ११-१२ ॥ चण्डीश महेश की स्थापना ईशान दिशा मे करे और विष्णु की समस्त दिशाओं में करे। पूर्व देव कुल को पीड़ित करके फिर स्वल्प प्रासाद की रचना करे ॥ १३ ॥ ज्ञाता को चाहिए कि सम और अधिक नही करना चाहिए। ऊँचाई से संमित दोनों की द्विगुनी सीमा का त्याग करके प्रासाद को बनाना चाहिए। विद्वान् को चाहिए

उभय को पीड़ित न करे। भूमि के शोधन करने पर भूपरिग्रह करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥ चहारदीवारी की सीमा तक भूत बलि देवे ॥१६॥

अष्टाक्षरेण सक्तूंश्च पातयित्वाऽष्टदिक्षु च ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ॥१७
सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः ।
हलेन दारयित्वा गां गोभिश्चावचारयेत् ॥१८
परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः ।
रथरेण्वष्टकेनैव त्रसरेणुः प्रकीर्त्यते ॥१९
तैरष्टभिस्तु वालाग्रं लिक्षा तैरष्टभिर्मता ।
ताभियूंकाऽष्टभिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ॥२०
यवाष्टकैरंगुलं स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः करः ।
चतुरङ्गुलसंयुक्तः स्वहस्तः पद्महस्तकः ॥२१

आठ अक्षरों वाले मन्त्र के द्वारा आठ दिशाओं में सतुआ को गिरावे और उस समय यह कहे कि जो भी राक्षस और पिशाच इस भूमि में स्थित हैं वे सब यहाँ से चले जावें क्योंकि मैं अब यहाँ हरि भगवान् का स्थान निर्मित कराना चाहता हूँ। फिर हल से भूमि को जुतवा कर फिर उसे गौओं से चरवावे अर्थात् उसमें गौओं को चरने के लिये छोड़ देवे ॥ १७-१८ ॥ आठ परमाणुओं का एक रथरेणु कहा जाता है। आठ रथ रेणुओं का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणुओं का एक बालाग्र होता है। आठ बालाग्र का एक लिक्षा और आठ लिक्षा की एक यूका और आठ यूका का एक यव मध्यम होता है आठ यव का एक अंगुल और चौबीस अंगुलों का कर होता है। चार अंगुलों से संयुक्त अपना हस्त पद्म हस्तक होता है ॥ १९-२०-२१ ॥



१६—वासुदेवादिप्रतिमानां लक्षणम्

वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते ।
प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुखो वा चोत्तराननाम् ॥१

संस्थाप्य पूज्य च बलिं दत्वाऽथो मध्यसूत्रकम् ।
शिलां शिल्पी तु नवधा विभज्य नवमेंऽशके ॥२
सूर्यभक्ते शिलायां तु भाग स्वाङ्गुलमुच्यन ।
व्यङ्गुलं गोनकं नाम्ना कलानेत्रं तदुच्यते ॥३
भागमेकं त्रिधा कृत्वा पार्ष्णिभागं प्रकल्पयेत ।
भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ॥४
मुकुटं तालमात्रं स्यात्तालमात्रं तथा मुखम् ।
तालेनैकेन कण्ठं तु तालेन हृदयं तथा ॥५
नाभिमेढ्रान्तरं तालं द्वितालावूरुको तथा ।
तालद्वयेन जङ्घा स्यात्सूत्राणि शृणु सांप्रतम् ॥६
कार्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथाऽपरम् ।
जानौ सूत्रद्वयं कार्यमूरुमध्ये तथाऽपरम् ॥७
मेढ्रे तथाऽपरं कार्यं कट्यां सूत्रं तथाऽपरम् ।
मेखलाबन्धसिद्धयर्थं नाभ्यां चैवापरं तथ। ॥८

श्री हयग्रीव ने कहा—अब मै वासुदेव आदि की प्रतिमा के लक्षण बोलता हूँ। प्रासाद के उत्तर में पूर्व की ओर मुख वाली अथवा उत्तर की ओर मुख वाली प्रतिमा को स्थापित करे। स्थापना करके उसकी पूजा करे और बलि देवे। इसके उपरान्त शिल्पकार को चाहिए कि मध्य सूत्रक शिला को नौ भागों में विभाजित करे। शिला में नवम अंश में जो सूर्य का विभाग है वह भाग स्वाङ्गुल नाम से कहा जाता है। द्व्यङ्गुल गोनक इस नाम से कहा जाता है जो कि कला नेत्र नाम से भी प्रसिद्ध है ॥ १–२–३ ॥ एक भाग को तीन में विभक्त कर पार्ष्णि भाग की प्रकल्पना करनी चाहिए। एक भाग का जानु (घुटना) में और एक भाग को ग्रीवा मे करे ॥ ४ ॥ एक ताल से हृदय करे। नाभि और मेढ्र के बीच का भाग एक ताल से और दो तालों से ऊरुओं को करे। दो ताल से जाँघ होवे। अब तुम सूत्रों का श्रवण करो ॥ ५–६ ॥ चरण मे दो सूत्र रखना चाहिए। तथा जाँघ के मध्य मे दूसरा सूत्र करे। जानु में दो सूत्र करें और ऊरुओं के मध्य मे अन्य सूत्र

कमर के नीचे के भाग को ऊरु कहते हैं मेढ़ में तथा कटि में (कमर में) ऊपर सूत्र करना चाहिए। मेखला के बाँधने की सिद्धि के लिए नाभि में अन्य सूत्र को करे ॥ ७–८ ॥

हृदये च तथा कार्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा।
ललाटे चापरं कार्यं मस्तके च तथा परम् ॥९
मुकुटोपरि कर्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः।
सूत्राण्यूर्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव ॥१०
कक्षात्रिकान्तरेणैव षट् सूत्राणि प्रदापयेत्।
मध्यसूत्रं तु सत्यज्य सूत्राण्येव निवेदयेत् ॥११
ललाटं नासिका वक्त्रं कर्तव्यं चतुरंगुलम्।
ग्रीवाकर्णौ तु कर्तव्यावायामाच्चतुरंगुलौ ॥१२
द्व्यङ्गुले हनुके कार्ये विस्तारािच्चबुकं तथा।
अष्टाङ्गुलं ललाटं तु विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥१३
परेण द्व्यङ्गुलौ शङ्खौ कर्तव्यावलकान्वितौ।
चतुरंगुलमाख्यायतमन्तरं कर्णनेत्रयोः ॥१४
द्व्यङ्गुलौ पृथुकौ कर्णौ कर्णापाङ्गार्धपञ्चमे।
भ्रूसमेन तु सूत्रेण कर्णस्रोतः प्रकीर्तितम् ॥१५
विद्धं षडंगुलं कर्णमविद्धं चतुरंगुलम्।
चिबुकेन समं विद्धमविद्धं वा षडगुलम् ॥१६

विद्वानों को मुकुट के ऊपर एक सूत्र करना चाहिए। हे कमल से जन्म ग्रहण करने वाले! ऊपर में सात ही सूत्र देने चाहिएँ ॥ ९–१० ॥ कक्ष और त्रिक के अन्तर में ही छै सूत्रों को दिलाना चाहिए। मध्य के सूत्र का भली भाँति त्याग करके ही सूत्रों को निवेदित करना चाहिए ॥ ११ ॥ ललाट नासिका, मुख चार अंगुल का करना चाहिए। ग्रीवा (गरदन) और कान आयाम (विस्तार) में चार अंगुल करने चाहिएँ ॥ १२ ॥ दो अंगुल विस्तारयुक्त ठोडी और चिबुक करने चाहिएँ। ललाट का विस्तार आठ अंगुल का होना चाहिए ऐसा कहा गया है ॥ १३ ॥ अलकों से युक्त शंख

दो अंगुल करने चाहिए। जो बाल मुड़े हुए छल्लेदार होते हैं उन शिर के बालों को अलक कहा जाता है। कानों और नेत्रों का जो अन्तर भाग होता है वह चार अंगुल कहा गया है। पृथुक कर्ण (छोटे कान) दो अंगुल और कर्णापाङ्ग ढाई अंगुल होने चाहिए। भ्रू के समान सूत्र से कर्णों (कानों) का स्रोत कहा गया है ॥ १४-१५ ॥ विद्ध कर्ण छै अंगुल और अविद्ध कर्ण चार अंगुल होते हैं। चिबुक (ठोड़ी) के मर्मविद्ध अथवा अविद्ध छै अंगुल है ॥ १६ ॥

गन्धपात्रं तथाऽऽवर्तं शष्कुलीं कल्पयेत्तथा ।
अंगुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्धेनोत्तराधरः ॥१७
अर्धांगुलं तथा नेत्रं वक्त्रं तु चतुरंगुलम् ।
आयामेन तु वैपुल्यात्सार्धमङ्गुलमुच्यते ॥१८
नासावंशमुच्छ्राय मूले त्वेकाङ्गुलं मतम् ।
उच्छ्रायादव्द्यङ्गुल चाग्रे करवीरोपमा स्मृता ॥१९
अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरंगुलमानतः ।
व्यङ्गुलं चाक्षिकोशं च व्यङ्गुल चान्तरं तयोः ॥२०
तारा नेत्रत्रिभागेण दृक्तारा पञ्चमांशिका ।
त्र्यङ्गुलं (लो)नेत्रविस्तारं (रो) द्रोणी चार्धांगुला मता ॥२१
तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लेखा भ्रुवौ चैव समे मते
भ्रूमध्यं व्यङ्गुलं कार्यं भ्रूदैर्घ्यं चतुरगुलम् ॥२२
षड्विंशदङ्गुलायामं मस्तकस्य तु वेष्टनम् ।
मूर्तीनां केशवादीनां द्वात्रिंशद्वेष्टनं भवेत् ॥२३
पश्चान्नेत्रा त्वधो ग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पु : ।
त्रिगुण तु भवेदूर्ध्वं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुन ॥२४

गन्धपात्र तथा आवर्त्त और शष्कुली की कल्पना करनी चाहिए अध अंगुल से अधर बनाना। आयाम से विपुलता से डेढ़ अंगुल कहा गया है। नासिका के वंश की ऊँचाई मूल मे एक अंगुल होनी चाहिए और आगे में ऊँचाई से दो अंगुल करवीर के समान बताई गई है ॥ १७-१८-१९ ॥

मान से चार अंगुल नेत्रों का अन्तर रखना चाहिए। नेत्रों का कोश दो अंगुल और उन दोनों का अन्तर दो अंगुल होना चाहिए ॥ २० ॥ नेत्रों के तीन भाग से तारा होवे और पाँचवा अंश दृक्तारा (आँख की पुतली) होनी चाहिए। तीन अंगुल नेत्र का विस्तार होवे और द्रोणी आधा अंगुल होनी चाहिए ॥२१ उसके प्रमाण वाली भौओं की लेखाऐं और समान भौहें मानी गई हैं। भौओं के मध्य का भाग दो अंगुल रखना चाहिए तथा भौओ की दीर्घता चार अंगुल रखनी चाहिए ॥ २२ ॥ मस्तक का वेष्टन छब्बीस अंगुल के विस्तार वाला होवे। केशव आदि की मूर्तियों का मस्तक-वेष्टन बत्तीस अंगुल का आवश्यक होता है ॥ २३ ॥ पञ्च नेत्र की ग्रीवा और विस्तार से वेष्टन तिगुना होवे और ऊपर को तो आठ अंगुल विस्तृत होना चाहिए ॥ २४ ॥

ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत् ।
स्कन्धावष्टाङ्गुलौ कार्यौ त्रिकलावशकौ शुभौ ॥२५
सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रबाहू षोडशाङ्गुलौ ।
त्रिकलौ विस्तृतौ बाहू प्रबाहू चापि तत्समौ ॥२६
बाहुदण्डोर्ध्वतो ज्ञेयः परिणाहः कला नव ।
सप्तदशाङ्गुलो मध्ये कूर्परेऽर्धे च षोडश ॥२७
कूर्परस्य भवेन्नाहस्त्रिगुणं कमलोद्भव ।
नाहः प्रबाहुमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते ॥२८
अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते ।
विस्तारेण करतलं कीर्तितं तु षडङ्गुलम् ॥२९
दैर्घ्यं सप्ताङ्गुलं कार्यं मध्या पञ्चाङ्गुला मता ।
तर्जन्यनामिका चैव तस्मादर्धाङ्गुल विना ॥३०

ग्रीवा का तिगुना आयाम वाला ग्रीवा वक्ष का अन्तर होना चाहिए। कंधे आठ अंगुल विस्तार वाले हों और तीन कला अंश वाले शुभ सप्त नेत्र बाहु-प्रबाहु सोलह अंगुल की होनी चाहिए। तीन कला के विस्तार वाली बाहु और उन्हीं के समान प्रबाहु भी होवें ॥ २५-२६ ॥ बाहु के दण्ड से ऊपर नौ कला परिणाह होना चाहिए। सत्रह अंगुल का मध्य में कूर्पर और

आधे में सोलह अंगुल होता है ॥ २७ ॥ हे कमल से जन्म ग्रहण करने वाले ! कूर्पर का नाह तिगुना होता है। प्रबाहु के मध्य में जो नाह होता है वह सोलह अंगुल का कहा जाता है ॥ २८ ॥ आगे के हाथ में जो परीणाह होता है वह बारह अंगुल वाला होता है। करतल का विस्तार छे अंगुल का बताया जाता है ॥ २९ ॥ लम्बाई सात अंगुल की करनी चाहिए। मध्यमा पाँच अंगुल की और तर्जनी तथा अनामिका उनसे आधी अंगुल कम होती है ॥३०॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठको कार्यौ चतुरंगुलसम्मितौ ।
द्विपर्वोऽङ्गुष्ठकः कार्यः शेषाङ्गुल्यस्त्रिपर्विकाः ॥३१

सर्वासां पर्वणोऽर्द्धेन नखमानं विधीयते ।
वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमाणतः ॥३२

अंगुलैका भवेन्नाभिर्वेधेन च प्रमाणतः ।
ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ॥३३

चूचुकौ यवमानौ तु मण्डलं द्विपदं भवेत् ।
चतुःषष्ट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् ॥३४

चतुर्मुख च तदधो वेष्टनं परिकीर्तितम् ।
परिणाहस्तथा कट्याश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलैः ॥३५

विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलैः ।
तस्मादभ्यधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् ॥३६

विस्तृताष्टाङ्गुलं जानु त्रिगुणा परिणाहतः ।
जङ्घा मध्ये तु विस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः ॥३७

त्रिगुणः परिधिश्चास्य जङ्घाग्रं पञ्च विस्तरात् ।
त्रिगुणः परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ ॥३८

आयामादुत्थितौ पादौ चतुरङ्गुलमेव च ।
गुल्फात्पूर्वं तु कर्तव्यं प्रमाणाच्चतुरंगुलम् ॥३९

त्रिकर्णं विस्तृतौ पादौ त्र्यंगुलो गुह्यकः स्मृतः ।
पञ्चाङ्गुलस्तु नाहोऽस्य दीर्घा तद्वत्प्रदेशिनी ॥४०

कनिष्ठिका और अंगुष्ठ चार अंगुल के बराबर होने चाहिएँ। अंगूठा दो पर्व का और बाकी अंगुलियाँ तीन-तीन पर्वों की होनी चाहिएँ ॥ ३१ ॥ सब अंगुलियों के पर्व का आधा नख का मान किया जाता है। वक्षः का जो प्रमाण होता है उसके प्रमाण से ही जठर होता है ॥ ३२ ॥ एक अंगुल की नाभि वेध और प्रमाण होनी चाहिए। तालमाल प्रमाण से मेढ़ का अन्तर करना चाहिए ॥ ३३ ॥ चूचुक दोनों यव के प्रमाण वाले और मण्डल दो पद वाला होना चाहिए चौंसठ अंगुल का वक्षस्थल का वेष्टन होता है ॥ ३४ ॥ उसके नीचे चतुर्मुख वेष्टन बताया गया है। कमर का परिणाह उन्नीस अंगुल का होना चाहिए ॥ ३५ ॥ ऊरुओं के मूल में विस्तार बारह अंगुल का कहा गया है। उससे भी अधिक मध्य में विस्तार होता है और वह क्रम से कम होता जाता है ॥ ३६ ॥ आठ अंगुल विस्तृत जानु होते है और उनका जो परिणाह होता है उस से तिगुनी जाघ होती हैं। इनके मध्य में जो विस्तार है वह सात अंगुल बताया गया है ॥ ३७ ॥ त्रिगुण इसकी परिधि होती है और जघा का अग्र भाग विस्तार से पाँच अंगुल का होना चाहिए। इसकी परिधि तिगुनी और पाद ताल प्रमाण वाले होने चाहिएँ ॥ ३८ ॥ आयाम से पैर चार अंगुल उठे हुए होते हैं। गुल्फ से पहिले प्रमाण में चार अंगुल करना चाहिए ॥ ३९ ॥ तीन कला पांव विस्तृत होवें और तीन अंगुल के गुह्यक होवें। इसका नाह अर्थात् परिणाह पाँच अंगुल होना चाहिए। उसी के समान प्रदेशिनी लम्बी होनी चाहिए ॥ ४० ॥

अष्टमाष्टांशमध्योना: शेषाङ्गुल्यःक्रमेण तु ।
सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्तितम् ॥४१
तदेव द्विगुणं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा ।
अर्धाङ्गुलं तथाऽन्यासां क्रमान्न्यूनं तु कारयेत् ॥४२
त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरंगुलकम् ।
परिणाहोऽस्य कोषाग्रं कतव्यं चतुरंगुलम् ॥४३
षडङ्गुलपरीणाहौ वृषणौ परिकीर्तितौ ।
प्रतिमा भूषणाढ्या स्यादेतदुद्देशलक्षणम् ॥४४

अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वातु लक्षणम् ।
दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात्पद्ममेव च ॥४५
वामे शङ्खं गदाऽधस्ताद्वासुदेवस्य लक्षणात् ।
श्रीपुष्टी चापि कर्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते ॥४६
ऊरुमात्रोच्छ्रितायामे मालाविद्याधरौ तथा ।
प्रभामण्डलसंस्थौ तौ प्रभा हस्त्यादिभूषणा ॥४७
पद्माभ पादपीठं तु प्रतिमास्वेवमाचरेत् ॥४८

मध्य भाग अष्टमांश कम और शेष अंगुलियाँ क्रम से होनी चाहिएँ। अंगूठे की ऊँचाई सवा अंगुल बताई गई है ॥ ४१ ॥ यहीं अंगुष्ठ का नख द्विगुण करना चाहिए और अन्य अंगुलियों का आधा अंगुल क्रम से न्यून करना चाहिए ॥ ४२ ॥ तीन अंगुल प्रमाण वाले वृषण करने चाहिएँ। मेढ़ चार अंगुल के प्रमाण वाला होना चाहिए। यहाँ पर कोष का अग्रभाग का परिणाह चार अंगुल करना चाहिए ॥ ४३ ॥ इस प्रकार से वृषणों का परिणाह छैः अंगुल का होता है। प्रतिमा भूषणों से युक्त होनी चाहिए यह उद्देश का लक्षण है ॥ ४४ ॥ इसी विधि से लोक में देख कर लक्षण करना चाहिए। दाहिने में चक्र और नीचे में पद्म होना चाहिए। बाँये हाथ में शङ्ख नीचे के में गदा धारण करानी चाहिए। वासुदेव के लक्षण से श्रीपुष्टि भी करनी चाहिए। पद्म और वीणा से युक्त हाथ होने चाहिए ॥ ४५–४६ ॥ ऊरुओं तक उठी हुई और आयाम वाली माला विद्याधर करे। ये दोनों प्रभा मण्डल में स्थित रहते हैं। प्रभा आदि भूषण वाली होती है। पद्म की आभा वाला पादपीठ प्रतिमाओं में आचरित किया जाना चाहिए ॥४७–४८॥



१७—शालग्राममूर्तीनां लक्षणानि ।

शालग्रामादिमूर्तीश्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाः ।
वासुदेवः सितो द्वारि शिलालग्नद्विचक्रकः ॥१
ज्ञेयः संकर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः ।
सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥२

तीन के तुल्य स्थूल और तीन रेखाओं के चिन्ह वाले शालग्राम हैं वे कूर्म अवतार की मूर्ति समझनी चाहिए। जो उन्नत और पीठ में वर्त्तुल आवर्त्त वाले अमितवर्ण के होते हैं वह हयग्रीव की मूर्ति वाले शालग्राम कहलाते हैं ॥६॥ अंकुश के आकार वाली रेखा वाले, नील वर्ण से युक्त तथा बिन्दुओं से युक्त होते हैं वह वैकुण्ठ की मूर्ति शालग्राम कहे जाते हैं। एक ही चक्र वाले अब्ज (कमल के चिन्ह से युक्त तथा मणि की आभा सहित एवं पुच्छ की रेखा वाले होते हैं वह मत्स्य की मूर्ति होते हैं ॥७॥

मत्स्यो दीर्घस्त्रिबिन्दुः स्यात्काचवर्णस्तु पूरितः।
श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वर्तुलः ॥८
वामनो वर्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सबिन्दुकः।
श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो वामेन रिक्तकः ॥९
अनन्तो नागभोगाङ्को नैकाभो नैकमूर्तिमान्।
स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रोऽधः सूक्ष्मबिन्दुकः ॥१०
सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मीनारायणो द्वयात्।
त्रिचक्रश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रो वा त्रिविक्रमः ॥११
जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभिः।
षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः संकर्षणश्च सप्तभिः ॥१२
दशावतारो दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः।
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ॥१३

दीर्घ तथा तीन बिन्दुओं से युक्त और काँच के समान वर्ण वाले होते हैं वह श्रीधर की मूर्ति वाले शालग्राम होते हैं। वन माला के अङ्क से युक्त पाँच रेखाओं वाले और गोल आकार सहित जो शालग्राम हैं वे वामन की साक्षात् मूर्ति कहे गये हैं। वर्त्तुल तथा बहुत अधिक छोटे नीलवर्ण वाले बिन्दु से युक्त होते हैं दाहिने भाग में रेखायें हों और वाम भाग में कुछ भी न हो वह अनन्त भगवान् की मूर्ति वाले शालग्राम कहे जाते हैं। नाग के भोग (फन) के चिन्ह से युक्त तथा अनेक प्रकार की आभा वाले और अनेक तरह की मूर्ति वाले स्थूल शालग्राम दामोदर कहलाते हैं। जिनके मध्य में चक्र हो और नीचे

के भाग में सूक्ष्म बिन्दु हों वह सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध एक ही चक्र वाले शालग्राम होते हैं जिनमें दो चक्र होते हैं वह लक्ष्मीनारायण होते है। तीन चक्र वाले अच्युत देव अथवा तीन चक्र वाले त्रिविक्रम होते हैं ॥८॥९॥१०॥११॥ चार चक्र जिस शालग्राम की शिला में होते हैं वह जनार्दन भगवान् की मूर्ति कही जाती है। पाँच चक्र वाले वासुदेव और छै चक्रों से युक्त प्रद्युम्न तथा सात चक्र के सहित जो होते हैं वह संकर्षण होते हैं। दश चक्रों से युक्त दशावतार कहे जाते हैं और ग्यारह से युक्त अनिरुद्ध तथा बारह चक्रों से युक्त द्वारशात्मा होते हैं। इससे ऊपर अनन्त भगवान् की मूर्ति वाले शालग्राम होते हैं ॥१२॥१३॥



१८–शालग्रामादिपूजाकथनम्

शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः सिद्ध्यै वदामि ते।
विविधा स्याद्धरेः पूजा काम्याऽकाम्योभयात्मिका ॥१
मीनादीनां तु पञ्चानां काम्यार्था वोभयात्मिका।
वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये ॥२
चक्रादीनां त्रयाणां तु शालग्रामार्चनं शृणु।
उत्तमा निष्कला पूजा कनिष्ठा सकलार्चना ॥३
मध्यमा मूर्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्रके।
प्रणवं हृदि विन्यस्य षडङ्गं करदेहयोः ॥४
कृतमुद्रात्रयश्चक्राद्बहिः पूर्वे गुरुं यजेत्।
आप्ये गणं वायवे च धातारं नैरृते यजेत् ॥५
विधातारं च कर्तारं हर्तारं दक्षसोम्ययोः।
विष्वक्सेनं यजेदीशे आग्नेये क्षेत्रपालकम् ॥६
ऋगादिवेदान्प्रागादावाधारानन्तकं भुवम्।
पीठं पद्मं चार्कचन्द्रवह्न्याख्यं मण्डलम् ॥७
आसनं द्वादशान्तेन तत्र स्थाप्य शिलां यजेत्।
व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत्क्रमात् ॥८

श्री हयग्रीव कहते हैं—अब मैं शालग्रामादि चक्राङ्कों की पूजा तुमको सिद्धि के लिये बताऊँगा। हरि भगवान् की पूजा काम्या अर्थात् कामना को हृदय में रखकर की जाने वाली—अकाम्या अर्थात् जिसमें कोई भी कामना या मनोरथ न हो और दोनों के मिलान जिस पूजा में हों, वह उभयात्मिका—ऐसे अनेक प्रकार की हुआ करती है ॥१॥ मत्स्य आदि पाँचों की जो पूजा होती है वह काम्यार्था अथवा उभयात्मिका होती है। वराह-नृसिंह और वामन मूर्ति वाले शालग्रामों की जो पूजा होती है वह मुक्ति के लिये होती है ॥२॥ चक्र आदि तीनों की जो शालग्राम की पूजा होती है उसे अब बताता हूँ तुम श्रवण करो। निष्कला जो पूजा होती है वह सर्वश्रेष्ठ कही गई है। सकलार्चना जो होती है वह पूजा सबसे छोटी मानी जाती है ॥३॥ चतुरस्त्रक चक्राब्ज में जो पूजा की जाती है वह मध्यम श्रेणी की होती है। पहिले हृदय में प्रणव (ओंकार) का विन्यास करके फिर कर और देह के छै अङ्गों का न्यास करे। चक्र से बाहिर तीन मुद्रा करके पूर्व में गुरु का यजन करना चाहिए। वारुण दिशा में गण का—वायव्य में धाता का—और नैऋत्य दिशा में विधाता का तथा दक्षिण और पूर्व में कर्ता और हर्ता विष्वक्सेन का यजन करना चाहिए। ईशान और आग्नेय दिशाओं में क्षेत्रपाल का यजन करे ॥४॥५॥६॥ ऋग्वेद आदि चारों वेदों का यजन पूर्व आदि दिशाओं में करे तथा आधार अनन्त भू-पीठ-पद्म-सूर्य-चन्द्र और ब्रह्म नामक मंडल का आसन वहाँ पर स्थापित कहना चाहिए और द्वादशान्त के द्वारा स्थापना करे फिर शिला का यजन करे। अपने बीज मन्त्र से व्यस्त रूप से अर्थात् अलग-अलग या समस्त रूप में क्रम से यजन करना चाहिए ॥७॥८॥

पूर्वादावथ वेदाद्यं गापकीभ्यां जितादिना
प्रणवेनार्चयात्पश्चान्मुद्रास्तिस्त्रः प्रदर्शयेत् ॥९
विष्वक्सेनस्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत्।
शालग्रामस्य प्रथमा पूजाऽथोनिष्कलोच्यते ॥१०
पूर्ववत्षोडशारं च सपद्मं मण्डलं लिखेत्।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत् ॥११

पूर्वे सौम्ये धनुर्बाणान्वेदाद्यैरासनं ददेत् ।
शिलां न्यसेद्द्वादशार्णैस्तृतीयं पूजनं शृणु ।।१२
अष्टारमब्जं विलिखेद्गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत् ।
अष्टार्णेनाऽऽसनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत्।।१३
पूजयेद्दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं ततः ।।१४

पूर्व आदि दिशाओं में वेद के मन्त्रों तथा गायत्री से जितादि के द्वारा प्रणव से अर्चना करनी चाहिए फिर तीन मुद्राओं को दिखावे ।।९।। विष्वक्सेन, चक्र, क्षेत्रपालक मुद्राऐं दिखानी चाहिए । यह शालग्राम की प्रथम पूजा है। अब निष्कला पूजा कही जाती है ।।१०।। पूर्व की भांति सोलह दल वाला पद्म के सहित मडल लिखना चाहिए । शङ्ख-चक्र-गदा और खंग के सहित गुरु आदि का पहले की भांति यजन करना चाहिए ।।११।। पूर्व सौम्य में धनुष और बाणों को वेदादि के द्वारा आसन देवे । फिर द्वादशाक्षर मन्त्रों द्वारा शिला का न्यास करे । अब तृतीय प्रकार का पूजन बताते हैं उसे सुनो ।।१२।। इस तीसरे पूजन में आठ दलो वाले कमल की रचना करे और फिर पूर्व की भांति ही गुरु आदि का पूजन करना चाहिए । आठ अक्षरों वाले मन्त्र से आसन समर्पित कर फिर उसी मन्त्र से शिला का न्यास करना चाहिए ।।१३।। उससे दसवार पूजन करे फिर इसके पश्चात् जितका गायत्री मन्त्रों से यजन करना चाहिए ।।१४।।



१९—चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम् ।

ओंरूपः केशवः पद्मशंखचक्रगदाधरः ।
नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम्।।१
ततो गदी माधवोऽरिशंखपद्मी नमामि तम् ।
चक्रकौमोदकीपद्मशंखी गोविन्द ऊर्जितः ।।२
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शंखी विष्णुश्च चक्रधृक् ।
शंखचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे ।।३

भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री शंख्यपि ।
शंखचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ॥४
गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शङ्ख्यपि ।
हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ॥५
वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खलाब्जारिगदाधरः ।
दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामितम् ॥६
तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत् ।
संकर्षणो गदी शंखी पद्मी चक्री च पातु वः ॥७
गदी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः ।
अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ॥८

अब चतुर्विंशति (चौबीस) मूर्त्तियों के स्तोत्र का कथन किया जाता है—श्री भगवान् ने कहा—ओम् के रूप वाले केशव भगवान् हैं जो पद्म-शङ्ख-चक्र और गदा इन चारों आयुधों के धारण करने वाले हैं। प्रदक्षिण में शङ्ख-पद्म-गदा और चक्र के धारण करने वाले नारायण हैं ॥१॥ इसके पश्चात् गदा-असि-शंख और पद्म वाले माधव भगवान् हैं उनको नमस्कार करता हूँ। चक्र-कौमोदकी-पद्म और शङ्ख धारण करने वाले ऊर्जित भगवान् गोविन्द हैं। श्रीगदा वाले-पद्मधारी-शङ्ख रखने वाले और सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले मोक्ष के प्रदाता विष्णु भगवान् हैं। शङ्ख-चक्र-पद्म और गदा रखने वाले मधुसूदन भगवान् हैं उनको नमन करता हूँ ॥२॥३॥ भक्ति से गदा पद्म-चक्र और शङ्खधारी त्रिविक्रम भगवान् हैं। शङ्ख चक्र-गदा और पद्म को धारण करने वाले वामन भगवान् मेरी सर्वदा रक्षा करें ॥४॥ गति का प्रदान करने वाले श्रीधर भगवान् हैं जो पद्म-चक्र-शङ्ख धनुष और शङ्ख के धारण करने वाले हैं। गदा-चक्र-पद्म और शङ्ख के धारण करने वाले हृषीकेश भगवान् हमारी पूर्णतया रक्षा करें ॥५॥ पद्मनाभ भगवान् वरदान देने वाले हैं। दामोदर भगवान् भी कमल-शङ्ख-गदा और सुदर्शन चक्र को धारण किये रहते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥ वासुदेव भगवान् गदा-चक्र-शङ्ख और कमल धारण करने वाले हैं जिन्होंने इस समस्त जगत् का विस्तार किया है। संकर्षण भगवान् गदा-शंख-पद्म और चक्र के धारण करने वाले हैं वे आपकी रक्षा

करें ॥ ७ ॥ प्रद्युम्न गदा, शंख, चक्र और पद्म के धारण करने वाले हैं। भगवान् अनिरुद्ध चक्र गदा, पद्म और शंख के धारी हैं वे हमारी रक्षा करें ॥ ८ ॥

सुरेशोऽर्यब्जशंखाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः ।
अधोक्षजः पद्मगी शङ्खचक्री च पातु वः ॥९
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शंखी नमामि तम् ।
अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शंखी च पातु वः ॥१०
बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि ।
जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ॥११
शङ्खी पद्मी च चक्री च हरि कौमादकीधरः ।
कृष्णः शंखी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तमुक्तदः ॥१२
आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात्सकर्षणोऽभवत् ।
सकर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥१३
केशवादिप्रभेदेन एकैकः स्यात्त्रिधा क्रमात् ॥१४
द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ॥१५

सुरों के स्वामी अरिअब्ज-शंख से युक्त हैं। भगवान पुरुषोत्तम श्री गदा के धारी हैं। भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शंख और चक्र के धारण करने वाले आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ नृसिंह देव चक्र, पद्म गदा और शंख को धारण करते हैं उनको मेरा नमस्कार है। भगवान् अच्युत श्री गदा, पद्म, चक्र, और शंख को धारण करते हैं वे आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥ उपेन्द्र भगवान् बाल स्वरूप वाले और शंख, गदा, चक्र और पद्म को धारण किया करते हैं। भगवान् जनार्दन पद्म, चक्र, गदा और शंख को धारण करने वाले हैं ॥ ११ ॥ भगवान् हरि शंख, चक्र, पद्म और गदा को धारण करते हैं। भगवान् कृष्ण शंख, गदा पद्म और चक्र को धारण करते हैं मुझे वे भुक्ति और मुक्ति देने वाले हैं ॥ १२ ॥ आदि मूर्त्ति भगवान् वासुदेव हैं उनसे भगवान् सङ्कर्षण का प्रादुर्भाव हुआ है। संकर्षण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से

अनिरुद्ध हुए हैं। केशव आदि के प्रभेद के होने से एक-एक के क्रम से तीन भेद होते हैं ॥ १३–१४ ॥ यह द्वादश अक्षर वाला स्तोत्र है जिसमें चौंतीस मूर्त्तियाँ है। इस स्तोत्र को जो भी कोई पढ़ता है या इसका श्रवण किया करता है वह समस्त मलों से छुटकारा पाकर निर्मल हो जाता है और फिर उसे सब की प्राप्ति हो जाती है ॥ १५ ॥



२०–मत्स्यादिदशावतार प्रतिमालक्षण वर्ण म् ।

दशावतार मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते ।
मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात्कूर्मः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥१
नराङ्गो वाऽय कर्तव्यो भूवराहो गदारिभृत् ।
दक्षिणे वामके शंख लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ॥२
श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ ।
वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत् ॥३
नरसिंहो विवृतास्यो वामोरुधृतदानवः ।
तद्वक्षो दारयन्माली स्फुरच्चक्रगदाधरः ॥४
छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः ।
रामश्चापेषुहस्तः स्यात्खड्गी परशुनाऽन्वितः ॥५
रामश्चापी शरी खड्गी शंखी वा द्विभुजः स्मृतः ।
गदालाङ्गलधारी च रामो वाऽय चतुर्भुजः ॥६
वामार्धे लाङ्गलं दद्यादधः शंखं सुशोभनम् ।
मुसलं दक्षिणार्धे तु चक्रं चाधः सुशोभनम् ॥७
शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्ध्वं पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥८

अब मत्स्य आदि दश अवतारों की प्रतिमा के लक्षणों का वर्णन किया जाता है—श्री भगवान् ने कहा—अब मैं तुम से मत्स्य आदि दश अवतारों की प्रतिमा के लक्षण बतलाता हूँ। मत्स्य भगवान् बिल्कुल बड़ी मछली के ही

आकार वाले थे और इसी भाँति कूर्मावतार में कूर्म भगवान् भी कछुआ आकृति वाले अवतीर्ण हुए थे । १ ।। भूवराह जो अवतार हुआ था वह नर के समान अङ्ग वाले थे । वे गदा और सिर के धारण करने वाले तथा दाहिने और बाँये हाथ मे शंख लक्ष्मी अथवा पद्म धारण करने वाले हैं । बाँये कूपर में श्री स्थित है और भूमि तथा अनन्त (आकाश) चरणों के अनुग हैं। भगवान् वराह के स्थापन करने से राज्य और इस संसार रूपी समुद्र का तरण होता है ।। २-३ ।। भगवान् नृसिंह खुले हुए मुख वाले तथा बाँये ऊरु पर दानव हिरण्यकशिपु को धारण करने वाले हैं । माला धारी तथा चमकते हुए चक्र और गदा को रखने वाले नरसिंह भगवान् उस दैत्य के वक्षःस्थल को अपने नखों से विदीर्ण कर रहे हैं ।। ४ ।। वामन छत्र-दण्ड धारण किये हुए हैं अथवा चार भुजाओं वाले हैं । परशुराम के हाथों मे धनुष और बाण हों तथा खड्ग एवं परशु को धारण किये हुए हैं ।। ५ ।। राम चाप, शर, खड्ग, शंख धारण करने वाले दो भुजाओं वाले कहे गये हैं । ये दो राम हुए अब तीसरे राम गदा-हल धारण करने वाले और ये चार भुजाओं वाले हैं ।। ६ ।। वाम अर्ध भाग मे लाङ्गल (हल) देना चाहिए और नीचे के भाग में सुन्दर शोभा से युक्त शंख धारण कराने । दक्षिण अर्ध भाग में मूसल और उसके निचले भाग में शोभा युक्त चक्र धारण कराना चाहिए ।। ७ ।। शान्त आत्मा वाला, लम्बे कानों वाला, गौर वर्ण वाले और वस्त्र से आवृत, ऊपर पद्म पर स्थित वरदान और अभय के दान देने वाले भगवान् बुद्ध हैं ।। ८ ।।

धनुस्तूणान्वितः कल्की म्लेच्छोत्सादकरो द्विजः ।
अथवाऽश्वस्थितः खड्गी शङ्खचक्रगदान्वितः ।।९
लक्षणं वासुदेवादिनवकस्य वदामि ते ।
दक्षिणार्धे गदा वामे वामार्धे चक्रमुत्तमम् ।।१०
ब्रह्मेशौ पार्श्वगौ नित्यं वासुदेवोऽस्ति पूर्ववत् ।
शंखी सवरदो वाऽथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः ।।११
लाङ्गली मुशली रामो गदापद्मधरः स्मृतः ।
प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं शंखं वामे धनुः करे ।।१२

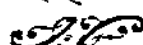
चक्रशंखौ चतुर्बाहुर्नरसिंहश्चतुर्भुजः ।
शंखचक्रधरो वाऽपि विदारितमहासुरः ॥१७
चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले धृतः ।
धारयन्बाहुना पृथ्वीं वामनः कमलामधः ॥१८
पादलग्ना धरा कार्या यदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता ।
त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये ह्यष्टबाहूस्तु दक्षिणे ॥१९
चक्रं शंखं च मुसलमङ्कुशं वामके करे ।
शंखशार्ङ्गगदापाशान्पद्मवीणासमन्विते ॥२०
लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये विश्वरूपोऽथ दक्षिणे ।
चक्रं खड्गं च मुसलमङ्कुशं पट्टिशं क्रमात् ॥२१
मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशूल शरं करे ।
वामे शखं च शार्ङ्गं च गदां पाशं च तोमरम् ॥२२
लाङ्गलं परशुं दण्डं छुरिकां चर्म चोत्तमम् ।
विंशद्बाहुश्चतुर्वक्त्र दक्षिणस्थोऽथ वामके ॥२३
त्रिनेत्रो वामपार्श्वेऽपि शयितो जलशाय्यपि ।
श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडितः ॥२४

भगवान् नरसिंह चार भुजाओं वाले हैं। शंख चक्र धारण करने वाले हैं अथवा महान् दैत्य को विदीर्ण करने वाले हैं ॥ १७ ॥ वराह भगवान् भी चार बाहुओं वाले हैं और हाथ में शेष को धारण किये हुए हैं। एक बाहु में पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। वामन लक्ष्मी को नीचे भाग में रखने वाले हैं ॥ १८ ॥ जब लक्ष्मी व्यवस्थित होती है तब पृथ्वी को पाद लग्ना करनी चाहिए। त्रिलोकी को मोहित करने वाले गरुड पर स्थित हैं और आठ बाहु हैं। दक्षिण हाथ में शंख और चक्र हैं तथा बाँये हाथ में मुसल और अंकुश धारण कर रखा है। लक्ष्मी और सरस्वती इन दोनों को शंख, शार्ङ्ग, गदा, पाश, पद्म, वीणा से युक्त करना चाहिए। दक्षिण भाग में विश्व रूप स्थित है जिसके दक्षिण में चक्र, खड्ग, मूसल, अंकुश, पट्टिश क्रम से मुद्गर,

पाश, शक्ति, शूल, शर तथा वाम कर में शंख, शार्ङ्ग, गदा, पाश, तोमर, लाङ्गल, परशु, दण्ड, छुरी, चर्म धारण करने वाला स्वरूप है। बीस बाहु हैं और चार मुखों वाले हैं। दक्षिण में स्थित हैं। वाम पार्श्व में शयन करने वाले जलशायी भी हैं। जलशायी भगवान् के एक चरण को श्री ने दबाने के लिये अपने हाथों में ले रक्खा है और विमला आदि के द्वारा स्तुति की जा रही है ॥ १६ से २४ ॥

नाभिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरे शंकरको हरिः ।
शूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे: ॥२५
रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ।
शंखचक्रगदावेदपाणिश्चाश्वशिरा हरिः ॥२६
वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्मपृष्ठगः ।
दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गे श्रिया सह ॥२७
विष्वक्सेनश्चक्रगदी हलशंखी हरेर्गणः ॥२८

नारायण के नाभि कमल मे ब्रह्मा जी हैं दक्षिण भाग में हरि के शङ्कर भगवान् हैं जो दाहिने हाथ मे शूल और ऋष्टि धारण करने वाले हैं और बाँये हाथ में गदा और चक्र धारण करने वाले हैं ॥ २५ ॥ रुद्र और केशव के चिन्हों से युक्त अग वाले तथा गौरी और लक्ष्मी से युक्त हैं। शंख, चक्र, गदा, वेद हाथों में रखने वाले हैं। हरि अश्व शिरा हैं तथा उनका वाम चरण शेष पर रक्खा हुआ है और दाहिना चरण कूर्म की पीठ पर स्थित है। दत्तात्रेय दो बाहुओं वाले हैं। वाम भाग में गोद में लक्ष्मी को साथ लिये हैं। विष्वक्सेन चक्र और गदा वाले और हरि के गण हल और शंख वाले हैं ॥ २६ से २८ ॥



२१—चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि ।

चण्डी विंशतिबाहुः स्याद्बिभ्रती दक्षिणैः करैः ।
शूलासिशक्तिचक्राणि पाशखेटायुधाभयम् ॥१
डमरुं शक्तिकां वामैर्नागपाशं च खेटकम् ।
कुठाराङ्कुशपाशांश्च घण्टायुधगदास्तथा ॥२

आदर्शमुद्गरान्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका ।
तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पातितमस्तकः ॥३
शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तद्ग्रीवासंभवः पुमान् ।
शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्धजेक्षणः । ४
सिंहेनाऽऽस्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् ।
याम्याङ्घ्र्याक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगासुरे ॥५
चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्दिनी ।
नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्तितः ॥६

अब चण्डी आदि देवताओं की प्रतिमा के लक्षणों को बतलाया जाता है। श्री भगवान् ने कहा—चण्डी देवी की बीस बाहु होती हैं जिनमें वह दाहिने भाग की भुजाओं से शूल–असि (तलवार)–शक्ति, चक्र, पाश और खेट आयुधों को धारण किये रहा करती है ॥ १ ॥ बाँयी ओर की भुजाओं से डमरू, शक्ति का, नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घण्टा और गदा इन आयुधों को धारण किया करती हैं ॥ २ । अथवा दश बाहुओं वाली देवी चण्डी हाथों से आदर्श मुद्गरों को धारण करने वाली होती है। उसके नीचे महिषासुर का मस्तक कट कर पड़ा हुआ है ॥ ३ ॥ हाथ में शस्त्र बड़े ही क्रोध के साथ लिये हुए है ऐसा एक पुरुष उसकी गर्दन से उत्पन्न होने वाला यहाँ पर रहता है जिसके हाथ में शूल रहता है और रक्त का वमन कर रहा है। उसके बाल और नेत्र खून से भीगे हुए हैं ॥ ४ ॥ चण्डी देवी का वाहन सिंह पाश के द्वारा गले में बंधे हुए उस खा रहा है। बांई ओर इसके सिंह स्थित है और दाहिने पैर से नीच असुर को दबा रक्खा है ॥ ५ ॥ यह चण्डी देवी तीन नेत्रों व सौ शस्त्रों को भुजाओं में धारण करने वाली और शत्रुओं का मर्दन करने वाली है। नवीन पद्मात्मक स्थल में दुर्गा की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए।

आदौ मध्ये तथेन्द्राद्या नवतत्त्वात्मभिः क्रमात् ।
अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डं च खेटकम् । ७
आदर्शं तर्जनी चापं ध्वजं डमरुकं तथा ।
पाशं वामे बिभ्रती च शक्तिमुद्गरशूलकम् ॥८

वज्रखड्गाङ्कुशशरांश्चक्रं देवी शलाकया ।
एतैरेवाऽऽयुधैर्युक्ताः शेषाः षोडशबाहुकाः ॥६
डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव ।
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥१०
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपाऽतिचण्डिका ।
उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनाभाऽरुणाऽसिता ॥११
नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंहगा ।
महिषोत्थः पुमाञ्शस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिका ॥१२

इसके आदि में और मध्य में नव तत्त्वात्मक इन्द्र आदि देवता क्रम से रहते हैं। एक चण्डी की प्रतिमा ऐसी होती है जिसके अठ्ठारह भुजाऐं होती हैं। दाहिनी ओर भुजाओं से मुण्ड–खेटक–आदर्श–तर्जनी–चाप (धनुष), ध्वज–डमरु और पाश को लिये हुए हैं तथा बांयी भुजाओं से शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, शर और शलाका को धारण करने वाली है। यह देवी इन आयुधों से युक्त होती है। शेष चण्डी की प्रतिमायें सोलह भुजाओं वाली होती हैं ॥ ७–८ ६ ॥ डमरु और तर्जनी को त्याग कर रुद्र चण्डा आदि नौ मूर्त्तियां देवी की होती हैं। उनके नाम बतलाये जाते हैं—रुद्र, चण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अति-चण्डिका, उग्रचण्डा—ये मध्य में स्थित रोचन के तुल्य आभा वाली–अरुण और श्वेत, नील, शुक्ल, धूम्रिक, पीत और श्वेत होती है तथा सिंह पर गमन करने वाली हैं। महिष असुर से उत्पन्न होने वाले शस्त्रधारी पुरुष के केश देवी अपने हाथ से पकड़े हुए रहती है ॥ १०–११–१२ ॥

आलीढा नव दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये ।
तथा गौरी चण्डिकाद्या कुण्ड्यक्षररदाग्निधृक् ॥१३
सैव रम्भा वने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा ।
स्कन्धमूर्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्पणा ॥१४
याम्ये फलाङ्गुलिहस्ता सौभाग्या तत्र चर्द्धिका ।
लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता ॥१५

पुस्ताक्षमालिकाहस्ता वीणाहस्ता सरस्वती ।
कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वाऽपि जाह्नवी ॥१६
कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते ।
सवीणस्तुम्बुरुः शस्तः शूली मात्रग्रतो वृषे ॥१७
गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालास्रुगन्विता ।
कुण्डाक्षपात्रणी वामे हंसगा शांकरी स्थिता ॥१८

इस प्रकार से ये आलीढ़ नौ दुर्गा की प्रतिमायें अपने पुत्र आदि की वृद्धि के लिए स्थापित करनी चाहिए। इसी प्रकार से गौरी कुण्डो अक्षर रद तथा अग्नि के धारण करने वाली चण्डिका आदि होती है ॥ १३ ॥ वही रम्भा, वन मे सिद्धा, अग्नि हीना, ललिता हाथ मे स्कन्ध मूर्धा वाली और दूसरे वाम हस्त में दर्पण धारण करने वाली होती है ॥ १४ ॥ दाहिने भाग मे कलांगुलि हाथ वाली, सौभाग्ययुक्ता तथा ऋद्धि रूपिणी लक्ष्मी है जो दाहिने हाथ में कमल पुष्प को धारण करती है और वाम हस्त मे श्रीफल होता है ॥ १५ ॥ जिस देवी के हाथों मे पुस्तकाक्षर मालिका तथा वीणा होते हैं वह सरस्वती देवी है। कुम्भ और अब्ज (कमल) हाथ में रखने वाली तथा श्वेत आभा से युक्त देवी श्वेताभा नाम वाली है। मकर पर स्थित जाह्नवी, कूर्म से गमन करने वाली यमुना, कुम्भ करों मे धारण करने वाली श्यामा देवी पूजी जाया करती है। माता के आगे वृष पर वीणा और तुम्बुरु को धारण किये हुए शूली स्थित हैं ॥ १६–१७ ॥ गौरी, चतुर्मुखी, ब्राह्मी जो अक्षों की माला और स्रुक से युक्त हैं और कुण्डाक्ष पात्र वाली वाम भाग मे हस से गमन करने वाली शाङ्करी देवी स्थित रहती हैं ॥१८॥

शरचापां दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं धनुर्वृषी ।
कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ॥१६
चक्रशङ्खधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक् ।
दण्डशङ्खारिगदया वाराही महिषस्थिता ॥२०
ऐन्द्री गजे वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये ।
चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्मांसा तु त्रिलोचना ॥२१

निर्मांसा अस्थिसारा च ऊर्ध्वकेशी कृशोदरी ।
द्वीपिचर्मधरा वामे कपालं पट्टिशं करे ॥२२
शूलं कर्त्री दक्षिणे स्याच्छवारूढाऽस्थिभूषण ।
विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ॥२३
बृहच्छुण्डो ह्युपवीतीमुख सप्तकलं भवेत् ।
विस्ताराद्दैर्घ्यतश्चैव शुण्ड षट्त्रिंशदङ्गुलम् ॥२४
कला द्वादश नाडी तु ग्रीवा सार्धकलोच्छ्रिता ।
षट्त्रिंशदङ्गुलः कण्ठो गुह्यमाधर्धमङ्गुलम् ॥२५
नाभिरूरू द्वादशं च जङ्घे पादे तु दक्षिणे ।
स्वदन्तं परशुं वामे लड्डुकं चोत्पलं शये ॥२६
सुमुखी च विडालाक्षी हार्श्वे स्कन्दो मयूरगः ।
स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ॥२७
दक्षे शक्तिः कुक्कुटेऽथ एकवक्त्रोऽथ षण्मुखः ।
षड्भुजो वा द्वादशभिर्ग्रामेऽरण्ये द्विबाहुकः ॥२८

इसके दाहिने भाग मे शर और चाप से युक्त देवी है और वाम भाग में चक्र–धनुष और वृष (बैल) हैं। कौमारी–शिखी (मयूर) से गमन करने वाली, रक्ता–शक्ति हाथ में धारण करने वाली और दो बाहुओं वाली है। सव्य अर्थात् दक्षिण मे शङ्ख और चक्र को धारण करने वाली है और वाम भाग में गदा–कमल को धारण करने वाली लक्ष्मी हैं। दण्ड खड्ग-चर्म और गदा से युक्त महिष पर स्थित वाराही देवी है ॥ १९–२० ।। वज्र हाथ में धारण करने वाली तथा सहस्र नेत्रों वाली सिद्धि के लिये गज पर ऐन्द्री देवी है। चामुण्डा, कोटराक्षी, निर्मांसा, त्रिलोचना अथवा निर्मांसा, अस्थिसारा ऊर्ध्व केशों वाली तथा कृश उदर से युक्त–द्वीपी के चर्म को धारण करने वाली वाम भाग मे हाथ में कपाल तथा पट्टिश को लिये हुए स्थित है ॥ २१–२२ ॥ दक्षिण हस्त में शूल और कर्त्री को लिये हुए हैं। शव (मृत मानव का शरीर) पर आरूढ़ और हड्डियों के भूषण धारण करने वाली हैं। इस प्रकार देवी के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है। अब गणेश का स्वरूप बतलाते

जाता है। विनायक नर के आकार वाले होते हैं। इनकी कुक्षि बहुत बड़ी होती है तथा गज के समान मुख शुण्ड वाला होता है ॥ २३ ॥ शूंड इन की बहुत बडी होती है। उपवीन (जनेऊ) धारण किये रहा करते हैं। सप्त कल मुख होता है। विस्तार से और लम्बाई से छत्तीस अगुल की शुण्ड होती है ॥ २४ ॥ बारह कला नाड़ी तथा डेढ़ कला ऊंची ग्रीवा है। छत्तीस अंगुल का कण्ठ और अर्ध अगुल गुह्य है ॥ २५ ॥ नाभि और ऊरु बारह अंगुल दक्षिण जंघा पद पर परशु और अपना दांत रक्खे हुए है। वाम पर लड्डू और उत्पल पड़ा हुआ है ॥ २६ ॥ पार्श्व में सुमुखी और विडालाक्षी स्थित रहती हैं। तथा मयूर के वाहन वाले स्कन्द है। स्वामी–शाख–विशाख द्विभुज अर्थात् दो भुजाओं वाले और बाल के स्वरूप मे स्थित रहा करते है ॥ २७ ॥ दक्षिण भाग में शक्ति है और कुक्कुट पर स्थित हैं। यह स्वामी कार्तिकेय के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। एक मुख वाले और छं मुख वाले हैं। अथवा छं भुजाओं से युक्त हैं। याम और अरण्य मे बारह भुजाओं से युक्त है तथा दो बाहुओं वाला भी इनका स्वरूप होता है ॥२८॥

शक्तीपुपाशनिस्त्रिंशगदासत्तर्जनीयुतः।
शक्त्या दक्षिणहस्तेषु षट्सु वामे करे तथा ॥२९
शिखिपिच्छं धनुः खेट पताकाऽभयकुक्कुटे।
कपालकर्तरीशूलपाशभृद्याम्यसौम्ययोः ॥३०
गजचर्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद्रुद्रचर्चिका।
सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता ॥३१
तेन सा रुद्रचामुण्डा नादेश्वयथ नृत्यता।
इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी ॥३२
नृवाजिमहिषेभांश्च खादन्ती च करे स्थितान।
दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम् ॥३३
बिभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च खेटकम्।
खट्वाङ्गं च त्रिशूलं च सिद्धचामुण्डिकाह्वया ॥३४

सिद्धयोगेश्वरी देवो सर्वसिद्धिप्रदायिका ।
एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुताऽरुणा ॥३५

दाहिनी ओर के हाथों में शक्ति, वाण, पाश, निस्त्रिंश गदा और तर्जनी हैं तथा छै बांयी ओर के हाथों मे मोर का पंख, धनुष, खेट, पताका, अभयदान, कुक्कुट, कपाल, कर्त्तरिका, शूल, पाश धारण किए हुए हैं। दाहिने तथा बांये दोनों में गज के चर्म को धारण करते हैं। ऊपर की ओर मुख तथा चरण हैं ऐसी स्वरूप वाली रुद्र चर्चिका है। (यही आठ भुजाओं वाली देवी है जो शिर और डमरू से युक्त रहा करती है॥ २६-३०-३१ ॥ इस से यह रुद्र चामुण्डा नाम वाली है तथा नादेश्वरी एवं नृत्यनी भी इसके नाम हैं।) यही महालक्ष्मी चार मुखों वाली उपविष्ट रहा करती हैं, अब सिद्ध चामुण्डा के स्वरूप को बताया जाता है—मनुष्य, अश्व, महिष (भैंसा) और हाथी इनको खाती हुई जो कि इसके हाथों से स्थित रहा करते हैं, इस देवी की दस भुजाऐं होती हैं तथा तीन नेत्रों वाली है। शस्त्र-तलवार और डमरू इन तीनों को धारण करती है॥ ३२-३३ ॥ ये तीनों दाहिने हाथ में धारण करती है और वाम कर मे घण्टा और खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल धारण करती हैं। इनका नाम सिद्ध चामुण्डा कहा जाता है॥ ३४॥ सिद्ध योग की स्वामिनी देवी समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। इ रूप वाली अन्य जो होती हैं जिनके पास पाश-अंकुश होते हैं और अरुण वर्ण होता है उस देवी का नाम भी अरुणा होता है॥ ३५॥

भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभिर्युता
एताः श्मशानजा रौद्रा अम्बाष्टकमिदं स्मृतम् ॥३६
क्षमा शिवा॥ वृद्धा द्विभुजा विवृतानना ।
दन्तुरा क्षेमकारी स्याद्भूमौ जानुकरा स्थिता ॥३७
यक्षिण्यस्तब्धदोर्गाक्ष्यः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः ।
पिङ्गाक्ष्यः स्युर्महारम्या रूपिण्योऽप्सरसः सदा ॥३८
साक्षमालस्त्रिशूली च नन्दीशो द्वारपालकः ।
महाकालोऽसिमुण्डी स्याच्छूलखेटकरस्तथा ॥३९

कृश' भङ्गी च नृत्यन्दं कूष्माण्डस्थूलखर्वबान् ।
गजमोकर्णवक्राद्या वीरभद्रादयो गणाः ॥४०
घण्टा कर्णोऽष्टादशदोः पापरोग विदारयन् ।
वज्रासि दण्ड चक्रेषुमुसलाङ्कुशमुद्गरान् ॥४१
दक्षिणे तर्जनीखेटं शक्ति मुण्ड च पाशकम् ।
चापं घण्टां कुठारं च द्वाभ्यां चेवं त्रिशूलकम् ॥४२
घण्टामाला कुलो देवो विस्फोटकपिमर्दनः ॥४३

भैरवी रूप विद्या देवी का स्वरूप बारह भुजाओं से युक्त होता है। ये श्मशान जा और रौद्रा होती हैं। इस प्रकार से अम्बाओं का अष्टक बताया गया है। ॥ ३६ ॥ इन के नाम बहुत से हैं जैसे—क्षमा, शिवावृता, वृद्धा, द्विभुजा, विवृतानना, दन्तुरा क्षेम करी तथा भूमि में घुटने और हाथ रखने वाली स्थित रहती हैं ॥ ३७ ॥ यक्षिणी, स्तब्ध और दीर्घ नेत्रों वाली, शाकिनी, वक्र दृष्टि वाली, पिङ्गाक्षी, महारम्या, रूप वाली अप्सराऐं सदा स्थित रहा करती है। ये देवी के समीप रहने वाली हैं। साक्ष माल–त्रिशूली और नन्दीश द्वार पाल हैं। महाकाल–असिमुण्डी–शूल, खेटकर, कृश–भङ्गी नृत्य करने वाले तथा कूष्माण्ड, स्थूल, खर्ववान्, गज गोकर्ण और वक्र आदि तथा वीर भद्र प्रभृति देवी के गण है ॥ ३८–३९–४० ॥ अष्टादश हाथों वाला घण्टाकर्ण जो पापों के रोग को विदीर्ण कर देते हैं। दक्षिण हाथ में वज्र, असि, दण्ड, चक्र, इषु, मुसल, अंकुश और मुकुट को धारण किये हुए हैं। तर्जनी, खेट. शक्ति, मुण्ड, पाश, काम, घण्टा और कुठार को तथा दोनों हाथों से त्रिशूल को धारण करने वाले हैं ॥ ४१–४२ ॥ घण्टाओं की माला से घिरे हुए देव विस्फोट को विमर्दन करने वाले हैं ॥ ४३ ॥



२२–सूर्यादि ग्रह देवता प्रतिमालक्षणादि

ससप्ताश्वे संकचक्रे रथे सूर्यो द्विपद्म धृक् ।
मषीभाजनलेखन्यौ बिभ्र द्दण्डो तु दक्षिणे ॥१

वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत्स रवेर्गणः ।
बालव्यजनधारिण्यौ पार्श्व राज्ञी च निष्प्रभा ॥२
अथवाऽश्वसमारूढः कार्य एकस्तु भास्करः ।
वरदा व्यब्जिनः सर्वे दिक्पाः शस्त्रकराः क्रमात् ॥३
मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोऽन्यादिविदिक्स्थिताः ।
सूर्यार्यमादिरक्षोऽन्ताश्चतुर्हस्ता द्विपड्दले ॥४
वरुणः सूर्यनामा च महस्रांशुस्तथाऽपरः ।
धाता तपनसंज्ञश्च सविताऽथ गभस्तिकः ॥५
रविश्चैवाथ पर्जन्यस्त्वष्टा मित्रोऽथ विष्णुकः ।
मेषादिराशिसंस्थाश्च मार्गादिकार्तिकान्तकाः ॥६

अब सूर्य आदि ग्रह देवताओं की प्रतिमा के लक्षण बतलाये जाते हैं। श्री भगवान् ने कहा—सूर्य ग्रह देव के रथ में सात अश्व होते हैं और एक चक्र (पहिया) होता है। ऐसे रथ में दो पद्म धारण करने वाले तथा दक्षिण भाग में दण्ड धारी और वाम हस्त भाग में मङ्गल द्वार पर रविदेव के गण स्थित रहा करते हैं। बाल व्यजन धारण करने वाली पास में निष्प्रभा नाम वाली रानी स्थित रहती है॥ १–२॥ अथवा अश्व पर विराजमान एक भास्कर रखना चाहिए। वरदान देने वाले, दो कमलों के धारण करने वाले समस्त दिक्पाल क्रम से हाथों मे शस्त्र धारण करने वाले हैं। जोकि मुद्गर, शूल, चक्र और कमल के धारण करने वाले अग्नि आदि विदिशाओं में स्थित रहते हैं। सूर्य अर्यमा आदि रक्षोन्त चार हाथों वाले बारह दल मे स्थित हैं। ॥ ३–४॥ अब सूर्य के कतिपय परम प्रसिद्ध नाम बताते हैं—वरुण, सूर्य, महस्रांशु तथा धाता-तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र विष्णुक ये सूर्य मार्गशीर्ष मास से लेकर कार्तिक मास के अन्त तक मेष आदि राशियों पर स्थित रहा करते हैं॥ ५–६॥

कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डुरकः सितः ।
कपिलः पीतवर्णश्च शुकाभो धवलस्तथा ॥७

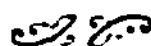
धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केसराग्रगाः ।
इडा सुषुम्ना विश्वार्चिरिन्दुसंज्ञा प्रमर्दिनी ॥८
प्रहर्षिणी महाकाली कपिला च प्रबोधिनी ।
नीलाम्बरा वनान्तस्था अमृताख्या च शक्तयः ॥९
वरुणादेश्च तद्वर्णा केसराग्रेषु विन्यसेत् ।
तेजश्चण्डो महावक्त्रो द्विभुजः पद्मखड्गभृत् ॥१०
कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्त्यक्षमालिकः ।
बुधश्चापाक्षपाणिः स्याज्जीवः कुण्ड्यक्षमालिकः ॥११

इनके भिन्न-भिन्न वर्ण भी माने जाते हैं । यथा—कृष्ण, रक्त, थोड़ा लाल, पीला, पाण्डुर, सित, कपिल, पीत वर्ण तोता के समान आभा वाला वर्ण, धवल, धूम्र, नील ये क्रम से द्वादश राशियों पर स्थित सूर्यों के वर्ण होते हैं । केसरों के अग्र भाग में गमन करने वाली शक्तियाँ होती हैं । उनके नाम इडा सुषुम्ना विश्वार्चि, इन्दु-संज्ञा, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महा काली, कपिला प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था, अमृताख्या अर्थात् अमृता इस नाम वाली ये शक्तियाँ हैं जो बारह होती हैं । वरुण आदि के उनके जो वर्ण हैं वे केसरों के अग्र भाग मे विन्यस्त करने चाहिऐं । अब रवि के अतिरिक्त अन्य ग्रहों को बतलाते हैं । तेज, चण्ड, महा वक्त्र, द्विभुज, पद्म और खड्ग को धारण करने वाला–कुण्डिकाजप्य माली–इन्दु है । शक्ति और अक्षों की माला वाला कुज (मङ्गल) है । चाप और अक्षों को हाथ में धारण करने वाले बुध हैं कुण्डी और अक्ष माला धारी गुरु हैं ॥ ७ से ११ ॥

शुक्रः कुण्ड्यक्षमाली स्यात्किङ्किणीसूत्रवाञ्छनिः ।
अर्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ॥१२
अनन्तस्तक्षकः कर्कः पद्मो महाब्जः शङ्खकः ।
कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः ॥१३
इन्द्रो वज्री गजारूढश्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान् ।
यमो दण्डी च महिषे नैरृतः खड्गवान्करे ॥१४

मकरे वरुणः पाशी वायुर्वज्रवरो मृगे ।
गदी कुबेरो मेषस्थ ईशानश्च जटी वृषे ॥१५
द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्माऽक्षसूत्रभृत् ।
हनुमान्वज्रहस्तः स्यात्पद्भ्यां संपीडितासुरः ॥१६
वीणाहस्ताः किं राः स्युर्मालाविद्याधराश्च खे ।
दुर्बलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः ॥१७
क्षेत्रपाला शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः ॥१८

कुण्डी और अक्ष मालिक शुक्र हैं। किङ्किणी सूत्रवान् शनि हैं। आधा चन्द्र धारी राहु है। केतु खड्गी और दीप को धारण करने वाला है ॥ १२ ॥ अनन्त, तक्षक, कर्क, पद्म, महाब्ज, शंखक, कुलिक ये सब सूत्र धारी फन के मुख वाले और महा प्रभा वाले होते है ॥ १३ ॥ इन्द्र वज्रधारी और हाथी के वाहन वाले हैं। अग्नि छाग के वाहन वाले और महान् शक्ति धारी हैं। यम दण्ड धारण करने वाले और भैंसा के वाहन वाले हैं। नैर्ऋत हाथ मे खड्ग धारण करने वाले हैं। वरुण मकर पर सवार और पाश धारण करने वाले हैं। वायु पद्म धारी और मृग के वाहन वाले हैं। कुबेर गदा धारी और मेष पर सवारी किये रहा करते हैं। ईशान जटाधारी हैं और बैल पर आरूढ़ होते हैं ॥ १४–१५ ॥ लोक पाल सभी दो बाहुओं वाले होते हैं। विश्वकर्मा अक्ष सूत्र को धारण करने वाले हैं। हनुमान् के के हाथ में वज्र रहा करता है और पदों से असुर को पीड़ित करते रहा करते हैं ॥ १६ ॥ किन्नरों के हाथों में वीणा का वाद्य (बाजा) रहता है और आकाश में विद्याधर सब माला धारी होते हैं। पिशाच दुर्बल अङ्गों वाले होते हैं तथा वेतालों के मुख का आकार विकृत होता है। जो क्षेत्रपाल होते हैं वे शूलधारी होते हैं। प्रेतों का उदर बड़ा होता है और शरीर मे कृश हुआ करते हैं ॥ १७–१८ ॥



२३—चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणानि

योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये इन्द्रादीशान्ततः क्रमात् ।
अक्षोभ्या रूक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणा क्षमा ॥१
पिङ्गाक्षी चाक्षया क्षेमा इला नीलालया तथा ।
लोला रक्ता बलाकेशी लालसा विमला पुनः ॥२
दुर्गा सा च विशालाक्षी ह्रींकारा वडवामुखी ।
महाक्रूरा क्रोधना तु भयंकरी महानना ॥३
सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना ।
साराख्या रससंग्राही शबरा तालजङ्घिका ॥४
रक्ताक्षी सुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्किणी ।
मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी वरप्रदा ॥५
चण्डा चण्डवती चैव प्रपंचा प्रलयान्तिका ।
शिशुवक्त्रा पिशाची च पिशितासवलोलुपा ॥६
धमनी तपनी चैव रागिणी विकृतानना ।
वायुवेगा बृहत्कुक्षिर्विकृता विश्वरूपिका ॥७
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयन्तिका ।
विडाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका ॥८
अष्टहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः ।
भैरवश्चार्कहस्तः स्याद्दन्तुरास्यो जटेन्दुभृत् ॥९
खट्वाङ्गकृपाकुठारेषुविश्वाभयभृदेवतः ।
चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः ॥१०
गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः ।
प्रेतासनो मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽथ वा ॥११

अब चौंसठ योगिनी की प्रतिमा के लक्षण बताये जाते हैं । श्री भगवान् ने कहा—अब मैं योगिनियों के अष्टक के अष्टक को बताऊँगा । जो कि क्रम से इन्द्रादि ईशान्त हैं—चौंसठ योगिनियों के नाम आरम्भ से बताये जाते हैं—अक्षोभ्या-रूक्षकर्णी-राक्षसी-क्षपणा-क्षमा-पिङ्गाक्षी-अक्षया-क्षेमा—इला—

नालालया—लोला—रक्ता—बलाकेशी—लालसा—विमला—दुर्गा—विशालाक्षी—ह्रींकारा—वड़वामुखी महाक्रूरा—क्रोधना—भयङ्करी—ऋग्वेदा—हयानना—साराख्या—रस संग्राही—शबरा—ताल जंघिका रक्ताक्षी—सुप्रसिद्धा—विद्युज्जिह्वा—करंकिणी—मेघनादा—प्रचण्डोग्रा—काल कर्णी—वरप्रदा—चण्डा—चण्डवती—प्रपञ्चा—प्रलयान्तिका—शिशुवक्त्र—पिशाची—पिशिताशन लोलुपा—धमनी—तपनी—रागिणी—विकृतानना—वायुवेगा—बृहत्कुक्षि—विकृता—विश्व लेपिका—यमजिह्वा—जयन्ती—दुर्जया—जयन्तिका—विडाली—रेवती—पूतना—विजयान्तिका—अग्रहस्ता—चतुर्हस्ता—इच्छास्त्रा—सर्वसिद्धिदा ये योगिनियों के नाम हैं। अब भैरव के नाम बताते हैं—भैरव, अर्कहस्त, दन्तुरास्य, जटेन्दुभृत, खट्वाङ्ग, अंकुश, कुठार इषु, विश्व के अभय को धारण करने वाले एक ओर तथा दूसरी ओर चाप, त्रिशूल, खट्वांग, पाश, अर्थ वर के लिये उद्यत रहने वाले हैं। दोनों हाथों से गज के चर्म को धारण करने वाले—चर्म के वस्त्र धारण करने वाले—सर्पों के भूषणों से अलंकृत—प्रेत के आसन पर स्थित-पंचानन मातृ मध्य में पूजने के योग्य होते हैं॥ १ से ११॥

अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम्।
तत्षडङ्गानि जात्यन्तैरन्वितं च क्रमाद्यजेत् ॥१२
मन्दिराग्निदलारूढं सुवर्णरसनान्वितम्।
नादविन्द्विन्दुसंयुक्तं मातृनाथाङ्गदीपितम् ॥१३
वीरभद्रो वृषारूढो मातृगः स चतुर्भुजः।
गौरी तु द्विभुजा त्र्यक्षा शूलिनी दर्पणान्विता ॥१४
त्रिशूलकुण्डिकाकुण्डवरहस्ता चतुर्भुजा।
अब्जस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशलाकया ॥१५
चण्डिका दशहस्ता स्यात्खड्गशूलारिशक्तिधृक्।
दक्षे वामे नागपाश चर्माङ्कुशकुठारकम् ॥१६
धनुः सिंहे च महिषः शूलेन प्रहतोऽग्रतः ॥१७

अविलोम अग्नि पर्यन्त दीर्घ अष्टक के एक-एक भेद को और जात्यन्तों से युक्त को क्रम से यजन करे और षडङ्गों का भी यजन करना चाहिए ॥१२॥

मन्दिराग्नि दल में आरूढ़ तथा सुवर्ण की निर्मित रसना करधनी से युक्त-नाद बिन्दु और इन्दु के सहित एवं मातृनाथ के अङ्ग से दीपित का यजन करना चाहिए ।।१३।। वीरभद्र वृष पर विराजमान हैं उनकी चार भुजाएँ होती हैं। गौरी दो भुजा वाली तथा तीन नेत्रों से युक्त शूल धारण करने वाली और दर्पण हाथ मे लिये रहा करती ।।१४।। ललिता त्रिशूल-कुण्डिका लेनी हुई कुण्डि वर हाथ वाली चार भुजा धारण करने वाली कमल पर स्थित रहती हैं तथा स्कन्द गण के आदर्श शलाका के सहित विराजमान होती हैं ।।१५।। चण्डिका दशकरों वाली हैं और खड्ग-शूल-अरि-शक्ति को धारण किया करती हैं। दाहिने और बाँये हाथ में नाग पाश तथा चर्म-अंकुश और कुठार लिये हैं। धनुष धारिणी हैं तथा महिष असुर शूल से प्रहत हुआ उनके आगे पड़ा रहता है और सिंह का वाहन है जिस पर वे आरूढ़ होती हैं ।।१६।।१७।।



२४-लिङ्गादिलक्षणम् ।

लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छृणु ।
दैर्घ्यार्धं वसुभिर्भक्त्वा त्यक्त्वा भागत्रयं ततः।।१
विष्कम्भं भूतभागैस्तु चतुरस्रं तु कारयेत् ।
आयाममूर्तुमिर्भक्त्वा एकद्वित्रिक्रमान्न्यसेत् ।।२
ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्धमानोऽयमुच्यते ।
चतुरस्रेऽस्य कर्णार्धं गुह्यकोणेषु लञ्छयेत् ।३
अष्टास्रो वैष्णवो भागः सिध्यत्येव न संशयः ।
षोडशास्रं ततः कुर्याद्द्वात्रिंशास्रं ततः पुनः ।।४
चतुःषष्ट्यस्रकं कृत्वा वर्तुलं साधयेत्ततः ।
कर्तयेदथ लिङ्गस्य शिरो वै देशिकोत्तमः ।।५
विस्तारमथ लिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् ।
भागार्धार्धं तु संत्यज्य छत्राकारं शिरो भवेत्।।६
त्रिषु भागेषु सदृश आयामो यस्य विस्तरः ।
सद्भिभागसमं लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ।।७

दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं देवपूजिते ।
सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृणु सांप्रतम् ॥८

श्री भगवान् ने कहा—हे कमल मे जन्म ग्रहण करने वाले ! मैं अब लिंग आदि का लक्षण बताता हूं उसका तुम श्रवण करो । दीर्घता के आधे भाग को आठ से विभक्त करे और फिर तीन भाग का आघ्रा कर देना चाहिए ॥१॥ पाँच भागों से चतुरस्र विष्कम्भ कराना चाहिए । जो उसका आयाम हो उसको छै मे विभक्त करे और एक दो तथा तीन को क्रम से न्याम करना चाहिए ॥२॥ यह ब्रह्मा-विष्णु और शिव के अंशों में वर्धमान होता है ऐसा कहा जाता है । इसके चतुरस्र में कर्णार्ध को गुह्य कोणों में चिह्नित करना चाहिए ॥३॥ अष्टाग्र वैष्णव भाग होता है वह अवश्य ही सिद्ध होता है इसमें संशय नहीं है । फिर षोडशास्र करे और फिर बत्तीस अस्त्र करने चाहिए ॥४॥ इसके उपरान्त चौसठ अस्र करके फिर इसे वर्त्तुल बनावे । श्रेष्ठ आचार्य को फिर लिंग का शिर काटना चाहिए । ५॥ लिंग के विस्तार को आठ प्रकार से विभाजित करना चाहिए । भाग के आधे का जो आधा भाग है उसका त्याग करके छत्र के आकार वाला शिर होता है ॥६॥ तीन भागों के सदृश आयाम होता है जिसका कि विस्तार है उसके विभाग के समान जो लिंग होता है यह समस्त कामनाओं के फल को देने वाला होता है ॥७॥ दीर्घता के चौथे भाग मे विष्कम्भ को देव पूजित किया जाता है । अब समस्त लिंगो का लक्षण सुनो ॥८॥

मध्यसूत्रं समासाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं बुधः ।
षोडशांगुललिङ्गस्य षड्भागैर्भाजितो यथा ।९
तदूर्ध्वमनसूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते ।
यवाष्टमुत्तरं कार्यं शेषाणां यवहानितः ॥१०
अर्चाभागं त्रिधा कृत्वा ह्यूर्ध्वमेकं परित्यजेत् ।
अष्टधा तद्द्वयं कृत्वा ऊर्ध्वं भागवयं त्यजेत् ॥११
ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्भागादभ्राम्य रेखां प्रलम्बयेत्।

भागमेकं परित्यज्य सङ्गमं कारयेत्तयोः ॥१२
एतत्साधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया।
सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकान्तं निबोध मे ॥१३
ब्रह्मभागप्रवेशं च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम्।
न्यसेद्ब्रह्मशिलां विद्वान्सम्यक्कर्म शिलोपरि ॥१४
तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत्।
द्विभागमुच्छ्रुतं पीठं विस्तारे लिङ्गसमितम् ॥१५
त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं विभाजयेत्।
स्वमानार्धत्रिभागेण बाहुल्यं परिकल्पयेत् ॥१६

विद्वान् को चाहिए कि ब्रह्म रुद्रान्तिक मध्य सूत्र को छै भागों में आठ यव करे और शेषों को यव हानि से करना चाहिए ॥६॥१०॥ अर्चा के भाग को तीन में करके ऊपर के एक का त्याग कर देना चाहिए। उन दोनों को आठ भागों में करके ऊपर के तीन भागों का संगम करादे अर्थात् मिला देना चाहिए ॥११॥१२॥ मैंने यह एक साधारण लिंगों का लक्षण बतला दिया है उसे पिण्डिकान्त तक मुझ से समझ लो ॥१३॥ ब्रह्म भाग के प्रवेश को भली-भाँति जानकर और लिंग के उच्छ्रय (ऊँचाई) को समझकर विद्वान् को चाहिए कि कर्म शिला के ऊपर भली भाँति से ब्रह्म शिला का न्यास करे ॥१४॥ उसी समुच्छ्रय का ज्ञान प्राप्त करके पिण्डिका का विभाजन करना चाहिए। दो भाग उच्छ्रित पीठ को विस्तार में लिंग के समान करना चाहिए ॥१५॥ तीन भाग बीच से खोदकर पीठ को विभाजित करना चाहिए। अपने भाग के आधे त्रिभाग से उसके बाहुल्य की परिकल्पना करे ॥१६॥

बाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ कल्पयेत्।
खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमान्निम्नं तु कारयेत् ॥१७
मेखलाषोडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः।
उच्छ्रायं तस्य पीठस्य विकाराङ्कं तु कारयेत् ॥१८
भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागेनैकेन पिण्डिका।
कण्ठं भागस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ॥१९

विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णासूत्रेण सर्षपैः ।
पट्टवस्त्रेण कर्तव्यं देशिकस्यापि कौतुकम् ॥३
मण्डले प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन् ।
नमस्तेऽर्च्चे सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा ॥४
प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः ।
त्वयि सपूजयामीशे नारायणमनामयम् ॥५
रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव ।
एव विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम् ॥६
शिल्पिन तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत् ।
चित्र देवेति मन्त्रण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ॥७
अग्निर्ज्योतीति दृष्टिं च दद्याद्भद्रपीठके ।
ततः शुक्लानि पुष्पाणि धृत सिद्धार्थकं तथा ॥८
दूर्वां कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः ।
मधु वातेतिमन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद् गुरुः ॥९

अब स्नपन विधि आदि का वर्णन किया जाता है । श्री भगवा ने कहा—ऐशानी दिशा मे गुरु को कुण्ड बनवाना चाहिए अष्टोत्तर शत गायत्री मन्त्र से वैष्णव वह्नि मे हवन करके सम्पात विधि से घरों का प्रोक्षण करावे । कार शाला मे मूर्त्ति शिल्पियों के साथ जाना चाहिए और सूर्य की ध्वनि के साथ दाहिने हाथ मे कौतुक सूत्र बँधवाना चाहिए ॥१॥२॥ "विष्णवे शिपिविष्ट" इस मन्त्र से सर्षप (सरसो) के साथ ऊन सूत्र से पट्ट वस्त्र के द्वारा आचार्य को भी कौतुक बन्धन करना चाहिए ॥३॥ वस्त्र को धारण कराकर प्रतिमा को मण्डल में स्थापित करे और उसकी पूजा करे । इसके पश्चात् प्रतिमा की स्तुति करे—हे सुरेशानि ! हे अर्च्चे ! हे विश्वकर्मा के द्वारा प्रणीते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥४॥ हे समस्त जगत् को प्रभावित करने वाली धात्रि ! तुम्हारे लिये मेरा बार-बार नमस्कार है । हे ईश ! तुम्हारे मे मैं अनामय (रोगादिदोष) रहित नारायण को पूजता हूँ ॥५॥ तुम शिल्पियों के द्वारा होने वाले दोषो से रहित होती हुई सर्वदा ऋद्धि से युक्त हो जाओ । इस प्रकार से प्रतिमा के

सामने स्तवन तथा निवेदन करके फिर उन प्रतिमा को स्नान कराने के लिये मंडप में ले जाना चाहिए। जो उस प्रतिमा के निर्माण करने वाला शिल्पी हो उसे धन देकर पूर्ण सुन्तुष्ट कर देना चाहिए और गुरु को गाय का दान दिलवाना चाहिए। इसके उपरान्त "चित्र देव" इत्यादि मन्त्र से नेत्रों का उन्मीलन करना चाहिए ॥६॥७॥ "अग्निर्ज्योति" इत्यादि मन्त्र से दृष्टि देवे। भद्र पीठक में इसके अनन्तर शुक्ल फूल-घृत-सिद्धार्थक-दूर्वा और कुशा का अग्र भाग प्रतिमा के मस्तक में आचार्य को देना चाहिए। फिर गुरु को "मधुवात" इत्यादि मन्त्र से देवों का अभ्यंजन करना चाहिए ॥८॥९॥

हिण्यगर्भमन्त्रेण इम मेति च कीर्तयेत् ।
घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चात्पठन्घृतवतीं पुनः ॥१०
मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य अतो देवेति कीर्तयेत् ।
क्षालयेदुष्णतोयेन सप्त तेऽग्नेति देशिकः ॥११
द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्ठेति सेचयेत् ।
नदीजैस्तीर्थजैः स्नानं पावमानीति रत्नजैः ॥१२
समुद्रं गच्छ गच्छेति तीर्थमृत्कलशेन च ।
शं नो देवीः स्नापयेच्च गायत्र्याऽप्युष्णवारिणा ॥१३
पञ्च मृद्भिर्हिर गेति स्नापयेत्परमेश्वरम् ।
सिकताद्भिरिमं मेति वल्मीकोदघटेन च ॥१४
तद्विष्णोरिति ओषध्यद्भिर्या ओषधिमन्त्रतः ।
यज्ञा यज्ञेति काषायैः पञ्चभिर्गव्यकस्ततः ॥१५
पयः पृथिव्यां मन्त्रेण याः फलीति फलाम्बुभिः ।
विश्वतश्चक्षुः सान्येन पूर्वेण कलशेन च ॥१६
साम राजानमित्यर्व विष्णोरराट दक्षिणेः ।
हंसः शुचि पश्चिमेन कुर्यादुद्वर्तनं हरेः ॥१७

फिर "हिरण्यगर्भ" मन्त्र के द्वारा 'इम मे'—यह कहे। इसके पश्चात् "घृतवती पुनः" इस का पाठ करते हुए घृत से अभ्यञ्जन करे ॥ १० ॥ मसूर की पिष्टि से उद्वर्तन करके अर्थात् उबटना लगा कर "अतो देव"—इत्यादि का

कीर्त्तन करना चाहिए। फिर आचार्य का कर्त्तव्य है कि "सप्त तेऽग्नय"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा गर्म पानी से धो डाले ॥ ११ ॥ "द्रुपदादिव" इस मन्त्र से अनुलिम्पन करे और "आपोहिष्ठा"—इत्यादि मन्त्रों से सेचन करना चाहिए। नदी के तथा तीर्थों के जल से स्नान होना चाहिए। "पव मानि"—इत्यादि से रत्नजो के द्वारा "समुद्रं गच्छ गच्छ" इस से और तीर्थ की मिट्टी कलश के द्वारा "शंनो देवी"—इस से स्नपन करावे और गायत्री मन्त्र से भी गर्म जल के द्वारा स्नपन कर्म करे ॥ १२–१३ ॥ "हिरण्य"—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा पाँच मिट्टियों से "यद्विष्णोः" इस मन्त्र से "ओपध्यद्भिर्या" इस ओपधि मन्त्र से "यज्ञा यज" इस से पाँच कापायों के द्वारा और पद्मगव्यों से स्नपन करावे ॥ १४-१५ ॥ "पयः पृथिव्यां या फली" इस मन्त्र से फलों के रस से स्नपन करावे। "विश्वतश्चक्षु" इस से उत्तर मे–कलश के द्वारा "सोमं राजानम्" इससे पूर्व मे—"विष्णोरराट्" इससे दक्षिण मे—"हम शुचि" इस से पश्चिम मे हार का उद्वर्त्तन करना चाहिए ॥१६–१७॥

मूर्धानमिति मन्त्रेण धात्रोमांस्युदकेन च।
मा नरतोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ॥१८
इदमापेति च घटैरेकाशीतिपदस्थितैः।
एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ॥१९
यज्ञभाग गृहाणमं वासुदेव नमोऽस्तु ते।
अनेनाऽऽवाह्य देवेश कुर्यात्कौतुकमोचनम् ॥२०
मुञ्चामि त्वेतिमुक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत्।
हिरण्मयेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्घकम् ॥२१
मधु वाता मधुपर्कं मधि गृह्णामि चाऽऽचामेत्।
अक्षन्नमीमदन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ॥२२
काण्डान्निर्मन्थनं कुर्याद् गन्धं गन्धवतीति च।
उन्नयामीति माल्यं च इद विष्णुः पवित्रकम् ॥२३
बृहस्पते वस्त्रयुग्मं वेदाहमुत्तरायकम्।
महाव्रतेन सकलान्पुष्पं चौपधयः क्षिपेत् ॥२४

"मूर्धानम्"—इन मन्त्र से धात्री (आँवला) जटामांसी के जल से—"मानस्तोक" - इस मन्त्र से तथा "गन्धद्वारां" इस मन्त्र से गन्धों के द्वारा "इदमाप" इस मन्त्र से इक्यासी पद में स्थित घटों के द्वारा स्नपन करावे। 'ऐहि-ऐहि भगवन् विष्णो लोकानुग्रह कारक। यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तुते" इस मन्त्र के द्वारा आवाहन करके देवेश के कौतुक सूत्र का मोचन करना चाहिए ॥ १८-१९-२० ॥ "मुञ्चामि त्वा" इसे कहते हुए आचार्य के हाथ में बँधे हुए कौतुक सूत्र का उन्मोचन करा देना चाहिए। "हिरण्मय" इस से पाद्य देवे "अतो देव" इस से अर्घ्य को समर्पित करना चाहिए। "मधु-वाता"—इस से मधुपर्क देवे और "मयि गृह्णामि" इस से आचमन करावे। "अक्षन्नमी मदन्त" इस से विद्वान् पुरुष को दूर्वा और अक्षतों को फेंका देना चाहिए ॥ २१-२२ ॥ "काण्डात्"—इत्यादि मन्त्र से निर्मन्थन करे 'गन्ध-वती" इस से गन्ध और "उन्नयामि"—इसमें माल्य तथा 'इदं विष्णुः" इससे पवित्रक क्षेप करे। "बृहस्पते" इस मन्त्र से वस्त्र युग्म अर्थात् दो वस्त्र और 'वेदाहम्'—इसमे उत्तरीय तथा "महा व्रत" इसमे समस्त पुष्प और ओषधियों का क्षेपण करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

धूपं दद्याद्धूरसीति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम् ।
युञ्जन्तीति च तिलकं दीर्घायुष्ट्वेति माल्यकम् ॥२५
इन्द्रच्छत्रेति छत्रं तु आदर्शं तु विराजतः ।
चामरं तु विकर्णेन भूषां रथंतरेण च ॥२६
व्यजनं वासुदेवाद्यं मुञ्चामि त्वेति पुष्पकम् ।
वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्याद्वरैः पुरुषसूक्ततः ॥२७
सवमेतत्समं दद्यात्पिण्डिकादौ हरादिके ।
देवस्योत्थानसमये सौपर्णं सूक्तमुच्चरेत् ॥२८
उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्याया मण्डपे नयेत्
शाकुनेनैव सूक्तेन देवं ब्रह्मरथादिना ॥२९
अतो देवेतिसूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा ।
श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णोर्न सकलीकृतिः ॥३०

मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा ।
वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम् ॥३१
दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति ।
उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दीपिकां ददेत् ॥३२
मुसलोलूखल दद्याच्छिलां संमार्जनीं तथा ।
तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च ॥३३
शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम् ।
खण्डखाद्यैः पूरयित्वा शयनस्य विधिः स्मृतः । ३४

"धूरसि"—इत्यादि मन्त्र से धूप का आघ्रापन करावे। "विभ्राट् सूक्त" इस से अञ्जन समर्पित करे। 'युञ्जन्ति"—इस मन्त्र के द्वारा तिलक देवे। "दीर्घायुष्ट्वा" इस से माला समर्पित करना चाहिए॥ २५॥ "इन्द्र-च्छत्र"—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए छत्र तथा "विराजतः"—इस से दर्पण एवं "विकर्णेन" इस मन्त्र से भूषण भेट करे। "रथन्तरेण"—इस से व्यजन समर्पित करे। "वासुदेवाद्यैर्पुञ्चामि त्वा"—इस से पुष्प देवे। फिर भगवान् हरि की वेदादि पुरुष सूक्त के द्वारा स्तुति करनी चाहिए॥ २६-२७॥ यह सभी हरादि पिण्डिकादि में समान रूप से देवे। देव के उत्थापन के समय मे सौपर्ण सूक्त की उच्चारण करना चाहिए॥ २८॥ "उत्तिष्ठ" इस से देव का समुत्थापन कर के अर्थात् उठाकर फिर शय्या के मण्डप में ले जाना चाहिए। अहारयादि शाकुन सूक्त से देव को तथा "अतो देव"—इस सूक्त से प्रतिमा पिण्डिका का एवं विष्णु की शय्या में श्री सूक्त के द्वारा सकली करण करे। फिर मृगराज, वृष, नाग, व्यजन, कलश, वैजयन्ती, भेरी और दीप इन आठ मङ्गल वस्तुओं को दिखावे। अश्व सूक्त के द्वारा पाद देश मे—"त्रिपाद"—इस से उखा को तथा पिधानक पात्र को और दीपिका अम्बिका को देवे॥२९-३०-३१-३२॥ मुसल, उलूखल, शिला, संमार्जनी, भोजन के बरतन और गृह के अन्य उपकरण देने चाहिए॥ ३३॥ शिरो भाग में निद्राख्य वस्त्र और रत्नों से युक्त घट जोकि खण्ड खाद्यों से पूरित हो, रक्खे। यह देव की शयन की विधि कही गई है॥ ३४॥

२६—वासुदेवादिदेवतानां सामान्यः प्रतिष्ठाविधिः

पिण्डिकास्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा ।
विभजेद् ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद् बुधः ॥१
देवमानुपपैशाचभागेषु न कदाचन ।
ब्रह्मभागं परित्यज्य किंचिदाश्रित्य चाण्डज ॥२
देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका ।
नपुंसकशिलायां तु रत्नन्यासं समाचरेत् ॥३
नारसिंहेन हुत्वाऽथ रत्नन्यासं च तेन वै ।
व्रीहीन्रत्नानि धातूंश्च लोहान्वै चन्दनादिकान् ॥४
पूर्वादिनवगर्तेषु न्यसेन्मध्ये यथारुचि ।
अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्तं गुग्गुलुनाऽऽवृतम् ॥५
रत्नन्यासविधिं कृत्वा प्रतिमामानयेद्गुरुः ।
सशलाकैर्दर्भपुञ्जैः महद्देवैः समन्वितः ॥६
सबाह्यान्तंश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत् ।
प्रोक्षयेद्दर्भतोयेन नदीतीर्थोदकेन च ॥७
होमार्थं स्थण्डिलं कुर्यात्सिकताभिः समन्ततः ।
सार्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्रं सुशोभनम् ॥८

अब वासुदेव आदि देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठा की विधि के विषय में बतलाया जाता है । श्री भगवान् ने कहा—पिण्डिका की स्थापना करने के लिये गर्भागार को सात भागो मे विभक्त करना चाहिए । विद्वान् पुरुष को चाहिए कि जो ब्रह्म भाग है उसमे प्रतिमा की स्थापना करे ॥ १ ॥ अन्य जो देव-मानव और पिशाचों के भाग हैं उनमे कभी भी भूल कर प्रतिमा को स्थापित न करे । हे अण्ड से जायमान । यदि ब्रह्म भाग का त्याग करके अन्य भाग में ही प्रतिमा स्थापित करे तो कुछ आश्रय लेकर ही करे । फिर अन्य भागों में देव तथा मानुष भाग मे यत्न मे पिण्डिका की स्थापना करनी चाहिए । नपुंसक शिला हो तो उसमे नीचे रत्नों का न्यास अवश्य ही करना चाहिए । ॥ २-३ ॥ नारसिंह के द्वारा हवन करके और उसके द्वारा रत्नों का न्यास

करके फिर व्रीहि–रत्न, धातुवर्ग, लोह और चन्दनादिको पूर्वादि को गर्तों (गड्ढों) में मध्य में रुचि के अनुसार रक्खे । इसके अनन्तर इन्द्रादि मन्त्रों के द्वारा गर्तों को गुग्गुलु से आवृत कर देवे । इस तरह रत्नों के न्यास की विधि को सम्पन्न करके गुरु पतिका आमानमन करे । समन्वित सहदेव और शलाका युक्त दर्भ के पुञ्जों के द्वारा बाहिर–भीतर सर्वत्र संस्कार करके फिर पञ्चजन्य से शोधन करना चाहिए । डाभ के जल से और नदी तथा तीर्थ के जल से प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ४–५–६–७ ॥ इसके उपरान्त होम करने के लिये चारों ओर सिकता से एक स्थण्डिल की रचना करे । वह अत्यन्त सुन्दर चौकोर और डेढ़ हाथ प्रमाण वाला बनाना चाहिए ॥ ८ ॥

अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत् ।
पूर्वाद्यानष्ट वर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ॥९
त्वमग्ने द्यु भिरिति च गायत्र्या समिधो हुनेत् ।
अष्टार्णेनाष्टशतकमाज्य पूर्णां प्रदापयेत् ॥१०
शान्त्युदक ताम्रपत्रे मूलेन शतमन्त्रितम् ।
सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्ध्नि श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ॥११
ब्रह्मयानेन चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ।
त्वं विष्णोरति मन्त्रेण प्रासादाभिमुख नयेत् ॥१२
शिविकायां हरिं स्थाप्य भ्रामयीत पुरादिकम् ।
गीतवेदादिशब्दैश्च प्रासादद्वारि धारयेत् ॥१३
स्त्रीभिर्विप्रैर्मङ्गलाष्टघटैः संस्नापयेद्धरिम् ।
ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥१४
अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गार्घ्यं निवेद्य च ।
स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत् ॥१५
ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।
संस्थाप्य पिण्डिकायां तु स्थिरं कुर्याद्विचक्षणः ॥१६

आठ दिशाओं में यथा न्यास कलशों का विन्यास करना चाहिए । पूर्वादि आठ वर्णों से इनका न्यास आवश्यक है । इसके अनन्तर संस्कृत अग्नि

लाकर "त्वमग्ने द्यु भि" इसमे और गायत्री मन्त्र ममिधाओं की आहुतियाँ देवे। अष्ट क्षर मन्त्र से अष्टोत्तरशत घृत की पूर्ण आहुतियां देवे ॥६। १०॥ सौ वार मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शान्त्युदक को ताम्र पत्र पर सिञ्चन करे फिर 'श्रीश्वते' ऋचा से देव के मस्तक पर सिंचन करना चाहिए। ब्रह्मयान से 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इससे उठाकर "त्वं विष्णो:" इत्यादि मन्त्र से प्रासाद के सम्मुख ले जाना चाहिए ॥११।१२॥ इसके पश्चात् एक शिविकायान में हरि को विराजमान करके नगर आदि में शोभा यात्रा द्वारा भ्रमण कराना चाहिए । गीत-वेद आदि की ध्वनियों से प्रासाद के द्वार पर धारण करे ॥१३॥ स्त्रियों के द्वारा तथा विप्रों के द्वारा मगल के आठ घटों से हरि का संस्नपन करावे। फिर आचार्य को गन्धाक्षत आदि के द्वारा मूल मन्त्र से अर्चना करनी चाहिए ॥१४॥ "अतो देव" इत्यादि मन्त्र मे वस्त्रादि अग्राङ्ग अर्घ्य को निवेदित करे। किसी स्थिर लग्न में "देवस्य त्वेति" इस मन्त्र पिण्डिका मे धारण करावे ॥१५॥ "ॐ त्रैलोक्य विक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम" अर्थात् हे त्रिविक्रम ! त्रैलोक्य के विक्रान्त आपके लिये नमस्कार है। इस मन्त्र से पिंडिका में संस्थापित करके विद्वान् को चाहिए कि स्थिर करे ॥१६॥

ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि ।
पञ्चगव्येन सस्नाप्य क्षाल्य गन्धोदकेन च ॥१७
पूजयेत्सकलीकृत्य साङ्गं साधारणं हरिम् ।
ध्यायेत्खं तत्र मूर्ति तु पृथ्वी तस्य च पीठिका ॥१८
कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः ।
जीवमाव हयिष्यामि पचविशतितत्त्वगम् ॥१९
चतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् ।
देहेन्द्रियमनोवुद्धिप्राणाहकारवर्जितम् ॥२०
ब्रह्मादिस्तम्वपर्यन्तं हृदयेपु व्यवस्थितम् ।
हृदयात्प्रतिभाविम्बे स्थिरो भव परमेश्वर ॥२१
सजीवं कुरु विम्बं त्वं सवाह्याभ्यन्तरस्थितः ।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ॥२२

ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम् ।
सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निवोधयत् ॥२३
सांनिध्यकरणं नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत् ।
सूक्तं तु पौरुष ध्यायन्निदम् गुह्यमनुं जपेत् ॥२४

इसके अनन्तर "ध्रुवाद्यौः" इस मन्त्र से तथा "विश्वतश्चक्षुः" इससे पञ्चजन्य के द्वारा स्नान कराके फिर गन्धोदक से प्रक्षालन करे और सकली करण करके अंगों के सहित साधारण हरि का पूजन करे वहाँ पर आकाश में मूर्ति का ध्यान करे उसकी पीठिका पृथ्वी को माने ॥१८॥ तेज के परिमाणुओं से उसके शरीर की कल्पना करनी चाहिए । पच्चीस तत्वों में गमन करने वाले जाव का आवाहन करूँगा । परम आनन्द स्वरूप-चैतन्य-जाग्रत और स्वप्न से रहित-देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-प्राण-अहंकार से वर्जित-ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त हृदयों में व्यवस्थित हे परमेश्वर ! अब हृदय से प्रतिमा के बिम्ब में आप स्थिर हो जाइये ॥१९॥२०॥२१॥ आप बाहिर और भीतर अपनी स्थिति बनाकर इस प्रतिमा के बिम्ब को सजीव कर दो । देह की उपाधि वालों में एक अंगुष्ठ जितने प्रमाण वाला पुरुष स्थित रहता है ॥२२॥ ज्योति-स्वरूप ज्ञानमय-परात्पर-ब्रह्म एक ही है और अद्वितीय है । इस प्रकार से सजीवीकरण करके फिर प्रणव के द्वारा निवोधन करना चाहिए ॥२३॥ हृदय का स्पर्श करके सन्निधीकरण करे और फिर पुरुष सूक्त का जप करना चाहिए । इसका ध्यान करते हुए गुह्य मन्त्र का जप करे ॥२४॥

नमस्तेऽस्तु सुरेशाय संतोषविभवात्मने ।
ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोनुयायिने ॥२५
गुणातिक्रान्तरूपाय पुरुषाय महात्मने ।
अक्षयाय पुराणाय विष्णो संन्निहितो भव ॥२६
यच्च ते परम तत्त्वं यच्च ज्ञानमयं वपुः ।
तत्सर्वमेकतो नातमस्मिन्देहे विबुध्यताम ॥२७
आत्मनं सन्निधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान् ।
स्वनाम्ना स्थापयेदन्यायुधादीन्समुद्रया ॥२८

यावावर्षादिकं दृष्ट्वा ज्ञेयः संनिहितो हरिः ।
नत्वा स्तुत्वा स्तवाद्यैश्च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ॥२६
चण्डप्रचण्डौ द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद् गुरुः ।
अथ मण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ॥३०
दिगीशान्दिशि देवांश्च स्थाप्य सपूज्य देशिकः ।
विष्वक्सेनं तु मस्थाप्य शंखचक्रादि पूजयेत् ॥३१
सर्वपार्षदकेभ्यश्च वलिं भूतेभ्य अर्पयेत् ।
ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुर्वे दक्षिणां ददेत् ॥३२
यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्याय नरोऽर्पयेत् ।
आचार्यदक्षिणार्धं तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत् ॥३३
अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद् भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः ।
अवारितान्फलं दद्याद्यजमानाय वै गुरुः ॥३४
विष्णुं नयेत्प्रतिष्ठाता चाऽऽत्मना सकलं कुलम् ।
सर्वेषामेव देवानामेष साधारणो विधिः ॥३५
मूलमन्त्राः पृथक्तेषां शेषं कार्यं समानकम् ॥३६

सन्तोष और विभव के स्वरूप वाले देवों के स्वामी तथा ज्ञान और विज्ञान के रूप में युक्त और ब्रह्म तेज के अनुयायी आपके लिये मेरा नमस्कार है। माय के गुणों से परे रूप वाले—महान् आत्मा पुरुष एवं क्षय से रहित और परम पुराण पुरुष के लिये मेरा नमस्कार है। हे विष्णुदेव ! आप मेरे सन्निहित हो जाइये ॥ २५–२६ ॥ जो भी आपका परम तत्त्व है और जो भी आपका ज्ञानमय शरीर है वह सब एक ही स्थल पर प्राप्त किया गया है और इस देह में वर्त्तमान है—ऐसा जान लो ॥ २७ ॥ इस तरह देव के सन्निधान में अपने आपको करके ब्रह्मा आदि जो परिवार वाले हैं उनको भी अपने नाम से स्थापित करना चाहिए। मुद्रा के साथ अन्य आयुध आदि की स्थापना करे ॥ २८ ॥ यात्रा वर्षा आदि को देख कर हरि भगवान् को अपने सन्निहित ही समझना चाहिए। प्रणाम करके और स्तव आदि के द्वारा स्तुति करके तथा अष्टाक्षर आदि मन्त्रों का जाप करके द्वार पर स्थित चण्ड प्रचण्ड नामकों की

बाहर निकल कर गुरु की अर्चना करनी चाहिए। इसके पश्चात् मण्डप में आकर गरुड़ की स्थापना करे और उसका पूजन करना चाहिए ॥ २६-३० ॥ आचार्य से दिशाओं में दिक्पालों को और देवों को स्थापित करके उनका पूजन करना चाहिए। विश्वक्सेन की स्थापना करके शंख चक्र आदि का अर्चन करे ॥ ३१ ॥ समस्त पार्षद और भूतों के लिये बलि अर्पित करे। याग-वस्त्र और सुवर्ण आदि गुरु की भेंट करे तथा गुरु को दक्षिणा देवे ॥ ३२ ॥ याग के उपयोगी द्रव्य आदि आचार्य के लिये मनुष्य को अर्पित करना चाहिए। जो दक्षिणा आचार्य को देवे उससे आधी दक्षिणा ऋत्विजों को देनी चाहिए ॥ ३३ ॥ अन्य भी जो ब्राह्मण आदि हों उन्हें दक्षिणा देवे और फिर ब्राह्मणों को अनिवारित रूप से भोजन करावे। गुरु यजमान को फल देवे। इस तरह प्रतिष्ठा करने वाला अपने समस्त कुल को विष्णु लोक में ले जाता है। यही समस्त देवों की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि है। केवल अन्य देवों के मूल मन्त्र पृथक् होते हैं शेष समान ही कार्य विधि है ॥ ३४ से ३६ ॥



२८—कूपवापीतडागप्रतिष्ठाविधिः

कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु।
जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ॥१
अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम्।
हैमं रौप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ॥२
द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम्।
वामेन नागपाशं तु नदीनागादिसंयुतम् ॥३
यागमण्डपमध्ये स्याद्वेदिका कुण्डमण्डिता।
तोरणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वि॑म् ॥४
भद्रके चार्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारि कुम्भकान्।
अग्न्याधानं चापि कुण्डे कृत्वा पूर्णां प्रदापयेत् ॥५
वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शतेति संस्पृशेत्।
घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥६

शं नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः ।
अधिवासयेदष्टकुम्भान्सामुद्रं पूर्वकुम्भके ॥७
गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु नैर्झरम् ।
नदीतोयं पश्चिमे तु वायव्ये तु नदोदकम् ॥८
औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्यमैशान्यां तीर्थसंभवम् ।
अलाभे तु नदीतोयं यासां राजेति मन्त्रयेत् ॥६
देवं निर्माज्यं निर्मथ्य दुर्मित्रियेति विचक्षणः ।
नेत्र चोन्मीलयेच्चित्रं तन्नक्षुर्मधुरत्रयैः ।१०

श्री भगवान् ने कहा - अब मैं कूआ—बावडी और तालाब आदि की प्रतिष्ठा की विधि के विषय में बतलाता हूँ। उसको आप श्रवण करें। जल के रूप में हरि भगवान् सोम और उत्तम वरुण हैं॥ १॥ यह विश्व अग्नि-षोममय है और जल स्वरूप विष्णु कारण हैं। मनु को चाहिए कि वह सुवर्ण निमित-चाँदी का अथवा रत्नों का वरुण निर्मित करावे॥ २॥ वरुण की प्रतिमा जो बनवाई जावे वह दो भुजा वाली होनी चाहिए। हंस की पीठ पर स्थित—दाहिने हाथ से अभय का दान करते हुए तथा बाँये हाथ से नाग पाश को ग्रहण किये हुए वरुण का स्वरूप बनवावे। उन वरुण देव के साथ में नहीं और नाग आदि सभी होवें॥ ३॥ याग मण्डप के मध्य में कुण्ड से विभूषित वेदिका होनी चाहिए। वहाँ पर करकों से युक्त दारुण कुम्भ और तोरण का न्यास करे॥ ४॥ भद्रक मे और अर्ध चन्द्र में अथवा स्वस्तिक में द्वार पर कुम्भों का न्यास करना चाहिए और कुण्ड मे अग्नि का आधान करके पूर्ण को प्रदापित करे॥ ५॥ स्नान पीठ में वरुण को "ये ते शत्" इस मन्त्र से संसर्श करना चाहिए। इसके पश्चात् देशिक अर्थात् आचार्य को मूल मन्त्र से घृत के द्वारा अभ्यञ्जन करना चाहिए॥ ६॥ "शंनो देवी" इस मन्त्र से प्रक्षालन करके शिव एवं शुद्ध जलों से शुद्ध वती इससे प्रक्षालन करे। फिर आठ कुम्भों को अधिवासित करे। पूर्व कुम्भ में गङ्गाजल, अग्निकोण मे वर्षा का जल, दक्षिण में झरने का जल, पश्चिम मे नदी का जल, वायव्य कोण में तीर्थों का जल स्थापित करे। लाभ न होने पर "नदीतोयं यासां राज" इस

मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ॥ ७-८-९ ॥ विद्वान् पुरुष को "दुर्मित्रिय" इस मन्त्र से देव निर्मार्जन करके निर्मथन करे। मधुस्वर से चित्रं तच्चक्षु से नेत्रों को उन्मीलित करे ॥ १० ॥

ज्योतिः संपूजयेद्धेम्यां गुरवे गामथार्पयेत् ।
समुद्रज्येष्ठेत्यभिषिञ्चेद्वरुणं पूर्वकुम्भतः ॥११
समुद्रं गच्छ गाङ्गेयात्सोमो धेन्विति वर्षकात् ।
देवीरापो निर्झराद्भिर्नदाद्भिः पञ्चनद्यतः ॥१२
उद्भिज्जाद्भिश्चोद्भिदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः ।
आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्धिरण्यवर्णेति स्वर्णजात् ॥१३
आपो अस्मेति वर्षोत्थैर्व्याहृत्या कूपसंभवैः ।
वरुणं च तडागोत्थैर्वरुणाद्भिस्तु वाग्यतः ॥१४
आपो देवीति गिरिजैरेकाशीतिघटैस्ततः ।
स्नापयेद्वरुणस्येति त्वं नो वरुण चार्घकम् ॥१५
व्याहृत्या मधुपर्कं तु बृहस्पतेति वस्त्रकम् ।
वरुणेति पवित्रं तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ॥१६

ज्योति का भली भाँति पूजन करना चाहिए और सुवर्ण की गौ गुरु को अर्पित करे। "समुद्र ज्येष्ठ" इस मन्त्र से पूर्व में स्थित कुम्भ से वरुण का अभिषिञ्चन करना चाहिए ॥ ११ ॥ 'समुद्र गच्छ'—इसके द्वारा गङ्गा के जल से, 'सोमो धेन्वा'—रस के द्वारा वर्षा के जल से, "देवीरापो" इसके द्वारा निर्झर के जल से, "पञ्च नद्यतः" इसके द्वारा नद के जल से, "उद्भिदेन"—इससे और उद्भिज्ज जल से, 'पाव मान्या'—इसके द्वारा तीर्थों के जल से, "आपो हिष्ठा"—इसके द्वारा पञ्चगव्य से, "हिरण्य वर्ण"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा स्वर्ण जल से, "आपो अस्म"—इससे वर्षा से उत्पन्न जल से, व्याहृति के द्वारा कुए के जल से, वाग्यत (मौन) होते हुए 'वरुणाद्भिः' इससे तालाब के जल से वरुण को स्नान करावे। फिर 'आपो देवी'— इस मन्त्र के द्वारा गिरिज इक्यासी घटों से स्नान करावे। इसके पश्चात् 'वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र के द्वारा हे वरुण ! आप हमारा अर्घ ग्रहण करो— यह कहते हुए

अर्घ देवे ॥ १२–१३–१४–१५ ॥ फिर व्याहृति से मधुपर्क—"वृहस्पति" इस से वस्त्र –'वरुण' इस से पवित्र और प्रणव से उत्तरीय देना चाहिए॥१६॥

यद्वारुणेन पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु ।
चामरं दर्पणं छत्रं व्यजनं वैजयन्तिकाम् ॥१७
मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ।
वरुणं वेति मान्निध्यं यद्वारुण्येन पूजयेत् ॥१८
सजीवीकरण मूलात्पुनर्गन्धादिना यजेत् :
मण्डले पूर्ववत्प्राच्यं कुण्डेपु समिदादिकम् ॥१९
वेदादिमन्त्रैर्गङ्गाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत ।
दिक्ष्वथो वै यवचरुं ततः संस्याप्य होमयेत् ॥२०
व्याहृत्या वाऽथ गायत्र्यामूलेनाऽऽमन्त्रयेत्तथा ।
मूर्धाय प्रजापतये द्यौः स्वाहा चान्तकनिग्रहाय ॥२१
तस्यै पृथ्व्यै देहधृत्यै इह स्वाधृतये ततः ।
इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ॥२२
विष्णुश्च वरुणो धाता रायस्पोषो महेन्द्रकः ।
अग्निर्यमो नैरृतोऽथ वरुणो वायुरेव च ॥२३
कुवेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः ।
तस्मै स्वाहेद विष्णुश्च तद्विप्रासेति होमयेत् ॥२४
सोमो धेन्विति षड्हुत्वा इमं मेति च होमयेत् ।
आपो हि ष्ठेति निमृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ॥२५

इसके उपरान्त 'यद्वारुणेन'—इससे वरुण देव के लिये पुष्पादि देवे । चामर, छत्र, व्यजन और वैजयन्ति का समर्पित करे ॥ १७ ॥ उत्तिष्ठ'—इस मन्त्र के द्वारा उठा कर उस रात्रि में अधिवास करना चाहिए । 'वरुणं वा'—इस से सान्निध्य करे और 'यद्वारुण्येन'—इस से पूजन करे ॥ १८ ॥ फिर मूल मन्त्र से सजीवी करण करे और फिर गन्धाक्षत के द्वारा पूजन करना चाहिए । मण्डल में पूर्व की भाँति अर्चन करके कुण्डों में समिदादि रक्खे ॥ १९ ॥ वेदादि मन्त्रों से गङ्गादि चार धेनुओं का दिशाओं में दोहन करे । इसके

पश्चात् तव चरु को वहाँ संस्थापित कर होम करना चाहिए ।। २० ।। व्याहृति से गायत्री से अथवा मूल मन्त्र से ग्रामन्त्रण करे । अब होम करने की रीति मन्त्रों का विधान बतलाया जाता है -सूर्याय प्रजापतयेद्यौ स्वाहा और अन्तक निग्रहाय स्वाहा, तस्यै पृथिव्यै देह धृत्यै स्वाहा, इह स्वधृतये स्वाहा, उग्र-भीम और रौद्रक-विष्णु-वरुण, धाता, रायस्पोष, महेन्द्रक, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा और जलों के स्वामी उसके लिये यह स्वाहा है । ' विष्णु-च तद्विप्रास" इस मन्त्र से होम करना चाहिए ।। २१-२२-२३-२४ ।। "सोमो धुन्वा"—इससे छः बार आहूतियाँ देकर "इम ये" इस से होम करना चाहिए ।। २५ ।।

दशदिक्षु बलिं दद्याद्गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् ।
प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद् बुधः ।।२६
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हेमपुष्पादिभिः क्रमात् ।
जलाशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसम्मितान् ।।२७
कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलाग्रम्यान्सैकतान्देशिकोत्तमः ।
वरुणस्येति मन्त्रेण आज्यमष्टशतं ततः ।।२८
चरुं यवमयं हुत्वा शान्तितोयं समाहरेत् ।
सेचयेन्मूर्ध्नि देय तु सजीवकरणं चरेत् ।।२९
ध्यायेत्तु वरुणं युक्तं गौर्या नदनदीगणैः ।
ॐ वरुणाय ततोऽभ्यर्च्य ततः सांनिध्यमाचरेत् । ३०
उत्थाप्य नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तैः समङ्गलैः ।
आपो हि ष्ठे ति च क्षिपेत्त्रिमध्वाक्ते घटे जले ।।३१
जलाशये मध्यगतं सुगुप्तं विनिवेशयेत् ।
स्नात्वा ध्यायेच्च वरुणं सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ।।३२
अग्निबीजेन संदग्ध्वा (ह्य तद्भस्म प्लावयेन्नरः ।
सर्वमापोमयं लोकं ध्यायेत्तत्र जलेश्वरम् ।।३३
तावन्मध्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत् ।
चतुरस्रमथाष्टास्रं वर्तुलं वा सुकीर्तितम् ।।३४

आराध्य देवतालिङ्ग दशहस्तु तु कूपके ।
यूपं यज्ञी (ज्ञि) यवृक्षोत्थं मूले हैम फलं न्यसेत् ॥३५

इसके अनन्तर दशों दिशाओं में बलि देनी चाहिए और गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अर्चन क ना चाहिए। विद्वान् पूजक को उचित है कि प्रतिमा को उठाकर फिर मण्डल में उसका विन्यास करे ॥ २६ ॥ फिर वहाँ पर गन्धाक्षत पुष्प आदि पूजोपचारों से तथा हेम पुष्पादि से क्रम से पूजन करे। दो वालिश्त संमित जलाशयों को दिग्भाग में करके श्रेष्ठ आचार्य को चाहिए कि वह अति सुन्दर सिकता के आठ स्थण्डिलो की रचना करे। फिर 'वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र के द्वारा अष्टोत्तर शत बार घृत-चरु जो यवमय हो उसका हवन करके शान्ति तोय का समाहरण करे। फिर सेचन करे, मस्तक पर देना चाहिए और फिर सजीवकरण करे ॥ २७-२८-२९ ॥ गौरी और नद तथा नदी गणों के सहित वरुण की आराधना करे। फिर "ॐ वरुणाय नमः"—इस से वरुणाक का अभ्यर्चन करके सान्निध्य का समाचरण करना चाहिए।३ ॥ फिर नाग पृष्ठ से उठाकर फिर समङ्गल उनसे भ्रामण करे। "आपोदिष्ठा" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा तीन मधुओं से अक्त घट के जल में क्षेपण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ जलाशय के मध्य में गुप्त रूप से विनिवेशित कर देना चाहिए। फिर स्नान करके और वरुण का ध्यान कर ब्रह्माण्ड संज्ञा वाली इस सृष्टि को अग्नि बीज से भली भाँति दग्ध करके फिर मानव को चाहिए कि उसकी भस्म को प्लावित कर देवे। वहाँ पर आपोमय समस्त लोक जलेश्वर का ध्यान करे ॥ ३२-३३ ॥ जल के मध्य में जहाँ देव स्थिति है वहाँ एक यूप को निवेशित करे। वह चौकोर अथवा आठ कोने वाला हो किम्वा सुन्दर वर्त्तुल हो ऐसा यूप निवेशित करे ॥ ३४ ॥ देवता के चिन्ह दशह को कूप में आराधित करके यज्ञिय वृक्षोत्थ यूप के मूल में सुवण के फल का न्यास करे ॥ ३५ ॥

वाप्यां पञ्चदशाकरं पुष्करिण्यां तु विंशकम् ।
तडागे पञ्चविंशाख्यं जलमध्ये निवेशयेत् ॥३६

यागमण्डपाङ्गणे वा यूप ब्रह्मे तिमन्त्रतः ।
स्थाप्य तद्वे ष्टयेद्वस्त्रै र्यूपोपरि पताकिकाम् ॥३७
तदभ्यर्च्य च गन्धाद्यै र्जगच्छान्ति समाचरेत् ।
दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम् ॥३८
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान्भोजयेत्तथा ।
आब्रह्म स्तम्बपर्यन्त ये केचित्सलिलार्थिनः ॥३९
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा ।
तोयमुत्सर्जयेदेव पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥४०
आपो हि ष्ठे ति तिसृभिः शान्तितोयं द्विजैः कृतम् ।
तीर्थतोयं क्षिपेत्पुण्यं गोकुल चार्पयेद् द्विजान् ॥४१
अनिवारितमन्नाद्यं सर्वजन्य च कारयेत् ।
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ॥४२
एकाहं स्थापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुतायुतम् ।
विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ॥४३
गवादि पिबते यस्मात्तस्मात्कर्तु र्न पातकम् ।
तोयदानात्सर्वदानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥४४

बावड़ी में पन्द्रह हाथ का पुष्करिणी में बीस हाथ का तलाव में पचीस हाथ का जल के मध्य में निवेशित करे ॥ ३६ ॥ अथवा याग मण्डप के आँगन में "यूप ब्रह्म" इस मन्त्र से स्थापित करके उसके ऊपर वस्त्रों से पताका को वेष्टित करे ॥ ३७ ॥ उसका गन्धाक्षत आदि से अर्चन करके जगत् की शान्ति का समाचरण करे । इसके अनन्तर भूमि, गौ, हेम और जल पात्र की दक्षिणा गुरु को देनी चाहिए ॥ ३८ ॥ द्विजों को भी दक्षिणा देनी चाहिए । जो समागत हों उनको भोजन करावे । जो भी आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त जल के चाहने वाले हों वे तडाग में रहने वाले जल से तृप्ति को प्राप्त होवें । इस विधि से जल को निकाले और उसमें पञ्चगव्य का निक्षेप करे ॥३९–४० ॥"आपोहिष्ठा मयो भुवः" इस मन्त्र से तीन बार द्विजों के द्वारा शान्ति तोय करके फिर पवित्र तीर्थ के जल का क्षेप करना चाहिए । उसे फिर गायों के समूह के लिये

ओर द्विजों के लिये अर्पित करना चाहिए । ४१ ।। अनिवारित अन्नादि को समस्त जनों के लिये कर दे । ऐसा जो करता है वह एक सहस्र अश्वमेध किया करता है ।। ४२ ।। एक दिन उस तोय का स्थापित करे तो वह अयुतायुत पुण्य देता है । वह मनुष्य विमान में बैठ कर परम प्रसन्नता प्राप्त किया करता है और वह नरक में नहीं जाता है ।। ४३ ।। गो आदि जिसमें जल का पान करते हैं उसमें कर्त्ता को कोई भी पातक नहीं होता है । तोय दान से ही समस्त वस्तुओं के दान का फल प्राप्त करके दिव्य लोक जाता है ।।४४।।



२६—सभादिस्थाप विधिः

सभादिस्थापन वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तनम् ।
भूमौ परीक्षितायां च वास्तुयागं समाचरेत् ।।१
स्वेच्छया तु समां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत्सुरान् ।
चतुष्पथे च ग्रामादौ न शून्ये कारयेत्सभाम् ।।२
निर्मलः कुलमुद्धृत्य कर्ता स्वर्गे विमोदते ।
अनेन विधिना कुर्यात्सप्तभौमं हरेर्गृहम् ।।३
यथा राज्ञां तथाऽन्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः ।
कोणभुजान्वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्जयेत् । ४
त्रिशालं वा द्विशालं वा एकशालमथापि वा ।
व्ययाधिकं न कुर्वीत व्ययदोषकर हि तत् ।।५
आयाधिके भवेत्पीडा तस्मात्कुर्यात्समं द्वयम् ।
करराशि समस्तं तु कुर्याद्विसुगणं गुरुः ।।६
सप्तार्चिषा कृते भागे गर्गविद्याविचक्षणः ।
अष्टधा भाजिते तस्मिन्यच्छेषं स व्ययो मतः ।।७
अथवा करराशिं तु हन्यात्सप्तार्चिषा बुधः ।
वसुभिः संहृते भागे ध्वजादि परिकल्पयेत् ।।८

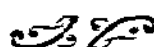
श्री भगवान् ने कहा—अब मैं सभा आदि की स्थापना करने की विधि के विषय में बतलाऊँगा तथा इनका प्रवर्त्तन कहूँगा। पहिले भूमि की परीक्षिन करें और फिर उसमे वास्तुयाग का सम चरण करना चाहिए ॥ १ ॥ अपनी इच्छा से सभा की रचना करके इसमे देवगण की स्थापना करे। चौराहे पर और ग्राम आदि मे तथा शून्य स्थल में सभा की रचना नही करानी चाहिए ॥ २ ॥ सभा की रचना करने वाला निर्मल होते हुए अपने कुल का उद्धार करके स्वर्ग मे आनन्द प्राप्त करता है। इस निम्नलिखित विधि से सप्त भौम हरि का गृह बनवाना चाहिए ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से राजाओं का होता है उसी प्रकार से पूर्वाद्य ध्वजा आदि होते हैं। कोण भुजो को त्याग करके चतुः शाल को भी वर्जित करना चाहिए ॥ ४ ॥ त्रिशाल-द्विशाल अथवा एक शाल और अधिक व्यय वाला नही करे क्योंकि वह व्यय दोष करने वाला होता है ॥ ५ ॥ आय के अधिक होन पर भी पीडा होती है इससे दोनों को सम ही करना चाहिए। गुरु को चाहिए कि जो करकी समस्त राशि हो उसे अठगुना करे ॥ ६ ॥ गर्ग विद्या के पण्डित को चाहिए सप्तार्चि से भाग देवे और उस भाग के देने पर अर्थात् अथवा विभाजित करने पर जो शेष रहे वह ही व्यय सम्पन्न होता है ॥ ७ ॥ अथवा बु को उचित है कि करकी राशि को सप्तार्चि से हनन करे और आठ से भाग के संहृत होने पर ध्वजादि की परिकल्पना करे ॥ ८ ॥

ध्वजो धूम्रस्तथा सिंहः श्वा वृषस्तु खरो गजः ।
ध्वाङ्क्षश्चेति क्रमेणैवमायाष्टकमुदाहृतम् ॥९
त्रिशालकत्रयं शस्तं सर्वभेदविवर्जितम् ।
याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं शस्यते सदा ॥१०
याम्ये शालैकशालं तु प्रत्यक्शालमथापि वा ।
एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्वन्ये भयावहाः ॥११
चतुःशालं सदा शस्तं सर्वदोषविवर्जितम् ।
एकभौमादि कुर्वीत भवनं सप्तभौमकम् ॥१२

ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ।
जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ॥१७
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ।
भद्रे कश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ॥१८
सर्वबीजौषधीयुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते ।
रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ॥१९
प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि ।
सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ॥२०
पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते ।
भवभूतिकरि देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥२१
अव्यक्तेऽव्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ।
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥२२
देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ।
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ॥२३

वह मन्त्र यह है—'ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः' प्रजया सह । जये भार्गव दायादे प्रजानां विजवा वहे । अर्थात् हे नन्दे ! हे वासिष्ठे ! वसुओं के तथा प्रजा के साथ प्रसन्न करो । 'जये भार्गव दायादे ! प्रजाओं पर विजय प्राप्त करें ॥ १७ ॥ हे पूर्णे ! हे अङ्गिरस दायादे ! मुझको पूर्ण कामनाओं वाला बना दो । हे भद्रे ! हे काश्यप दायदे ! मेरी शुभ मति कर दो ॥ १८ ॥ हे समस्त बीजौषधियों से युक्ते ! हे सर्व रत्नौषधि वृते ! हे रुचिरे ! हे नन्दने ! हे नन्दे ! हे वासिष्ठे ! यहाँ पर तुम रमण करो ॥१६॥ हे प्रजापति सुते ! हे देवि ! हे चतुरस्रे ! हे महीयसि ! हे सुभगे ! हे सुव्रते ! हे काश्यपि ! आप घर में रमण करो ॥ २० ॥ हे अव्यक्ते ! हे परम आचार्यों के द्वारा पूजिते ! हे गन्ध और मालाओं के द्वारा अलङ्कृते ! हे भवभूति करि ! हे भार्गव ! हे देवि ! घर मे रमण करो ॥ २१ ॥ हे अव्याकृते ! हे पूर्णे ! हे आङ्गरस मुनि की सुते ! हे इष्टके ! तुम मेरी अभीष्ट हो, मैं प्रतिष्ठा कराता हूँ ॥ २२ ॥ हे देश स्वामी, पुरस्वामी और गृह स्वामी

के परिग्रह हैं। आप मेरे मनुष्य, धन, हस्ती, अश्व और पशुओं की वृद्धि करने वाली होओ ॥ २३ ॥ २३ ॥



३०—देवतासामान्यप्रतिष्ठा

समुदायप्रतिष्ठां च वक्ष्ये सा वासुदेववत् ।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ॥१
ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विशेषकम् ।
यस्य देवस्य यन्नाम तस्याऽद्यं गृह्य चाक्षरम् ॥२
मात्राभिर्भेदयित्वा तु दीर्घाण्यङ्गानि भेदयेत् ।
प्रथमं कल्पयेद् बीजं सबिन्दु (न्तु) प्रणवान्वितम् ॥३
सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा ।
नियमव्रतकृच्छ्राणां मठसंक्रमवेश्मनाम् ॥४
मासोपवासं द्वादश्या इत्यादि स्थापनं वदे ।
शिलां पूर्णघटं कांस्यं संभारं स्थापयेत्ततः ॥५
ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद्यवमयं चरुम् ।
क्षीरेण कपिलायास्तु तद्विष्णोरि त साधकः ॥६
प्रणवेनाभिघार्येव दर्व्या संघट्टयेत्ततः ।
साधयित्वाऽवतार्याथ विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ॥७
व्याहृत्या चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत् ।
विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यं भूरग्नये तथैव च ॥८
सूर्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत् ।
द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथिवी महाराजकः ॥९
तस्मै सोमं च राजानमिन्द्राद्यं होममाचरेत् ।
एवं हुत्वा चरोर्भागान्दद्याद्दिग्बलिमादरात् ॥१०

अब देवता सामान्य प्रतिष्ठा का वर्णन किया जाता है। श्री भगवान् ने कहा—समुदाय की प्रतिष्ठा बतलाऊँगा। वह समुदाय प्रतिष्ठा वासुदेव की

भांति होती है। आदित्य, वसुगण, रुद्र, साध्य, विश्वे देवा, अश्विनी कुमार, ऋषि वर्ग, समस्त की विशेषता बतलाऊँगा। जिस देव का जो नाम हो उस नाम का पहिला अक्षर ग्रहण कर लो ॥ १-२ ॥ मात्राओं से भेद करके दीर्घ अङ्गों को भेद युक्त करना चाहिए। प्रथम को विन्दु से युक्त एवं प्रणव के सहित बीज की कल्पना करे। ३ ॥ समस्त नियम व्रत कृच्छ्रों का तथा मठ, संक्रम वेश्मों का मूल मन्त्र से स्थापन तथा पूजन, द्वादश्या इत्यादि मासोपवास एवं स्थापन बताता हूँ। इसके अनन्तर शिला, पूर्णावट, कास्य और संभार को स्थापित करे ॥ ४-५ ॥ ब्रह्मकूर्च लाकर यवमय चरु का श्रपन करे और वह कपिला गौ के क्षीर से 'तद्विष्णो' इत्यादि मन्त्र के द्वारा साधक को करना चाहिए ॥ ६ ॥ प्रणव के द्वारा अभिघारण करके ही दर्वी से संघटन करे। साधयित करके उतार कर इसके अनन्तर विष्णु की अभ्यर्चना करके होम करना चाहिए ॥ ७ ॥ व्याहृति से गायत्री मन्त्र से तथा "तद्विप्रास"—इससे होम करे। विश्व तक्षभुर्वदाद्य के द्वारा भू-अग्नि, सूर्य, प्रजापति और अन्तरिक्ष के लिए होम करना चाहिए। द्यौः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, पृथिवी महाराजक के लिये-सोम और राजा को इन्द्राद्यों के द्वारा होम का आचरण करे। इस प्रकार से चरु के भागों का हवन करके आदर से दिग्बलि देवे ॥ ८-६-१०॥

समिधोऽष्टशतं हुत्वा पालाशा (शी) श्चाऽऽज्यहोमकम्।
कुर्यात्पुरुषसूक्तेन इरावती तिलाष्टकम् ॥११
हुत्वा तु ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानामनुयायिनाम्।
ग्रहाणामाहुतीर्हुत्वा लोकेशानामथो पुनः ॥१२
पर्वतानां नदानां च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः।
हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात्स्रुवपूर्णाहुतित्रयम् ॥१३
वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन पितामह।
पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥१४
तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलङ्कृताम्।
प्रीयतां भगवान्विष्णुरित्युत्सृजेद् व्रतं बुधः॥१५

मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्वतः ।
यज्ञेनाऽऽतोष्य देवेशं श्रपयेद्वैष्णवं चरुम् ॥१६
तिलतण्डुलनीवारैः श्यामाकैरथ वा यवैः ।
आज्येनाऽऽघार्य चोत्तार्य होमयेन्मूर्तिमन्त्रकैः ॥१७
विष्ण्वादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत्पुनः ॥१८
ॐ श्रीविष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा ।
ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा । ॐ नरसिंहाय स्वाहा ।
ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ॥ १९
द्वादशाश्वत्थसमिधो होमयेद् घृतसंप्लुताः ।
विष्णो रराट्मन्त्रेण ततो द्वादश चाऽऽहुतीः ॥२०

अष्टोत्तर शत पलाश की समिधाओं को और घृत को लेकर पुरुष सूक्त से इरावती तिलाष्टक का हवन करे ॥ ११ ॥ ब्रह्मा-विष्णु, ईश और अनुयाती देवों के लिये आहुतियाँ देवे । ग्रहों को, लोकेशों को, पर्वतों को, नदियों को, समुद्रों को आहुतियां देकर स्रुव की तीन पूर्णाहुति व्याहृतियों की देनी चाहिए ॥ १२-१३ ॥ हे पितामह ! जिसके 'वौषट्' यह अन्त में हो ऐसे वैष्णव मन्त्र के द्वारा पञ्चगव्य चरु का प्राशन करके आचार्य के लिये दक्षिणा देवे ॥ १४ ॥ तिलों से भरा हुआ पात्र जिसमें सुवर्ण भी हो । वस्त्रों के सहित हो तथा अलङ्कारों विभूषित गौ को "भगवान् विष्णुः प्रीयताम्"—यह कह कर विद्वानाग्रज को उत्सृष्ट करें ॥ १५ ॥ अब मासोपवासादि से अन्य प्रतिष्ठा बतलाता हूँ । पहिले यज्ञ के द्वारा देव को पूर्णतया सन्तुष्ट करके वैष्णव चरु का श्रपन करना चाहिए ॥ १६ ॥ तिल, तण्डुल-नीवार और श्यामाक अथवा यवों से घृत से आघारण करके और उत्तारण करके मासप विष्णु आदि के मूर्ति मन्त्रों के द्वारा होम करना चाहिए । उनके अन्त में पुनः होम करे । १७-१८ ॥ ॐ श्री विष्णवे स्वाहा—ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा—ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा—ॐ नरसिंहाय स्वाहा । ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा । इन मन्त्रों से अन्त में होम करे ॥ १९ ॥ बारह पीपल की समिधाओं को घृत से संप्लुत करके 'विष्णो रराट्' इत्यादि मन्त्र से बारह आहुतियाँ देवे ॥ २० ॥

इद विष्णुरिरावती चरोर्द्वादश चाऽऽहुती: ।
हुत्वा चाऽऽज्याहुतीस्तद्वदद्विप्रासेति होमयेत् ॥२१
शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतित्रयम् ।
युञ्जतेत्यनुवाकं तु जप्त्वा प्राशयीत वै चरुम् ॥२२
प्रणवेन स्वशब्दान्ते कृत्वा पात्रे तु पंप्लले ।
ततो मासाधिपानां तु विप्रान्द्वादश भोजयेत् ॥२३
त्रयोदशो गुरुस्तत्र तेभ्य दद्यात्त्रयोदश ।
कुम्भान्स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्सच्छत्रोपानहान्वितान् ॥२४
सुवर्णहेममाल्याढ्यान्व्रतपूर्त्यै त्रयोदश ।
गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः ॥२५
इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् ।
दशहस्तं प्रपाराममठसंक्रमणादिषु ॥२६
गृहे च होममेवं तु कृत्वा सर्वं यथाविधि ।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही ॥२७
अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् ।
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्ति विचक्षणैः ॥२८
आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने सुचिरं वसेत् ।
मठप्रदानात्स्वर्लोके शक्रलोके वसेत्ततः ॥२९
प्रपादानाद्वारुणेन सक्रमेण वसेद्दिवि ।
इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद् गवाम् ॥३०
नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा ।
गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसंप्लवम् ॥३१
समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥३२

"इदं विष्णु"—इससे इरावती चरु की द्वादश आहुतियाँ देवे वीस घृत की आहुतियों से हवन करके उसी की भाँति 'तद्विप्रास'—इससे होम करे ॥ २१ ॥ फिर शेष रहे होम को करके तीन पूर्णाहुति देवे । इसके पश्चात् युञ्जत इस अनुवाक का जप करके चरु का प्राशन करना चाहिए ॥ २२ ॥

स्वगद्द के अन्त में प्रणव से पेण्पल पात्र में करके इसके उपरान्त मासाधिपों के बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २३ ॥ उनमें तेरहवां गुरु है उनके लिये छत्र और उपानहों से युक्त-स्वादिष्ट जल से संयुक्त तेरह कुम्भ देवे। सुन्दर वस्त्र, हेम और मालाओं से समन्वित तेरह गौ व्रत की पूर्ति के लिये लावें और उनका दान प्रहर्षित होते हुए करें ॥ २४-२५ ॥ इस रीति से गोपथ का उत्सर्जन करके वहाँ पर यूप को निवेशित करे। वह प्रपा, आराम, मठ और संक्रमण आदि में दश हाथ का होना चाहिए ॥ २६ ॥ और घर में इस प्रकार से होम करके पूर्वोक्त विधान से यथा विधि गृही गृह में प्रवेश करे। ॥ २७ ॥ इन समस्त कर्मों में अन्न की अनिवारिता कर देनी चाहिए। विद्वान् कर्त्ता को चाहिए कि द्विजों के लिये यथाशक्ति दक्षिणा देवे ॥२८॥ जो आराम (बगीचा) बनवाता है वह मनुष्य बहुत अधिक समय तक इन्द्र के नन्दन वन में निवास किया करता है। मठ के प्रदान करने से स्वर्लोक में से और इन्द्र लोक में वास किया करता है ॥ २९ ॥ प्रपा (प्याऊ) के दान से अर्थात् प्याऊ लगाने से वारुण लोक में और संक्रमण से दिवि लोक में वास करता है। इष्ट का सेतु कराने वाला और गौओं के मार्ग को बनवाने वाला गोलोक में निवास किया करता है ॥ ३० ॥ नियम और व्रतों को करने वाला विष्णु लोक में वास करता है और जो कुछ करते हैं वे समस्त पापों के नाश करने वाले होते हैं। जो गृह का दान करता है वह आभूत संप्लव पर्यन्त स्वर्ग लोक में वास किया करता है ॥ ३१ ॥ शिवादि गृहात्मायों की समुदाय प्रतिष्ठा इष्ट होती है ॥ ३२ ॥

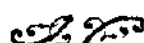


३१—जीर्णोद्धारविधिः

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद् गुरुः।
अचलां विन्यसेद् गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥१
व्यङ्गां भग्नां च शैलाढ्यां न्यसेदन्यां च पूर्ववत्।
संहारविधिना तत्र तत्त्वान्संहृत्य देशिकः ॥२

सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः ।
दारवीं दाहयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले ॥३
धातुजां रत्नजां वाऽपि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ ।
यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥४
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने ॥५
कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥६

श्री भगवान् ने कहा—अब मैं भूषित जीर्णोद्धार की विधि के विषय में बतलाऊँगा । गुरु स्नान करे, गेह मे अचला का विन्यास करे और प्रति जीर्णा का त्याग कर देना चाहिए ॥ १ ॥ देशिक अर्थात् आचार्य को सहार विधि से वहाँ पर तत्त्वो का सहार करके पूर्व की भाँति व्यङ्ग और भग्ना को अन्या शैलाढ्या त्याग करे ॥ २ ॥ गुरु को उचित है कि वह नारसिंह मन्त्र से एक सहस्र आहुतियाँ देकर उसका उद्धार करे । जो काष्ठ की मूर्ति हो उसे वह्नि में जला देवे और शैलजा प्रतिमा हो उसे जल मे प्रक्षिप्त कर देवे ॥३॥ जो प्रतिमा रत्नों से निर्मित हो अथवा धातु निर्मित हो उसको भी अगाध जल में अथवा समुद्र में यान में रख कर और जीर्णाङ्ग को वस्त्रादि से ढक कर ले जावे ॥ ४ ॥ वादित्रों के साथ अर्थात् बाजे बजते हुए जल में प्रक्षिप्त करना चाहिए । फिर गुरु के लिये दक्षिणा देवे । पुरानी जीर्ण प्रतिमा जितनी बड़ी हो और जिस द्रव्य से निर्मित हो उतनी ही बड़ी और उसी द्रव्य से निर्मित कराई हुई प्रतिमा की दिन में स्थापना करनी चाहिए ॥ ५ ॥ इसी भाँति कूप, वापी, तड़ाग आदि के जीर्णोद्धार मे भी महान् फल होता है ॥६॥



३२—उत्सवविधिकथनम्

वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु गुरे चरेत् ।
तस्मिन्दिने वैकरात्रं त्रिरात्रं चाष्टरात्रकम् ॥१

उत्सवेन विना यस्मात्स्थापनं निष्फलं भवेत् ।
अयने विषुवे चापि शयनोऽवने गृहे ।।२
कारकस्यानुकूलो वा यात्रां देवस्य कारयेत् ।
मङ्गलाङ्कुरारोपंस्तु गीतनृत्यादिवाद्यकैः । ३
शरावधटिकापाली स्वङ्कुरारोहणे हिता ।
यवान्शालीस्तिलान्मुद्गान्गोधूमान्सितसर्षपान् ।।४
कुलत्थमाषनिष्पावान्क्षालयित्वा तु वापयेत् ।
पूर्वादौ च बलिं दद्याद्भ्रमन्दीपैः पुरे निशि ।।५
इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च ।
अनुगच्छन्ति ते तत्र प्रतिरूपधराः पुनः ।।६
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः ।
आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद् गुरुः ।।७
तीर्थयात्रा त्वया देव श्वः कर्तव्या सुरोत्तम ।
तस्यारम्भमनुज्ञातुमर्हः सर्वज्ञ सर्वदा ।।८

श्री भगवान् ने कहा—अब मैं उत्सव की विधि का वर्णन करूँगा जो कि देवता के स्थापित कर देने पर करनी चाहिए। उस दिन मे एक रात्रि तक उत्सव करने के बिना ही जो किसी भी देव की स्थापना की जाती है वह फलहीन हो जाया करती है। विपुव अयन में शयन के उपवन में अथवा गृह में या जो भी करने वाले के अनुकूल पड़े वहाँ पर देवता की शोभा यात्रा (सवारी) करावे और उस समय में वह शोभा यात्रा मङ्गलांकुरों के आरोप से अर्थात् जो वो कर जो अंकुर निकला करते हैं वे मङ्गलांकुर कहे जाते हैं उनका आरोप और गीत-नृत्य और वाद्यों (बाजों के) का बजाना इन सब से युक्त होनी चाहिए ।। १-२-३ ।। जो के अंकुरों के आरोपण करने के लिये सकोरे या छोटी सी घड़िया हित कर हुआ करती है। मङ्गल सूचक अंकुरों के उत्पन्न करने के लिये जौ-शाली, तिल, मूंग, गेहूँ, सफेद सरसों, कुलथी, उर्द और निष्पावो को पहिले धोकर फिर बोना चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं में रात में नगर में जलते हुए दीपकों के द्वारा बलि देना चाहिए।

॥ ४–५ ॥ इन्द्र आदि और कुमुद प्रभृति तथा समस्त भूतों के पीछे जो अनुगमन किया करते हैं वे वहाँ पर प्रति रूप के धारण करने वाले होते हैं ॥ ६ ॥ उस अनुगमन में उनको एक-एक कदम के चलने में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हुआ करता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पहिले गुरु को चाहिए कि देव मन्दिर में आकर देवता को प्रार्थना के रूप में विज्ञापित कर देवे कि हे देव! हे सुरों में श्रेष्ठ! कल आपको तीर्थ यात्रा करनी होगी अथवा तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। इस से उसके आरम्भ करने की तैयारी के लिये यह है सर्वज्ञ! सर्वदा आज्ञा प्राप्त करने के योग्य हूँ। ७–८ ॥

दवमेव तु विज्ञाप्य ततः कर्म समारभेत् ।
प्ररोहघटिकाढ्यां तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ॥९
चतुःस्तम्भां तु तन्मध्ये स्वस्तिके प्रतिमां न्यसेत् ।
काम्यार्थं लेख्य चित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत् ॥१०
वैष्णवैः सह कुर्वीत धृताभ्यङ्गं तु मूलतः ।
घृतधाराभिषेकं वा सकलां शर्वरीं बुधः ॥११
दर्पणं दर्श्य नीराजगीतवाद्यैश्च मङ्गलम् ।
वी जनं पूजनं दीपगन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१२
हरिद्रामुक्तकाश्मीरशुक्लचूर्णादि मूर्धनि ।
प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं धृते ॥१३
स्थापयित्वा समभ्यर्च्य यात्राबिम्बं रथे स्थितम् ।
नयेद् गुरुर्नदी नादैश्छत्राद्यैः राष्ट्रपालिकाम् ॥१४
निम्नगायांजनादर्वाक्तत्र वेदीं तु कारयेत् ।
याहनादवतार्यैनां तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ॥१५
चरुं च श्रपयेत्तत्र पायसं होमयेत्ततः ।
अग्निज्ञं वैदिकैर्मन्त्रैस्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥१६
आपो हिष्ठेतिमन्त्रैः पूजयेदर्घ्यं मुख्यकैः ।
पुनरेवं समादाय तीरे कृत्वाऽघमर्षणम् ॥१७

स्नायान्महाजनैर्विप्रवेंद्यामुत्तार्य तं न्यसेत् ।
पूजयित्वा तदन्हा च प्रासादं तु नयेत्ततः ॥१८
पूजयेत्पावकस्थं तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१९

इस प्रकार से देवता को जना कर फिर कम का आरम्भ करना चाहिए । वेदिका प्ररोहों की अर्थात् जो धान बोये गये थे उनके अङ्कुरों वाली घटिका से युक्त कर के भूषित बनावे ॥ ६ ॥ चार स्तम्भ बनाकर उसे सुशोभित रूप देवे और फिर उसके मध्य में स्वस्तिक (सांथिया) रच कर उसके ऊपर उस प्रतिमा को रक्खे । लिखने के योग्य चित्रों में : काम्य अर्थ को स्थापित करे और वहाँ पर अधिवास करना चाहिए ॥ १० ॥ वैष्णवों के साथ मूल मन्त्र से घृत के द्वारा अभ्यङ्ग करे अर्थात् घृत लगावे । अथवा विद्वान् कर्म करने वाले को सम्पूर्ण रात में घृत की धारा से अभिषेक करना चाहिए ॥ ११ ॥ शीशा दिखावे और आरती, गीत तथा वाद्यों के द्वारा मङ्गल करे । बीजन-पूजन तथा दीप-गन्ध और पुष्पादि के द्वारा यजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ हल्दी मुक्ता, केशर शुक्ल आदि का चूर्ण प्रतिमा के मस्तक पर रखने से भक्तों को समस्त तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥ स्थापना करा के और भली भाँति अभ्यर्चन करके रथ में यात्रा बिम्ब को विराजमान करे फिर छत्रादि के तथा बाजों के साथ राष्ट्र के पालन करने वाली बड़ी नदी पर ले जावे ॥ वहाँ पर एक योजन से पहिले ही गहरी नीची वेदी बनवावे फिर वाहन से उस प्रतिमा को उतार कर उस वेदी पर निवेशित करे अर्थात् विराजमान करना चाहिए और वहाँ पर चरुका श्रपण करे तथा पायस (खीर) का होम करना चाहिए । फिर जल के लिङ्ग वाले वैदिक मन्त्रों द्वारा समस्त तीर्थों का आवाहन करना चाहिए ॥ १५-१६ ॥ फिर 'आपो हिष्ठा' इत्यादि उपनिषदों से जिनमें कि अघमर्षण की मुख्यता है, पूजन करे । फिर देवता को लाकर जल में अघमर्षण करना चाहिए ॥ १७ ॥ स्नान करे और महाजनविप्रों के द्वारा वेदी से उतार कर उसका न्यास करे । उस दिन पूजन करके इसके उपरान्त फिर प्रासाद को ले जावे ॥ १८ ॥ गुरु पावक में स्थित की पूजा करे जो कि भुक्ति (भोग) और मुक्ति के करने वाला है ॥१९॥



३३–गणपूजाविधिः

गणपूजां प्रवक्ष्यामि निर्विघ्नामखिलार्थदाम् ।
गणाय स्वाहा हृदयमेकदंष्ट्राय वै शिरः ॥१
गजकर्णिने च शिखा गजवक्त्राय वर्म च ।
महोदराय सुदण्डहस्तायाक्षि तथाऽस्त्रकम् ॥२
गणो गुरुः पादुका च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः ।
मुख्यास्थिमण्डलं चाधश्चोर्ध्वं छदनमर्चयेत् ॥३
पद्मकर्णिकबीज च ज्वालिनीं नन्दयाऽर्चयेत् ।
सूर्येशा कामरूपा च उदया कामवर्तिनी ॥४
सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्धमृत्तिका ।
वंशो घोरं च दहनं प्लवो लम्ब तथा स्मृतम् ॥५
लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि ।
तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ॥६
गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः ।
गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ॥७
गजवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशनः ।
धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूज्या गणपतेः स्मृताः ॥८

अब गण की पूजा की विधि बतलाते हैं। ईश्वर बोले—अब मैं गण की पूजा को बतलाऊँगा जो कि समस्त अर्थों के देने वाली है और विघ्नों को मिटा देने वाली होती है। "गणाय स्वाहा"—इस से हृदय का पूजन करे। "एक दंष्ट्राय स्वाहा"—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का पूजन करे। "गज कर्णिने स्वाहा"—इस से शिखा तथा "गज वक्त्राय स्वाहा"—इस से वर्म का यजन करे। "महोदराय स्वाहा"—इस से अक्षि तथा "सुदण्ड हस्ताय स्वाहा"—इस मन्त्र से अस्त्र का अर्चन करना चाहिए। गण, गुरु, पादुका, शक्ति, अनन्त, धर्म तथा मुख्यास्थि मण्डल का और नीचे एवं ऊपर छदन का अर्चन करना चाहिए ॥ १–२–३ ॥ पद्म कर्णिका बीज, ज्वालिनी, नन्दा, सूर्येशा, कामरूपा, गन्धमृत्तिका, वंश, घोर, दहन, प्लव तथा लम्ब ये सभी

पूजन के लिये बनाये गये हैं ।। ४-५ ।। गणपति का मन्त्र यह है—"लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्" । गणपति के पूजा में निम्न नाम वालों की पूजा करनी चाहिए । गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गण क्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्ब कुक्षि, विकट, विघ्न नाशन, धूम्र वर्ण महेन्द्र आदि ये सब गणपति के पूज्य नाम हैं जो कि बताये गये हैं ।। ६-७-८ ।।



३४—सूर्यपूजाकथनम्

वक्ष्ये सूर्यार्चनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम् ।
अहं तेजोमयः सूर्य इति ध्यात्वाऽर्घ्यमर्चयेत् ।।१
पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टविन्दुना ।
तं सपूज्य रवेरङ्गैः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ।।२
संप्रोक्ष्य तज्जलैर्द्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत् ।
ॐ अं मृद्वीजादि सर्वत्र पजनं दण्डिपिङ्गलौ ।।३
द्वारि दक्षे वामपार्श्वे ईशाने अङ्गणाय च ।
अग्नौ गुरुं पीठमध्ये प्रभूतं चाऽऽसनं यजेत् ।।४
अग्न्यादौ विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
सितरक्तपीतनीलवर्णान्सिंहनिभान्यजेत् ।।५
पद्ममध्ये रां च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रुं जयां क्रमात् ।
रूं भद्रां रें विभूतीश्च विमलां रैंममोघया ।।६
रों रौं विद्युता शक्ति पूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः ।
रं मध्ये अर्कासनं स्यात्सूर्यमूर्ति षडक्षरम् ।।७
ॐ हं खं खशोलकायेति यजेदावाह्य भास्करम् ।
ललाटाकृष्टमञ्जल्यां ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ।।८

श्री ईश्वर ने कहा—हे स्कन्द ! अब मैं कराङ्ग न्यास के साथ सूर्य की पूजा को बतलाऊँगा । मैं तेज से परिपूर्ण सूर्य हूँ । इस प्रकार से ध्यान

करके अर्घ्य देकर अर्चना करनी चाहिए ॥ १ ॥ रक्त वर्ण वाले ललाट मे आकृष्ट बिन्दु से पूरित करे उनको सूर्य के अङ्गों द्वारा भली भाँति पूजन करके रक्षा के लिये अवगुण्ठन करे ॥ २ ॥ उस जल से पूजा के द्रव्य का सम्प्रोक्षण करे फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके भानु का पूजन करना चाहिए । ॐ मृद्वीजआदि से सब जगह दण्डि पिङ्गलो का पूजन करना चाहिए ॥ ३ ॥ द्वार मे, दक्ष भाग मे, बाँये पार्श्व मे, ईशान में और आँगन के लिये अग्नि मे गुरु को और पीठ के मध्य में प्रभूत आमस का यजन करे ॥ ४ ॥ अग्नि आदि में विमल सार एवं परम सुख की आराधना करनी चाहिए । श्वेत, लाल, पीला, नीला वर्णों को जो कि सिंह के तुल्य हैं, यजन करे ॥ ५ ॥ पद्म के मध्य मे 'र्ग' को फिर दीप्त 'री' को—'रु' को, फिर क्रम से जया को, भद्रा 'रू' को, विभूति 'रे' को और अमोघ से विमल 'रै' को, 'रौं और रों' को, विद्युत् से शक्ति को जो पूर्व से आदि मे होने वाली सब ओर मुख रखने वाली हैं, मध्य मे र' सूर्य का आसन है और छै अक्षर वाली सूर्य की मूर्त्ति है उसका ध्यान करे ॥ ६–७ ॥ 'ओ३म् हं खं खखोल्काय'—इस मन्त्र के द्वारा भास्कर का आवाहन करके पूजन करना चाहिए । ललाट मे आकर्षण की हुई को अञ्जलि में ध्यान कर के लाल वर्ण वाले रवि का न्यास करे ॥८॥

ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमो मुद्रयाऽऽवाहनादिकम् ।
विधाय प्रीतये बिम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत् ॥९
पद्ममुद्रां बिम्बमुद्रां प्रदर्श्याग्नौ हृदीरितम् ।
ॐ आं हृदयाय नमः, अर्काय शिरसे तथा ॥१०
भूर्भुवः स्व सुरेशाय शिखायै नैर्ऋते यजेत् ।
हुँ कवचाय वायव्ये ह्रां नेत्रायेति मध्यतः ॥११
वः, अस्त्रायेति पूर्वादौ ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविषाणा च नेत्रयोः ॥१२
अस्त्रस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया ।
सो सोम चु बुधं वं च जीवं भ भार्गवं यजेत् ॥१३

"हां ह्रीं सः सूर्याय नमः"—इस मन्त्र से मुद्रा को दिखाते हुए अर्थात् आवाहन करने की जो मुद्रा होती है उसे बनाकर सूर्य का आवाहन आदि करे। सूर्य की प्रीति के लिये बिम्ब की मुद्रा करे और फिर उसे गन्धासन आदि देवे ॥ ९ ॥ पद्म की मुद्रा और बिम्ब की मुद्रा को प्रदर्शित करके अग्नि में हृदयादि का न्यास करे। जैसे—'ॐ आं हृदयाय नमः' यह कहते हुए हृदय पर हाथ रखे। इसी भाँति आगे बताये हुए न्यास भी करे। यथा—'अर्काय शिरसे'-'भूर्भुवः स्वः सुरेशाय शिखायै', इससे नैऋत्य दिशा में—'हुं कवचाय'-इससे वायव्य कोण में -'ह्रां नेत्राय', इससे मध्य में-'वः अस्त्राय'-इससे पूर्व आदि दिशा में न्यास करके फिर मुद्राओं को दिखावे। धेनु की मुद्रा को हृदय आदि में न्यास भाव के दिखाने वाली मुद्रा को नेत्रों में, अस्त्र की त्रासनी नाम वाली मुद्रा होती है उसे करनी चाहिए और ग्रहों की नमस्कार करने की मुद्रा होती है। (यहाँ पर केवल मुद्राओं के नाम दिये गये हैं, इनके बनाने की शिक्षा किसी ज्ञाता गुरु से ही प्राप्त कर लेनी चाहिए) निम्नलिखित बीज मन्त्रों के द्वारा ग्रहों का यजन करे—'सों' से चन्द्र को, 'बुं' से बुध को, 'बं' से गुरु को, 'भं' से शुक्र को पूजित करना चाहिए ॥ १०-११-१२-१३॥

दले पूर्वादिकेऽग्न्यादौम भौम श शनैश्चरम्।
रें राहुँ कें केतवे च गन्धाद्यं श्च खशोल्किना ॥१४
मूलं जप्त्वाऽर्घ्यपात्राम्बु दत्त्वा सूर्याय संस्तुतिः।
नत्वा पराङ्मुखं चार्क क्षमस्वेति ततो वदेत् ॥१५
शरानुना फडन्तेन समाहृत्याणुसंहृतिम्।
हृत्पद्मे शिव सूर्येति संहारिण्योपसंस्कृतिम् ॥१६
योजयेत्तेजश्चण्डाय रविनिर्माल्यमर्पयेत्।
अभ्यर्चेगजपाद्ध्यानाद्धोमात्सर्वं रवेर्भवेत् ॥१७

इस से पूर्वादि और अग्नि आदि दिशा में मं इससे मङ्गल को 'शं'-इस बीज से शनिश्चर को, 'रें' इससे राहु को और 'कें'-इससे केतु को खखोल्की मन्त्र के द्वारा गन्धासन आदि से यजन करना चाहिए ॥१४॥ फिर मूल मन्त्र का जप करे और अर्घ्य पात्र के जल से अर्घ्य देकर सूर्य भग-

वान् के लिये संस्तवन करे। फिर पण्ड मुख सूर्य को नमस्कार करके अन्त में 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करो, यह कहना चाहिए ॥ १५ ॥ फिर शराणु मन्त्र से जिसके अन्त में फट हो अणु-संहृति का समाहरण करके हृदय के पद्म में 'शिव सूर्य' इत्यादि संहारिणी मन्त्र से उप सस्कृति करे ॥ १६ ॥ तेज से प्रचण्ड के लिये रवि के निर्माल्य का अर्पण करे। अभ्यर्चना करके ईश जप-ध्यान और होम से पूर्ति करे जोकि सब सूय का होता है ॥ १७ ॥



३५--शिवपूजाविधिकथनम्

शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान् ।
द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत् ॥१
गणं सरस्वतीं लक्ष्मीमूर्ध्वोदुम्बरके यजेत् ।
नन्दिगङ्गे दक्षशाखे स्थिते वामगते यजेत् ॥२
महाकाल च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपाति तः ।
उत्सार्य दिव्यान्विघ्नांश्च पुष्पक्षेपान्तरिक्षगान् ॥३
दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भू मिष्ठान्यागमन्दिरम् ।
देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वै विशेत् ॥४
प्रविश्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बरे ।
ॐ हां वास्तवधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ॥५
निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गड्डुकान् ।
लब्धानुज्ञ शिवान्मौनी गङ्गादिकमनुव्रजेत् ॥६
पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन वारिणा ।
पूरयेदम्बुधो नास्तान्गायत्र्या हृदयेन वा ॥७
गन्धाक्षतपुष्पादिसर्वद्रव्यसमुच्चयम् ।
सनिधीकृत्य पूजार्थं भूतशुद्धयादि कारयेत् ॥८

ईश्वर ने कहा—अब मैं शिव की पूजा की विधि को बताऊँगा कि प्रणव और अर्घ्य वाला पूजक आचमन करके अस्त्र मन्त्र द्वारा जल से द्वार

का प्रोक्षण करे और फिर होम आदि द्वारपालों का यजन करना चाहिए । १।। गण का, सरस्वती का और लक्ष्मी का ऊर्ध्व उदुम्बर में यजन करना चाहिए । दक्षिण और वाम भाग में स्थित नन्दी और गङ्गा का यजन करे ॥ २ ॥ दिव्य दृष्टि के निपातन से यम काल का और यमुना का यजन करे । पुण्यों के क्षेत्र में और अन्तरिक्ष में रहने वाले दिव्य विघ्नों का उत्सारण करे अर्थात् हटा देवे ।। ३ ।। दक्ष पार्ष्णि से तीन घातों से अर्थात् दाहिनी पार्ष्णि से तीन घात करके भूमिष्ठों को, याग मन्दिर को और देहली को वाईं शाखा का आश्रय लेकर लाँघे अर्थात् पार करे ।। ४ ।। दाहिने पैर से प्रवेश करके उदुम्बर में अस्त्र का विन्यास करे और फिर 'ॐ ह्रां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे—इस से मध्य में यजन करना चाहिए ।। ५ ।। निरीक्षण आदि शास्त्रों से शुद्ध गड्डुकों को लेकर शिव से आज्ञा प्राप्त करे और आज्ञा प्राप्त करने वाला होकर मौन होते हुए गङ्गा आदि का अनुगमन करना चाहिए ।। ६ ।। प्रकर्ष रूप से जाप किये हुए वस्त्र से पवित्र जल से पवित्र अङ्गों वाला होकर गायत्री मन्त्र से अथवा हृदय से उन-उन को जल से पूरित कर देवे ।। ७ ।। गन्ध-अक्षत और पुष्प आदि समस्त पूजा के द्रव्यों के समुदाय को पूजा करने के लिये अपने समीप में रख कर फिर भूत शुद्धि आदि करनी चाहिए ।।८।।

देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः ।
सहारमुद्रयाऽऽदाय मूर्ध्नि मन्त्रेण धारयेत् ।।९
भोग्यकर्मोपभोगार्थं पाणिकच्छपिकाख्यया ।
हृदम्बुजे निजात्मानं द्वादशान्तपदेऽथ वा ।।१०
शोषयेत्पञ्च भूतानि संचिन्त्य सुषिरं तनौ ।
चरणाङ्गुष्ठयोर्युग्मात्सुषिरान्तर्बहिः स्मरेत् ।।११
शक्तिं हृद्व्यापिनी पश्चाध्दूंकारे पावकप्रभे ।
रन्ध्रमध्ये स्थिते कृत्वा प्राणरोधं हि चिन्तकः ।।१२
निवेशयेद्रेचकान्ते फडन्तेनाय तेन च ।
हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रे विभिद्य च ।।१३

ग्रन्थीन्निर्भिद्य हूंकारं मूर्ध्नि विन्यस्य जीवनम् ।
संपुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम् ॥१४
हूं शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं विन्द्वात्मकं स्मरेत् ।
कृत्वाऽथ कुम्भकं शंभावेकोद्घातेन योजयेत् ॥१५
रेचकेन बीजवत्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत् ।
प्रतिलोमं स्वदेहे तु विन्द्वन्तं तत्र विन्दुकम् ॥१६

सौम्य ग्रर्थात् पूर्व दिशा मे मुख करके देव के दक्षिण भाग में रख कर सहार मुद्रा के द्वारा शरीर से लाकर यन्त्र से मस्तक में धारण करना चाहिए ॥ ९ ॥ भोगने योग्य कर्मों के उपभोग करने के लिये पाणि कच्छरिका नाम वाली से हृदय के कमल मे अपनी ग्रात्मा को अथवा द्वादशान्त पद में पाँच भूतों का शोधन करे। शरीर में सुषिर (छिद्र) का चिन्तन करके चरणों के अँगूठो के जोड़ो को उस सुषिर के ग्रन्दर ग्रौर बाहिर स्मरण करना चाहिए ॥ १०–११ ॥ पीछे अग्नि के समान प्रभा वाले हुँकार मे हृदय में व्याप्त रहने वाली शक्ति को रन्ध्र (छिद्र) के मध्य में स्थित रहने पर ध्यान करने वाले को प्राणों का रोध करना चाहिए ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर फट् जिसके अन्त में हो ऐसे उससे एकान्त में निवेशित करना चाहिए और हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्र में विभेदन करके तथा ग्रन्थियों का विभेदन करके मूर्द्धा मे हुँकार का विन्यास करे। जीवन संपुट को हृदय से पूरक ग्रहित चेतन "हूं" को शिखा के ऊपर विशेष रूप मे न्यास करे ग्रोर फिर शुद्ध विन्दु के स्वरूप वाले का स्मरण करना चाहिए। इसके उपरान्त कुम्भक को करके एकोद्घात मे शम्भु मे योजित करे ॥ १३–१४–१५ ॥ रेचक के द्वारा बीजवती से शिव मे लीन होता हुआ अपने देह मे विन्दु के अन्त तक प्रतिलोम का शोधन करना चाहिए ग्रौर वहाँ विन्दुक का भी शोधन करे ॥१६॥

लयं नीत्वा महीवातौ जलवह्नी परस्परम् ।
द्वौ द्वौ साध्यौ तथाऽऽकाशमविरोधेन तच्छृणु ॥१७
पार्थिवं मण्डलं पीतं कठिनं वज्रलाञ्छितम् ।
हौमित्यात्मीयबीजेन तन्निवृत्तिकलामयम् ॥१८

कलामय करे। उद्घात युग्म से अर्थात् दो उद्घातों से चिन्तन करके पृथ्वी भूत का शोधन करना चाहिए ॥ २४ ॥

नमो बिन्दुमयं वृत्तं विन्दुशक्तिविभूषितम् ।
व्योमाकारं सुवृत्तं च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥२५
ह्रौंकारेण फडन्तेन शान्त्यतीतकलामयम् ।
ध्यात्वैकोद्घातयोगेन सु विशुद्धं विभावयेत् ॥२६
आप्याययेत्ततः सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा ।
आधाराख्यामनन्तं च धर्मज्ञानादिपङ्कजम् ॥२७
हृदाऽऽसनमिदं ध्यात्वा मूर्तिमावाहयेत्ततः ।
सृष्ट्या शिवमयं तस्यामात्मानं द्वादशान्ततः ॥२८
अथ तां शक्तिमन्त्रेण वौषडन्तेन सर्वतः ।
दिव्यामृतेन संप्लाव्य कुर्वीत सकलीकृतम् ॥२९
हृदयादिकरान्तेषु कनिष्ठाङ्गुलीषु च ।
हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ॥३०
अस्त्रेण रक्ष्य प्राकारं तनुत्रेणाथ तद्बहिः ।
शक्तिजालमधश्चोर्ध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३१
आपादमस्तकं यावद्भावपुष्पैः शिवं हृदि ।
पद्मे यजेत्पूरकेण आकृष्टामृतसद्घृतैः ॥३२
शिवमन्त्रैर्नाभिकुण्डे तर्पयेत शिवानलम् ।
ललाटे बिन्दुरूपं च चिन्तयेच्छुभविग्रहम् ॥३३

नभ (आकाश) बिन्दुमय, वृत्त और बिन्दु शक्ति से सुशोभित है। वह व्योम के आकार वाला, सुन्दर वृत्त से युक्त तथा शुद्ध स्फटिक मणि के समान निर्मल है। फट् जिसके अन्त में हो ऐसे ह्रौं कार से शान्त्यतीत कलामय का ध्यान कर एक उद्घात योग से उसके विशोधित होने का ध्यान करे ॥ २५-२६ ॥ इसके अनन्तर अमृत की वर्षा करने वाले मूल से सब को तृप्त करे। आधार इस नाम वाले, अनन्त और धर्म ज्ञान आदि पद्म को यह आसन है- ऐसा हृदय में ध्यान करके फिर मूर्ति का आवाहन करे। सृष्टि से शिवमय

आत्मा को द्वादशान्त से उसमे आवाहन करे ॥ २७-२८ ॥ इसके अनन्तर उसको वौषट् जिसके अन्त में लगा हो ऐसे शक्ति मन्त्र से दिव्यामृत के द्वारा सब ओर से संप्लावित (निमग्न) करके सकली करण करना चाहिए ॥२९॥ सकली करण उसे कहा जाता है जहाँ हृदय से लेकर करों के अन्त तक और कनिष्ठिका आदि अंगुलियों मे हृदादि मन्त्रों का विन्यास किया जाता है ॥३०॥ अस्त्र से प्राकार (चारों ओर की भित्ति) की रक्षा करके तथा तनुत्र से बाहिर शक्तिजाल की रक्षा करके नीचे और ऊपर महा मुद्रा को दिखावे ॥ ३१ ॥ चरण से लेकर मस्तक पर्यन्त हृदय में भावमय पुष्पों के द्वारा पद्म में शिर का यजन करना चाहिए । पूरक के द्वारा आकृष्ट अमृत से धारण किये हुए शिव मन्त्रों से शिव की अग्नि को नाभिकुण्ड में शान्त करे और ललाट में शुभ विग्रह वाले विन्दु रूप का चिन्तन करे ॥ ३३ ॥

एकं स्वर्णादिपात्राणां पात्रमस्त्राम्बुशोधितम् ।
विन्दुप्रसूनपीयूषरूपतोयाक्षतादिना ॥३४
हृदाऽऽपूर्य षडङ्गेन पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत् ।
सरक्ष्य हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत् ॥३५
रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्ग सेचयेद्धेनुमुद्रया ।
अभिषिञ्चेदथाऽऽत्मानं मूर्ध्नि तत्तोयविन्दुना ॥३६
तत्रस्थं यागसंभारं प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ।
अभिमन्त्र्य हृदा पिण्डैस्तनुत्राणेन वेष्टयेत् ॥३७
दर्शयित्वाऽमृतां मुद्रां पुष्पं दत्त्वा निजासने ।
विधाय तिलकं र्ध्नि पुष्पं मूलेन योजयेत् ॥३८
स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः ।
आवश्यके जपे धीरः सदा वाचयमो भवेत् ॥३९
नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा सुसंस्कृताम् ।
पूजामभ्यर्च्य गायत्र्या सामान्यार्घ्यमुपाहरेत् ॥४०

स्वर्ण के पात्रों में से एक पात्र को जोकि अस्त्राम्बु से शोधित किया हुआ हो विन्दु से निकले हुए अमृत रूपी जल और अक्षत आदि वाले हृदय से

आपूरित कर छः अङ्गों से अर्चना करके अभिमन्त्रित करना चाहिए। फिर हेति मन्त्र से संरक्षण करके कवच के द्वारा अवगुठन करे॥ ३४–३५॥ आठ अङ्गों वाले अर्घ्य की रचना करके धेनु मुद्रा से सेचन करना चाहिए। उस जल की विन्दु से अपने आपको माथे में अभिषिञ्चन करे॥ ३६॥ वहाँ पर रक्खा हुआ जो याग का सामान है उसे अस्त्र जल से प्रोक्षित करे। हृदय से अभिमन्त्रित करके तनुत्राण के द्वारा पिण्डों से वेष्टित करना चाहिए॥ ३७॥ अमृत मुद्रा को दिखा कर अपने आसन में पुष्प अर्पित करे। माथे पर तिलक करके मूल से पुष्प को योजित करे॥ ३८॥ स्नान करने के समय में देवता की पूजा करने के अवसर पर होम करने के समय में भोजन करने के वक्त याग और योग में तथा आवश्यक जप में धीर पुरुष को सर्वदा मौन रहना चाहिए॥ ३९॥ नाद जिसके अन्त में ऐसे उच्चारण से मन्त्र को शोधित करके सुसंस्कार से युक्त पूजा का अभ्यर्चन करे और गायत्री मन्त्र से सामान्य अर्घ्य को देवे॥ ४०॥

ब्रह्मपञ्चकमावर्त्य माल्यमादाय लिङ्गतः।
ऐशान्यां दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत्॥४१
प्रक्षाल्य पिण्डिकालिङ्गे अस्त्रतोये ततो हृदा।
अर्घ्यपात्राम्बुना सिञ्चेदिति लिङ्गविशोधनम्॥४२
आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धौ सर्वान्सुरान्यजेत्।
वायव्ये गणपतये हृा गुरुभ्योऽर्चयेच्छिवे॥४३
आधारशक्तिमङ्कुरनिभां कूर्मशिलास्थिताम्।
यजेद् ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम्॥४४
विचित्रकेसरिप्रख्यामन्योन्यं पृष्ठदर्शिनः।
कृतत्रेतादिरूपेण शिवस्याऽऽसनपादुकाम्॥४५
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चाग्निदिङ्मुखान्।
कर्पूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान्यजेत्क्रमात्॥४६
पद्मं च कर्णिकामध्ये पूर्वादौ मध्यता नव।
वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः॥४७

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारिणी।
बलविकारणी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ॥४८

ब्रह्म पञ्चक की आवृत्ति करके लिङ्ग से माला लेकर ईशान दिशा में हृदय के द्वारा चण्ड के लिये निवेदन करना चाहिए ॥ ४१ ॥ पिण्डिका लिङ्ग अस्त्र तोय में हृदय से ही प्रक्षालन करके अर्घ्य पात्र के जल से सिञ्चन करे। यह लिङ्ग का विशोधन होता है ॥ ४२ ॥ अपनी आत्मा की, द्रव्यों की, मन्त्र की तथा लिङ्ग की शुद्धि हो जाने पर समस्त देवों का यजन करना चाहिए। वायव्य दिशा में गणपति की ओर हे शिवे ! 'ह्लां''–इस बीज से गुरु वृन्द की अर्चना करे ॥ ४३ ॥ कूर्म शिला पर स्थित अंकुर के तुल्य आधार शक्ति का यजन करे। ब्रह्म शिला पर आरूढ़ शिव के अनन्त आसन का यजन करे ॥ ४४ ॥ विचित्र केसरी के नाम से प्रसिद्ध परस्पर में पृष्ठ दर्शी की कृत (सत् युग) और त्रेता आदि के रूप से शिव की आसन पादुका को, धर्म को, ज्ञान को, वैराग्य को, ऐश्वर्य को और कपूर, रोली, सुवर्ण तथा काजल की आभा वाले दिशाओं के मुखों का यजन क्रम से करना चाहिए ॥ ४५–४६ ॥ पूर्व आदि दिशाओं में कर्णिका के मध्य में पद्म का यजन करे तथा मध्य से जो नौ शक्तियाँ हैं और वो वर देने वाली, अभय देने वाले हाथों वाली, चमर धारण करने वाली जिनके नाम, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली कलविकारिणी, बलविकारिणी और प्रमथनी क्रम से ये हैं उन सब का पूजन करना चाहिए। ॥ ४६–४७–४८ ॥

ह्रां सर्वभूतदमनी केसराग्रे मनोन्मनी।
क्षित्यादिशुद्धविद्यां तु तत्त्वव्यापकमासनम् ॥४९
न्यसेत्सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम्।
दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ॥५०
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः।
डमरुं बीजपूरं च नीलाब्जं सूत्रमुत्पलम् ॥५१
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतां शैवीं मूर्ति तु मध्यतः।
ह्रां ह्रं ह्रां शिवमूर्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ॥५२

ब्रह्मादिकारणत्यागाम्मन्त्र नीत्वा शिवास्पदम् ।
ततो ललाटमध्यस्थं स्फुरत्ताराप्रतिप्रभम् ॥५३
षडङ्गेन समाकीर्णं बिन्दुरूपं परं शिवम् ।
पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्यमूर्तौ निवेशयेत् ॥५४
ॐ हां हौं शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः ।
आवाह्य स्थाप्य स्थापन्या सनिधायान्तिकं शिवम् ॥५५
निरोधयेन्निष्ठुरया कालकान्त्या फडन्ततः ।
विघ्नानुत्सार्य मुष्ट्याऽथ लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिम् ॥५६

उन नौ शक्तियों में एक हौं सर्व भूत दमनी और केसरों के अग्र भाग में एक मनोन्मनी नाम वाली मे इस प्रकार से ये नौ शक्तियाँ हुईं। क्षिति आदि शुद्ध विद्या और तत्त्व व्यापक आसन का यजन करे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर सिंहासन पर देव का न्यास करे जो शुक्ल वर्ण वाले, पाँच मुखों से युक्त, विभु (व्यापक) दश बाहुओं से समन्वित और दक्षिण (दाहिने) हाथों से खण्ड चन्द्र को धारण करने वाले हैं ॥ ५० ॥ बाँये हाथों से शक्ति, ऋषि, शूल, खट्वाङ्ग और वरदान तथा नील कमल, बीजपूर और उत्पल सूत्र धारण करने वाले हैं। इस तरह बत्तीस लक्षणों से युक्त भगवान् शिव की मूर्त्ति को मध्य मे "हां हं हौं शिव मूर्तये" -इस मन्त्र का उच्चारण करके अपने ही प्रकाश वाले शिव का स्मरण करे ॥ ५१–५२ ॥ ब्रह्म आदि कारण को त्याग करने से शिव के स्थान मन्त्र को ग्रहण करे और ललाट के मध्य मे स्थित चमकते हुए तारा की प्रतिभा वाला तथा छैं अङ्गों से समाकीर्ण बिन्दु के स्वरूप वाले शिव को पुष्पाञ्जलि में रहते हुए का ध्यान करे और लक्ष्य मूर्त्ति मे निवेशित कर देना चाहिए ॥ ५३–५४ ॥ इसके उपरान्त—"ॐ हां हौं शिवाय नमः"—इस मन्त्र के द्वारा आवाहनी मुद्रा से हृदय में आवाहन करके फिर स्थापनी मुद्रा से समीप मे सन्निधान करके शिव को स्थापित करना चाहिए ॥ ५५ ॥ काल कान्ति निष्ठुर मुद्रा से निरोध करके अन्त में 'फट्'—इस से मुष्टि मुद्रा के द्वारा समस्त विघ्नों को उत्सारण करे अर्थात् हटा देवे। तत्पश्चात् लिंग मुद्रा और नमस्कृति को करे ॥ ५६ ॥

हृदाऽवगुण्ठयेत्पश्चादावाहः संमुखी खतः ।
निवेशनं स्थापनं स्यात्संनिधानं तवास्मि भोः ॥५७
आकर्मकाण्डपर्यन्तं संनिधेर्योऽपरिक्षयः ।
स्वभक्तेश्च प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम् ॥५८
मकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः पड्भिरयैकताम् ।
अङ्गानामङ्गिना सार्धं विदध्यादमृतीकृतम् ॥५९
चिच्छक्तिहृदयं शंभोः शिव ऐश्वर्यमष्टधा ।
शिखा वशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ॥६०
प्रतापो दुःमहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् ।
नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट् चेति यथाक्रमम् ॥६१
हृत्पुरसरमुच्चार्य पाद्यादीनि निवेदयेत् ।
पाद्यं पादाम्बुजद्वंद्वे वक्त्रे स्वाचमनीयकम् ॥६२

फिर हृदय मे अवगुण्ठन करना चाहिए । अवगुण्ठन किस को कहते है यहाँ पर यह स्पष्ट किया जाता है कि आवाहन, सम्मुखी करण, निवेशन, स्थापन और आपका सन्निधान मैं करता हूँ । इस कर्म काण्ड के पूर्ण होने तक जो देव की सन्निधि का परिक्षय न होना और जो स्वभक्ति का प्रकाश होता है वही अवगुण्ठन कहा जाता है ।। ५७–५८ ।। छै मन्त्रों के द्वारा सकली करण करे और अङ्गी के साथ अगों की एकता करे ; यही अमृतीकरण नाम से कहा जाता है । इसे करना चाहिए ।। ५९ ।। शम्भु का चिच्छक्ति हृदय है और शिव के आठ प्रकार का ऐश्वर्य होता है । शिखा वशित्व, अभेद्य तेज, ऐश्वर कवच, दुःसह प्रताप, विघ्नों के अपहरण करने वाला अस्त्र । नमः स्वधा, स्वाहा और वौषट् के क्रम के अनुसार हृत पूर्वक उच्चारण करके जैसे हृदयाय नमः इसी विधि से कह कर पाद्य आदि को निवेदित करना चाहिए । दोनों चरण कमलों में पाद्य को समर्पित करे और मुख में आचमनीय समर्पित करना चाहिए ।। ६० ६१–६२ ।।

अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्वापुष्पाक्षतानि च ।
एवं संस्कृत्य संस्कारैर्दशभिः परमेश्वरम् ॥६३

यजेत्पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः ।
अभ्युक्ष्योद्वर्त्य निर्मृज्य राजिकालवणादिभिः ॥६४
अर्घ्योदविन्दुपुष्पाद्यं गंडूकैः स्नापयेच्छनैः ।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यं रनुक्रमात् ॥६५
ईशादिमन्त्रितैर्भुक्त्यै मुक्त्यै तेषां विपर्ययः ।
तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नपयेच्छिवम् ॥६६
विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलैर्जलैः ।
स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ॥६७
निर्मार्ज्यार्घ्यं प्रदद्यान्न नोपरि भ्रामयेत्करम् ।
न शून्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्यात्ततो ददेत् ॥६८
चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्राच्यं शिवाणुना ।
धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य शिवाणुना ॥६९
अस्त्रेण पूजितां घण्टां चाऽऽदाय गुग्गुलं दहेत् ।
दद्यादाचमनं पश्चात्सुधामं हृदयाणुना ॥७०
आरात्रिकं समुत्तार्य तथैवाऽऽचामयेत्पुनः ।
प्रणम्याऽऽदाय देवाज्ञां भोगाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥७१

देवता के शिर में अर्घ्य और दूब पुष्प और अक्षतों को समर्पित करे। इस प्रकार से दश संस्कारों द्वारा परमेश्वर का संस्कार करके फिर कुसुम आदि पाँच उपचारों से विधि के साथ यजन करना चाहिए। राजिका (राई) और लवण आदि से अभ्युक्षण-उद्वर्त्तन और निर्मृजन करना चाहिए ॥ ६३ ६४ ॥ अर्घ्य के जल की विन्दु और पुष्प आदि से गड्डूकों से धीरे-धीरे स्नान करावे और फिर दूध-दही, घृत, मधु, शक्कर आदि से यथा क्रम अभिषेक करावे। भुक्ति और मुक्ति के लिये उनका विपर्यय होता है ऐसे ईशादि से मन्त्रित किये द्रव्यों से स्नपन करावे। जल और धूप आदि सब मूल मन्त्र से करे। इस विधि से शिव का स्नपन करावे ॥ ६५-६६ ॥ जौ के चून से विरूक्षण करके फिर शीतल जल से जो भी अभीष्ट हो अपनी शक्ति से सुगन्धित जल से स्नान कराकर फिर शुद्ध वस्त्र से पोंछ कर अर्घ्य देना चाहिए। हाथ

को ऊपर में नहीं घुमावे और शून्य मस्तक वाले लिङ्ग पर भी न करे। पहिले पुष्प समर्पित करे फिर अर्घ्य देना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥ शिव मन्त्र से पुष्प एवं चन्दन आदि के द्वारा पूजन करे। धूप के पात्र को अस्त्र से प्रोक्षण करके शिव मन्त्र से अभ्यर्चन करे। अस्त्र के द्वारा घण्टा को पूजित करे और गुग्गुल जलावे। फिर शिव मन्त्र से आचमन देना चाहिए। इसके पश्चात् आरती उतारे और पुनः आचमन करावे। प्रणाम करके देवता के आगे विनय के साथ आज्ञा पाने की प्रार्थना करके फिर भोग के अंगों का पूजन करे। ॥ ६९-७०-७१ ॥

हृदग्नौ चन्द्रन चैशे शिवं चामीकरप्रभम्।
शिखां रक्तां च नैर्ऋत्ये कृष्णं चर्म च वायवे। ७२
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं दत्तस्यान्पूजयेदिमान्।
दंष्ट्राकरालमप्यस्त्वं पूर्वादौ वज्रसंनिभम् ॥७३
मूले ह्रौं शिवाय नमः, ॐ हां ह्रूं ह्रः शिरश्च।
ह्रूं शिखा ह्रैं वर्म चास्त्रं परिवारयुताय च। ७४
शिवाय दद्यात्पाद्यं आचामं चार्घमेव च।
गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ॥७५
करोद्वर्तनताम्बूलं मुखवासं च दर्पणम्।
शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ॥७६

हृदाग्नि में अर्थात् अग्नि दिशा में चन्द्र की प्रभा से युक्त को ऐश में अर्थात् ईशान में सुवर्ण के समान प्रभा वाले को, नैर्ऋत्य में रक्त शिखा को और वायव्य में कृष्ण चर्म को पूजित करे ॥ ७२ ॥ चार मुख वाले और चार बाहु वाले को इन सब को दशों में शिवों को अर्चित करना चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं में दंष्ट्रा कराल अस्त्र और वज्र के तुल्य की पूजा करे ॥ ७३ ॥ मूल में 'ह्रौं शिवाय नमः' और शिर "ॐ ह्रां ह्रूं ह्रीं ह्रौं" शिखा, "ह्रूं", वर्म "ह्रैं" और अस्त्र "परिवारयुताय" इन उक्त मन्त्रों से अर्चन करना चाहिए। ॥ ७४ ॥ फिर भगवान् शिव के लिये पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, मुख शुद्धयर्थ आचमन, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुख

वास, दर्पण ये सब देवता के शिर में आरोपित करे और दूर्वा तथा अक्षत भी रक्खे ॥ ७५-७६ ॥

मूलमष्टशत जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितम् ।
चर्मणा वेष्टितं खड्गरक्षितं कुशपुष्पकः ॥७७
अक्षतैर्मुद्रया युक्त शिवमुद्भवसंज्ञया ।
गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृत जपम् ॥७८
सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ।
भोगी श्लोकं पठित्वा तु दक्षहस्तेन शंभवे ॥७९
मूलाणुनाऽर्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत् ।
यत्किंचित्कुमहे देव सदा सुकृतदुष्कृतम् ॥८०
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शकर ।
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥८१
शिवः जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ।
श्लोकद्वयमधील्यैवं जप देवाय चार्पयेत् ॥८२
शिवाङ्गानां दशांश च दत्त्वाऽर्घ्य स्तुतिमाचरेत् ।
प्रदक्षिणाकृत्य नमेच्चाष्टाङ्ग चाष्टमूर्तये ॥८३
नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्रेऽनलादिषु ॥८४

अष्टोत्तर शत मूल मन्त्र का जप करके हृदय से अभिमन्त्रित चर्म से वेष्टित और कुशा-पुष्प तथा अक्षतों से खड्गरक्षित करके उद्भव संज्ञा वाली मुद्रा से युक्त शिव से प्रार्थना करे—हे शिव ! गुह्य से भी गुह्य की रक्षा के लिये मेरे द्वारा किये हुए जप को ग्रहण कीजिएगा जिससे आपके स्थित होते हुए आपके प्रसाद से मेरी सिद्धि हो जावे । इस पद्य में दी हुई प्रार्थना को भोगी पढ़े और इसके पश्चात् अपने दाहिने हाथ से शम्भु के लिये मूल मन्त्र से अर्घ्य के जल से वरदान देने वाले शिव के हाथ में समर्पित करे । इसके पश्चात् फिर प्रार्थना करे कि—हे शङ्कर ! हे देव ! हम जो भी कुछ सुकृत और दुष्कृत सदा करते हैं उस भगवान् शिव के पद में स्थित मेरे सब को 'हूं और क्षः' नष्ट कर देवें । शिव दाता हैं और शिव ही भोक्ता हैं यह समस्त

जगत् भी शिव स्वरूप है ॥ ७७–७८–७९–८०–८१ ॥ शिव की सब जगह जय होती है। जो शिव है वही मैं हूं। इन दो श्लोकों को शिव के आगे पढ़ कर जप को देव के लिये अर्पण करे ॥ ८२ ॥ शिवाङ्गों के दशांश और अर्घ्य देकर शिव की स्तुति करे। शिव की प्रदक्षिणा करके अष्टमूर्त्ति भगवान् शिव के लिये अष्ट अंगों को भूमि पर स्पर्श कराकर नमस्कार करे ॥ ८३ ॥ शिव में अनलादि में नमस्कार करके ध्यान आदि के द्वारा यजन करना चाहिए ॥८४॥



३६–चण्डपूजा

ततः शिवान्तिकं गत्वा पूजाहोमादिकं मम ।
गृहाण भगवन्पुण्यफल मत्यभिधाय च ॥१
अर्घ्योदकेन देवाय मुद्रयोद्भवसंज्ञया ।
हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयत् ॥२
ततः पूर्ववदभ्यर्च्य स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च ।
अर्घ्यं पराङ्मुखं दत्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च ॥३
नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फडन्तेनाऽऽत्मसंचयम् ।
संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्तिमन्त्रेण योजयेत् ॥४
स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्रसंहारमात्मान ।
नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम् । ५
ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये ।
ॐ धवलचण्डेश्वराय हूं फट्स्वाहा तमाह्वयेत् ॥६
चण्डहृदयाय हूं फडों चण्डशिरसे तथा ।
ॐ चण्डशिखायै हूं फटचण्डायुष्कवचाय च ॥७
चण्डास्त्राय तथा हूं फट्चण्ड रुद्राग्निजं स्मरेत् ।
शूलटङ्कधरं कृष्णं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥८
टङ्काकारेऽर्धचन्द्रे वा चतुर्वक्त्रं प्रपूजयेत् ।
यथाशक्ति जप कुर्यादङ्गानां तु दशांशतः ।९

अब चण्ड पूजा के विषय में बतलाते हैं। ईश्वर ने कहा -इसके अनन्तर भगवान् शिव के समीप में जाकर प्रार्थना करे--हे भगवान् मेरी पूजा तथा होम आदि जो कुछ भी पुण्य का फल है उसे आप ग्रहण कीजिएगा। यह कह कर अर्घोदक से उद्भूत मज्ञा वाली मुद्रा के द्वारा स्थिर चित्त वाला होकर हृद्बीज पूर्वक मूल मन्त्र से देव के लिये निवेदन कर देना चाहिए। ।। १-२ ।। इसके अनन्तर पूर्व की भाँति अर्चना करके तथा स्तोत्रों से स्तुति करके और प्रणाम करके पराङ् मुख अर्घ्य देकर 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करो यह कहना चाहिए ।। ३ ।। नाराच मुद्रा से फट् जिसके अन्त में हो ऐसे अस्त्र से आत्म संचय का संहार करके दिव्या मुद्रा से मूर्ति मन्त्र के द्वारा लिङ्ग पर आत्मा में मन्त्र संहार को नियोजित कर उक्त विधि से चण्ड का पूजन करना चाहिए ।। ५ ।। 'ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यता चण्ड मूर्त्तये। ॐ धवल चण्डेश्वराय हूँ फट् स्वाहा'' —इस मन्त्र से उसका आवाहन करना चाहिए ।। ६ ।। ''ॐ चण्ड हृदयाय हैं फट् ''ॐ चण्ड शिरसे हूँ फट्—ॐ चण्ड शिखायै हूँ फट्×ॐ चण्डायुत्तवचाय हूँ फट्— ॐ चण्डास्त्राय हूँ फट्—इन मन्त्रों के द्वारा रुद्र की क्रोधाग्नि से जन्म ग्रहण करने वाले चण्ड का स्मरण करना चाहिए। शूल टङ्क धनु, कृपाण, साक्ष सूत्र कमण्डलु का टङ्काकार में अथवा अर्ध चन्द्र में चार मुख वाले का पूजन करना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार जाप करे तथा अङ्गों का दशांश करे ।। ७-८-९ ।।

गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम् ।
विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ।।१०
लेह्यचोष्याद्यसवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम् ।
निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं प्रदत्तं तु शिवाज्ञया ।।११
सर्वमेतत्क्रियाकाण्ड मया चण्ड तवाऽऽज्ञया ।
न्यूनाधिकं कृतं मोहात्परिपूर्णं सदाऽस्तु मे ।।१२
इति विज्ञाप्य देवेशं दत्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन् ।
संहारमूर्तिमन्त्रेण शनैः संहारमुद्रया ।।१३

पूरकान्वित मूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत् ।
निर्माल्यापनयस्थानं लिम्पेद् गोमयवारिणा ॥१४
प्रोक्ष्यार्घ्यादि विसृज्याथ आचान्तोऽन्यत्समाचरेत् ॥१५

गो–भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि मणि और हेमादि के भूषण को छोड़ कर शेष निर्माल्य चण्डेश के लिये निवेदिन कर देना चाहिए ॥ १० ॥ लेह्य (चाटने के योग्य) और चोष्य (चूसने के योग्य) आदि भक्ष्य–भोज्य श्रेष्ठ अन्न, ताम्बूल, माला, चन्दनादि लेपन की सामग्री, निर्माल्य, भोजन आपके लिये भगवान् शिव की आज्ञा से प्रदान किया है। यह समस्त कर्म-काण्ड हे चण्ड ! मुझ से कुछ भी कमी या अधिकता हो गई हो तो मैं यह आप से प्रार्थना करता हूँ कि वह सब–परिपूर्ण हो जावे ॥ ११–१२ ॥ इस प्रकार से देवेश की सेवा में विज्ञापन करके फिर अर्घ्य देवे और उसका स्मरण करते हुए संहार मूर्त्ति मन्त्र के द्वारा शर्मों से संहार मुद्रा से पूरक से अन्वित मूल के द्वारा मन्त्रों को आत्मा में योजित करना चाहिए तथा निर्माल्य के अपनयन (हटाने) के स्थान को गोमय (गोबर) जल से लीप देवे । प्रोक्षण करके अर्घ्य आदि का विसर्जन करे और अन्त में आचमन कर फिर अन्य कार्य करना चाहिए ॥ १३–१४–१५ ॥



३७–कपिलापूजनम्

कपिलापूजनं वक्ष्ये एभिर्मन्त्रैर्यजेच्च गाम् ।
ॐ कपिले नन्दे नमः कपिले भद्रिके नमः ॥१
कपिले सुशीले नमः कपिले सुरभिप्रभे ।
ॐ कपिले सुमनसे भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ॥२
सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे ।
गृहाण वरदे ग्रासमीप्सितार्थं च देहि मे ॥३
वन्दिताऽसि वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता ।
कपिले हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥५
दत्तं गृहाण मे ग्रासं जप्त्वाऽस्यां निर्मलः शिवः ।
प्रार्च्य विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमेन्नरः ॥६
यजेत्स्नात्वा तु मध्यान्हे अष्टपुष्पिकया शिवम् ।
पीठमूर्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ॥७
मध्यान्हे भोजमागारे सुलिप्तं पाकमानयेत् ।
ततो मृत्युंजयेनैव वौषडन्तेन सप्तधा ॥८
जप्तं. सदर्भशङ्खस्थैः सिञ्चेत्तं वारिविन्दुभिः ।
सर्वपाकाग्रमुधृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥९

श्री ईश्वर ने कहा—अब मैं कपिला गौ के विशेष पूजा के विषय मे बताऊँगा। इन नीचे बनाये हुए मन्त्रों से गौ की अर्चना करनी चाहिए। मन्त्र—'ॐ कपिले ! नन्दे ! नमः, कपिले ! भद्रि के ! नमः ॥ १ ॥ अर्थात् हे कपिला गौ ! मेरा आपके लिये नमस्कार है। "कपिले ! सुशीले ! नमः, कपिले ! सुरभिप्रभे। ॐ कपिले ! सुमनसे ! भुक्ति-मुक्ति प्रदे ! नमः ॥२॥ अर्थात् सुरभि गौ के समान प्रभावशाली तथा सुन्दर मन वाली, अच्छे शान्त स्वभाव रखने वाली और भोग एवं मोक्ष दोनों को प्रदान कर देने वाली हे कपिला गौ ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। "सौरभेयि ! जगन्मातः देवानाममृत प्रदे ! गृह्यण वर दे ! ग्रासमीप्सितार्थं च देहिमे ॥ ३ ॥ अर्थात् हे जगत् की माता कपिला गौ ! तू देवों को भी अमृत का प्रदान करने वाली है। हे वरदान देने वाली ! यह मेरा समर्पित किया हुआ ग्रास ग्रहण करो और मेरे अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति कर दो। आप वसिष्ठ मुनि के द्वारा वन्दना की गई हो तथा विश्वामित्र ऋषि के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् हैं वन्दित हुई हो हे कपिले ! आप मेरे पापों को दूर कर दो जो भी कुछ मैंने अपने इस जीवन में दुष्कृत किये हो ॥ ४ ॥ गौएँ मेरे सामने नित्य रहें और गौएँ मेरे पीछे भी निवास करें तथा गौओं का निवास सर्वदा मेरे हृदय में रहे और गौओं के मध्य में ही सदा वास करूँ ॥ ५ ॥ मेरे समर्पित किये हुए ग्रास को

आप ग्रहण करो। इस प्रकार से जप करके अर्थात् मन्त्रों को पढ़ कर यह ध्यान करे कि इसमे निर्मल शिव हैं। विद्या पुस्तकों का यजन करके फिर मनुष्य को श्री गुरु के चरणों में नमस्कार करना चाहिए। ६ ॥ स्नान करके मध्याह्न में अष्ट पुष्पिका से शिव का यजन करना चाहिए। पीठ मूर्ति शिव के अङ्गों की पूजा भी अष्ट पुष्पिका होती है ॥ ७ ॥ दोपहर के समय में भोजनागार जो हो उसे भली भाँति लीप कर पाक वहाँ पर लावे। फिर "वौषट्" इस को अन्त में लगा कर मृत्युञ्जय मन्त्र के द्वारा ही सात वार जप करके हाथ में डाभ रख कर उनमें जल की बूंदो द्वारा सिञ्चन करना चाहिए। फिर समस्त पाक सामग्री को लाकर भगवान् शिव के लिये समर्पित कर देना चाहिए ॥ ८-९ ॥

अथार्घ चुल्लिकाहोमे विधानायोपकल्पयेत्।
विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्नि पूरकाहुतिम् ॥१०
हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना।
वह्निबीजं समादाय कादिरथानेगनिक्रमात् ॥११
शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नौ निवेशयेत्।
ॐ हामग्नये नमो वै हां सोमाय वं नमः ॥१२
सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः।
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः सर्वविश्वेभ्य एव च ॥१३
हामग्नये स्विष्टकृते पूर्वादावर्चयेदिमान्।
स्वाहान्तमाहुतिं दत्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत् ॥१४
चुल्ल्या दक्षिणबाहौ च यजेद्धर्माय वै नमः।
वामबाहावधर्माय काञ्जिकादिकभाण्डके ॥१५
रमपरिवर्तमानाय वरुणाय जलाश्रये।
विघ्नराजे गृहद्वारे पेषण्यां सुभगे नमः ॥१६

इसके अनन्तर चुल्लिका (चूल्हा) के होम में अर्घ देवे और पूरे विधान के लिये समस्त कल्पना करे। विधि के साथ शोधन कर चुल्ही और वह्नि में पूरक आहुति देवे ॥ १० ॥ हवन करके नाभ्यग्नि से एक आहुति

देवे फिर रेचक वायु के द्वारा वह्नि बीज को लाकर आदि स्थान के गति-क्रम से इसका समादान करे ।। ११ ।। उस अग्नि को यह समझ कर तथा ध्यान करके कि यह शिवाग्नि है फिर उसे चूल्हे की अग्नि मे निवेशित करना चाहिए । नीचे लिखे हुए मन्त्रों का उच्चारण करे—"ॐ हामग्नये नमो वै हाँ, सोमाय वै नमः" - सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः । सर्वेभ्यश्च देवेभ्यः सर्वे विश्वेभ्य एवच ह्रामग्नये स्विष्टकृते" । इन सब का पूर्व की भाँति अर्चन करना चाहिए । 'स्वाहा'—इस शब्द को अन्त मे लगा कर आहुति देवे और क्षमा प्रार्थना कर फिर विसर्जन कर देना चाहिए ।। १२-१३-१४ ।। चूल्हे के दक्षिण बाहु मे "धर्माय वै नमः"—इस मन्त्र से यजन करे । वाम भाग के बाहु मे ' अधर्माय वै नमः"—इस मन्त्र से यजन करना चाहिए । काञ्जकादि-भाण्ड मे रस परिवर्त्तमान के लिये तथा जलाशय मे वरुण के लिये तथा गृह के द्वार पर विघ्नराज के लिये एवं पेषणी (चक्की) मे सुभग के लिये नमस्कार है । इस प्रकार से भिन्न २ स्थलों मे भिन्न २ देवों का यजन करना चाहिए । ।। १५-१६ ।।

ॐ रौद्रिके गिरिके च नमश्चोलूखले यजेत् ।
बलिप्रियायाऽऽयुधाय मस्ते मुसले यजेत् । १७
संमार्जन्या देवताक्तं कामाय शयनीयके ।
मध्यस्तम्बे च स्कन्दाय दत्वा वास्तुबलिं ततः ।।१८
भुञ्जीत पात्रे सौवर्णे पचिन्यादिदलादिके ।
आचार्यः साधकः पुत्रः समयी मौनमास्थितः ।।१६
वटाश्वत्थार्कवातारिसर्जभल्लातकांस्त्यजेत् ।
आपोशानं पुराऽऽदाय प्राणाद्यैः प्रणवान्वितैः ।।२०
स्वाहान्ते चाऽऽहुतीः पञ्च दत्वाऽऽदीप्योदरानलम् ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः ।।२१
एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहाऽऽपोशानवारिणा ।
भक्तादिकं निवेद्याथ पिबेच्छेषोदकं नरः ।।२२

अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतीस्ततो ददेत् ।
प्राणाय स्वाहाऽपानाय समानाय ततस्तथा ॥२३
उदानाय च व्यानाय भुक्त्वा चुल्लकमाचरेत् ।
अमृतापिधानमसीति शरीरेऽन्नादनाय च ॥२४

"ॐ रौद्रिके गिरिके च नमः" इस मन्त्र से उलूखल में यजन करना चाहिए। "वलि प्रियाय प्रायुधाय नमः"—इस मन्त्र से मुसल में यजन करें। ॥ १७ ॥ संमार्जनी (बुहारी) में देवतोक्त का तथा शय्या में काम के लिये और मध्यस्तम्भ में स्कन्द के लिये वास्तु बलि देकर फिर सोने के पात्र में या कमलिनी आदि के दल में स्वयं भोजन करना चाहिए। आचार्य-साधक-पुत्र और समयी इनको मौन व्रत में आस्थित रहना चाहिए ॥ १८-१९ ॥ वट, पीपल, अर्क, वातारिसर्ज और भिलावों का त्याग कर देवें। पहिले अपोशान लेकर प्रणव से युक्त तथा जिनके अन्त में 'स्वाहा'- यह होना चाहिए। यथा- 'ॐ प्राणाय स्वाहा'—इस प्रकार से पाँच आहुतियाँ देकर उदर की अग्नि को दीप्त करे। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय ये पाँच उपवायु हैं। इनको 'स्वाहा' लगा कर अपोशान जल से भक्त (भात) आदि देवे फिर शेष जल को स्वयं पी लेना चाहिए ॥ २०-२१-२२ ॥ इसके अनन्तर 'अमृतोपस्तरण मसि' इससे प्राणाहुतियाँ निम्न प्रकार देवेप्राणाय स्वाहा—व्यानाय स्वाहा—समानाय स्वाहा-उदानाय स्वाहा-अपानाय स्वाहा—इन मन्त्रों के द्वारा खाकर चुल्लुक लेवे। शरीर में अन्न के आदान के लिए 'अमृता पिधान मसि'—यह मन्त्र उच्चरित करे ।२३-२४ ॥



३८—संस्कारदीक्षाविधिः

वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु षण्मुख ।
आवाहयेन्महेशस्य वह्निस्थस्य शिवौ हृदि ॥१
संश्लिष्टौ तौ समभ्यर्च्य संतर्प्य हृदयाणुना ।
तयोः संनिधये दद्यात्तेनैवाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥२

उत्थापन च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःसरा ।
यस्यां तु लिङ्गमारोप्य संस्कारः क्रियते बुधैः ।।४
आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्ण्वादिकस्य च ।
आसु सर्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ।।५
यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चधा ।
परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्यात्प्रासादकाम्यया ।।६
शुक्लाऽऽज्यगन्धा रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी ।
पीता कृष्ण. सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात् ।।७
पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते ।
आखाते हास्तिके यस्याः पूर्णे मृदधिका भवेत् ।।८
उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम् ।
अस्थ्यङ्गरादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद् गुरुः ।।६

अब संक्षेप से प्रतिष्ठा की विधि बतलाई जाती है। श्री ईश्वर ने कहा—हे गुह ! अब मैं क्रम से एवं संक्षेप से प्रतिष्ठा को बतलाऊँगा। पीठ, शक्ति, शिव, लिङ्ग और शिव मन्त्रों से उसका योग, ये प्रतिष्ठा के पाँच भेद होने हैं। अब मैं उन सब का क्या रूप है—यह बताता हूँ। जहाँ पर ब्रह्म शिला का योग होता हैं वह विशेष रूप से प्रतिष्ठा कही जाती है ।। १–२ ।। यथायोग पीठ पर ही निवेशन करना स्थापन कहा जाता है। भिन्न पीठ की जो प्रतिष्ठा है वह स्थित स्थापन कहा जाता है। ३ ।। जो उत्थापन होता है वह लिङ्ग के उद्धार पूर्वक कही जाती है और जिसमें लिङ्ग का आरोपण करके विद्वान् पुरुषों के द्वारा संस्कार किया जाता है वह आस्थापन होता है। वह विष्णु आदि का दो प्रकार से उद्दिष्ट किया गया है। इन सब में चैतन्य परं शिव को नियुक्त करे ।। ४–५ ।। प्रासाद की कामना से आधार आदि के भेद से प्रासादों में भी पृथ्वी की रुचि प्रकार से परीक्षा करनी चाहिए ।। ६ ।। विप्र आदि की पृथ्वी शुक्ला, आज्य गन्धा, रक्ता, रक्तगन्धा, सुगन्धिनी, पीता कृष्णा और सुरागन्धा क्रम से होती है ।। ७ ।। पूर्व, ईशान और उत्तर इन सब में पूर्वा दिशा विशिष्ट होती है। एक हाथ का खात (गर्त) करके उसे

पूर्ण करे जब मिट्टी अधिक रहे तो उस भूमि को उत्तम भूमि समझना चाहिए। गुरु को चाहिए कि अस्थि और अङ्गार आदि के दोषों से दूषित उस भूमि का शोधन करे और जल आदि से समुक्षित बनावे ॥ ८-९ ॥

नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम् ।
खननैर्गोकुलावासैः कर्षणैर्वा मुहुर्मुहुः ॥१०
मण्डपे द्वारपूजादिमन्त्रतृप्त्यवसानकम् ।
कर्म निर्वर्त्यघोरास्त्रं सहस्रं विधिना यजेत् ॥११
समीकृत्योपलिप्तायां भूमौ संशोधयेद्दिशः ।
स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत प्रदक्षिणम् ॥१२
मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूर्णकुम्भे शिवं यजेत् ।
वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयैः सिञ्चेत्कुद्दालकादिकम् ॥१३
वाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्बलिं क्षिपेत् ।
भूमिं संसिच्य सस्नाप्य कुद्दालाद्यं प्रपूजयेत् ॥१४
अर्घ्यं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः ।
निधाय गतिवाद्यादिब्रह्मघोषसमाकुलम् ॥१५
पूजां कुम्भे समाहृत्य प्रागे लग्नेऽग्निकोष्ठके ।
कुद्दालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन तु खानयेत् ॥१६
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत् ।
पुरस्य पूर्वसीमान्तं नयेद्यावदभीप्सितम् ॥१७
अथ तद्रक्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्परितः पुरम् ।
सिञ्चन्सीमान्तचिन्हानि यावदीशानगोचरम् ॥१८

नगर-ग्राम और दुर्ग निर्माण करने के लिये तथा घर और महल की रचना के लिये भूमि के खनन-गायों का निवास और कर्षण (जुताई) बार-बार करके शोधन करना चाहिए ॥ १० ॥ मण्डप में द्वार पूजा आदि तथा मन्त्र तृप्ति के अवसान पर्यन्त समस्त कर्म पूरा करके विधि के साथ एक सहस्र अघोर अस्त्र का यजन करे ॥ ११ ॥ भूमि की ऊँचाई-नीचाई को समान करे फिर उसको लिप वावे और दिशाओं का शोधन करे। स्वर्ण, दधि और

कहा जाता है ।। १३ ।। शिवादि तत्व की जो शुद्धि है उसकी स्वीकृति को जन्म ग्रहण करना कहते हैं । शिवत्व के योग्य का जो शिवत्व के रूप से बोधन है वह हमारा मत है ।। १४ ।। चमकते हुए अग्नि के कण के समान आत्मा को संहार मुद्रा से अपने हृदय कमल में लाकर ग्रहण करना चाहिए । ।। १५ ।। नत होते हुए कुम्भक के योग से मूल मन्त्र को उच्चारण करना चाहिए और उस समय हृदय में दोनों शिवों का समरसी भाव करना चाहिए ।। १६ ।।

ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमाद्रेचकयोगतः ।
नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ।।१७
हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् ।
शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ।।१८
पूजां शिवस्य वह्नेश्च गुरुः कुर्यात्तदोचिताम् ।
प्रणतिं चाऽऽत्मने शिष्य समयाञ्श्रावयेत्तथा ।।१९
देवं न निन्देच्छास्त्राणि निर्माल्यादि न लङ्घयेत् ।
शिवाग्निगुरुपूजा च कर्तव्या जीविताववधि ।।२०
बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनाम् ।
यथाशक्ति ददीतार्थं समर्थस्य समग्रकान् ।।२१
व्रताङ्गानि जटाभस्मदण्डकौपीनसंयमान् ।
ईशानाद्यैर्हृदाद्यैर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ।।२२
स्वाहान्तसहितामन्त्रैः पात्रेष्वारोप्य पूर्ववत् ।
संपाताभिहुतं हुत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ।।२३
रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकम् ।
शिवादाज्ञां समादाय ददीत व्रतिने गुरुः ।।२४
एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः ।
वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः संजायते शिशुः ।।२५

रेचक के योग से ब्रह्म आदि कारण के त्याग के क्रम से आत्मा को शिवान्त तक ले जाकर फिर उद्भव मुद्रा से लाकर हृदय संपुटित मन्त्र से रेचक

के द्वारा विधान के ज्ञाता को शिष्य के हृदय कमल की कर्णिका में विनिक्षेप करना चाहिए ।। १७–१८ ।। गुरु का कर्त्तव्य है कि शिव और अग्नि की पूजा उसके उचित स्वरूप से करनी चाहिए । शिष्य को आत्मा के लिये प्रणति और समयों (नियमों) को श्रवण कराना चाहिए ।। १९ ।। कभी देव और शास्त्रों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । जो भी निर्माल्य आदि वस्तु हैं उनको नहीं लांघना चाहिए । जब तक जीवन की अवधि हो तब तक शिव–अग्नि और गुरु की पूजा करनी चाहिए ।। २० ।। बालक–बालिश (मूर्ख) वृद्ध, स्त्री, भोगों के भोगने वाला और व्याधितात्मा को यथा शक्ति धन देना चाहिए । जो सामर्थ्य वाला हो उसे सभी व्रतों के अङ्गों को और जटा, भस्म, दण्ड, कोपीन और संयमों का पालन करना चाहिए । ईशानादि अथवा हृदादि के द्वारा यथाक्रम जप करे ।। २१–२२ ।। पूर्व की भाँति स्वाहान्त संहिता के मन्त्रों से पात्रों में आरोप करे तथा सम्पात के अभिहुत को हरण करके स्थण्डिल के स्वमी को दिखाना चाहिए ।। २३ ।। रक्षण करने के लिये घट के नीचे क्षण भर तक आरोप करे फिर गुरु को चाहिए कि शिव से आज्ञा प्राप्त करके व्रती को दे देवें ।। २४ ।। इस प्रकार से विशेष रूप से विशेषता से युक्त समयों की दीक्षा में शिशु वह्नि होम और आगम के ज्ञान के योग्य हो जाया करता है ।। २५ ।।



३६—संक्षेपेण प्रतिष्ठाविधिः

प्रतिष्ठां संप्रवक्ष्यामि क्रमात्संक्षेपतो गुह ।
पीठं शक्तिः शिवो लिङ्गं तद्योग- सा शिवाणुभिः ।।१
प्रतिष्ठायाः पञ्च भेदास्तेषां रूपं वदामि ते ।
यत्र ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ।।२
स्थापनं तु यथायोगं पीठ एव निवेशनम् ।
प्रतिष्ठा भिन्नपीठस्य स्थितस्थापनमुच्यते ।।३

कुसुमेनास्त्रलिप्तेन ताडयेत्तं हृदा शिशुम् ।
प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत् ॥३
प्रविश्य तत्र हुँकारमुक्तं रेचकयोगतः ।
संहारिण्या तदाहृत्य पूरकेण हृदि न्यसेत् ॥४
ततो वागीश्वरीं योनौ मुद्रयोद्भवसंज्ञया ।
हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विनिक्षिपेत् ॥५
ॐ हां हां हामात्मने नमः ॥६
जाज्वल्यमाने निर्धूमे जुहुयादिष्टसिद्धये ।
अप्रबुद्धे सधूमे तु होमो वह्नौ न सिध्यति ॥७
स्निग्धः प्रदक्षिणावाहः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः ।
विपरीतः स्फुलिङ्गी च भूमिस्पृङ्न प्रशस्यते ॥८

श्री ईश्वर ने कहा—हे षण्मुख ! अब मैं संस्कार दीक्षा के विधान को बताऊँगा उसका तुम श्रवण करो । सर्व प्रथम हृदय में महेश का और वह्नि में स्थित का दोनों शिवों का आवाहन करना चाहिए । मिले हुए उन दोनों की अर्चना करे और हृदय मन्त्र से दोनों का भली भाँति तर्पण करे । उन दोनों के सन्निधान करने के लिये उसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दी जानी चाहिए ॥ १–२ ॥ उस शिशु को अस्त्र से लिप्त कुसुम से हृदय मन्त्र के द्वारा ताड़न करना चाहिए और प्रस्फुरण करने वाले तारक के आकार वाले चैतन्य को उसमें भावित करना चाहिए ॥ ३ ॥ वहाँ पर प्रवेश करके रेचक के योग से हुँ कार को मुक्त करे फिर संहारिणी से उसका आहरण करके पूरक से हृदय में न्यास करे ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर उद्भव संज्ञा वाली मुद्रा से योनि में वागीश्वरी को हृत्संपुटित मन्त्र के द्वारा रेचक से विनिक्षेप करना चाहिए ॥ ५ ॥ "ओ३म् हां हां हामात्मने नमः"—इस मन्त्र से खूब अच्छी तरह जलती हुई बिना धूँआ वाली अग्नि में अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिये हवन करना चाहिए । जो अग्नि अच्छी तरह प्रवृद्ध (बढ़ी हुई अर्थात् खूब जलने वाली न हो या धूम के सहित हो उसमें होम सिद्धि देने वाला नहीं होता है ॥ ६–७ ॥ जो अग्नि स्निग्ध अर्थात् स्नेह युक्त हो और

दक्षिण की ओर वहनशील हो तथा सुगन्ध युक्त हो वही श्रेष्ठ समझा जाता है। जो इसके विपरीत होता है और स्फुलिङ्ग (अग्नि कण) देने वाला होता है तथा भूमि की ओर स्पर्श करने वाला रहता है वह प्रशस्त नहीं होता है ॥८॥

इत्येवमादिभिश्चिन्हैर्हुत्वा शिष्यस्य कल्मषम् ।
पापभक्षणहोमेन दहेद्वातं भवात्मना ॥९
द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावने ।
आहारबीजसशुद्धौ गर्भाधानाय सस्थितौ ॥१०
सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत् ।
शतानि पञ्च मूलेन वौषडादिदशांशतः ॥११
शिथिलीभूतबन्धस्य शक्तावुत्कर्षणं च यत् ।
आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते ॥१२
स्वातन्त्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवन मतम् ।
मायात्मनोर्विवेकन ज्ञानं सीमन्तवर्धनम् ॥१३
शिवादितत्त्वशुद्ध स्तु स्वीकारो जननं मतम् ।
बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वार्हस्य नो मतम् ॥१४
संहारमुद्रयाऽऽत्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमम् ।
विदधीत समादाय निजे हृदयपङ्कजे ॥१५
ततः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् ।
कुर्यात्समरसीभावं तदा च शिवयोर्हृदि ॥१६

इस प्रकार के चिन्हों आदि से शिष्य के पाप को हवन करके भव (शिव) स्वरूप पाप भक्षण के लिये तथा रुद्रांश भावन में आहार बीज की संशुद्धि में गर्भाधान के लिये संस्थिति में, सीमन्त में, जन्म से नाम करण के लिए होम करना चाहिए। पञ्च मूल से सौ आहुतियाँ तथा वौषट् आदि से दसांश आहुतियाँ देवे ॥ १०–११ ॥ शिथिली भूत बन्ध की शक्ति में जो उत्कर्षण होता है। आत्मा के रुद्र का पुत्र होने में वह गर्भाधान कहा जाता है ॥ १२ ॥ स्वतन्त्रता से आत्म गुण की जो अभिव्यक्ति होती है वह पुंसवन माना गया है। माया और आत्मा के विवेक से जो ज्ञान है वह

अक्षतों से प्रदक्षिण रेखाऐं बनावे ॥ १२ ॥ मध्य से ईशान कोष्ठ में स्थित पूर्ण कुम्भ में भगवान् शिव का यजन करना चाहिए। उसके जलों के द्वारा वास्तु देव का अर्चन करे और कुद्दाल आदि का भिञ्चन करना चाहिए ॥१३॥ बाहिर के भाग मे राक्षस गणों का यजन करके विधि-विधान के साथ दिशाओं में बलि का क्षेपण करना चाहिए। भूमि को इसभाँति सेवन करके तथा संस्थापन करके कुद्दाल आदि जो निर्माण के साधन हैं उनका पूजन करे ॥ १४ ॥ अन्य कुम्भ को दो वस्त्रों से ढक कर ब्राह्मण के कन्धे पर रक्खे और फिर गीत–वाद्य आदि ब्रह्म घोष के समाकुलता के साथ कुम्भ मे पूजा का समाहरण करके अग्नि काष्ठक में लग्न के प्राप्त होने पर अभिषेक किये हुए तथा मधु से युक्त कुद्दाल से उस भूमि को खुदवाना चाहिए ॥ १५–१६ ॥ खुदाई से जो मिट्टी निकले उसे नैर्ऋत्य दिशा में गिरवावे और जहाँ खोदा जावे उस कुम्भ के जल को डाल देवे। पुर की पूर्व सीमा के अन्त तक जितना भी अभीष्ट हो ले जावे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उसकी रक्षा को स्थित करके पुर के चारों ओर भ्रमण करावे। सीमान्त चिन्हों को सींचते हुए चले जब तक *ईशान दिखाई देवे ॥ १८ ॥*

अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तं तत्र कुम्भपरिभ्रमात् ।
इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्वीत तदनन्तरम् ॥१९
कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया ।
खानयेद्भूकुमारीं चेद्विधिना शल्यमुद्धरेत् ॥२०
अकचटतपयशहान्मानवश्चेत्प्रश्नाक्षराणि तु ।
अग्नेर्ध्वजादिपतिताः स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ॥२१
कर्तुश्चाङ्गविकारेण जानीयात्तत्प्रमाणतः ।
पश्वादीनां प्रवेशेन कीर्तनैर्विरुतैर्दिशः ॥२२
मातृकामष्टवर्गाढ्यां फलके भुवि वा लिखेत् ।
शल्यज्ञानं वर्गवशात्पूर्वादीशान्ततः क्रमात् ॥२३
अवर्गे चैव लोहं तु कवर्गेङ्गारमग्नितः ।
चवर्गे भस्म दक्षे स्याट्टवर्गेऽस्थि च नैऋर्ते ॥२४

तवर्गे चेष्टकां चाऽप्ये कपालं च पवर्गके ।
यवर्गके शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत् ॥२५

वहाँ पर कुम्भ के परिभ्रमण से यह अर्घ्य दान कहा गया गया है। यह भूमि के परिग्रहण करने का विधान है और इसी विधि से उसे ग्रहण करना चाहिए। इसके उपरान्त फिर जो भूमिमें शल्य दोष होता है उसका नाश करने के लिये वहाँ कर्कर के अन्त तक अथवा जल जहां निकल आवे वहाँ तक है कुमारी को खुदवाना चाहिए। यदि शल्य हो तो उसे विधि से निकाल देवे ॥ १९–२० ॥ यदि मानव हो तो अकचटतपयशह इनको प्रश्नाक्षरों को अग्नि के ध्वज आदि में पतित होकर अपने स्थान पर शल्य को बताते हैं॥२१॥ कर्त्ता के अङ्ग के विकार से उसके प्रमाण से जानना चाहिए। पशु आदि के प्रवेश मे कीर्त्तनों से और दिशा के शब्दों से जानना चाहिए। अथवा पट्ट पर या जमीन पर ही अष्ट वर्ग से युक्त मातृका को लिखे वर्ग के वश मे पूर्व से ईशान के अन्त तक क्रम से शल्य का ज्ञान करे ॥ २२–२३ ॥ कवर्ग में लोह-कवर्ग में अग्नि से अङ्गार–च वर्ग में भस्म दक्षिण में, ट वर्ग में नैर्ऋत में अस्थि, त वर्ग में इष्ट का (ईंट), वारुण दिशा में प वर्ग में कपाल, य वर्ग में शवकीट आदि और श वर्ग में लोह कहना चाहिए ॥२४–२५ ॥

हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चानर्थकरानपि ।
प्रोक्ष्याश्ममिः करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरः ॥२६
पादोनं खानमापूर्य सजलंमुद्गराहतैः ।
लिप्तां समप्लवां तव कारयित्वा भुवं गुरुः ॥२७
सामान्यार्घ्यकरो यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकम् ।
तारणद्वाःपतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ॥२८
कुर्यात्तत्राऽऽत्मशुद्धयादिकुण्डमण्डपसंस्कृतिम् ।
कलशं वर्धनीसक्तं लोकपालशिवार्चनम् ॥२९
अग्नेर्ज्वलनपूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
यजमानान्वितो यायाच्छिलानां स्नानमण्डपम् ॥३०

शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादा धर्मादिसंज्ञकाः ।
अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्राः करायताः ॥३१
पाषाणानां शिलाः कार्या इष्टकानां तदर्धतः ।
प्रासादेऽश्मशिलाः शैल इष्टका इष्टकामये ॥३२

हृ वर्ग में रजत और इसी भाँति प्र वर्ग से अनर्थ करने वालों को भी प्रोक्षण करके करापूर पाषाणों से जो आठ अंगुल मिट्टी के अन्तर वाले हों एक पाद कम गड्ढे को भरकर जल के सहित मुद्गर से आहत करके गुरु को फिर समप्लव तथा लिपी हुई उस भूमि को करानी चाहिए ॥ २६–२७ ॥ इस के अनन्तर सामान्य अर्घ्य कर मे लेकर आगे बताये जाने वाले मण्डप में जाते। तोरण द्वार के पतियों का यजन करके फिर प्रत्यक् दिशा के द्वार से प्रवेश करे ॥ २८ ॥ वहाँ मण्डप में पहुँच कर आत्म शुद्धि आदि कुण्ड और मण्ड का संस्कार करना चाहिए। कलश, वर्धनीसक्त, लोक पालों और शिव के अर्चन–अग्नि का जलाना तथा पूजा आदि सभी कर्म पूर्व की भाँति ही करन चाहिए। इसके अनन्तर यजमान के सहित शिलाओं के मण्डप में जान चाहिए ॥ २९–३० ॥ प्रासाद लिङ्ग के धर्म आदि संज्ञा वाले पाद शिल आठ अंगुल ऊँचे श्रेष्ठ हैं और एक हाथ आयत चौकोर उत्तम होते हैं ॥ ३१ पाषाणों की शिला बनवानी चाहिए उसका आधा भाग ईंटों का करावे प्रासाद में अश्मशिला और इष्टकामय में इष्ट का (ईंट) ही शैल हैं ॥३२॥

अङ्किता नववक्रार्द्यैः पङ्कजाः पङ्कजान्विताः ।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता ॥३३
आर्सा पद्मो महापद्मः शङ्खो थ मकरस्तथा ।
समुद्रश्चे ति पञ्चामो निधिकुम्भाः क्रमादधः ॥३४
नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता ।
विजया मङ्गलाख्या च धरणी नवमी शिला ॥३५
सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः ।
जयोऽथ विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः ॥३६

नवानां तु यथासंख्यं निधिकुम्भा अमी नव ।
आसनं प्रथमं दत्त्वाऽऽताड्योल्लिख्य शराणुना ॥३७
सर्वासामविशेषेण तनुत्रेणावगुण्ठनम् ।
मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ॥३८
अस्त्रेण हुफंडन्तेन मलस्नानं समाचरेत् ।
विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ॥३९
गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्किताणुना ।
फलरत्नसुवर्णानां गोश्रृङ्गसलिलैस्ततः ॥४०

नव वक्त्रों के द्वारा अङ्कित पङ्कजों से युक्त पङ्कज होने चाहिए । नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा ये पाँच नाम वाली तिथियों के समान होनी हैं । इनका जो नीचे का भाग है वहाँ पद्म महापद्म, शंख, मकर और समुद्र ये क्रम से निधि कुम्भ हैं ॥ ३३–३४ ॥ नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला और धरणी ये नौ शिलाएँ हैं ॥३५॥ इन नौ शिलाओं के यथा संख्य नौ निधि कुम्भ होते हैं । उनके नाम—समुद्र, सुनन्द, पुष्प नन्दक, जय, विजय, कुम्भ, पूर्ण, उत्तर ये होते हैं । पहिले आसन देकर फिर शर मन्त्र से आताडन एवं उल्लिखन करे ॥ ३६–३७ ॥ सब का सामान्य रूप से तनुत्र के द्वारा अवगुण्ठन करे । मिट्टी, गोबर, गोमूत्र और कषाय तथा गन्धयुक्त जल से हुंफट् अन्त वाले अस्त्र के द्वारा मल स्नान करना चाहिए । विधि के साथ पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए । ॥ ३९ ॥ फिर अपने नाम से अङ्कित मन्त्र के द्वारा गन्धतोयान्त करे । इसके अनन्तर फल, रत्न, सुवर्णों के गो श्रृङ्ग जलों के द्वारा स्नान करावे ॥ ४० ॥

चन्दनेन समालभ्य वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाम् ।
स्वर्णोद्यमासनं दत्त्वा नीत्वा योगं प्रदक्षिणम् ॥४१
शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत् ।
संपूज्य न्यस्य बुद्ध्यादिधरान्तं तत्त्वसंचयम् ॥४२
त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वत्रयं चानुक्रमान्न्यसेत् ।
बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चिन्तातन्मात्रकावधौ ॥४३

तन्मात्रादौ धरान्ते च शिवविद्यात्मनां स्थितिः।
तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेशांश्च हृदाऽर्चयेत् ॥४४
स्थानेषु पुष्पमालादिचिन्हितेषु यथाक्रमम् ॥४५
ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हूं शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्यात्वाधिपाय विष्णवे नमः। ॐ ह्यामात्मतत्वाय नमः॥ ॐ ह्यामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः॥ ४६
क्षमाग्नियजमानार्कजलवातेन्दुखानि च।
प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्तीः प्रति शिलां शिलाम् ॥४७

इसके पश्चात् चन्दन लगा कर शिला को वस्त्रों से आच्छादित कर देवे। स्वर्णोत्थ आदान, समर्पित कर फिर प्रदक्षिणा योग लेकर शय्या में अथवा कुशतल्प में हृदय से निवेशित कर देना चाहिए। बुद्धि आदि धरा के अन्त तक तत्त्वों के - संचय का न्यास करके तथा, भली भांति पूजन करके त्रिखण्ड में व्यापक तीन तत्त्वों को अनुक्रम से न्यास करे। बुद्धि आदि में चित्त पर्यन्त में, चिन्ता तन्मात्र की अवधि में, तन्मात्रादि में और धरान्त में शिव विद्यात्माओं की स्थिति है। निज मन्त्रों से तत्त्वों का और तत्त्वों के स्वामियों का हृदय से अर्चन करना चाहिए॥ ४१–४२–४३–४४॥ पुष्पमाला आदि से चिह्न वाले स्थानों में क्रम के अनुसार अर्चन निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा करे—"ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हूं शिव तत्त्वाधिपतये नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्या तत्त्वाधिपाय नमः। ॐ ह्यामात्म तत्त्वाय नमः। ॐ ह्यामात्म तत्त्वाधिपतये नमः॥ ४५–४६॥ पृथ्वी, अग्नि, यजमान, अर्क, जल, वायु, इन्दु और आकाश प्रत्येक तत्त्व में और प्रतिशिला-शिला आठ मूर्त्तियों का न्यास करना चाहिए॥ ४७॥

सर्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम्।
महादेवं च भीमं च मूर्तीशांश्च यथाक्रमात् ॥४८
ओ३म् धरामूर्तये नमः। ओ३म् धराधिपतये नमः॥

इत्यादिमन्त्रांल्लोकपालान्यथासंख्यं निजाणुभिः ।
विन्यस्य पूजयेत्कुम्भास्तन्मन्त्रैर्वा निजाणुभिः ॥
इन्द्रादीनां तु बीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥५०
लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षमिति ॥५१
उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा ।
प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्तीः सृष्टया पञ्च धरादिकाः ॥५२
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते च पञ्च मर्तीशा यष्टव्यास्तासु पूर्ववत् ॥५३
ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः । ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः ।
इत्यादिमन्त्राः ॥ ५४
संपूज्य कलशान्पञ्च क्रमेण निजनामभिः ।
निरुन्धीत विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात् ॥५५
कुर्यात्प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भैस्तिलैस्ततः ।
कुण्डेषु धारिकां शक्ति विन्यस्याभ्यर्च्य तर्पयेत् ॥५६
तत्त्वतत्त्वाधिपान्मूतिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः ।
ततो ब्रह्मांशशुद्धयर्थं मूलाङ्ग ब्रह्मभिः क्रमात् ॥५७
कृत्वा शतादिपूर्णान्ति प्रोक्ष्य शान्तिजलैः शिलाः ।
पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्वमनुक्रमात् ॥५८

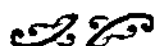
शर्व-पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, मधेश्वर, महादेव, भीम इन मूर्ति के ईशों का यथा क्रम न्यास करे । मन्त्र इस निम्न क्रम से सब के होने चाहिए यथा—"ओ३म् धरा मूर्तये नमः । ओ३म् धराधिपतये नमः ।" इसी प्रकार अग्नि आदि के भी मन्त्रों का क्रम समझ लेना चाहिए ॥ ४८-४९ ॥ इत्यादि मन्त्रों से कार्य करे । तथा लोक पालों को यथा संख्या निज मन्त्रों से न्यास करे उनके मन्त्रों से अथवा निज मन्त्रों से कुम्भों का पूजन करे । इन्द्रादि के बीज वक्ष्यमाण क्रम से इस भाँति हैं ॥ ५० ॥ इन्द्र आदि के बीज—"लूं रूं शूं पूं बूं यूं मूं हूं क्षूं" ये हैं । नव शिला का पक्ष बता दिया गया है तथा पञ्चपदा शिला भी कह दी गई है । प्रति तत्त्व में मूर्तियों का न्यास करे जो

कि सृष्टि से पञ्च धरा आदिक है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, ये पाँच मूर्त्तीश होते हैं। उनमें पहिले की तरह इनका यजन करना चाहिए। ॥ ५१-५२-५३ ॥ "ओ३म् पृथ्वी मूर्तये नमः। ओ३म् पृथ्वी मूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः" इस प्रकार से इत्यादि मन्त्र होते हैं ॥ ५४ ॥ पाँच कलशों को क्रम से निज नामों से भली भाँति पूजन करके मध्य शिला के क्रम से विधान के द्वारा न्यास को निरुन्धित करे ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त प्राकार मन्त्र के द्वारा भूति और डाभ तथा तिलों के द्वारा कुण्डों में धारिका शक्ति का विन्यास करके, पूजन करके तर्पण करना चाहिए ॥ ५६ ॥ तत्त्वों और तत्त्वों के स्वामी, मूर्त्तियों और मूर्त्तियों के अधिपतियों को घृत आदि के द्वारा फिर ब्रह्मांश की शुद्धि के लिये मूल मन्त्र को ब्रह्म के द्वारा क्रम से न्यासार्चनादि करके शतादि से ऊर्णान्त तक शिलाओं को शान्ति जलों के द्वारा प्रोक्षण करके अनुक्रम से प्रत्येक तत्त्व को कुशाग्रों से स्पर्श करके पूजन करना चाहिए। ॥ ५७-५८ ॥

सांनिध्यमथ संधानं कृत्वा शुद्धं पुनर्न्यसेत् ।
एवं भागत्रये कर्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ॥५९
ॐ, आम्, ईम्, आत्मतत्वविद्यातत्वाभ्यां नम इति ॥६०
संस्पृशेद्दर्भमूलाद्यं ब्रह्माङ्गादित्रयं क्रमात् ।
कुर्यात्त्वानुसंधानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ॥६१
ओ३म् हाम्, ऊं विद्यातत्वशिवतत्वाभ्यां नमः ॥६२
घृतेन मधुना पूर्णास्ताम्रकुम्भान्सरत्नकान् ।
पञ्चगव्याम्बुसंसिक्ताँल्लोकपालाधिदैवतान् ॥६३
पूजयित्वा निजैर्मन्त्रैः सन्निधौ होममाचरेत् ।
शिलानामथ सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ॥६४
विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः ।
न्यूनादिदोषमोपार्थं वास्तुभूमेश्च शुद्धये ॥
यजेदस्त्रेण मूर्धान्तमाहुतीनां शतं शतम् ॥६५

इसके अनन्तर सान्निध्य और संधान करके शुद्ध का फिर न्यास करना चाहिए। इस तरह से तीनों भागों में जा-जा करके कर्म का समाचरण करे ।५९

इसका मन्त्र—'ओ३म्, ग्राम्, ईम्, ग्रात्म तत्त्व विद्या तत्त्वाभ्यां नमः'' इति यही है ॥ ६० ॥ फिर क्रम से डाभ के मूलादि से ब्रह्म के तीनों ग्रङ्गों को स्पर्श करे । ह्रस्व ग्रौर दीर्घ के प्रयोग से तत्त्वों का ग्रनुसन्धान करना चाहिए ॥ ६१ ॥ "ॐ, हाम्, ॐ विद्या तत्व शिव तत्त्वाभ्यां नमः ।" यह मन्त्र है । ॥ ६२ ॥ घृत ग्रौर मधु (शहत) से पूर्ण तथा रत्नों के सहित पूर्ण कुम्भों को जो पञ्च गव्य ग्रौर ग्रर्घ्य से ग्रभिषिक्त हैं ग्रौर जिनके लोकपाल ग्रधि देवता हैं, उन सब का निज मन्त्रों के द्वारा पूजन करके उनकी सन्निधि में होम करना चाहिए । समस्त शिलाग्रों के ग्रधि देवताग्रों का भली भाँति स्मरण करे । ॥ ६३-६४ ॥ विद्या के स्वरूप वाले, स्न न कराये हुए तथा हेम के वर्ण वाले शिलाम्बरों का न्यून ग्रादि दोषों के मोचन करने के लिये ग्रौर वास्तु भूमि की शुद्धि के लिये यजन करना चाहिए ग्रौर ग्रस्त्र मन्त्र से मूर्द्धा के ग्रन्त तक सौ-सौ ग्राहूतियाँ देवे ॥ ६५ ॥



४०—वास्तुप्रतिष्ठाविधि

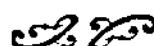
इन्द्रादिक्रमतो वच्मि ध्वजाद्यष्टौ गृहाण्यहम् ।
प्रक्षालानुस्त्रगावासमग्नौ तस्य महानसम् ॥१
याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षसि ।
धनमवत्यम्बुपेशाख्ये सम्यगन्धौ च मारुते ॥२
सौम्ये धनपशू कुर्यादीशे दीक्षावरालयम् ।
स्वामिहस्तमितं वेश्म विस्तारायामपि[illegible] ॥३
त्रिगुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वा[illegible] ।
तच्छेषोऽयं स्थितस्तेन वायमा[illegible] ॥४
त्रयः पक्षाग्निवेदेषु [illegible] ।
सर्वनाशकरं वेश्म [illegible] ॥५
तस्मान्न नवमे [illegible] ।
तन्मध्ये [illegible] ॥६

अब नगरादि वास्तु का वर्णन किया जाता है ।-इन्द्र आदि के क्रम से मैं ध्वजादि आठ गृहों को बतलाता हूँ । अग्नि दिशा में प्रक्षालन अनु सक् और आवास करे उसकी रसोई दक्षिण में, रस क्रिया, शय्या, धनुष, शास्त्र राक्षसादि दिशा में, अम्बुपेश नामक में धन भक्ति, सभ्य गन्धामारुत मे, सौम्य दिशा में धन और पशु तथा ईशान में दीक्षा तथा वरालय कराना चाहिए । स्वामी अर्थात् छै हाथ प्रमाण वाला विस्तार एवं आयाम से युक्त एवं पिण्डिकर वेश्म होना चाहिए ॥ १-२-३ ॥ तिगुना हस्त, संयुक्त करके आठ अंशों से भाग देवे, उसका शेष जो यह हो, उस से वायसान्त ध्वजादिक करे ॥ ४ ॥ दो-तीन चार छै-सात और आठ से जो घर होता है तथा मध्य में और अन्त में स्थित होता है वह सब का नाश करने वाला होना है ॥ ५ ॥ इस से नवम भाग में घर शुभ करने वाला माना गया है । उसके मध्य में मण्डप प्रशंसा के योग्य होता है या तो वह सम हो या द्विगुण आयत वाला होना चाहिए ॥ ६ ॥

प्रत्यगाप्ये चेन्दुयमे हट्ट एव गृहावली ।
एकैकभुवनाख्यानि दिक्ष्वष्टाष्टकसंख्यया ॥७
ईशाद्यदितिकान्तानि फलान्येषां यथाक्रमम् ।
भयं नारीचलत्वं च जयो वृद्धिः प्रतापकः ॥८
धर्मः कलिश्च नैस्यं च प्राग्द्वारेष्वष्टसु ध्रुवम् ।
दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो मृतिर्धनम् ॥९
शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकम् ।
आयुष्प्राव्राज्यसस्यानि धनशान्त्यर्थसंक्षयः ॥१०
शोषं भोगं चापत्यं च जलद्वारफलानि च ।
रोगो मदार्तिमुख्यत्वं चार्थायुः कृशता मतिः ॥११
मानश्च द्वारतः पूर्व उत्तरस्यां दिशि क्रमात् ॥१२

पश्चिम में आप्य और इन्दु यम हट्ट में ही गृहों की कतार होवे और एक-एक भुवन के नाम वाले दिशाओं में आठ की संख्या से ईश से आदि लेकर अदिति के अन्त तक होने चाहिए । अब इन सब के क्रम के अनुसार फल बताये जाते हैं, भय, नारी चलत्व, जय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, कलि और

नैऋत यह आठ प्रागद्वारों में निश्चित फल होता है। इसी भाँति याम्य द्वारों का अर्थात् दक्षिण दिशा की ओर द्वारों का फल भी दाह, अनुग्र, मित्रनाश, धन नाश मृत्यु धन, शिल्पित्व और तनय होता है। अब जलद्वार अर्थात् पश्चिम की ओर द्वारों का फल आयु:—प्राव्राज, शम्य, धन, शान्ति, अर्थ संशय, शोष, भोग और अपत्य (सन्तति) होता है। उत्तर दिशा में द्वार का फल रोग, मद, आर्त्ति (दुःख), अर्थ, आयु, कृशता, मति और मान होता है ॥ ७-८-६-१०-११-१२ ॥



४१—नगरादिकवास्तुकथनम्

नागरादिकवास्तुं च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये।
योजनं योजनार्धं वा तदर्धं स्थानमाश्रयेत् ॥१

अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराढ्यं तु कारयेत्।
ईशादि त्रिशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ॥२

गन्धर्वाभ्यां दक्षिणे स्याद्वारुण्ये पश्चिमे तथा।
सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या हट्टास्तु विस्तराः ॥३

येनेभादि सुखं गच्छेत्कुर्याद्द्वारं तु षट्करम्।
छिन्नकर्णं विभिन्नं च चन्द्रार्धाभंपुरं न हि ॥४

वज्रसूचीमुखं नेष्टं सकृद्द्वित्रिसमागमम्।
चापाभं वज्रनागाभं पुरारम्भे हि शान्तिकृत् ॥५

प्राच्यं विष्णुहराकादीन्दत्वा दद्याद्बलिं बली।
आग्नेये स्वर्णकर्मारान्पुरस्य विनिवेशयेत् ॥६

दक्षिणे नृत्यवृत्तीनां वेश्यास्त्रीणां गृहाणि च।
नटानां चक्रिकादीनां कैवर्तादिश्च नैऋते ॥७

स्थानंरथायुधानां च कृपाणानां च वारुणे।
शौण्डिकाः कर्माधिकृता वायव्ये परिकर्मिणः ॥८

श्री ईश्वर बोले—राज्य आदि की वृद्धि के लिये अब नगर आदि के वास्तु को बतलाऊँगा। एक योजन या आधा योजन उसके लिये स्थान का आश्रय लेना चाहिए। एक योजन ४ कोश का माना जाता है ॥ १ ॥ वास्तु नगर की अर्चना करे और उस प्राकार अर्थात् चारो ओर की दीवार से युक्त बनवाना चाहिए। ईशादि से तीस कदम पर पूर्व मे पूर्व द्वार गन्धर्वों से दक्षिण में होवे। उत्तर तथा पश्चिम में सौम्य द्वार हो और सौम्य पद में विस्तार वाले हृद्द होवे ॥ २–३ ॥ द्वार छै हाथ लम्बे–चौड़े होने चाहिए जिससे हाथी आदि भी सुख पूर्वक चले जावें। छिन्न कर्ण और विभिन्न आधे चन्द्रमा की आभा वाला अर्थात् आधे चन्दा जैसे आकार में बसा हुआ पुर नहीं होना चाहिए ॥ ४ ॥ वज्र सूची के समान मुख वाला अर्थात् नुकीला और एक, दो या तीन समागम वाला द्वार अच्छा नहीं होता है। धनुष की सी आभा वाला या वज्र नाग के समान आभा से युक्त भी द्वार इष्ट नही है। पुरके आरम्भ करने के समय में शान्ति करने वाले को विष्णु, शिव और सूर्य आदि का पूजन करना चाहिए और इनको नमस्कार करके बलि भी देनी चाहिए। नगर में अग्निकोण मे सुवर्ण के काम करने वाले लोकों निनिवेशित करना चाहिए। ॥ ५–६ ॥ (नगर की बसावट में दक्षिण दिशा मे ऐसे मनुष्यों के गृह होने चाहिए जो नाचने–गाने की रोजी कमाते हों जैसे वेश्या आदि होने हैं। नट-चक्रिक (कुम्हार) और कैवर्त्त जाति एवं व्यवसाय करने वालो को नगर के नैर्ऋत कोण मे बसाना चाहिए ॥ ७ ॥) रथ–आयुध (हथियार) और कृपाण (तलवार इनके रहने का स्थान वारुण दिग्भाग में होना चाहिए। शौण्डिक (कलार) अर्थात् मदिरा बेचने वाले कर्माधिकृत अर्थात् नौकरी या मजदूरी करने वाले और परिकर्मियों को वायव्य कोण में बसाना चाहिए ॥८॥

ब्राह्मणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च चोत्तरे।
फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः ।९
पूर्वतश्च बलाध्यक्षा आग्नेये विविधं बलम्।
स्त्रीणामादेशिनो दक्षे काण्डारान्नैर्ऋते न्यसेत् ॥१०

पश्चिमे च महामात्यान्कोषपालांश्च कारुकान् ।
उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसंकुलान् ॥११
पूर्वतः क्षत्रियान्दक्षे वैश्यान्शूद्रांश्च पश्चिमे ।
दिक्षु वैद्यान्वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशम् ॥१२
पूर्वेण चरलिङ्ग्यादीन्श्मशानादीनि दक्षिणे ।
पश्चिमे गोधनाद्यं च कृषिकर्तृस्तथोत्तरे ॥१३
न्यसेन्म्लेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितम् ।
श्रियं वैश्रवणं द्वारि पूर्वे तौ पश्यतां श्रियम् ॥१४
देवादीनां पश्चिमतः पूर्वास्यानि गृहाणि हि ।
पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननान् ॥१५
नाकेशविष्ण्वादिधाम रक्षार्थं नगरस्य च ।
निर्दैवतं पुरग्रामदुर्गगृहादिकचवत् ॥१६
भुज्यते तत्पिशाचाद्यं रोगाद्यैः परिभूयते ।
नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१७

जो ब्राह्मण, यति, सिद्ध और पुण्य वाले लोग हों उन्हें उत्तर दिशा में बसावे । जो फल आदि के बेचने वाले वणिग्जन हों इन्हें ईशान दिशा में रक्खे ॥ ६ ॥ बल अर्थात् सेना के जो अध्यक्ष हों उन्हें पूर्व दिशा मे तथा विभिन्न प्रकार की सेनाओं को आग्नेय दिशा में निवेशित करना चाहिए । जो स्त्रियों को आदेश करने वाले हों उन्हें दक्षिण भाग में और वाण धारियों को नैऋत दिशा मे निवेशित करे ॥ १० ॥ पश्चिम दिशा में जो महामात्य अर्थात् प्रधान मन्त्री हों उनको कोष (खजाना) के पालकों को और कारीगरों को बसावे अर्थात् इनके रहने का स्थान बनावे । उत्तर दिशा में दण्ड देने वाले स्वामियों को और नायक द्विज संकुलों को रक्खे ॥ ११ ॥ पूर्व मे क्षत्रियों को दक्षिण में वैश्यों को और पश्चिम में शूद्रों को रक्खे । वैद्य-घोड़े और बल अर्थात् सेनाओं को चारों दिशाओं में रखना चाहिए ॥ १२ ॥ चरलिङ्गी आदि को पूर्व में और श्मशान आदि को दक्षिण में स्थान देना चाहिए । गोधन आदि के लिये पश्चिम में और जो खेती के काम में परायण हों उन्हें उत्तर दिशा मे

स्थान देवे ॥ १३ ॥ म्लेच्छों को कोणों में रक्खे । ग्रामादि में भी इसी तरह की स्थिति करनी चाहिए । श्री को और कुबेर को पूर्व द्वार में स्थित करे । वे दोनों श्री को देखते रहें ॥ १४ ॥ देवादिका पश्चिम से पूर्व की ओर मुख वाले गृहादि होने चाहिए तथा पश्चिम की ओर मुख से युक्त पूर्व में हों और दक्षिण में जो हों उनके मुख उत्तर की ओर होने चाहिए ॥ १५ ॥ स्वर्ग के स्वामी इन्द्र और भगवान् विष्णु आदि के धाम नगर की रक्षा करने के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं । कोई नगर हो या ग्राम—दुर्ग तथा गृह हो जिसमें कोई भी देवता का धाम नहीं है वह पिशाच आदि के द्वारा भोग के योग्य होता है और सदा रोग आदि के द्वारा अभिभूत रहा करते हैं । इस प्रकार से बसाये हुए नगर आदि सदा जय के देने वाले और भोग तथा मोक्ष के देने वाले हुआ करते हैं ॥ १६–१७ ॥

पूर्वे हि श्रीगृह प्रोक्तमाग्नेय्यां वै महानसम् ।
शयनं दक्षिणस्यां तु नैऋत्यामायुधाश्रयम् ॥१८
भोजनं पश्चिमायां तु वायव्यां धान्यसंग्रहः ।
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ॥१९
चतुःशालं त्रिशालं वा द्विशालं चैकशालकम् ।
चतुःशालगृहाणां तु शालालिन्दकभेदतः ॥२०
शतद्वयं तु जायन्ते पञ्चाशच्च तेष्वपि ।
त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चधा ॥२१
एकशालानि चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च ।
अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च ॥२२
चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु ।
षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश एव हि ॥२३
अष्टालिन्दं भवेदेवं नगरादौ गृहाणि हि । २४

पूर्व दिशा में श्री गृह बताया गया है । घर में सदा आग्नेय कोण में रसोई घर बनवाना चाहिए । शयन करने का घर दक्षिण दिशा में होवे और आयुधों के रखने का स्थान हमेशा नैऋत्य दिशा में रखना चाहिए ॥ १८ ॥

पश्चिम दिशा में भोजन करने का स्थान और धान्य आदि का संग्रह अर्थात् भाण्डार वायव्य कोण में रखना चाहिए। द्रव्यों के रहने का स्थान उत्तर में रखे और देवों का गृह ईशान कोण में बनाना चाहिए। १६ ॥ चार शाला से युक्त, त्रिशाल, द्विशाल और एक शाल ऐसे चतुःशालाओं के गृहों के शाला और अलिन्द (दहलीज) के भेद से दो सौ होते हैं। उनमें भी पचपन त्रिशालाएँ होती हैं। चार द्विशालाएँ—पाँच प्रकार की एक शाला और चार एक अलिन्द वाली होती हैं। अट्ठाईस अलिन्द हैं, गृह तथा नगर हैं जिन्हें बतला रहा हूँ। चार और सात से पचपन ही छै अलिन्द अट्ठाईस ही होते हैं। इस तरह से आठ अलिन्द होते हैं जो कि नगर आदि में गृह होते हैं। ॥ २०–२१–२२–२३–२४ ॥



४२—स्वायंभुवसर्गकथनम्

वक्ष्ये भुवनकोषं च पृथ्वद्वीपादिलक्षणम्।
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥१
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च।
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ॥२
प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्त द्वीपान्ददौ पिता।
जम्बूद्वीपमथाग्नीध्रे प्लक्षं मेधातिथेर्ददौ ॥३
वपुष्मते शाल्मलं च ज्योतिष्मते कुशाह्वयम्।
क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ॥४
पुष्करं सवनायादादग्नीध्रोऽदात्सुते शतम्।
जम्बूद्वीपं पिता लक्षं नाभेर्दत्तं हिमाह्वयम् ॥५
हेमकूटं किंपुरुषे हरिवर्षाय नैषधम्।
इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितम् ॥६
हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ।
भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमम् ॥७

मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिषिच्य ययौ वनम् ।
शालग्रामे तपस्तप्त्वा ययौ विष्णवालयं नृपः ।।८

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं स्वायम्भुव सर्ग का वर्णन बताऊँगा जिसमें भुवन कोष है और पृथिवी द्वीप आदि का लक्षण है । अग्नीध्र, अग्नि बाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन-ज्योतिष्मान् और दशम पुत्र सत्य नाम वाला हुआ था ।। १–२ ।। ये सब प्रिय व्रत राजा के पुत्र प्रसिद्ध हुए थे । इनको इनके पिता ने सात द्वीप दे दिये थे । अग्नीध्र को जम्बू द्वीप दे दिया था । प्लक्ष मेधातिथि को दिया था । वपुष्मान् पुत्र को शाल्मल द्वीप दिया था । ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप दिया था । द्युतिमान् क्रौञ्चद्वीप और भव्य को शाक द्वीप दिया ।। ३–४ ।। सवन नामक पुत्र को पुष्कर द्वीप दिया था । अग्नीध्र ने पुत्र को शत दिया । पिताने लक्ष जम्बूद्वीप दिया था नाभि को हिम नामक द्वीप दिया ।। ५ ।। किम्पुरुष को हेमकूम और हरि वर्ष के लिये नैषध दिया था । सुन्दर इलावृत में नील पर्वत के आश्रित मेरु मध्य है ।। ६ ।। हिरण्वान् को श्वेत वर्ष और कुरु के लिये कुरुओं को दिया था । भद्राश्व के लिये भद्राश्व और केतुमाल के लिये पश्चिम दिया था ।। ७ ।। इस तरह से राजा प्रियव्रत अपने पुत्रों को अभिषिक्त करके मेरु के वन में चला गया था । शालग्राम में तपस्या करके फिर अन्त में राजा भगवान् विष्णु के धाम को चला गया था ।। ८ ।।

यानि किंपुरुषाद्यानि ह्यष्ट वर्षाणि सत्तम ।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।।९
जरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम् ।
नाधर्मं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्तु नाभितः ।।१०
ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिं गतः ।।११
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् ।
भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिं गतः ।।१२

स योगी योगप्रस्थाने वक्ष्ये तच्चरितं पुनः ।
सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ।१३
परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः ।
प्रतीहारात्प्रतीहर्ता प्रतिहर्तुर्भुवस्ततः ॥१४
उद्गीतोऽथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः ।
पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ॥१५

जो किम्पुरुष आदि हैं वे आठ वर्ष होते हैं। हे सत्तम ! उसको बिना ही यत्न के सुख प्राया स्वभाव से ही होने वाली सिद्धि हुआ करती है ॥ ९ ॥ वहाँ बुढ़ापे और मौत का कोई भय नहीं होता है। धर्म और अधर्म और युग आदि भी नहीं है। न वहाँ कोई अधम है और न मध्यम अर्थात् सभी उत्तम एवं समान श्रेणी वाले हुआ करते हैं। हिम देश से नाभि और नाभि से मेरु देवी में ऋषभ हुआ। फिर ऋषभ से भरत हुआ था। ऋषभ ने अपनी सारी श्री पुत्र को दे दी और वह शालग्राम में हरि की शरण चला गया था ॥ १०-११ ॥ फिर भरत से ही यह भारत वर्ष हुआ था। भरत के सुमति पुत्र उत्पन्न हुआ। भरत भी अपना सर्वस्व पुत्र को देकर शालग्राम में हरि के शरण में चला गया था। वह योगी था और उसने योग में प्रस्थान किया था। उसका चरित बतलाऊँगा। प्रतीहार से प्रतीहर्त्ता हुआ। प्रतीहर्त्ता का पुत्र उद्गीत और प्रस्तार हुआ। प्रस्तार का पुत्र विभु उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र पृथु और पृथु में नक्त हुआ। नक्त का पुत्र गय नाम का उत्पन्न हुआ था। । १२-१३-१४-१५ ॥

नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट्ततः ।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥१६
महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्यस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजा स्तस्याप्यभूत्सुतः ॥१७
सत्यजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ।
विश्वज्योतिः प्रधानास्ते भारतं संविवर्धितम् ॥१८
कृतत्रेतादिसर्गेण सर्गः स्वायंभुवः स्मृतः ॥१९

गय का पुत्र नर उत्पन्न हुआ था और फिर उसका पुत्र विराट् नाम वाला हुआ। विराट् का पुत्र महावीर्य हुआ और इसका पुत्र धीमान् पैदा हुआ था ॥ १६ ॥ उस धीमान् का पुत्र महान्त नाम वाला हुआ और इसका पुत्र मनस्य नाम धारी उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र त्वष्टा हुआ और त्वष्टा का विरजा पुत्र हुआ। विरजा का रज नामक पुत्र हुआ ॥ १७ ॥ रज का पुत्र सत्यजित् हुआ और उस सत्यजित् के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें विश्वज्योति प्रधान था। इन्होंने इस भारत को बढ़ा दिया था ॥ १८ ॥ इस प्रकार सत्ययुग और त्रेता आदि के सर्ग से स्वायम्भुव सर्ग कहा गया है ॥ १९ ॥



४३–भुवनकोशकथनम्

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो महान्।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ॥१
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ॥२
जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः।
चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्टः षोडशाद्रिराट् ॥३
द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तारात्षोडशाध सहस्रवान्।
भूयस्तस्यास्य शलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥५
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दश हीनास्तथाऽपरे।
सहस्र द्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥६
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥७
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तथैवान्यद्धिरण्मयम्।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥८

अब भुवन कोश का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव बोले—जम्बू और प्लक्ष नामों वाले दो द्वीप हैं और एक तीसरा शाल्मलि नाम का महान् द्वीप है। इनके अतिरिक्त कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्करद्वीप है। ॥ १ ॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से आवृत (घिरे हुए) हैं। ये सात समुद्र हैं लवण सागर अर्थात् खारी जल वाला समुद्र सब से पहिला है। इसके बाद ईख का अर्थात् ईख के रस का सागर, सुरा का समुद्र, घृत समुद्र, दही का सागर, दूध का समुद्र और फिर जल का सागर है। इस तरह सात समुद्र हैं॥ २ ॥ समस्त द्वीपों के मध्य में जम्बू द्वीप है। उस द्वीप के मध्य में बहुत ऊँचा मेरु है। यह बहुत बड़ा चौरासी सहस्र वाला है और सोलह पर्वतों का राजा है॥ ३ ॥ मस्तक पर बत्तीस विस्तार से सोलह सहस्र वाला है। फिर इस का यह पर्वत है जो कर्णिका के आकार से युक्त होकर स्थित रहता है। ॥ ४ ॥ हिमवान्–हेमकूट और निषध इसके दक्षिण में है। नील–श्वेत और शृङ्गी पर्वत इसके उत्तर में विद्यमान रहते हैं॥ ५ ॥ एक लक्ष प्रमाण वाले दो मध्य में हैं। दश कुछ कम प्रमाण वाले हैं तथा दूसरे दो सहस्र ऊँचाई हैं और वे उतने ही विस्तार वाले हैं॥ ६ ॥ सब से प्रथम भारत वर्ष है। उसके पश्चात् किम्पुरुष नामक वर्ष है। हे द्विज ! उसी प्रकार फिर अन्य हरि वर्ष है जोकि मेरु के दक्षिण में स्थित है॥ ७ ॥ रम्यक वर्ष उत्तर दिशा में है और इसी भाँति दूसरा हिरण्मय वर्ष नामक एक वर्ष है। जिस प्रकार से भारत वर्ष है उसी तरह उत्तरा और कुरा वर्ष है॥ ८ ॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः॥९
मेरोश्चतुर्दिश तत्र नवसाहस्रविस्तृतम्।
इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः॥१०
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥११
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः।
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च॥१२

एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ।
जम्बूद्वीपेति संज्ञा स्यात्फलं जम्ब्वा गजोपमम् ॥१३
जम्बूनदी रसेनास्यास्त्विदं जाम्बूनद परम् ।
सुपार्श्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे ॥१४
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः ।
सिताम्भश्चक्रमुञ्जाद्याः पूर्वतः केशराचलाः ॥१६

हे मुनि श्रेष्ठ ! इस में एक-एक का नौ सहस्र प्रमाण होता है और इलावृत है इसके मध्य मे सुवर्ण का ऊंचा मेरु पर्वत है ॥ ६ ॥ मेरु की चारों दिशाओं में वहाँ पर नौ सहस्र विस्तार वाला इलावृत है। हे महाभाग ! वहाँ चार अद्र पर्वत हैं ॥ १० ॥ दश सहस्र योजन के विस्तार वाले मेरु के निर्मित विष्कम्भ (अर्गला) हैं। इसके पूर्व दिशा की ओर मन्दर पर्वत है और दक्षिण दिशा मे गन्ध मादन नाम वाला पर्वत स्थित रहता है ॥ १० ॥ पश्चिम दिशा में विपुल नाम वाला और पार्श्व मे उत्तर मे में सुपार्श्व नामक विद्यमान है। उन में ग्यांरह सौ आयाम (फैलाव) वाले पर्वत के केतु स्वरूप मे स्थित कदम्ब, जामुन, पीपल और वट ये वृक्ष हैं। वहाँ जम्बू द्वीप मे हाथी के समान जामुन के फल होते हैं इसी लिये इस द्वीप का नाम भी जम्बू द्वीप पड गया है ॥ १२-१३ ॥ इसके विशाल फलों के रस से जम्बू नदी बन जाती है और यह फिर महान् जम्बू नद हो जाता है। मेरु के पूर्व में सुपार्श्व है और पश्चिम मे केतुमाल स्थित है ॥ १४ ॥ पूर्व दिशा में चैत्ररथ नामक एक वन है तथा दक्षिण दिशा मे गन्धमादन पर्वत है। पश्चिम दिशा मे वैभ्राज नामक पर्वत है और सौम्य दिशा मे नन्दन वन है और सरोवर हैं ॥ १५ ॥ उन सरोवरों के नाम अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस, सिताम्भ, चक्र मुञ्ज आदि हैं। पूर्व की ओर केशर नामक पर्वत हैं ॥ १६ ॥

दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः शिखिवासमुखा जले ।
शंखकूटादयः सौम्ये मेरौ च ब्रह्मणः पुरी ॥१७
चतुर्दश सहस्राणि योजनानां च दिक्षु च ।
इन्द्रादिलोकपालानां समन्ताद् ब्रह्मणः पुरी ॥१८

विष्णुपादात्प्लावयित्वा चन्द्रं स्वर्गात्पतत्यपि ।
पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाच्छैलादगताऽर्णवम् ॥१९
तथैवालकनन्दाऽपि दक्षिणेनैव भारतम् ।
प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाऽथ पश्चिमम् ॥२०
अब्धि च चक्षुः सौम्यार्ऽब्धि भद्रोत्तरकुरूनपि ।
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥२१
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ॥२२
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ।
जठरो देवकुण्ठश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥२३
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चाऽऽयतावुभौ ॥२४

पर्वत के अर्थात् मेरु गिरि के दक्षिण में चित्रकूट आदि हैं और वरुण की ओर शिखिवास मुख हैं। सौम्य अर्थात् पूर्व दिशा में शंख कूर आदि हैं और मेरु में ब्रह्मा की पुरी स्थित है ॥ १७ ॥ दिशाओं मे चोदह हजार योजन तक इन्द्र आदि लोकपालों के पुर ब्रह्मा की पुरी के चारों ओर स्थित हैं। ॥ १८ ॥ भगवान् विष्णु के चरण से निकल कर पूर्व दिशा से चन्द्रमा को प्लावित करके स्वर्ग से शीता गिरती है फिर भद्राश्व पर्वत पर आकर उस से बढ़कर समुद्र में गई है ॥ १९ ॥ उसी भाँति से दक्षिण दिशा की ओर से अलकनन्दा नदी भारत वर्ष को जाती है और सात भेदों वाली यह सागर को भी सात प्रकार का कर देती है। पश्चिम, अब्धि, चक्षुः सौम्याब्धि, भद्र, उत्तर, कुरु ये उनके नाम हैं। नील और निषध तक आयाम (विस्तार) वाले माल्यवान् और गन्धमादन ये दो पर्वत हैं ॥ २०-२१ ॥ इन दोनों के बीच में रहने वाला मेरु पर्वत है जो कर्णिका के आकार से संस्थित रहता है। भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु ये इस लोक रूपी कमल के पत्र यानी दल हैं और बाहिर से पर्वत ही मर्यादा स्वरूप हैं। जठर और देव कुण्ठ ये दो पर्वत होते हैं ॥ २२-२३ ॥ वे दोनो दक्षिण और उत्तर तक आयाम वाले

तथा नील और निषध पर्यन्त चौड़े है। गन्धमादन तथा कैलाश भी पूर्व की भाँति दोनों आयत (विस्तृत) हैं ॥ २४ ॥

अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥२५
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ ।
त्रिशृङ्गो रुधिरश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ॥२६
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
जाठराद्याश्च मर्यादाशैला मेरोश्चतुर्दिशम् ॥२७
केशरादिषु याः श्रेण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि ।
लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ॥२८
भौमानां स्वर्गधर्माणां न पापास्तत्र यान्ति च ।
भद्राश्वेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके ॥२९
भारते कूर्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि ।
विश्वरूपेण सवत्र पूज्यते भगवान्हरिः ॥३०
किंपुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं न च ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः ॥३१
कृतादिकल्पना नास्ति भौमान्यम्भांसि नाम्बुदाः ।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥३२
नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे ।
भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ॥३३

अस्सी योजन आयाम वाले तथा समुद्र के अन्तर्व्यवस्थित अर्थात् सागर के मध्य में स्थित निषध और पारियात्र दो मर्यादा पर्वत हैं ॥ २५ ॥ जैसे पूर्व में स्थित हैं। वैसे ही मेरु के पश्चिम दिशा के भाग में भी स्थित होते हैं। त्रिशृङ्ग और रुधिर ये उत्तर के वर्ष पर्वत हैं ॥ २६ ॥ ये दोनों समुद्र के मध्य में व्यवस्थित पूर्व और पश्चिम तक विस्तृत हैं और जाठर आदि मर्यादा बनाने वाले पर्वत मेरु गिरि के आगे और स्थित हैं ॥ २७ ॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! केशर आदि में जो श्रेणियाँ हैं उन सतारों में लक्ष्मी, विष्णु,

अग्नि और सूर्य आदि देवताओं के पुर होते हैं अर्थात् निवास के नगर स्थित रहते हैं ॥ २८ ॥ भूमि में होने वालों के पास इन स्वर्ग के धर्म वालों के निकट नहीं पहुँचते हैं। भद्राश्व में हयग्रीव भगवान् हैं और केतुमाल में वराह भगवान् स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ इस भारत वर्ष में कूर्म का रूप धारण करने वाले भगवान् रहा करते हैं और कुरु वर्षों में मत्स्यावतार धारण करने वाले मत्स्य के रूप में स्थित रहते हैं। विश्व के रूप से तो भगवान् हरि सभी जगहों में पूजे जाया करते हैं ॥ ३० ॥ किम्पुरुष आदि आठों में भूख-भय और शोक आदि नहीं होते हैं। चौबीस हजार वर्ष पर्यन्त प्रजा बिना किसी भी रोग आदि के जीवित रहा करती हैं ॥ ३१ ॥ वहाँ कृत युग आदि की कोई भी कल्पना नहीं होती है और भूमि में होने वाले जल तथा अम्बुद (मेघ) भी नहीं हैं। इन समस्त वर्षों में सात-सात कुलाचल अर्थात् कुल पर्वत होते हैं ॥ ३२ ॥ और उन पर्वतों से सैकड़ों तीर्थों के स्वरूप में रहने वाली नदियाँ समुद्भूत हुई हैं। अब मैं जो इस भारत वर्ष में तीर्थ हैं उनके विषय में वर्णन करता हूँ कि कौन-कौन से तीर्थ यहाँ पर विद्यमान हैं ॥३३॥



४४—तीर्थमाहात्म्यम्

माहात्म्यं सर्वतीर्थानां वक्ष्ये यद् भुक्तिमुक्तिदम् ।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥१
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।
प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥२
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ॥३
अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ।
तीर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यज्ञेनाऽऽप्यते फलम् ॥४
पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि त्रिसंध्यकम् ।
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ॥५

ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः।
देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नाताः पितृसुरार्चकाः ॥६
अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते।
कार्तिक्यामन्नदानाच्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ॥७
पुष्करे दुष्करं गन्तुं पुष्करे दुष्करं तपः।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ॥८

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं समस्त तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ जो सभी प्रकार के भोगों का तथा मोक्ष के देने वाले हैं। जिस मानव के दोनों हाथ—दोनों पैर और भली भाँति संयम में रहने वाला मन होता है तथा विद्या तप और कीर्त्ति भी विद्यमान है वही तीर्थों के फलों की प्राप्ति किया करता है। प्रतिग्रह अर्थात् दूसरों के द्वारा दिया हुआ दान से उपावृत्त है यानी दान ग्रहण करने वाला नहीं है तथा थोड़ा हलका आहार करने वाला और इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में रखने वाला होता है वह समस्त पापों से रहित तीर्थों की यात्रा करने वाला सभी यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है। तीन रात्रि तक व्रतोपवास न करके और तीर्थों की यात्रा न करके तथा सुवर्ण एवं गौओं का दान न करके ही मनुष्य दरिद्र हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि दरिद्रता भगाने के लिये इन सब का करना परम आवश्यक है। तीर्थों को गमन करने से जो परम फल प्राप्त हुआ करता है वह यज्ञों के करने के समान होता है अर्थात् जो यज्ञ से फल मिलता है वही तीर्थाभिगमन से मिला करता है ॥ १-२-३-४ ॥ हे विप्र! पुष्कर परम उत्तम तीर्थ है। इसमें तीन सन्ध्या तक रहना अत्यन्त फल देने वाला होता है। पुष्कर में दश करोड़ सहस्र तीर्थ निवास किया करते हैं अर्थात् इन सब का फल यहाँ प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ यहाँ देवों के साथ ब्रह्मा जी रहते हैं। सर्व कुछ की इच्छा रखने वाले मुनिगण देव वृन्द यहाँ पर स्नान कर और पितर तथा सुरों का अर्चन करके सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं। ६ ॥ वे सभी अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर सीधे ब्रह्म लोक में जाया करते हैं जो कार्त्तिक मास की पूर्णिमा तिथि में अन्न का दान यहाँ करते हैं। ऐसे पुरुष निर्मल होकर ब्रह्मलोक के गमन के

पूरे अधिकारी बन जाते हैं ॥ ७ ॥ पुष्कर में गमन करना बड़ा कठिन है—पुष्कर में तप करना भी बहुत कठिन होता है। पुष्कर तीर्थ में दान देना और वहाँ निवास करना महान् कठिन कार्य है ॥ ८ ॥

तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात्कुलानां शतमुद्धरेत् ।
जम्बूमार्गं च तत्रैव तीर्थं तण्डुलिकाश्रमम् ॥९
कण्वाश्रमं कोटितीर्थं नर्मदा चार्बुदं परम् ।
तीर्थं चर्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकम् ॥१०
सरस्वत्यब्धिसङ्गश्च सागरं तीर्थमुत्तमम् ।
पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ॥११
भूमितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं तीर्थं पञ्चनदं परम् ।
भीमतीर्थं गिरीन्द्रश्च देविका पापनाशिनी ॥१२
तीर्थं विनशनं पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनम् ।
तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ॥१३
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमल. प्राप्नुयाद्दिवम् ॥१४
तत्र विष्ण्वादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं व्रजेत् ।
सरस्वत्यां संनिहित्यां स्नानकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥१५

वहाँ पुष्कर तीर्थ में निवास करने से तथा पुष्कर में रह कर मन्त्र जाप करने से एवं यहाँ पर रह कर श्राद्ध करने से मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है। वहाँ पर ही जम्बू मार्ग है तथा तण्डुलिक श्रम तीर्थ भी स्थित रहता है ॥ ९ ॥ पुष्कर में कण्वाश्रम है—कोटि तीर्थ है, नर्मदा और परम अर्बुद है। पुष्कर राज में चर्मण्वती तीर्थ है, सिन्धु—सोमनाथ और प्रभास तीर्थ भी विद्यमान है ॥ १० ॥ सरस्वती और समस्त सिद्धियों की देने वाली गोमती—भूमि तीर्थ, ब्रह्म तुङ्ग और पञ्चनद परम तीर्थ, भीम तीर्थ, गिरीन्द्र, पापों के नाश करने वाली देविका ये सब तीर्थ विद्यमान हैं ॥ ११–१२॥ विनशन तीर्थ—नागोद्भेदमघार्दन पुण्य तीर्थ अर्थात् पाप नाशक नागोद्भेद कुमार कोटि तीर्थ है जो सब कुछ प्रदान करने वाले कहे गये हैं ॥ १३ ॥ कुरु

क्षेत्र तीर्थ में जाऊँगा और कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा या करता हूँ जो इस तरह सर्वदा कहता है वह मलों से रहित हो जाता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है ॥ १४ ॥ यहाँ पर विष्णु आदि समस्त देव विराजमान रहते हैं। वहाँ वास करने से हरि की सन्निधि प्राप्त होती है। समीप में स्थित सरस्वती नदी में स्नान करने वाला ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १५ ॥

पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे नयन्ति परमां गतिम्।
धर्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमम् ॥१६
तीर्थं कनखलं पुण्यं भद्रकर्णह्रदं तथा।
गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघार्दनम् ॥१७
भृगुतुङ्गं च कुब्जाम्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकम्।
वाराणसी वरं तीर्थमविमुक्तमनुत्तमम् ॥१८
कपालमोचनं तीर्थं तीर्थराजं प्रयागकम्।
गोमतीगङ्गयोः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ॥१९
तीर्थं राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकम्।
वटेशं वामनं तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमम् ॥२०
लौहित्यं करतोयाख्यं शोणं चार्षभं परम्।
श्रीपर्वतं कोल्लगिरिः सह्याद्रिर्मलयो गिरिः ॥२१
गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी।
तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमम् ॥२२
कालंजरं मुञ्जवटं तीर्थं सूर्पारकं परम्।
मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गवेरपुरं परम् ॥२३
अवन्ती परमं तीर्थमयोध्या पापनाशिनी।
नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२४

जो नीचातिनीच कर्म करने वाले होते हैं वे भी कुरुक्षेत्र में निवास करने से परम गति को प्राप्त होते हैं। धर्म तीर्थ—सुवर्ण नामक पवित्र गङ्गा द्वार-कनखल तीर्थ—परम पुण्य भद्रकर्ण ह्रद-गङ्गा और सरस्वती का सङ्गम-ब्रह्मावर्त अघार्दन तीर्थ, भृगु तुङ्ग, कुब्जाम्र, गङ्गोद्भेद अघान्तक, पाप नाशक

गङ्गोद्भेद तीर्थ, वाराणसी श्रेष्ठ तीर्थ जो अविमुक्त लोगों के लिये परम श्रेष्ठ है। कपाल मोचन तीर्थ, तीर्थों का राजा प्रयाग–गोमती और गङ्गा दोनों का सङ्गम वाला तीर्थ है। गङ्गा सभी जगह स्वर्ग प्रदान करने वाली नदी है॥ १६–१७–१८–१९॥ राजगृह पुण्य तीर्थ–शालग्राम तीर्थ जो अघों (पापों) का नाशक है। वटेश–वामन तीर्थ, उत्तम कालिका का सङ्गम, लौहित्य, करतोय नामक तीर्थ, शोण–ऋषभ, श्री पर्वत, कोल्लगिरि, सह्याद्रि, मलय गिरि, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, वरदा नदी, तापी, पयोष्णी, रेवा और परम उत्तम दण्डकारण्य, कालञ्चर, मुंज्जवट, सूर्पारक, मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृङ्गवेरपुर, परम तीर्थ अवन्ती पापों के नाश करने वाली अयोध्या, नैमिष परम तीर्थ जो भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है। इस प्रकार से ये सब अनेक तीर्थ भारत वर्ष में हैं जिन में जाने से समस्त पापों का क्षय होता है॥ २०–२१–२२–२३–२४॥



४५–गङ्गामाहात्म्यम्

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा।
येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः॥१
गतिर्गङ्गा तु भूतानां गतिमन्वेषतां सदा।
गङ्गा तारयते चाभौ वंशौ नित्यं हि सेविता॥२
चान्द्रायणसहस्राच्च गङ्गाम्भः पानमुत्तमम्।
गङ्गा मासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत्। ३
सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी।
यावदस्थि च गङ्गायां तावत्स्वर्गे स तिष्ठति॥४
अन्धादयस्तु तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम्।
गङ्गातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत्॥५
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेतिकीर्तनात्।
पुनाति पुण्यपुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥६

श्री अग्निदेव ने कहा—अब श्री गङ्गा का माहात्म्य कहूँगा जो गङ्गा सेवन करने के योग्य है और भोगों तथा मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाली है। जिन देशों में होकर गङ्गा नदी जाया करती है वे देश परम पावन देश तथा श्रेष्ठ देश हो जाते हैं ॥ १ ॥ जो प्राणी अपने उद्धार की खोज किया करते हैं उन समस्त प्राणियों के लिये गङ्गा सर्वदा गति देने वाली होती है। नित्य जो गङ्गा के जल का सेवन किया करते हैं उनके दोनों वंशों को गङ्गा तार देती है ॥ २ ॥ जो पापों का प्रायश्चित्त एक सहस्र चान्द्रायण व्रत करने से होता है उससे भी उत्तम श्री गंगा के जल का पान है अर्थात् उस एक हजार चान्द्रायण व्रत से अधिक इसका फल होता है। एक मास तक गंगा नदी के जल का सेवन करना चाहिए। इससे समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ गंगा समस्त पापों का हरण करने वाली है। गंगा स्वर्ग लोक प्रदान करती है। गंगा नदी में मृत प्राणी की हड्डी जब तक रहती है तब तक वह प्राणी स्वर्गलोक में निवास किया करता है ॥ ४ ॥ जो नेत्रों से अन्धे तथा अन्य अंगों से हीन होते हैं वे इस गंगा का सेवन करके देवों के तुल्य सुन्दर शरीर वाले हो जाया करते हैं। गंगा तीर्थ से उत्पन्न मृत्तिका को धारण करने वाला व्यक्ति पापों का नाश करने वाला सूर्य के समान होता है। ॥ ५ ॥ गंगा के दर्शन से तथा गंगा जल के स्पर्श करने से और गंगा जल के पान करने से एवं मुख से 'गंगा' इस नाम के उच्चारण मात्र से गंगा सैकड़ों एवं सहस्रों पुण्यवान् पुरुषों को पवित्र कर देती है ॥ ६ ॥



४६–प्रयागमाहात्म्यम्

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्।
प्रयागे ब्रह्मविष्ण्वाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ॥१
सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ॥२

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता ।
तपनस्य सुता तत्र त्रिपु लोकेपु विश्रुता ॥३
गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।
प्रयाग जघनस्यान्तरुपस्थमृपयो विदुः ॥४
प्रयागं सप्रतिष्ठान कम्वलाश्वतरावुभौ ।
तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ॥५
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके ।
स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ॥६
मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
प्रयागे संगमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ॥७

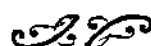
श्री अग्निदेव बोले—अब मैं परम भुक्त और मुक्ति को प्रदान करने वाले प्रयाग के माहात्म्य को बताऊँगा। प्रयागराज में ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देव गण और मुनिवर स्थित रहा करते हैं ॥ १॥ देवों के सहित समस्त नदियाँ, सिद्धगण, गन्धर्व, अप्सरायें प्रयाग मे विद्यमान रहा करते हैं। वहाँ पर तीन अग्निकुण्ड हैं। उनसे मध्य में जाह्नवी स्थित है ॥ २ ॥ यह बड़े तेज वेग से वहाँ बह रही है और समस्त तीर्थ उसके साथ रहा करते हैं। वहाँ सूर्य की पुत्री यमुना भी बहती है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ गंगा और यमुना इन दोनों नदियों के बह कर चलने में इनके मध्य का भाग जो होता है वह पृथ्वी का जघन (जाँघ) कहा गया है। उन जघनों के बीच में प्रयाग उपस्थ है (जननेन्द्रिय) उप अर्थात् समीप मे रहने वाली इन्द्रिय ही उपस्थ कहा जाता है। ऐसा ऋषिगण कहते हैं ॥ ४ ॥ प्रयागराज एक अत्यन्त अच्छी प्रतिष्ठा का स्थान है। उसके कम्बल और अश्वतर—ये दुम हैं। यह तीर्थ को भोगने वाली प्रजापति की वेदी बताई गई है ॥ ५ ॥ उस प्रयागराज में समस्त वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर विराजमान रहा करते हैं। इस सर्व महान् तीर्थ की स्तुति करने से तथा केवल इसके नाम का स्मरण करने से भी तथा यहां की मिट्टी को लेकर उसका शरीर पर मल देने या लगाने से भी मानव समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है। प्रयागराज

महान् तीर्थ में जहां दोनों–तीनों नदियों का संगम होता है, दान जो भी कुछ किया जावे या श्राद्ध एवं जाप किया जावे वह अक्षय होता है ॥ ६–७ ॥

न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि ।
मतिरुत्क्रमणीयाऽन्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥३
दश तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः ।
तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः ॥६
वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परम् ।
गवां कोटिप्रदानाद्यस्त्र्यह स्नानस्य तत्फलम् ॥१०
प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः ।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥११
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।
अत्र दानाद्दिव याति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ॥१२
वटमूले संगमादौ मृतो विष्णुपुरी व्रजेत् ।
उर्वशीपुलिनं रम्य तीर्थं संध्यावटस्तथा ॥१३
कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम् ।
मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं परम् ॥१४

हे विप्र ! वेदों के वचन से और लोक के प्रवचन से अर्थात् कथन से भी प्रयाग में अन्त समय में मृत्यु के उपस्थित होने पर अपनी बुद्धि का उत्क्रमण नहीं करना चाहिए अर्थात् बुद्धि को हटाना नहीं चाहिए चाहे कोई कुछ भी कहे अन्त समय में वहां पर ही निवास रक्खे और मृत्यु प्राप्त करे। ॥ ८ ॥ प्रयागराज एक ऐसा महान् तीर्थ है जहाँ पर दश हजार तीर्थ निवास किया करते हैं और इनके भी अतिरिक्त साठ करोड़ अन्य तीर्थ रहते हैं। इन सब का प्रयाग में ही सान्निध्य है। इसी लिये प्रयाग परम महान् तीर्थ माना है ॥ ९ ॥ यहां पर वासुकि की भोगवती है और यहां हंस का प्रपतन है। एक करोड़ गौओं के दान का जो फल होता है उससे भी अधिक फल यहां तीन दिन के स्नान से हुआ करता है ॥ १० ॥ प्रयाग में माघ महीने में तो विद्वान् लोग ऐसा विशेष महत्त्व बतलाते हैं कि अन्य सब स्थलों में गंगा सुलभ

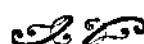
हो जाती है किन्तु गंगा द्वार में अर्थात् गंगा के प्रकट होने के स्थान में और प्रयाग में तथा गंगा और सागर के सङ्गम में अत्यन्त दुर्लभ होती है। तात्पर्य यह है कि किसी महान् पुण्य से ही मिल पाती है। यहां पर उस समय में दान करने से सीधा स्वर्ग को जाया करता है और अगले जन्म मे महान् राजा होता है ॥ ११–१२ ॥ संगम आदि में वट के मूल में जो मृत्यु को प्राप्त होता है वह विष्णुपुरी में जाता है। उर्वशी का पुलिन रम्य तीर्थ तथा सन्ध्यावट करोड़ तीर्थ और अश्वमेध यज्ञ के तुल्य हैं जो कि उत्तम गंगा और यमुना का संगम होता है। एक दिन भी इस परम पुण्य तीर्थ में रहने से मनको रजो गुण से रहित बना देता है ॥ १३–१४ ॥



४७—वाराणसीमाहात्म्यम्

वाराणसी परं तीर्थं गौर्यै प्राह महेश्वरः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम् ॥१
गौरि क्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
जप्तं तप्तं हुतं दत्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ॥२
अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीं न हि त्यजेत् ।
हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ॥३
जप्येश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ।
महालयं परं गुह्यं भूमिचण्डेश्वरं तथा ॥४
केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविमुक्तके ।
गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तं परं मम ॥५
द्वियोजनं तु पूर्वं स्याद्योजनार्धं तदन्यथा ।
वरणा च नदी नासी मध्ये वाराणसी तयोः ॥६
अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनम् ।
श्राद्धं दानं निवासश्च यद्यत्स्यान्भुक्तिमुक्तिदम् ॥७

अब वाराणसी के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। अग्नि ने कहा—वाराणसी (बनारस-काशी) सर्व श्रेष्ठ तीर्थ है—ऐसा महादेव जी ने पार्वती से कहा था। जो वाराणसी में निवास करते हैं और हरि का भजन किया करते हैं उन्हें समस्त भोग और मुक्ति अर्थात् संसार के आवागमन से छुटकारा प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥ रुद्रदेव ने कहा हे गौरि! इस क्षेत्र को कभी न छोड़े और सर्वदा इससे अविमुक्त रहना चाहिए। यहां अविमुक्त रहते हर जाप-तप, हवन और दान निश्चय ही अक्षय हुआ करता है ॥ २ ॥ पत्थर से चरणों को तोड़ कर काशी में वास करना चाहिए और उसे कभी भी नहीं त्यागना चाहिए। यहां पर हरिश्चन्द्र तथा आम्रातकेश्वर ये दोनों स्थान अत्यन्त गोपनीय है ॥ ३ ॥ इनके अतिरिक्त जप्येश्वर, श्रीपर्वत, महालय और भूमि चण्डेश्वर ये स्थल भी अत्यन्त गोपनीय है ॥ ४ ॥ वे हार परम गुह्य है। ऐसे ये आठ स्थल गुह्य होते हैं जो कि अविमुक्त है किन्तु इन समस्त गुह्यों में भी परम गुह्य मेरा अविमुक्त स्थल है ॥ ५ । पूर्व में दो योजन और उस से अन्य दिशा मे आधा योजन वारणा नदी है और नासी है। मध्य में उन दोनों के वाराणसी स्थित है ॥ ६ ॥ यहां पर वाराणसी में स्नान करना, मन्त्रों का जाप करना, मृत्यु को प्राप्त होना, देवों का पूजन करना, पितरों के निमित्त श्राद्ध करना, दान देना और वाराणसी आकर निवास करना इनमें सब मे जो-जो भी कोई एक होता है और बन पडता है वह भुक्ति (भोगों का प्राप्त करना) और मुक्ति (संसार में बार २ जन्म ग्रहण करने से छुटकारा) इन दोनो को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥



४८—नर्मदामाहात्म्यम्

नर्मदादिकमाहात्म्यं वक्ष्येऽहं नर्मदा परम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनाद्वारि नार्मदम् ॥१
विस्तराद्योज शतं योजनद्वयमायतम् ।
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः ॥२

पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ।
कावेरीसंगमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ॥३
गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामब्रवीद्धरिः ।
अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म नाम्ना श्रीपर्वतस्तव ॥४
समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति ।
अत्र दानं तपो जप्यं श्राद्धं सर्वमथाक्षयम् ॥५
मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमम् ।
हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ॥६
तपस्तप्त्वा वली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन् ॥७

श्री अग्नि ने कहा—अब नर्मदा आदि के माहात्म्य को तथा परम पुण्यमयी नर्मदा के विषय में बतलाऊँगा। नर्मदा का जल के दर्शन से ही यह गङ्गा शीघ्र ही मानवों को पवित्र कर दिया करती है ॥ १ ॥ अमरकण्टक में पर्वत के चारों ओर सौ योजन विस्तार तथा दो योजन आयत में साठ हजार तीर्थ तथा अन्य साठ करोड़ पवित्र धाम स्थित हैं। कावेरी का सङ्गम परम पुण्यमय है। अब श्री पर्वत के विषय में सुनो ॥ २–३ ॥ वहाँ पर लक्ष्मी के रूप वाली गौरी तपस्या करती थी। उनसे हरि ने कहा—तुम अब इस तपश्चर्या के प्रभाव से अध्यात्म को प्राप्त करोगी और यह पर्वत तुम्हारे ही नाम से श्री पर्वत कहा जायगा ॥ ४ ॥ चारों ओर सौ योजन पर्यन्त यह स्थल महान् पुण्यमय हो जायगा। यहाँ पर जो भी कोई दान देगा वह दानमन्त्रों का लाभ, तपश्चर्या, श्राद्ध ये सभी क्षय रहित हो जाया करेगा ॥ ५ ॥ यहाँ मृत्यु होने पर शिवलोक की प्राप्ति होगी। यहाँ उत्तम तीर्थ सभी कुछ प्रदान करने वाला है। यहाँ पर शिव स्वयं देवी गौरी के साथ क्रीड़ा किया करते हैं। यहीं पर दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने सिद्धि प्राप्त करने के लिये तपस्या की थी और वह परम बलवान् हो गया था। बहुत से मुनियों ने भी यहाँ तप के द्वारा सिद्धियों का लाभ किया था ॥ ६–७ ॥



४६—श्राद्धकल्प

कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे ।
गयादौ श्राद्धं कुर्वीत संक्रान्त्यादौ विशेषतः ॥१
काले चापरपक्षे च चतुर्थ्यामूर्ध्वमेव वा ।
संपाद्य च पदर्क्षे च पूर्वेद्युश्च निमन्त्रयेत् ॥२
यतीन्गृहस्थसाधून्वा स्नातकाञ्छ्रोत्रियान्द्विजान् ।
अनवद्यान्कर्मनिष्ठाञ्छिष्टानाचारसंयुतान् ॥३
वर्जयेच्छ्वित्रिकुष्ठादीन्न गृह्णीयान्निमन्त्रितान् ।
स्नाताञ्छुचींस्तथाऽऽचान्तान्प्राङ्मुखान्देवकर्मणि ॥४
उपवेशयेत्त्रीन्पित्र्यानेकैकमुभयत्र वा ।
एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ॥५
तदह्नि ब्रह्मचारी स्यादकोपोऽत्वरितो मृदुः ।
सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्च वाग्यतः ॥६
सर्वांश्च पङ्क्तिमूर्धन्यान्पृच्छेत्प्रश्ने तथाऽऽसने ।
दर्भानास्तीर्य द्विगुणान्पित्र्ये दैवादिकं चरेत् ॥७
विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च ।
विश्वे देवास आवाह्य विकीर्याथ यवाञ्जपेत् ॥८

अब श्राद्ध कल्प के विषय में बतलाया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—जिस प्रकार से कात्यायन ने मुनियों से कहा था उसी तरह मैं श्राद्ध के विषय में बताता हूँ। गया आदि मे विशेष रूप से संक्रान्ति आदि के समय पर श्राद्ध करना चाहिए ॥ १ ॥ समय पर और दूसरे पक्ष में चतुर्थी तिथि में अथवा उसके ऊपर सब सम्पादन करे पदर्क्ष में और पहिले दिन मे निमन्त्रण देना चाहिए। निमन्त्रण के पात्र कौन हैं—यह भली भाँति बतलाया जाता है जिन्हें निमन्त्रण देवे या तो यति हों, गृहस्थ, साधु हों अथवा स्नातक, श्रोत्रिय द्विज हों जो भी हो समस्त दोषों से रहित निर्दोष होने चाहिए। अपने कर्म के करने में पूर्ण निष्ठा रखने वाले हों और शिष्टता से सम्पन्न हों, सदाचार से युक्त भी हों ऐसे लोगों को निमन्त्रण देना चाहिए ॥ २–३ ॥ जिनको श्वित्र

अर्थात् सफेद कोढ़ हो ऐसों को कभी नहीं आमन्त्रित करे और यदि भूल से निमन्त्रित भी हों तो कभी ऐसे लोगों को ग्रहण नहीं करे। देव कर्म में जो भी हों वे स्नान किये हुए—पवित्र और आचमन करके प्रवृत्त होने वाले होवें तथा पूर्व की ओर मुख करके स्थित रहें ॥ ४ ॥ तीन पितृ गण में से एक-एक को उपवेशित करे अथवा दोनों में करे इसी प्रकार से मातामह आदि का पालन करने वाला रहे। उस दिन भूल कर भी किसी पर क्रोध न करे। किसी भी काम को शीघ्रता में न करे और सभी व्यवहारों में सदा मृदुता रक्खे। सत्य व्यवहार और भाषण करे। किसी भी काम में प्रमाद न करे तथा मार्ग गमन करने वाला न होवे। स्वाध्याय श्राद्ध के दिन न करके मौन व्रत से रहना चाहिए ॥ ६ ॥ प्रश्न में जो शिरोमणि हों उनसे पूछे तथा आसन पर दुगुनी डाभों को फैला कर पित्र्य कर्म में दैवादिक का समाचरण करना चाहिए ॥ ७ ॥ मैं विश्वे देवों का आवाहन करूँगा। ऐसा पूछना चाहिए। आवाहन करो—इस उत्तर पर उसे फिर विश्वेदेवाओं का आवाहन करके यवों को फैला कर जप करना चाहिए ॥ ८ ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमं पितॄन्नावाहयिष्येति।
पृच्छेदावापयेत्युक्त उशन्तस्त्वा समाह्वयेत्। ६
तिलान्विकीर्याथ जपेदापस्त्वित्यादि पात्रके।
सपवित्रे निषिञ्चेद्वा श न्नो देवीरिति ह्यृचा ॥१०
यवोऽसीति यवान्दत्त्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान्।
तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः ॥११
प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृ निमा
ल्लोँकान्प्रीणया हि नः स्वधेति।
श्रीश्च तेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते ॥१२
औदुम्बरे वा खड्गे वा पर्णपात्रे प्रदक्षिणम्।
देवानामपसव्यं तु पितॄणां सव्यमाचरेत् ॥
एकैकस्य एकैकेन सपवित्रकरेषु च ॥१३

या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या
अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः ।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१४
विश्वे देवा एष वोऽर्घः स्वाहा च पितरेष ते ।
स्वधवं पितामहादेः संस्रवान्प्रथमे चरेत् ॥१५

हे विश्वे देवा ! आप श्रवण कीजिए—मैं इन पितृगण का आवाहन करूँगा, ऐसा पूछना चाहिए, जब आवाहन करो ऐसा कहा जावे तो 'उशन्तस्त्वा'' -इत्यादि मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए ॥ ६ ॥ तिलों को फैला कर आपस्त्वित्यादि का जप करे पवित्री के सहित पात्र में ''शन्नो देवी'' इत्यादि ऋचा से निषिञ्चन करना चाहिए ॥ १६ ॥ 'यवोऽसि'—इससे यवों को देकर पितर के लिये सब जगह तिलों को ''तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे दवे निर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्त स्वधया पितृल्लोंकान् प्रीणया हि नः स्वधा'' इस मन्त्र से और श्रीश्च ते'' इससे सुवर्ण निर्मित अथवा रजत निर्मित पात्र में पुष्प देना चाहिए ॥ ११–१२ ॥ औदुम्बर अर्थात् गूलर के अथवा खड्ग पर्ण पात्र मे प्रदक्षिणा करे । देवों का तो अप सव्य होकर करे और पितरों का सव्य होकर करना चाहिए । दक्षिण और वाम को सव्य तथा अपसव्य कहते हैं । एक-एक को एक-एक से पवित्री सहित करे ॥ १३ ॥ उसका मन्त्र—''या दिव्या आपः पयसा सबभूवुर्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः । हिरण्य वर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु'' । फिर 'विश्वे देवा एष'वोऽर्घः स्वाहा'—यह उच्चारण करके विश्वे देवाओं को देवे । 'पितरेष ते स्वधा''—यह कह कर पितामह आदि के लिये संस्रव प्रथम में करना चाहिए ॥ १४–१५ ॥

पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ।
अत्रगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनदानकम् ॥१६
घृताक्तमन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्येति ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयात्साग्निकोऽनले ॥१७

अनग्निकः पितृहस्ते सपवित्रे तु मन्त्रतः ।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाऽऽहुतिः ॥१८
सोमाय पितृमतेऽथ यमायाङ्गिरसेऽपरे ।
हुतशेषं चान्नं पात्रे दत्त्वा पात्रं समालभेत् ।।१९
पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य
मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहेति ॥
जप्त्वेद विष्णुरित्यन्ने द्विजांगुष्ठं निवेशयेत् ॥२०

"पितृभ्यः स्थानमसि" इस मन्त्र से न्युब्ज पात्र को नीचे करे। इसमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, आच्छादन, दान, घृत से युक्त अन्न को उद्धरण कर पूछे—अग्नि में करूंगा, उत्तर में, करो, इस तरह आज्ञा प्राप्त किया हुआ होकर साग्निक अनल में हवन करना चाहिए ॥ १६–१७ ॥ अनग्नि पितृ के हाथ में जिसमें पवित्री हो निम्न मन्त्र से प्रथम आहुति देनी चाहिए, मन्त्र—"अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा"—इससे आहुति देवे ॥ १८ ॥ पितृमान् सोम के लिये तथा आङ्गिरस यम के लिये अन्य आहुतियाँ देवे। हवन से बचा हुआ जो कुछ रहे उसे पात्र में देकर पात्र का समालभन करना चाहिए ॥१९॥ इसके अनन्तर—"पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा',—इस मन्त्र का जप करके "इदं विष्णुः" इस मन्त्र से अन्न में ब्राह्मण का अंगुष्ठ निवेशित करना चाहिए। "अपहत"—इत्यादि मन्त्र से तिलों को फैला कर अन्न दिलवाना चाहिए 'जुषध्वम्' अर्थात् सेवन करो यह कह कर इसके पश्चात् गायत्री आदि का जप करना चाहिए ॥ २० ॥

अपहतेति च तिलान्विकीर्यान्नं प्रदापयेत् ।
जुषध्वमिति चोक्त्वाऽथ गायत्र्यादि ततो जपेत् ॥२१
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥२२
तृप्तान्ज्ञात्वाऽन्नं विकिरेदपो दद्यात्सकृत्सकृत् ।
गायत्रीं पूर्ववज्जप्त्वा मधु वातेति वै जपेत् ॥२३

तृप्ताः स्थ इति संपृच्छेत् तृप्ताः स्म इति वै वदेत् ।
शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ॥२४
उद्धृत्योच्छिष्टपार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनम् ।
दद्यात्कुशेषु त्रीन्पिण्डानाचान्तेषु परे जगुः ।।२५
आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत् ।
अक्षय्योदकमेवाथ आशिषः प्रार्थयेन्नरः ।।२६
अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्धतां सदा ।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ।।२७
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ।
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।।२८

देवताओं के लिये नमस्कार है । पितृगणों के लिये नमस्कार है । महान् योगियों के लिये नमस्कार है । स्वाहा और स्वधा के लिये नित्य ही बार-बार नमस्कार है । इस के अनन्तर जब यह जान ले कि सब पूर्णतया तृप्त हो गये है तो फिर अन्न का विकिरण करे और एक-एक बार जल देना चाहिए । इसके उपरान्त पहिली तरह गायत्री मन्त्र का जाप करके फिर "मधुवात" इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥ आप तृप्त हो गये हैं—यह पूछना चाहिए । इसके उत्तर में उन्हें हम पूर्णतया तृप्त हो गये हैं यह उत्तर देना चाहिए । उनके भोजन के पश्चात् जो अन्न शेष रह गया है उसे आज्ञा प्राप्त करके समस्त अन्न को एक जगह कर लेवे जो उच्छिष्ट हो उसको पार्श्व में करके अवनेजन देना चाहिए । आचान्तो पर कुशों में तीन पिण्ड देवे ऐसा कुछ विद्वानों का कथन है ।। २४-२५ ।। ब्राह्मणो के आचमन कर लेने पर उदक-पुष्प और अक्षत दिलवाना चाहिए । अक्षय्य उदक देकर श्राद्ध करने वाले को फिर आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिए ।। २६ ।। मेरे पितृगण अघोर होवें और हमारा गोत्र सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होता रहे । हमारे दाताओं का अभिवर्धन होवे, सन्तति बढ़े वेदों का ज्ञान समृद्ध होवे ।। २७ ।। हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमारे अन्दर

ग्रधिक दान की भावना बढ़ती रहे। हमारे यहाँ अधिक ग्रन्न की उपज होवे ग्रौर हमारे यहाँ समागत ग्रतिथि गण बराबर सम्मान प्राप्त करते रहें ॥२८॥

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन ।
स्वधावाचनीयान्कुशानास्तीर्य सपवित्रकान् ॥२९
स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यताम् ।
पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ॥३०
स्वधोच्यतामस्तु स्वधा उच्यमानस्तथैव च ।
अपो निषिञ्चे दुत्तानं पात्रं कृत्वाऽय दक्षिणम् ॥३१
यथाशक्ति प्रदद्याच्च दैवे पित्र्येऽथ वाचयेत् ।
विश्वे देवाः प्रीयन्तां च वाजे वाजे विसर्जयेत् ॥३२
आ मा वाजस्येत्यनुव्रज्य कृत्वा विप्रान्प्रदक्षिणम् ।
गृहे विशेदमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ॥३३
एकाद्दिष्टं प्रवक्ष्यामि श्राद्धं पूर्ववदाचरेत् ।
एकं पवित्रमेकार्धमेकं पिण्ड प्रदापयेत् ॥३४

हमारी ऐसी परिस्थिति होवे कि हमारे याचना करने वाले सर्वदा ग्राते रहें किन्तु कभी ऐसा ग्रवसर न होवे कि हम किसी के द्वार पर जाकर याचक बनें। इस प्रकार से ब्राह्मणों से प्रार्थना करने के अनन्तर स्वधा वाचनीय कुशाग्रों को फैला कर जो कि पवित्री के सहित हों, फिर पूछे कि मैं स्वधा का वाचन करूँगा। जब स्वधा का वाचन करो—इस प्रकार की अनुज्ञा प्राप्त हो जावे तो पितृवर्ग के लिये ग्रर्था पिता के लिये तथा पितामहों के लिये ग्रौर प्रपितामहों के लिये स्वधा का उच्चारण करे ग्रौर स्वधा के उच्यमान होने के पश्चात् जल का सिञ्चन करे। पात्र को उत्तान (उठा हुग्रा) करके प्रदक्षिणा करे और दैव ग्रौर पित्र्य में यथाशक्ति दान करे। इसके पश्चात् विश्वेदेवा प्रसन्न हों। यह कहते हुए बाजे–बाजे विसर्जन कर देना चाहिए ॥ २९–३०–३१–३२ ॥ इस कर्म के करने के ग्रनन्तर "ग्रामा वाजस्य"—इस से कुछ दूर तक ग्रनुगमन करके ब्राह्मणों की परिक्रमा करके

ब्राह्मणों की परिक्रमा करके उन्हें विदा करे और आप स्वयं अपने घर में वापिस आकर प्रवेश करे। इस रीति से प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि मे करना चाहिए ॥ ३३ । अब एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय में बताऊँगा। यह श्राद्ध भी पूर्व की भांति करना चाहिए। इसमे एक पवित्र एक अर्घ और एक ही पिण्ड प्रदापित करना चाहिए ॥ ३४ ॥

नावांहनाग्नौकरणं विश्वे देवा न चात्र हि ।
तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति यदेत्सुस्वादेत द्विजः ॥३५
उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरम्यताम् ।
अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥३६
सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यतोऽपि वा ।
पितॄणां त्रीणि पात्राणि एकं प्रेतस्य पात्रकम् ॥३७
सपवित्राणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च ।
गन्धोदकेन युक्तानि पूरयित्वाऽभिषिञ्चति ॥३८
प्रेतपात्रं पितृपात्रे ये सम ना इति द्वयात् ।
पूर्ववत्पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत् ॥३९

इसमे न तो आवाहन होता है और न अग्नि मे क्रिया हाती है तथा इसमें विश्वेदेवा नहीं होते है। जहाँ श्राद्ध में तृप्ति का प्रश्न होता है वहां 'स्वदितम्'—ऐसा प्रश्न करना चाहिए और ब्राह्मण उसके उत्तर मे "सुस्वादितम्" कहे ॥ ३५ ॥ अक्षय्य मे 'उपतिष्ठताम्'—यह और विसर्ग मे 'अभिरम्यताम्'—यह कहना चाहिए। उत्तर में-'अभिरताः स्म' अर्थात् हम अभिरत हो गये है, यह कहना चाहिए। इसके अतिरिक्त शेष पूर्ववत् करना चाहिए ॥ ३६ ॥ अब सपिण्डी करण के विषय मे बतलाऊँगा। वर्ष के अन्त में अथवा मध्य में पितरों के तीन पात्र होते हैं और एक पात्र पुत्र का होता है ॥ ३७ ॥ ये चारों पात्र पवित्र के सहित होते हैं और तिल तथा पुष्पों से भी युक्त रहते हैं। गन्ध से युक्त उदक से पूर्ण करके अर्थात् भर कर फिर अभिषिञ्चन किया जाता है ॥ ३८ ॥ 'ये समाना' इन दो से प्रेत पात्र को पितृ पात्र में करे और पूर्व की भांति पिण्ड दान आदि कर्म करे तो इसके करने

मे मृत पुरुषों की जो प्रेतता होती है वह नष्ट होकर फिर उनको पितृता पद की प्राप्ति हो जाया करती है अर्थात् वे प्रेत न रह कर पितृ गण बन जाया करते हैं। यहाँ इस सपिण्डी करण का प्रमुख कार्य होता है और प्रेत भाव छुड़ा कर पितर बनने के लिए यह कर्म किया जाता है। पितर होकर फिर श्राद्ध के पूर्ण अधिकारी हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

अथाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्वं तु पूर्ववत् ।
जपेत्पितृमन्त्रवर्जं पूर्वाह्णे तत्प्रदक्षिणम् ॥४०
उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थश्च यवैरिह ।
तृप्तिप्रश्नस्तु सपन्नं सुसंपन्नं वदेद् द्विजः ॥४१
दध्यक्षतबदराद्याः पिण्डा नान्दीमुखान्पितॄन् ।
आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयतामिति चाक्षये ॥४२
नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति ।
नान्दीत्मुखान्पितृगणान्प्रीयन्तामित्यथो वदेत् ॥४३
नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः ।
मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः ॥४४
स्वधाकारान्न युञ्जीत युग्मान्विप्रांश्च भोजयेत् ।
तृप्ति वक्ष्ये पितृऋणां च ग्राम्यैरोपधिभिस्तथा ॥४५

अब अभ्युदयिक श्राद्ध के विषय में बतलाऊँगा। इस श्राद्ध में अन्य तो समस्त क्रिया कलाप पूर्व की ही भाँति किया जाता है। पितृ-मन्त्र को वर्जित करके जप करना चाहिए। पूर्वाह्ण में प्रदक्षिणा करे ॥ ४० ॥ सीधे कुशाओं वाले ही समस्त उपचार इस श्राद्ध मे होते हैं और तिलों के अर्थ यवो (जौ) से किये जाते हैं। तृप्ति का जिस प्रकार प्रश्न होता है उसके स्थान पर इस अभ्युदयिक श्राद्ध मे 'सम्पन्न'—इस शब्द से पूछा जाया करता है और ब्राह्मण का उत्तर होना है—'सुसम्पन्नम्' इस भाँति का ॥ ४१ ॥ दधि, अक्षत, बदरी आदि के पिण्ड नान्दी मुख वाले पितरो के लिये होते हैं। आवाहयिष्ये—अर्थात् आवाहन करूँगा यह पूछे और अक्षय में "प्रीयताम्"—यह

कहे। नान्दी मुख जो पितर हैं उन्हें "वाचयिष्ये"—इस रीति से पूछा जाता है और नान्दी मुख पितृगणों को "प्रीयन्ताम्" अर्थात् प्रसन्न होइये, ऐसा बोलना चाहिए॥ ४२–४३॥ नान्दी मुख श्राद्ध मे पिता-पितामह और प्रपितामह ये होते हैं और मातामह (नाना) प्रमातामह तथा वृद्ध प्रमातामह ये हुआ करते हैं। इस अभ्युदयिक श्राद्ध में स्वधा कारों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा केवल दो ही ब्राह्मणों का भोजन करावे। अब पितृगणों की तृप्ति के विषय में बताऊँगा जो कि तृप्ति ग्राम्य अर्थात् ग्राम मे होने वाली *औषधियों से की जाया करती है॥ ४४–४५॥*

काम्यानां कल्पमाख्यास्ये प्रतिपत्सु धनं बहु।
स्त्रियः परा द्वितीयायां चतुर्थ्यां धर्मकामदः॥४६
पञ्चम्यां पुत्रकामस्तु षष्ठ्यां च श्रैष्ठ्यभागपि।
कृपिभागा च सप्तम्यामष्टम्यामर्थलाभकः॥४७
नवम्यां च एकशफा दशम्यां गोगणो भवेत्।
एकादश्यां परीवारो द्वादश्यां धनधान्यकम्॥४८
ज्ञातिश्रैष्ठ्य त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां च शस्त्रतः।
मृताना श्राद्धं सर्वाप्तममावास्यां समीरितम्॥४९

इसके अनन्तर काम्यों के कल्प को बताया जायगा। किन-किन तिथियों में श्राद्ध करने का क्या-क्या फल होता है। प्रतिपदा तिथि में श्राद्ध करने का फल बहुत धन का होना होता है। द्वितीया तिथि मे अर्थात् दोज मे श्राद्ध का फल परम सुन्दरी स्त्रियों की प्राप्ति होता है। चतुर्थी (चौथ) तिथि में श्राद्ध मे धर्म और काम दोनों का लाभ होता है॥ ४६॥ पुत्र के प्राप्ति की कामना रखने वाले को पञ्चमी तिथि मे श्राद्ध करना चाहिए। षष्ठी तिथि मे परम श्रेष्ठ भाग्य का लाभ होता है। सप्तमी तिथि के श्राद्ध करने का फल अधिक अर्थ का लाभ होता है॥ ४७॥ नवमी तिथि मे श्राद्ध का फल एक शफ अर्थात् एक खुर वालों का लाभ होता है। तथा दशमी तिथि मे श्राद्ध का फल गौओं का समूह होता है। एकादशी तिथि में परिवार

की प्राप्ति का फल होना है । द्वादशी तिथि में श्राद्ध करने का फल धन तथा धान्य दोनों की वृद्धि हुआ करना है । त्रयोदशी में श्राद्ध से अपनी ज्ञाति में परम श्रेष्ठता की प्राप्ति और चतुर्दशी में शास्त्रों का लाभ होना है । अमावस्या में मृत पुरुषों के श्राद्ध करने से सभी कुछ की प्राप्ति होती है और सर्वश्रेष्ठ श्राद्ध कहा गया है ॥२८॥२६॥



४०—भारतवर्षवर्णनम्

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद्भारत नाम नवसाहस्रविस्तृतम् ॥१
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गच्छताम् ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान्हे (न्हि ?) मपर्वतः ॥२
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥३
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥४
योजनानां सहस्राणि द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ।
नव भेदा भारतस्य मध्यभेदेऽथ पर्वतः ॥५
किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः ।
वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवास्तथा ॥६
विन्ध्याच्च नर्मदाद्याः स्युः सह्यात्तापी पयोष्णिका ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणादिकास्तथा ॥७
मलयात्कृतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः ।
कुमाराद्याः शुक्तिमतो हिमाद्रेश्चन्द्रभागका ॥
पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः ॥८

अब भारतवर्ष का वर्णन किया जाता है । समुद्र के उत्तर में हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष है वह भारत नाम वाला वर्ष है । विस्तार नौ सहस्र योजन बताया जाता है ॥१॥ यह भारतवर्ष कर्मों

की भूमि कही जाती है जो स्वर्ग जाने के इच्छुक हैं अथवा अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्त करना चाहते हैं वे यहाँ पर ही कर्मों का सम्पादन करने के लिये उत्पन्न हुआ करते है । यहाँ पर भारतवर्ष में सात कुल पर्वत हैं । जिनके नाम— महेन्द्र-मलय-सह्य-शुक्तिमान्-हिमालय-विन्ध्य और पारियात्र होते हैं । आठ द्वीप और भी हैं जिनके नाम—इन्द्रद्वीप-कसेरु-ताम्रवर्ण-गभस्तिमान-नागद्वीप-सौम्य-गान्धर्व और वारुण ये हैं किन्तु यह उनमें नवम द्वीप जो कि समुद्र से घिरा हुआ है ॥२॥३॥४॥ यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक सहस्र योजन विस्तार वाला है । भारत के नौ भेद होते है । मध्य भेद में पूर्व से किरात-यवन और ब्राह्मण आदि रहते है । मध्य से वेद और स्मृति के मुख वाली नदियाँ हैं जो पारियात्र पर्वत से जन्म लिया करती हैं तथा विन्ध्य गिरि से नर्वदा आदि नदियाँ निकलती हैं । सह्य पर्वत से तापी-पयोष्णिका-गोदावरी-भीमरथी तथा कृष्णवेणा आदि प्रकट होती हैं ॥५॥६॥७॥ मलय गिरि से कृतमाला आदि नदियाँ निकलती हैं और महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा प्रभृति नदियों का उद्भव होता है । शुक्तिमान् पर्वत से कुमरादि उत्पन्न होती हैं और हिमालय से चन्द्रमाला उत्पन्न होती है । इसके पश्चिम भाग में कुरु-पांचाल और मध्यदेश आदि स्थित हैं ॥८॥



४१—महाद्वीपादिवर्णनम्

लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं समावृतम् ।
लक्षयोजनमानेन क्षारोदेन समन्ततः ॥१
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ।
स प्रमेधातिथेः पुत्राः पक्षद्वीपेश्वरास्तथा ॥२
स्याच्छान्तभयः शिशिरः सुखोदय इतः परः ।
आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नाम वर्षकम् ॥३
मर्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो नारददुन्दुभी ।
सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तज्जनाः शुभाः ॥४
नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाच्छाकान्तिकेषु च ।

जावनं पञ्चसाहस्र धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥५
आर्यकाः कुरवश्चैव विविशा भाविनश्च ते ।
विप्राद्यास्तैश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चैव प्लक्षकः ॥६
मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशाल्मलः ।
वपुष्मतः सप्त पुत्राः शाल्मलेशास्तथाऽभवन् ॥७
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात् ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम वर्षकः ॥८

अब महाद्वीप आदि का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन के विस्तार वाला है चारों ओर से एक लक्ष योजन के मान वाले क्षार समुद्र से समावृत है ॥१॥ प्लक्ष द्वीप क्षार समुद्र को वेष्टित करके विद्यमान है । मेधा तिथि के सात पुत्र थे जो पक्षद्वीप के स्वामी थे ॥२॥ शान्तभय तथा–शिशिर–सुखोदय–आनन्द–शिव–क्षेम–और ध्रुव ये उन सातों के नाम थे । उनके नाम से वर्ष हैं ॥३॥ मर्यादाशैल–गोमेघ–चन्द्र नारद–दुन्दुभि–सोमक–सुमना शैल–विभ्राज–तर्जन शुभ ये पर्वत हैं । यहां सात प्रधान नदियां हैं जो प्लक्षसे शाकान्तिकों मे हैं । पांच हजार वर्ष पर्यन्त यहाँ जीवन होता है । वर्णों और आश्रमों से युक्त यहाँ धर्म है ॥४॥५॥ आर्यक–कुरु–विविश और भावी विप्र आदि यहाँ निवास किया करते हैं । इनके द्वारा सोम (चन्द्र) की पूजा की जाती है । प्लक्ष दो लाख योजन के विस्तार से युक्त है और यह इसी मान वाले ईख के रस वाले सागर से आवृत है । शाल्मल इस प्लक्ष से दुगना होता है वपुष्मान् के सात पुत्र थे जोकि शाल्मल के अधिपति हुए थे ॥६॥७॥ उनके नाम श्वेत–हरित्–जीमूत–लोहित–वैद्युत–मानस और सुप्रभ थे । इनके नाम से ही सातं वर्षों की रचना हुई थी ॥८॥

द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः ।
कुमुदश्चानलश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः ॥९
द्रोणः कङ्कोऽथ महिषः ककुद्मान्सप्त निम्नगाः ।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णा स्युर्ब्राह्मणादयः ॥१०
वायुरूपं यजन्ति स्म सुरोदेनायमावृतः ।

ज्योतिष्मतः कुशेशाः स्युरुद्भिदो वेणुमान्सुतः ।।११
द्वैरथी लम्बनी धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः ।
विप्राद्या दमिमुख्यास्तु ब्रह्मरूपं यजन्ति ते ।।१२
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयो हरिः शैला वर्षार्थं मन्दराचलः ।।१३
वेष्टितोऽयं धृतोदेन क्रौञ्चद्वीपेन सोऽप्यथ ।
क्रौञ्चेश्वरा द्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः ।।१४
(* कुशलो मनोनुगश्चोष्णः प्रधानोऽथान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः) ।।१५
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृत्पुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो मिथः ।।१६
द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा ।
पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्यां विप्रादयो हरिम् ।।१७
यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः ।
संवृतः शाकद्वीपेन भव्याच्छाकेश्वराः सुताः ।।१८

यह दुगुना था और दुगुने ही सुरोदधि से समावृत (घिरा हुआ) था । इसके कुमुद-अनल-बलाहक-द्रोण-कङ्क-महिष-ककुद्मान ये सात पुत्र थे । कपिला-अरुण-पीता-कृष्णा ये नदियाँ वहाँ पर है । ब्राह्मण प्रभृति लोग वहाँ पर वायु रूप देव का यजन करते थे । यह सुरा के सागर से आवृत होता है । ज्योतिष्मान् के कुशेश थे । उद्भिद का वेणुमान् पुत्र था ।।८।।१०।। ।।११।। द्वैरथी-लम्बनी-धैर्य-कपिल और प्रभाकर ये भी पुत्र थे । दमिमुख्य ब्राह्मण प्रभृति वहाँ रहते हैं जो कि ब्रह्मरूप वाले का यजन किया करते हैं ।।१२।। विद्रुम-हेमशैल-द्युतिमान्-पुष्पवान्-कुशेशय और हरि शैल ये पर्वत है और वर्षा के लिये वहाँ मन्दराचल है ।।१३।। यह घृत के उदधि से वेष्टित रहता है और वहाँ क्रौञ्च द्वीप से भी आवृत रहता है । क्रौञ्च के अधिपति द्युतिमान् के पुत्र होते हैं और उन्हीं के नाम से वर्ष भी हैं ।। १४ ।।

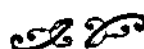
---

* ख. ङ पुस्तकयोर्नास्ति धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ।

कुशान–मनोनुग–अन्धकारक–प्रधान–उष्ण–मुनि और दुन्दुभि ये सात-सात पर्वत हैं तथा नदियाँ भी हैं ॥ १५ ॥ क्रौञ्च–वामन–तोमरा अन्धकारक–देववृत्–पुण्डरीक–दुन्दुभि और द्विगुण ये द्वीप है और द्वीप में शैल (पर्वत) हैं। जैसे द्वीप हैं वैसे ही शैल भी होते है। पुष्कर—पुष्कल—धन्या तिष्य और ब्राह्मण आदि वहाँ हरि का भजन किया करते हैं। क्रौञ्च द्वीप तो दही-मण्ड उदक से आवृत होता है। शाक द्वीप से भी घिरा हुआ है और भव्य से शाकेश्वर पुत्र हुए थे ॥१६॥१७॥१८॥

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः।
कुशात्तरथा (रोऽथ) मोदाकी द्रुमस्तत्नामवर्षकाः ॥१६
उदयाख्या जलधरो रैवतः श्यामकोद्रको।
आम्बिकयस्तथा रम्यः केशरी सप्त निम्नगाः ॥२०
मगा मगधमानस्यामन्दगाश्च द्विजातयः।
यजन्ति सूर्यरूपं तु शाकः क्षीराब्धिनाऽऽवृतः ॥२१
पुष्करेणाऽऽवृतः सोऽपि द्वौ पुष्कौ सवनस्य च।
महावीतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिन्हिते ॥२२
एकोऽद्रिर्मानिसाख्योऽत्र मध्यतो वलयाकृतिः।
योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतः समः ॥२३
जीवन दशसाहस्रं सुरैर्ब्रह्माऽत्र पूज्यते।
स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ॥२४
ऊनातिरिक्तता चापा समुद्रेपु न जायते।
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥२५
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि वै।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ॥२६
स्वादूदकात्तु द्विगुणा भूर्हेमी जन्तुवर्जिता।
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥२७
लोकालोकस्तु तमसाऽऽवृतोऽथाण्डकटाहतः।
भूमिः साण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ॥२८

उन पुत्रों के नाम जलद-कुमार-सुकुमार-मणीचक-कुशोत्तरय-मोदाकी और द्रुम ये थे और इनके नामों से ही वर्ष हैं ॥ १६ ॥ उदय—जलधर—रैवत—श्यामक—उद्रक—आम्बिकेय—रम्य और केशरी सात नदियां हैं ॥ २० ॥ मग—मगधमान—अमन्दग ये द्विजातियां हैं। ये सूर्य रूप देव का वहाँ यजन किया करते हैं। शाक क्षीर समुद्र से आवृत है ॥ २१ ॥ वह पुष्कर से भी घिरा हुआ है। सवन के दो पुत्र थे जिनके नाम महावीत और धानकि थे। इनके नामों से वर्ष थे ॥ २२ ॥ यहाँ एक पर्वत मानस नाम वाला है जो मध्य में वलय (कड़ा) की आकृति वाला है। एक सहस्रा योजन विस्तार और ऊंचाई वाला समान है ॥ २३ ॥ यहां पर एक सहस्र वर्ष का जीवन काल होता है और देवों के द्वारा ब्रह्मा की पूजा की जाती है। द्वीप के मान से यह स्वादिष्ट जल के समुद्र से वेष्टित रहता है ॥ २४ ॥ समुद्रों में जल की कमी या अतिरिक्तता (अधिकता) नहीं हुआ करती है। बहुधा चन्द्रमा के उदय और अस्त होने के शुक्ल तथा कृष्ण पक्षों में समुद्र का जल बढ़ा करता है। किन्तु हे महामुने ! पन्द्रह सौ अङ्गुल तक जल की वृद्धि और क्षय समुद्र के जलों में देखा गया है। बस यही कमी और वृद्धि होती है ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ स्वादिष्ट जल से दुगुनी भूमि है जो हेममयी है और उस पर कोई भी जन्तु नहीं है। इसके आगे लोकालोक पर्वत है जो दश हजार योजन के विस्तार से युक्त है ॥ २७ ॥ लोकालोक पर्वत अन्धकार से और अण्डकटाह से आवृत रहता है। वहां अण्डकटाह से पचास करोड़ विस्तार वाली भूमि है ॥ २८ ॥



५२—ज्योतिःशास्त्रकथनम्

ज्योतिःशास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम् ।
चातुर्लक्षस्य सारं यत्तज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ॥१
षट्काष्टके विवाहो न न च द्विर्द्वादशे स्त्रियाः
न त्रिकोणे ह्यथ प्रीतिः शेषे च समसप्तके ॥२

द्विर्द्वादशे त्रिकोण च मैत्री क्षेत्रपयोर्यदि ।
भवेदेकाधिपत्यं च ताराप्रीतिरथापि वा ।।३
तथाऽपि कार्यः संयोगो न तु षट्काष्टके पुनः ।
जावे भृगौ चास्तमिते म्रियते च पुमान्स्त्रिया: ।।४
गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्यक्षेत्रगते गुरौ ।
विवाहं न प्रशसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत् ।।५
अतिचारे त्रिपक्षं स्याद्वके मासचतुष्टयम् ।
व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत गुरोर्वका (वक्रिचा) तिचारयोः ।।६
चैत्रे पौषे न रिक्तासु हरौ सुप्ते कुजे रवौ ।
चन्द्रक्षये नाशुभ स्यात्संध्याकालः शुभावहः ।।७
रोहिणी चोत्तरा मूल स्वाती हस्तोऽथ रेवता ।
तुले च मिथुने शस्ता विवाहः परिकीर्तितः ।।८

श्री अग्निदेव ने कहा —अब मैं शुभ और अशुभ का विवेचन करने वाले ज्योतिष-शास्त्र के विषय में वर्णन करूँगा। चार लाख के सार को जान कर मानव सबका ज्ञाता हो जाता है ।। १ ।। षडाष्टक में कन्या तथा वर का विवाह नही किया जाता है ; एक राशि से छठवी राशि आने पर षडाष्टक होता है। स्त्री के दूसरे और बारहवें सूर्य होने पर विवाह नहीं होता है। त्रिकोण गत सूर्य के रहने पर भी प्रीतियोग अर्थात् विवाह नहीं होता है। बाकी अन्य घरों में रहने पर विवाह शुभ है । जो कि सात घर समान माने जाते हैं। दूसरे और बारहवे घर में तथा त्रिकोण में यदि क्षेत्रपों ग्रहों की आपस मे मैत्री हो अथवा दोनों का एक ही ग्रह स्वामी हो अथवा तारा प्रीति हो तो विवाह का संयोग बना लेना चाहिए। किन्तु षडष्टक में फिर भी कभी नहीं करना चाहिए। गुरु और शुक्र अस्त हों तो विवाह नहीं करना चाहिए। यदि कोई विवाह कर लेता है तो उस स्त्री का पुरुष मर जाता है ।। २ ।। ३ ।। ।। ४ ।। सूर्य के घर में गुरु हो और गुरु के घर में सूर्य हो तो भी लोग ऐसे योग के पड़ने पर विवाह को शुभ नहीं बतलाते हैं क्योंकि ऐसा

कन्या को विधवा बना देने वाला होता है ॥ ५ ॥ ग्रहों का अतिचार यदि हो जावे अर्थात् अपनी सीमित गति से ग्रह की गति अधिक हो जावे तो तीन पक्ष तक और ग्रह वक्र गति वाला हो जावे तो चार मास तक और उसे विवाह नहीं करना चाहिए। वक्र गति मे ग्रह पुन: पीछे की ओर अपनी गति किया करता है। यहाँ गुरु के अतिचार तथा वक्र गति मे विचार करना चाहिए ॥ ६ ॥ चैत्र और पौष मास में-रिक्ता तिथियों मे-देवशयन के समय में-मङ्गल और रवि मे-चन्द्रमा के क्षय काल मे विवाह कार्य अशुभ होता है। विवाह के लिए सन्ध्या का समय शुभ माना गया है ॥ ७ ॥ विवाह के कुछ नक्षत्र भी निश्चित हैं जिनको वैवाहिक नक्षत्र कहते है वे रोहिणी—उत्तरा—मूल—स्वाती—हस्त और रेवती ये होते हैं। तुला और मिथुन मे विवाह बहुत अच्छा बताया गया है ॥ ८ ॥

विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा।
प्राशने चाऽऽद्यचूडाया विद्धर्क्षं च विवर्द्धयेत् ॥९
श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्यमङ्गलजीवके।
कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्म पुंसवनं स्मृतम् ॥१०
हस्ते मूले मृगे पौष्णे बुधे शुक्रे च निष्कृति:।
अर्केन्दुजीवभृगुजे मूले ताम्बूलभक्षणम् ॥११
अन्नस्य प्राशन शुक्रे जीवे मृगे च मीनके।
हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादित्रये तथा ॥१२
अश्विन्यामथ रेवत्यां नवान्नफलभक्षणम्।
पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा रोहिणी श्रवणाश्विनी ॥१३
स्वातिसौम्ये च भैषज्यं कुर्यादन्यत्र वर्जयेत्।
पूर्वात्रयं मघा याम्यं पावनं श्रवणत्रयम् ॥१४
भौमादित्यशनैर्वारे स्नानाद्यं रोगमुक्तितः।
पार्थिवे द्वाष्टह्रीकारं मध्ये नाम च दिक्षु च ॥१५
ह्रींपुटं पार्थिवे दिक्षु ह्रीं विदिक्षु लिखेद्‌ध्रुवम्।
गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे वस्त्रे गते धृतम् ॥१६

शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितम् ।
श्रीं ह्रीं संपुटं नाम श्रीं ह्रीं (च) पत्राष्टके क्रमात् ॥१७

विवाह—कर्णवेध—व्रत—पुंसवन—अन्नप्राशन और चूड़ा कर्म में विद्ध नक्षत्र को विवर्जित करना चाहिए। श्रवण, मूल और पुष्य में, रवि, भौम और गुरु में, कुम्भ, सिंह और मिथुन में, पुंसवन बताया गया है। हस्त, मूल, मृगशिरा और पौष्ण में, बुध और शुक्र में निष्क्रमण करना चाहिए अर्थात् घर से बाहर निकालना चाहिए। सूर्य, चन्द्र, गुरु और भृगु में मूल नक्षत्र में ताम्बूल भक्षण करना चाहिए॥ ९॥ १०॥ ११॥ अन्न का प्राशन जो नवजात को आरम्भ में ही कराया जाता है वह शुक्र और जीव में, मृगशिरा और मीन में हस्त से आदि लेकर पांचों में तथा कृत्तिका से आदि तीनों नक्षत्रों में, अश्विनी तथा रेवती में नवान्न और फल का भक्षण करना चाहिए। पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, रोहिणी, श्रवण, अश्विनी, स्वाति, सौम्य में औषध ग्रहण करना चाहिए अन्य समय इसके लिए वर्जित है। तीनों पूर्वा नक्षत्र, मघा, याम्य, श्रवण से तीन नक्षत्र दारुण है। भौम, रवि और शनिवार रोग से मुक्त होने पर स्नान करने के लिए श्रेष्ठ होते हैं। पार्थिव में आठ 'ह्रीं' यह बीज—मध्य में नाम, और दिशाओं में ह्रीं पुट—पार्थिव में, दिशाओं में तथा विदिशाओं में वसुओं को लिखे। गोरोचन और कुंकुम से भोजपत्र पर लिखकर वस्त्र से गले में बांधे तो समस्त शत्रुगण वश में आ जाते हैं। इस मन्त्र का यह निश्चित प्रभाव है। इस मन्त्र का नाम—श्री-ह्रीं-संपुट-नाम-श्री ह्रीं, यह पत्राष्टक में होता है॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥

गोरोचनाकुंकुमेन (* भूर्जेऽथ सुभगावृते ।
गोमध्यवागमः पत्रे हरिद्राया रसेन च ॥१८
शिलापट्टेऽरीन्स्तम्भयति भूमावधोमुखीकृतम् ।
ॐ ह्रूं सः संपुटं नाम ओं ह्रूं सः पत्राष्टके क्रमात् ॥१९

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो नास्ति च, पुस्तके ।

गोरोचनाकुंकुमेन) भूर्जे मृत्युनिवारणम् ।
एकपश्चनव प्रोत्यै द्विपड्द्वादश योगकाः ॥२०
त्रिसप्तैकादशे लाभा वेदाष्टद्वादशे रिपुः ।
तनुर्धनं च सहजः सुहृत्सुतो रिपुस्तथा ॥२१
जाया निधनधर्मौ च कर्माऽऽयव्य .कं क्रमात् ।
स्फुटं मेषादिलग्नेषु नवतारावलं वदेत् ॥२२
जन्म संपद्विपत्क्षेम प्रत्यरिः साधकः क्रमात् ।
निधनं मित्रपरममित्रं तारावलं विदुः ॥२३
वारे ज्ञगुरुशुक्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
माघादिमासषट्के तु क्षौरमाद्यं प्रशस्यते ॥२४
कर्णवेधो बुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः ।
पश्चमेऽब्दे चाध्ययनं पष्ठीप्रतिपद त्यजेत् ॥२५

गोरोचन कुंकुम से सुभगावृत्त भोजपत्र पर गोमध्यवागम हरिद्रा के रस से लिखे और शिलापट्ट पर लिखने से शत्रुओं का स्तम्भन करता है। इसे भूमि की ओर अधोमुखी करण कर देवे। मन्त्र—"ओ हूँ मः संपुट नाम ओं हूं सः" पत्राष्टक में क्रम से लिखे ॥ १६ ॥ गोरोचन कुंकुम से भोज पत्र पर मृत्यु का निवारक है। एक-पाच नौ प्रीति के लिये—दो छै बारह योगक–तीन–सात ग्यारह लाभ—चार–आठ बारह शत्रु ! अब कुण्डली के बारह घरों के नाम—तनु-धन-सहज-सुहृत्-सुत-रिपु-जात-निधन-धर्म-कर्म आय-व्यय हैं। मेष आदि लग्नों में नव तारा (ग्रह) का वल वतावे । जन्म सम्पत्ति, विपत्ति क्षेम प्रत्यरि-साधक-निधन मित्र-परम मित्र ये सब तारा वल से जाने जाते हैं। १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥ नवजात शिशु का सर्व प्रथम क्षौर कर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार माघ से लेकर छै मासों में और बुध-गुरु-शुक्र तथा चन्द्र एवं रविवार में कराना प्रशस्त माना जाता है ॥ २४ ॥ कानों के छेदन का कर्ण वेध सस्कार बालकों का किया जाता है। यह संस्कार गुरु वात या बुधवार में और पुष्य-चित्रा तथा श्रवण नक्षत्र में कराना

चाहिए। जब बालक का पांचवां वर्ष आरम्भ हो जावे तभी उसका विद्यारम्भ संस्कार कराना चाहिए। इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि षष्ठी और प्रतिपदा तिथि न हो। विद्यारम्भ में इन दोनों तिथियों को त्याग देना चाहिए ॥ २५ ॥

रिक्ता पञ्चदशी भौमं प्राच्यं वाणीं हरिं श्रियम्।
माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं शुभम् ॥२६
चूडाकरणमाद्यं च श्रावणादौ न शस्यते।
अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ॥२७
उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिर्दिशेत्,
क्षौरर्क्षे शुभवारे च समावर्तनमिष्यते ॥२८
शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च।
अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च ॥२९
पुनर्वसौ तथा पुष्ये धनुर्वेदः प्रशस्यते।
भरण्यार्द्रा मघाऽश्लेषा वन्हिभगर्क्षयोस्तथा ॥३०
जिजीविषुर्न कुर्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः।
गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं विवाहादौ न भादिकम् ॥३१

रिक्ता तिथि तथा पञ्चदशी भौम वार में सरस्वती–लक्ष्मी और भगवान् हरि का अर्चन करके आरम्भ करे माघ मास से लेकर छै मास तक मेखला बन्धन का संस्कार परम शुभ माना जाता है ॥ २६ ॥ आद्य चूड़ाकरण संस्कार श्रावण आदि मासों में अच्छा नहीं माना गया है। गुरु और शुक्र के अस्त हो जाने के समय में तथा चन्द्रमा के क्षीण होने के अवसर पर जो ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाता है वह उसको जड़ता देने वाला तथा मृत्यु कारक भी होता है। क्षौर कराने के नक्षत्र में तथा किसी शुभ वार में समावर्त्तन संस्कार अभीष्ट माना गया है। यह वह संस्कार है जो उपनयन तथा वेदारम्भ के पश्चात् ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त कर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के लिये किया जाता है ॥ २७-२८ ॥ किसी शुभ क्षेत्र में विशेष लग्नों में

रेवती और वारुण यथा हरि मे खरीदी हुई वस्तु या द्रव्य लाभ देने वाला होता है और इन उक्त नक्षत्रादि मे विक्रय किया जावे तो हानि हुआ करती है ।। ३४ ।। भरणी और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वा फाल्गुनी-पूर्वाषाढा और पूर्वा-भाद्रपदा-आर्द्रा-आश्लेषा--मघा और अनिल-वह्नि-ज्येष्ठा और विशाखा इन नक्षत्रों में दिया हुआ धन तथा किसी काम में प्रयोग किया धन या धरोहर के रूप में रखा हुआ धन स्वामी का नहीं रहा करता है। उत्तरा श्रवण और शाक्र में अर्थात् इन तीनों नक्षत्रों मे राजा का अभिषेक करना चाहिए ।। ३५ ३६ ।। चैत्र-ज्येष्ठ-भाद्रपद-आश्विन-पौष और माघ इन मासों का त्याग करके अन्य मासों में गृह निर्माण कराना तथा प्रवेश करना शुभ होता है ।। ३७ ।।

अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ।।३८
आदित्यभौमवर्जं तु वापीप्रासादके तथा ।
सिंहराशिगते जीवे गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ।।३९
बाले वृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्म विवर्जयेत् ।
अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षतिः ।।४०
संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके ।
गृहप्रवेशनं कुर्याद्धि ध्रौत्तरवारुणे ।।४१
नौकाया घटने द्विविपञ्चसप्तत्रयोदशी ।
नृपदर्शो धनिष्ठासु हस्तपौष्णाश्विनीषु च ।।४२
पूर्वात्रयं धनिष्ठाऽऽर्द्रा वह्निः स्तैम्यविशाखयोः ।
आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रासिद्धिस्तु संपदा ।।४३

गृह के आरम्भ करने में अश्विनी-रोहिणी-मूल और तीनों उत्तरा अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी —उत्तराषाढा और उत्तरा भाद्रपदा—ऐन्दव-स्वाति-हस्त और अनुराधा ये गृह के आरम्भ में शुभ होते हैं ।। ३८ ।। बावड़ी और प्रसाद के निर्माण करने में रविवार और भौमवार का वर्जन कर देना चाहिए गुरु के सिंह राशि पर स्थित होने पर तथा गुरु और सूर्य के मलिम्लुच होने

पर एवं शुक्र के बाल तथा वृद्ध रूप में अस्त हो जाने पर गृह कर्म नहीं करना चाहिए। इस प्रतिकूल समय में गृहारम्भ करने से अग्निदाह-भय-रोग-राजा की ओर से पीडा और धन का नाश ये कुफल होते है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रवण से आदि लेकर पञ्चकों मे तृण और काष्ठ का संग्रह करे। धनिष्ठा और उत्तर वारुण में गृह में प्रवेश करना चाहिए। नौका के घटन में दोज-तृतीया-पञ्चमी-सप्तमी और त्रयोदशी तिथियाँ श्रेष्ठ होती हैं। नृप का दर्शन धनिष्ठा-हस्त—पुष्य और अश्विनी नक्षत्रों में करना चाहिए अर्थात् उक्त नक्षत्रों मे राजा से भेंट करना उत्तम होता है। तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी पूर्वाषाढा—पूर्वाभाद्रपद) — धनिष्ठा-आर्द्रा-वह्नि—स्वैन्य—विशाखा—आश्लेषा और अश्विनी इन नक्षत्रों मे यात्रा करने से सिद्धि होती है और धन की प्राप्ति भी होती है ॥ ४१-४२-४३ ॥

त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी ।
श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चवाष्टमी तथा ॥४४
गोषु यात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कारयेत् ।
अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ॥४५
पुष्यश्रवणहस्तेषु कृषिकर्म समाचरेत् ।
पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे ॥४६
गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे च सोमभास्वतोः ।
वृषलग्ने च कर्त्तव्यं कन्यायां मिथुने तथा ॥४७
द्विपञ्चदशमी सप्ततृतीया च त्रयोदशी ।
रेवती रोहिणीन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु च ॥४८
मन्दारवर्जं बीजानि वापयेत्संपदर्थ्य पि ।
रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमैत्रयोः ॥४९

तीनों उत्तराओं में—रोहिणी—अमावस्या और चतुर्दशी तिथि—श्रवण-हस्त चित्रा नक्षत्रों से युक्त अष्टमी में गौओं में यात्रा नही करे तथा प्रवेश भी नही कराना चाहिए। अनिल-उत्तरा—रोहिणी—मृगशिरा-मूल

पुनर्वसू-पुष्य-श्रवण और हस्त इन नक्षत्रों कृषि का काम करना चाहिए। पुनर्वसू—उत्तरा-स्वाती-भग-मूल इन्द वारुण नक्षत्रों मे, गुरु शुक्र—सोम और रविवार इन वारों में, वृष-कन्या-मिथुन इन लग्नों में दोज-पञ्चमी—दशमी-सप्तमी-तृतीया और त्रयोदशी इन तिथियों मे तथा रेवती—रोहिणी इन्द्र-अग्नि-हस्त-मैत्र और उत्तर मे मन्दार को छोड़ कर बीजों का वपन कराना चाहिए। जिनमे सम्पदा की प्राप्ति होती है। रेवती—हस्त-मूल—श्रवण-मग और मैत्र इन नक्षत्रों मे पितृ कर्म-दैवकर्म और सौम्य कार्य करना चाहिए। धान्य का छेदन मृगोदय म करे । हस्त-चित्रा—अदिति—स्वाती—रेवती और श्रवण से लेकर तीन नक्षत्रों मे तथा लग्न जब स्थिर हो तब और गुरुवार—चन्द्र तथा शुक्रवारों मे—याम्य—अदित—ज्येष्ठा और उत्तरा मे प्रवेश कराना चाहिए ।। ४४—४६-५० ।।

पितृदवे तथा सौम्ये * धान्यच्छदं मृगोदये ।
हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्या श्रवणत्रये ।।५०
स्थिरे लग्ने गुरोर्वारेऽथ वा भार्गवसौम्ययोः ।
याम्यादितिमथाज्येष्टासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ।।५१
ॐ धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा ।
ॐ नवे हर्षे, इलादेवि लोकसंवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा ।।५२

पक्षस्थ निर्मितं धान्यराशिस्थं धान्यवर्धनम् ।
त्रिपूर्वासु विशाखायां धनिष्ठावारुणेऽपि च ।।५३
एतेषु षट्सु विज्ञेय धान्यनिष्क्रमणं बुधैः ।
देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ।।५४
मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद्द्वादशी तिथिः ।
सदा तत्रैव कर्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः ।।५५
सिंहतौलिगते चार्के दर्शाद्यद्द्वादशीद्वयम् ।
आदाविन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ।।५६

---

* यथायथ क्रियापदयोजनं कार्यम् ।

"ओं धनदाय सर्व धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे हृदे, इला-देवि ! लोक संवर्धिनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा"—इस मन्त्र को पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखदे तो धान्य की वृद्धि हो जाती है । तीनों पूर्वाओं में विशाखा—धनिष्ठा—वरुण इन छैं नक्षत्रों में विद्वानों के द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए । रवि के उत्तरायण होने पर देवता आराम– (बाग) और वापी आदि की प्रतिष्ठा करे । मिथुन पर रवि के होने पर यदि अमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का शयन कराना चाहिए ॥ ५१–५२–५३–५४ ॥ सिंह और तुला पर सूर्य हों और अमावस्या से द्वादशीद्वय हो तब आदि में इन्द्र देव का समुत्थान करे और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिपाद नक्षत्रों में जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी ।
त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भौमादित्यशनैश्चारी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् ।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितस्त्रिपष्ठश्च सप्तमो दशम स्तथा ।
एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभ वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयकृश्च पञ्चमो नवमः शुभः ।
मित्रातिमित्रमाधकसंपरक्षेमादितारिका: ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम् ।
प्रत्यरौ मरण विद्यान्निधने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम् ।
तावत्काल शशी क्षीणः पूर्णस्तत्रोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल–रवि और शनि यह कि पुष्कर जानना चाहिए । समस्त कर्मों में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा लग्न

"ओं धनदाय सर्व धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे हूर्वे, इला-देवि ! लोक संवर्धिनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा"—इस मन्त्र को पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखदे तो धान्य की वृद्धि हो जाती है। तीनों पूर्वाओं में विशाखा—धनिष्ठा—वरुण इन छै नक्षत्रों में विद्वानों के द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए। रवि के उत्तरायण होने पर देवता आराम– (बाग) और वापी आदि की प्रतिष्ठा करे। मिथुन पर रवि के होने पर यदि अमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का शयन कराना चाहिए ॥ ५१–५२–५३–५४ ॥ सिंह और तुला पर सूर्य हों और अमावस्या मे द्वादशीद्वय हो तब आदि मे इन्द्र देव का समुत्थान करे और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिपाद नक्षत्रों में जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी।
त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भौमादित्यशनैश्चारी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम्।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितत्रिषष्ठश्च सप्तमो दशमस्तथा।
एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभ वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयकृश्च पञ्चमो नवमः शुभः।
मित्रातिमित्रसाधकसंपरक्षेमादितारिकाः ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम्।
प्रत्यरौ मरण विद्यान्निधने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम्।
तावत्काल शशी क्षीणः पूर्णस्तस्रोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल–रवि और शनि यह त्रि पुष्कर जानना चाहिए। समस्त कर्मों में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा सप्त

में स्थित हो—तीसरे—छठे—सातवें—दशवें और ग्यारहवें गृह में स्थित हो तो उसे शुभ कहना चाहिए ।।५८।। शुक्ल पक्ष में दूसरा—पांचवां और नवम चन्द्रमा शुभ होता है। मित्र—अतिमित्र—साधक—सम्पत—क्षेम आदि तारका होते हैं। जन्म से मृत्यु को प्राप्त होता है। विपद से धन का नाश होता है। प्रत्यरि में मरण होता है और निधन में पञ्चता को प्राप्त होता है ।।५६।। ६०।। मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे जब तक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि होती है उतने समय तक क्षीण चन्द्रमा माना जाता है। इससे ऊपर के समय में अर्थात् शुक्ल पक्ष की नवमी से आगे पूर्ण चन्द्र बताया गया है ।।६१।। ६२।।

वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदैवते ।
पौर्णमासी गुरोर्वारे महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ।।६३

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ते रविस्तथा ।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ।।६४

स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे शक्रस्योत्थापयद्ध्वजम् ।
हर्यृक्षपादे चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ।।६५

सर्वं हेमसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।।६६

ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी तिला ।
राक्षमी च क्रमेणार्कसंक्रान्तिर्नामभिः स्मृता ।।६७

बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि ।
उत्तिष्ठन्संक्रमत्यर्कस्तदा लोकः सुखी भवेत् ।।६८

गरे ववे वणिग्विष्टौ किंस्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत् ।
राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते संपदा समम् ।।६९

चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः संक्रमेद्रविः ।
दुर्भिक्षं राजसङ्ग्रामो दम्पत्योः गंशयो भवेत् ।।७०

"ओं धनदाय सर्व धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा। ओं नवे हूर्व, इला-देवि ! लोक संवर्धिनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा"—इस मन्त्र को पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखदे तो धान्य की वृद्धि हो जाती है। तीनों पूर्वाओं में विशाखा—धनिष्ठा—वरुण इन छैं नक्षत्रों में विद्वानों के द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए। रवि के उत्तरायण होने पर देवता आराम– (बाग) और वापी आदि की प्रतिष्ठा करे। मिथुन पर रवि के होने पर यदि अमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का शयन कराना चाहिए ॥ ५१–५२–५३–५४ ॥ सिंह और तुला पर सूर्य हों और अमावस्या से द्वादशीद्वय हो तब आदि में इन्द्र देव का समुत्थान करे और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिपाद नक्षत्रों में जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी।
त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भौमादित्यशनैश्चारो विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम्।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितस्त्रिषष्ठश्च सप्तमो दशमस्तथा।
एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभं वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयश्च पञ्चमो नवमः शुभः।
मित्रातिमित्रसाधकसंपत्क्षेमादितारिकाः ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम्।
प्रत्यरौ मरणं विद्यान्निधने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम्।
तावत्कालं शशी क्षीणः पूर्णस्तत्तोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल–रवि और शनि यह कि पुष्कर जानना चाहिए। समस्त कर्मों में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा लग्न

में स्थित हो—तीसरे—छठे—सातवें—दशवें और ग्यारहवें गृह में स्थित हो तो उसे शुभ कहना चाहिए ।।५८।। शुक्ल पक्ष में दूसरा—पाँचवाँ और नवम चन्द्रमा शुभ होता है। मित्र—अतिमित्र—साधक—सम्पत—क्षेम आदि तारका होने हैं। जन्म से मृत्यु को प्राप्त होता है। विपद से धन का नाश होता है। प्रत्यरि में मरण होता है और निधन में पञ्चता को प्राप्त होता है ।।५६।। ६०।। माम की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे जब तक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि होती है उतने समय तक क्षीण चन्द्रमा माना जाता है। इससे ऊपर के समय में अर्थात् शुक्ल पक्ष की नवमी से आगे पूर्ण चन्द्र बताया गया है ।।६१।। ६२।।

वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रे न्द्रदैवते ।
पौर्णमासी गुरोर्वारे महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ।।६३

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ते रविस्तथा ।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ।।६४

स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे शक्रस्योत्थापयद्ध्वजम् ।
हयृक्षपादे चाश्विन्यां मप्ताहान्ते विसर्जयेत् ।।६५

सर्वं हेमसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।।६६

ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी तिला ।
राक्षसी च क्रमेणार्कसंक्रान्तिनामिभिः स्मृता ।।६७

बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि ।
उत्तिष्ठन्संक्रमत्यर्कस्तदा लोकः सुखी भवेत् ।।६८

गरे ववे वणिग्विष्टौ किंस्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत् ।
राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते सर्वदा समम् ।।६९

चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः संक्रमेद्रविः ।
दुर्भिक्षं राजभङ्गश्चामो दंपत्योः संशयो भवेत् ।।७०

वृष राशि तथा मिथुन राशि में सूर्य स्थित हो और चन्द्र इन्द्र दैवत जीव के होने पर पूर्णिमा तिथि गुरुवार की हो तो महा ज्येष्ठी योग कहा गया है ।।६३।। स्वाति के अन्तर के मन्त्रनिष्ठ होने पर इन्द्र के ध्वज को उठाना चाहिए और हर्यक्ष पाद में अश्विनी नक्षत्र मे सप्ताह । अन्त हो जाने पर उसका विसर्जन करना चाहिए ।।६४।। जिस समय सूर्य राहु के द्वारा ग्रस्त हों अर्थात् सूर्य के ग्रहण के समय मे कुछ भी दान किया जावे वह सभी सुवर्ण के समान होता है अर्थात् सुवर्ण के दान के तुल्य फल देने वाला माना जाता है । ग्रहण के समय मे यह भी विचार नही किया जाता है कि ब्राह्मण ही दान लेने के अधिकारी हैं । उस समय तो जो भी कोई वर्ण या जाति का हो सभी ब्राह्मण के समान होते है अर्थात् किसी को भी जो दान दिया जाता है वह ब्राह्मण को दिए हुए दान के समान ही फल देने वाला होता है । समस्त जल ग्रहण के समय गङ्गाजल के तुल्य पवित्र माना जाता है । ध्वाङ्क्षी—महोदरी—घोरा—मन्दा—मन्दाकिनी—तिला और राक्षसी ये क्रम से सूर्य से नामों के द्वारा संक्रान्ति कही गई है ।।६५।।६६।। बालव—कौलव—नाग—तैतिल करणों मे यदि उठता हुआ सूर्य संक्रमण करता है तो समस्त लोक को अधिक सुख होता है ।।६७।। गर—वव—वणिक्—विष्टि—किंस्तुघ्न और शकुनि करणों मे सूर्य संक्रमण करता है तो राजा के दोष से यह लोक सम्पदा के साथ पीडित होता है ।।६८,६९।। चतुष्पाद विष्टि और वाणिज्य मे शयन करता हुआ सूर्य यदि संक्रमण करे तो दुर्भिक्ष (अकाल—राजाओ म युद्ध और दम्पति मे संशय होता है ।।७०।।

कृत्तिकायां नवदिन त्रिरात्रं रोहिणीषु च ।
मृगशिरः पञ्चरात्रमार्द्रासु प्राणनाशनम् ।।७१
पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्र विधीयते ।
नवरात्रं तथाऽश्लेषा श्मशानान्त मघासु च ।।७२
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ।
हस्ते तु दृश्यते चित्रास्वर्धमासं तु पीडनम् ।।७३
मासद्वयं तथा स्वातिर्विशाखा विंशतिर्दिनम् ।
मैत्र चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्धमासकम् ।।७४
मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपंचकम् ।
उत्तरा दिनाविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन च ।।७५

५३—कालगणनम्

कालः समागणो वक्ष्ये गणितं कालवुद्धये ।
कालः समागणोऽर्कघ्नो मासैश्चैत्रादिभिर्युतः ॥१
द्विघ्नो द्विष्ठः सवेदः स्यात्पचाङ्गाष्टयुतो गुणः ।
त्रिष्ठो मध्यो वसुगण पुनर्वेदगुणश्च सः ॥२
अष्टरन्ध्राग्निहीनः स्यादधः सैकरसाष्टकैः ।
मध्यो हीनः षष्टिहतो लब्धयुक्तस्तथोपरि ॥३
न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाडयः ।
सगुणो दिगुणश्चोर्ध्व त्रिभिरूनो गुणः पुनः ॥४
अधः खरामसंयुक्तो रसार्काष्टपलैर्युतः ।
अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या अधः स्थितः ॥५
गुणस्तिसृभिरूनोऽर्ध्वं द्वाभ्यां च गुणयेत्पुनः ।
मध्ये रुद्रगुणः कार्यो ह्यधः सैको नवाग्निभिः ॥६
लब्धहीनो भवेन्मध्यो द्वाविंशतिविवर्जितः ।
षष्टिशेष ऋण ज्ञेयं लब्धमूर्ध्वं विनिक्षिपेत् ॥७
सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः ।
मासि मासि क्षिपेद्वार द्वात्रिंशद्घटिकास्थितौ ॥८

अब काल का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा— काल समागण होता है। उस काल के ज्ञान के लिए गणित को बतलाऊंगा। चैत्रादि मासों से युक्त अर्कघ्न काल समागण होता है ॥१॥ दो से निघ्न दो में स्थित सवेद होता है। पंचाङ्गाष्ट से युक्त गुण होता है। तीन में स्थित मध्य वसुगण होता है और फिर वह वेद गुण होता है ॥२॥ अष्ट रन्ध्र और अग्नि से हीन होता है। नीचे एक छैं और आठ से मध्य हीन होता है। साठ से हत लब्ध से युक्त तथा ऊपर में न्यून होता है। सात से किया हुआ वार हैं और उसके नीचे तिथियों की नाड़ियाँ होती हैं। सगुण-द्विगुण और ऊपर तीन से ऊन फिर गुण होता है ॥३॥४॥ नीचे खराम संयुक्त छै—बारह और आठ फलों से युक्त

अट्ठाईस दोष पिण्ड तिथि नाड़ी के नीचे स्थित हैं ।।५।। तीन से कम आधे का गुणा करे और फिर दो से गुणा करना चाहिए। मध्य में रुद्र गुण अर्थात् ग्यारह से गुणा करना चाहिए। नीचे एक के साथ नवाग्नियों से करे ।।६।। जो लब्ध होता है उससे हीन मध्य होता है जोकि बाईस से रहित है। साठ से शेष ऋण जानना चाहिए। जो लब्ध हो उसे ऊर्ध्व भाग में निक्षिप्त करे ।।७।। जो सत्ताईस शेष है वह नक्षत्र और योग का ध्रुव है। मास-मास में बत्तीस घड़ी की स्थिति में वार का क्षेप करना चाहिए ।।८।।

द्वे पिण्डे द्वे च नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यणे।
चारधाने तिथि दद्यात्सप्तभिर्भागमाहरेत् ।।९
शेषवाराश्च सूर्याद्या घटिकासु च पातयेत् ।
पिण्डकेषु तिथि दद्याद्धग्रेच्चैव चतुर्दश ।।१०
ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज्ज्ञेयं चतुर्दश ।
प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश । ११
पञ्चदश तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतम् ।
चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः ।।१२
पंचमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः ।
षष्ठाष्टमे स्वखण्डाः स्युश्चतुर्विंशतिरेव च ।।१३
सप्तमे पञ्चविंशा स्यात्खण्डशः पिण्डकाद्भवेत् ।
कर्कटादौ हरेद्राशिमृतवेदलयैः क्रमात् ।।१४
तुलादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरमाः क्रमात् ।
मकरादौ दीयते (न्ते) च रसवेदलयः क्रमात् ।।१५
मेषादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरमाः क्रमात् ।
स्वेषव खयुगा मंत्र मेषादौ विकला धनम् ।।१६
कर्कटे प्रातिलोम्यं स्यादृणमेतत्तुलादिके ।
चतुर्गुणा तिथिर्ज्ञेया विकलाश्च हे सर्वदा ।।१७

दो पिण्ड, दो नक्षत्र और एकादश नाड़ियाँ और वार स्थान में तिथि को देवे फिर सात से भाग करे ।।९।। सूर्य आदि शेष वारों को घटिकाओं में

डाल देवे। पिण्डको में तिथि को दे देवे और चौदह से हरण करे ॥१०॥ धन ऋण और ऋण धन क्रम से चौदह समझना चाहिए। प्रथम और तेरह में पांच, द्वितीय और द्वादश मे दश, तृतीय मे और एकादश मे पञ्चादश, चतुर्थ और दशम में इक्कीस होता है। पञ्चम और नवम मे बाईस कहे गये है। छटे और आठवे में अखण्ड (सम्पूर्ण) चौबीस होते हैं ॥११॥१२॥१ ॥ सप्तम मे पच्चीस इस प्रकार से खण्ड-खण्ड करने पर पिण्डकस होता है। कर्कट आदि मे राशि को ऋतु (छँ) चार और तीन से हरण करना चाहिए ॥१४॥ तुला आदि मे प्रतिलोम्य अर्थात् विपरीत क्रम से तीन, चार, छँ से करे। मकर आदि में छँ, चार और तीन क्रम से दिये जाते हैं ॥१५। मेष आदि में फिर प्रातिलोम्य से तीन—चार और छँ के क्रम से करना चाहिए। खेपव घयुग मैत्र हैं और मेष आदि विकला धन होता है। कर्कट अर्थात् कर्क में इसके विपरीत होता है। तुला आदि मे यह ऋण होता है। तिथि चौगुनी जाननी चाहिए और यहां सर्वदा विकला ही हैं ॥१६॥१७॥

हन्याल्लिप्ता गतागामिपिण्डसङ्याफनान्तरैः।
षष्ट्याऽऽप्तं प्रथमोच्चाये हानौ देय धने धनम् ॥१८
द्वितीयोच्चरिते वर्गे वैपरीत्यमिति स्थितिः।
तिथिद्विगुणिता कार्या षड्भागपरिवर्जिता ॥१९
रविकर्मविपरीता तिथिनाडीसमायुता।
ऋणे शुद्धे तु नाड्यः स्युऋॅण शुद्येत नो यदा ॥२०
सषष्टिकं प्रदेयं स्यात्षष्ट्याधिक्ये च तत्यजेत्।
नक्षत्रं तिथिमिश्रं स्याच्चतुर्भिर्गुणिता तिथिः ॥२१
तिथिस्त्रिभागसंयुक्ता ऋणेन च तथाऽन्विता।
तिथिरत्र चिता कार्या तद्वेदाद्योगशोधनम् ॥२२
रविचन्द्रौ समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः।
एकोना तिथिर्द्विगुणा सप्तभिन्नाकृतिर्द्विधा ॥२३
तिथिश्च द्विगुणैकोना कृताङ्कैः करणं निशि।
कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदम् ॥
प्रथमे तिथ्यर्धतो हि किंस्तुघ्नं प्रतिपन्मुखे ॥

गत (व्यतीत हुए) और आगामी आगे आने वाले) पिण्डों की संख्या के फलों के अन्तर हों उनसे लिप्तों का हनन करना चाहिए। प्रथम उचार्य में छठी से प्राप्त को हानि में दे देवे और धन को धन देना चाहिए॥१८॥ द्वितीय उच्चारित वर्ग में विपरीतता होती है ऐसी ही स्थिति बनती है। तिथि को दुगुनी कर लेनी चाहिए और वह छै के भाग परिवर्जित होनी चाहिए॥१९॥ सूर्य के कर्म से विपरीत और तिथि नाड़ी से युक्त ऋण के शुद्ध होने पर नाड़ियाँ होती हैं। अब ऋण शुद्ध न होवे तो उसे साठ के सहित देना चाहिए जो साठ से अधिक हो तो उस अधिकता में उसे त्याग देना चाहिए। नक्षत्र तिथि से मिला हुआ ही होगा। तिथि चार से गुणा की हुई करे॥२०॥२१॥ तीन भाग से संयुता तिथि तथा वह ऋण से भी युक्त हो यहाँ पर तिथि को चिता करना चाहिए यह वेद से योग शोधन होता है॥२२॥ सूर्य और चन्द्र दोनों का समान करने पर निश्चल योग होता है। एक से कम तिथि मात से भिन्न आकृति वाली दुगुनी दो प्रकार से होती है। एक से ऊन द्विगुणा तिथि रात में कृतान्तों से करण होती है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के अन्त में शकुनि और इस पर्व में चतुष्पद होता है। प्रथम में तिथि के आधे से प्रतिपदा के मुख में किंस्तुघ्न होता है॥२३॥२४॥

५४—युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारः

ज्योतिःशास्त्रादिसारं च वक्ष्ये युद्धजयार्णवे।
वेलामन्त्रौषधाद्यं च यथोमामीश्वरोऽब्रवीत्॥१

देवैर्जिता दानवाश्च येनोपायेन तद्वद।
शुभाशुभविवेकाद्यं ज्ञानं युद्धजयार्णवम्॥२

मूलदेवेच्छया जाता शक्तिः पञ्चदशाक्षरा।
चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित्॥

मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसमुद्भवम्।
ये मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिताः॥४

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यवदमन्त्राः क्रमेण ते ।
सद्योजातादयो मन्त्रा ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः ॥ ५
ईशः सप्तशिखा देवाः शब्दाद्याः पञ्च च स्वराः ।
अ इ उ ए ओ कलाश्च मूलं ब्रह्मेति कीर्तिमम् ॥६
काष्ठमध्ये यथा वन्हिरप्रवृद्धो न दृश्यते ।
विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न दृश्यते ॥७
आदौ शक्तिः समुत्पन्ना ओंकारस्वरभूषिता ।
ततो बिन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ॥८

अब युद्ध जयार्णवीय ज्योति.शास्त्र का सार बताया जाता है । अग्नि ने कहा— मैं युद्ध जयार्णव मे ज्योतिः शास्त्र आदि का सार बताऊँगा । इस विषय में समय-मन्त्र और औषध आदि से कार्य सम्पन्न होता है । श्री ईश्वर ने उमादेवी से जिस तरह बतलाया था वही मैं कहता हूँ ॥१॥ देवी उमा ने कहा— जिन उपायों के द्वारा देवताओं ने दानवों को युद्ध मे जीता था उस शुभ-अशुभ के विवेक आदि वाले युद्ध जयार्णव के ज्ञान को बतलाइये ॥२॥ इस तरह से प्रश्न करने पर श्री ईश्वर ने कहा— मूलदेव की इच्छा से पञ्चदश अक्षर वाली शक्ति उत्पन्न हुई थी फिर उसी से यह समस्त चर और अचर उत्पन्न हुआ है । उस शक्ति की आराधना करके समस्त अर्थों का ज्ञाता हो जाता है ॥३॥ मैं अब तुमको पञ्चमन्त्रों से उत्पन्न होने वाला मन्त्र पीठ बतलाऊँगा । वे मन्त्र समस्त मन्त्रों के जीवित रहने में तथा मरण मे स्थित रहा करते है ॥४॥ ऋक्-यजुः—साम और अथर्व नामों वाले वेद मन्त्र हैं । वे क्रम से सद्योजातादि मन्त्र हैं । ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश-सप्तशिखा देव हैं और अ-इ-उ-ए-ओ ये पाँच स्वर है और कला है । इन सबका मूल ब्रह्म होता है— ऐसा कहा गया है ॥५॥६॥ जिस तरह काष्ठ के बीच मे अप्रवृद्ध दशा में विद्यमान अग्नि दिखलाई नही दिया करता है उसी भांति सबके देह में मौजूद रहने वाली शिव की शक्ति भी किसी को दिखलाई नहीं देती है ॥७॥ हे महादेवि ! सबके आदि मे शक्ति उत्पन्न हुई जो ओङ्कार स्वर से समलंकृत थी । इसके अनन्तर एकाकार से व्यवस्थित बिन्दु उत्पन्न हुआ था ॥८॥

जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः ।
अर्धचन्द्र इकारस्तु मोक्षमार्गस्य बोधकः ॥९
अकारोऽव्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः ।
अकार ऐश्वरे भूमिर्निवृत्तिश्च कला स्मृता ॥१०
गन्धो न वीजः प्राणाख्य इडा शक्तिः स्थिरा स्मृता ।
इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसोयानश्च पिङ्गला ॥११
वरुरा शक्तिरीवीजः स्याद्भवीजोऽग्निरूपवान् ।
विद्या समाना गान्धारी शक्तिश्च दहनी स्मृता ॥१२
ए शान्तिर्वायुपस्पर्शो यश्चोदानश्चला क्रिया ।
ओंकारः शान्त्यतीताख्यः खशब्दयूथपालिनः ॥१३
पञ्च वर्गाः स्वरा जाताः कुजज्ञगुरुभार्गवाः ।
शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वधः स्थिताः ॥१४
एतन्मूलमतः सर्वं ज्ञायते सचराचरम् ।
विद्यापीठ प्रवक्ष्यामि प्रणवः शिव ईरितः ॥१५
उमा सोमः स्वय शक्तिर्वामा ज्येष्टा च रौद्र्यपि ।
ब्रह्मा विष्णुः क्रमाद्रुद्रो गुणाः सर्गादयस्त्रयः ॥१६

इसके उपरान्त नाद उत्पन्न हुआ जो ऊँकार हृदय में संस्थित रहता हुआ शब्द किया करता है। इकार तो अर्ध चन्द्र है जोकि मोक्ष के मार्ग का बोधक होता है ॥९॥ अव्यक्त अकार उत्पन्न हुआ जो पर और भोग तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला है। अकार ईश्वर में भूमि है और निवृत्ति कला कही गई है ॥१०॥ न गन्धप्राणाख्य बीज इडा शक्ति स्थिर बताई गई है। और इकार प्रतिष्ठा नाम वाला है तथा पिङ्गला रसोयान हैं ॥११। वरुरा शक्ति-ई बीज—अग्नि रूपवान् भर बीज है। गान्धारी समाना विद्या है और दहनी शक्ति कही गई है ॥१२॥ ए शान्ति, वारि उपस्पर्श और उदान जो है, वह चला क्रिया है। शान्त्यतीताख्य ओङ्कार है। ख शब्द यूथ पालि पाँच वर्ग हैं। स्वर कुज (मङ्गल)—ज्ञ (बुध)—गुरु और शुक्र उत्पन्न हुए। शनि क्रम से, और उनके नीचे स्थित ककारादि हैं ॥१३॥१४॥ यह मूल है,

चर और अचर का ज्ञान किया जाता है। अब विद्यापीठ को बतलाऊँगा। प्रणव शिव कहा गया है ॥१५॥ उमा सोम स्वयं शक्ति है तथा वाम-ज्येष्ठा और रौद्री भी शक्ति है। सर्ग के अर्थात् सृष्टि के आदि काल में रहने वाले ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र क्रम से तीन गुण है ॥१६॥

रत्ननाडीत्रयं चैव स्थूलः सूक्ष्मः परोऽपरः ।
चिन्तयेच्छ्वेतवर्णं त मुञ्चमानं परामृतम् ॥१७
प्लाव्यमान यथाऽऽत्मान चिन्तयेत्त दिवानिशम् ।
अजरत्वं भवेद्देवि शिवत्वमुपगच्छति ॥१८
अङ्गुष्ठादौ न्यसेदङ्गाग्रे समभ्येऽथ देहके ।
मृत्युंजयं ततः प्राच्य रणादौ विजयी भवेत् ॥१९
शून्यो निरालयः शब्दः स्पर्शस्तिर्यङ्नत स्पृशेत् ।
रूपस्योर्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ॥२०
सर्वस्थानविनिर्मुक्तो गन्धो मध्ये च मूलकम् ।
नाभिमूले स्थित कन्दं शिवरूप तु मण्डितम् ।
शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः ।
दशवायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितम् ॥२२
कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकम् ।
तज्जीव जीवलोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥
तस्मिन्नष्टे मृतं मन्ये मन्त्रपीठेऽनिलात्मकम् ॥२३

तीन रत्न नाड़ी है— स्थूल-सूक्ष्म और पर अपर। इसका चिन्तन करना चाहिए। श्वेत वर्ण से युक्त उसको मुञ्चन करता हुआ परामृत है ॥१७॥ इस प्रकार से चिन्तन करे जैसे आत्मा को प्लाव्यमान कर रहा हो। उसका रात दिन चिन्तन करना चाहिए। हे देवि! इस प्रकार से चिन्तन करने से अजरत्व को प्राप्त होना है अर्थात् वार्धक्य (बुढ़ापा) से रहित दशा वाला बन जाता है और फिर शिवत्व अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥

अङ्गुष्ठ आदि में अङ्गों का न्यास करे, नेत्रों के मध्य में और देह में मृत्युंजय का अर्चन करे। इससे फिर रण आदि में विजय प्राप्त करने वाला हो जाता है।।१६ शून्य—बिना आलय वाला—शब्द—स्पर्श तिरछा झुका हुए को स्पर्श करे। रूप की ऊर्ध्व गति (ऊपर की ओर जाने वाली) कही गई है और जल की नीचे की ओर समाश्रित होती है ।।२०।। समस्त स्थान से विनिर्मुक्त (रहित) गन्ध और मध्य मे मूल है। नाभि के मूल में कन्द स्थित है और शिव का रूप मण्डित होता है ।।२१।। शक्ति के व्यूह से युक्त चन्द्र और वहाँ सूर्य हरि विशेष रूप से अवस्थित हैं। दश प्रकार की प्राणापानादि वायुओं से युक्त तथा पञ्च तन्मात्राओं से मण्डित है ।।२२।। इस तरह कालाग्नि के समान आकार वाले प्रस्फुरण करते हुए शिव का स्वरूप है। वही इस जीव लोक का जो स्थावर और चर स्वरूप वाला है, जीव है। उसके (मन्त्र के) नष्ट हो जाने पर मृत मन्त्र पीठ पर अनिल त्मक होता है ।।२३।।

५५—नक्षत्रनिर्णयः

वक्ष्याम्यृक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविवृद्धये ।
यस्मिन्नृक्षे भवेत्सूर्यस्तदादौ त्रीणि मूर्धनि ।।१
एकं मुखे द्वयं नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयम् ।
हृदि पञ्च सुते जानौ आयुर्वृद्धि विचिन्तयेत् ।।२
शिरःस्थे तु भवेद्राज्यं पण्डितो वक्त्रयोगतः ।
नेत्रयो कान्तिसौभाग्यं हृदये द्रव्यसंग्रहः ।।३
हस्ते धृतं तस्करत्वं गतासुरध्वगः पदे ।
कुम्भाष्टके भानि लिख्य सूर्यकुम्भस्तु रिक्तकः ।।४
अशुभः सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्वादिसंस्थितः ।
फणराहुं प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदम् ।।५
अष्टाविंशत्कृते ह्निन्दून्पुनर्माज्यास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तस्यैव दापयेत् ।।६

यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्सदृक्षं फणिमूर्धनि ।
तदादि विन्यसेद्भानि सप्तविंशत्क्रमेण तु ॥७
वक्त्रे सप्तगत ऋक्षे म्रियते सर्व आहवे ।
स्कन्धे भङ्गं विजानीयात्सप्तभेषु च मध्यतः ॥८

अब नक्षत्रों के निर्णय के विषय मे बतलाया जाता है। श्री ईश्वर ने कहा— अब मै शुभ और अशुभ की विवृद्धि के लिए नक्षत्रात्मक पिण्ड को बतलाऊँगा। जिस नक्षत्र मे सूर्य होता है उसके आदि मे मूर्धा मे तीन होते है ॥१॥ मुख मे एक–नक्ष मे दो और हाथ तथा पाद मे चार–हृदय में पाँच–सुत में और जानु मे आयु की वृद्धि का चिन्तन करना चाहिए ॥२॥ शिर मे स्थित होने पर राज्य प्राप्त होता है। मुख के योग से पण्डित होता है। नेत्रों में कांति का सौभाग्य तथा हृदय मे द्रव्यो का संग्रह होता है ॥३॥ हस्त मे धृत होने से तस्करता तथा पद मे गत प्राण और ऊर्ध्वगामी होता है। कुम्भाष्टक मे नक्षत्रों को लिखकर सूर्य कुम्भ रिक्त होता है ॥४॥ सूर्य कुम्भ अशुभ होता है। पूर्वादि मे स्थित रहने वाला शुभ होता है। अब फणि राहु को बतलाऊंगा जो जय और अजय के विवेक को देने वाला है ॥५॥ अट्ठाईस बिन्दुओं को लिखना चाहिए फिर तीन–तीन से भाग देवें। इसके अनन्तर चार नक्षत्र और वहां पर ही रेखाएँ दिलवानी चाहिए ॥६॥ जिस नक्षत्र पर राहु स्थित हो वह नक्षत्र फणि के मस्तक पर करे उसमे आदि अन्य सत्ताईस नक्षत्रों को क्रम से विन्यस्त करे ॥७॥ मुख पर सप्तगत नक्षत्र के होने पर सभी युद्ध मे मर जाते हैं। स्कन्ध पर भङ्ग जानना चाहिए जबकि सप्त नक्षत्रों मे मध्य से हो ॥८॥

उदरस्थेन पूजा च जयश्चैवाऽऽत्मनस्तथा ।
कटिदेशे स्थिते योध आहवे हरते परान् ॥९
पुच्छस्थितेन कीर्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः ।
पुनरन्य प्र वक्ष्यामि रविराहुबलं तव ॥१०
रविः शुक्रो बुधश्चैव सोमः सौरिर्गुरुस्तथा ।
लोहितः सैंहिकश्चैव एते यामार्धभागिनः ॥११

मौरिं रविं च राहुं च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः ।
स जयेत्सैन्यसंघातं द्यूतमध्वानमाहवम् ॥१२
रोहिणी चोत्तरास्तिस्रो मृगः पञ्च स्थिराणि हि ।
अश्विनी रेवतीस्वाती धनिष्ठा शततारका ॥१३
क्षिप्राणि पञ्च मान्येव यात्रार्थां चैव योजयेत् ।
अनुराधा हस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ॥१४
सर्वकार्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखया ।
पूर्वास्तिस्रोऽग्निर्भरणी मघार्द्राश्लेषा दारुणाः ॥१५
स्थावरेषु स्थिर ह्यृक्षं यात्रायां क्षिप्रमुत्तमम् ।
सौम भ्यार्थे मृदून्येव उग्रे पूग्रं तु कारयेत् ॥१६

उदर में स्थित होने मे पूजा होती है तथा आत्मा पर जय होती है। कटि भाग पर स्थित होने से योद्धा युद्ध में शत्रुओं का हरण किया करता है ॥९॥ पुच्छ भाग पर स्थित होने से कीर्त्ति का लाभ होता है। नक्षत्र के राहु के द्वारा दृष्ट होने पर मृत्यु होती है। इसके पश्चात् फिर तुमको रवि और राहु के बल के विषय में बतलाऊँगा ॥१०॥ रवि–शुक्र–बुध–सोम–मौरि–गुरु–लोहित और सैंहिक ये सब प्रहर के अर्धभागी होते हैं ॥११॥ मौरि—रवि और राहु को यत्न से पृष्ठ भाग में करके वह व्यक्ति मार्ग में किए हुए युद्ध को और सैन्य के संघात को जीत लेता है ॥१२। रोहिणी–तीनों उत्तरा अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपदा मृगशिरा ये पाँच स्थिर नक्षत्र होते हैं। अश्विनी–रेवती–स्वाती–धनिष्ठा और शतभिष ये पाँच क्षिप्र नक्षत्र हैं। इनका उपयोग यात्रा के अर्थ को ही करना चाहिए। अनुराधा–हस्त–मूल–मृगशिरा–पुष्य और पुनर्वसु इतने ये नक्षत्र समस्त कार्यों मे लिए जाते हैं। ज्येष्ठा–चित्रा–विशाखा–तीनों पूर्वा–अग्नि—भरणी–मघा–आर्द्रा –आश्लेषा ये दारुण नक्षत्र होते हैं ॥१३॥१४॥१५॥ स्थावर कार्यों में स्थिर नक्षत्र लेना चाहिए और यात्रा में जो क्षिप्र नक्षत्र होता है वही उत्तम होता है। सौभाग्य के लिए मृदु नक्षत्र ही लेने चाहिए और जो कार्य उग्र हों उनमें उग्र ही नक्षत्र ग्रहण करने चाहिए ॥१६॥

दारुण दारुणं कुर्याद्वदये चाधोमुखादिकम् ।
कृत्तिका भरण्या (ण्य) श्लेषा विशाखा पितृ नैऋतम् ।।१७
पूर्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म चाधोमुखं चरेत् ।
एषु कूपतडागादि विद्याकर्म भिषक्क्रिया ।।१८
स्थापनं नौकाकूपादिविधानं खनन तथा ।
रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वा (स्तस्वा) ती पुनर्वसुः ।।१९
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वै पार्श्वतोमुखाः ।
एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं गजाश्वयो. ।।२०
आरामगृहाप्रासादं प्राकार क्षेत्रतोरणम् ।
ध्वजचिन्हपताकाश्च सर्वनितांश्च कारयेत् ।।२१
द्वादशी सूर्यदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा ।
भौमेन दशमो दग्धा तृतीया वै बुधेन च ।।२२
षष्ठी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा ।
सप्तमी सूर्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ।।२३
द्वितीया द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया ।
रविर्भौमस्तथा ..ौरिः षडेतास्तु त्रिपुष्कराः ।।२४

दारुण कार्यों में दारुण नक्षत्र ही शुभ माना जाता है। अब अधोमुख आदि के विषय में कहूँगा। कृत्तिका–भरणी–आश्लेषा–विशाखा-पितृ नैऋत-तीनों पूर्वा ये नक्षत्र अधोमुख माने गये हैं और कर्म भी अधोमुख ही किया करते हैं। इन नक्षत्रों में कूआ—तालाब आदि का निर्माण तथा विद्या सम्बन्धी कर्म और भिषक् क्रिया अर्थात् वैद्य सम्बन्धी कर्म करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उक्त कार्यों के लिए ये नक्षत्र शुभ हैं ।।१७।।१८।। नौका-कूआ आदि का स्थापन एवं सृजन करना चाहिए। रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और ज्येष्ठा ये नक्षत्र पार्श्वतोमुख होते हैं। इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक तथा गज और अश्व का पट्टबन्ध, आराम (उद्यान), गृह, प्रासाद, प्राकार (चारदीवारी), क्षेत्र तोरण, ध्वजा चिन्ह पताका इन समस्त कार्यों को कराना चाहिए। अर्थात् इन कार्यों के लिए ये नक्षत्र शुभ

फलप्रद होते हैं ॥१९॥२०॥२१॥ अब तिथियों के दग्ध होने के विषय में बनाते हैं रविवार से युक्त द्वादशी तिथि दग्ध तिथि मानी जाती है। एकादशी चन्द्रवार से युक्त हो तो दग्धा होती है। मङ्गलवार से दशमी-बुध से तृतीया-गुरुवार से षष्ठी (छठ)-शुक्र से द्वितीया-सूर्य पुत्र से सप्तमी दग्धा होती हैं। अब त्रिपुष्कर योग बनाते हैं— द्वादशी-द्वितीया-सप्तमी और तृतीया-रवि भौम तथा सौरि ये छः हैं, इन तीनों में पुष्कर होते हैं ॥२२।२३॥२४॥

विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुनर्वसुः।
पूर्वभाद्रपदा चैव षडेते तु त्रिपुष्कराः ॥२५
लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च।
नष्टं भ्रष्टं विनष्टं वा तत्सर्वं त्रिगुणं भवेत् ॥२६
अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च।
स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ॥२७
एतानि दृढ़चक्षूंषि पश्यन्ति च दिशो दश।
यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुण्यगोचरे ॥२८
आषाढे रेवती चित्रा केकराणि पुनर्वसुः।
एषु पञ्चसु ऋक्षेषु निर्गतस्याऽऽगमो भवेत् ॥२९
कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी च मघा तथा।
मूलं ज्येष्ठाऽनुराधा च धनिष्ठा शततारकाः ॥३०
पूर्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि।
अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवाऽऽगमो भवेत्। ३१
हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राऽऽषाढ़ा तथैव च।
नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते संग्रामो नैव विद्यते ॥३२

विशाखा-कृत्तिका-दो उत्तरा-पुनर्वसु-पूर्वाभाद्रपदा ये छः त्रिपुष्कर होते हैं ॥२५॥ लाभ-हानि-जय-वृद्धि और पुत्र जन्म नष्ट, भ्रष्ट अथवा विनष्ट यह सब त्रिगुण होता है ॥२६॥ अश्विनी-भरणी-आश्लेषा-पुष्य-स्वाति-विशाखा और सातवां श्रवण ये सात नक्षत्र दृढ नेत्रों वाले होते हैं और दश

दिशाग्रो को देखा करते हैं। पुष्य नक्षत्र में यात्राओं में दूर जाने वाले का भी आगमन होता है ॥२७॥२८॥ आषाढ़ा–रेवती–चित्रा–केकर–पुनर्वसु इन पाँच नक्षत्रों में जो घर से निकल गया है उसका भी आगमन हो जाता है ॥२६ कृत्तिका–रोहिणी–सौम्य—फाल्गुनी–मघा–मूल–ज्येष्ठा– अनुराधा– धनिष्ठा–शत तारका–पूर्व भाद्रपदा ये नक्षत्र त्रिपिट संज्ञा वाले होते हैं। इनमें जो मार्ग में गया हुआ हो उसका पुनरेव आगमन होता है ॥३०॥३१॥ हस्त—उत्तरा-भाद्रपदा—आर्द्रा—आषाढा ये नक्षत्र नष्ट अर्थों को करते हैं और उनकी प्राप्ति नहीं होती है ॥३२॥

पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम् ।
रेवत्यन्ते चतुष्कं तु अश्विन्यादिचतुष्टयम् ।३३
उभयोर्याममात्रं तु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः ।
अश्लेषान्ते मघादौ तु घटिकानां चतुष्टयम् ।३४
द्वितीयं गण्डमाख्यातं तृतीयं भैरवि शृणु ।
ज्येष्ठामूलभयोर्मध्य उग्ररूपं तु यामकम् ।।३५
न कुर्याच्छुभकर्माणि यदीच्छेदात्मजीवितम् ।
दारके जातकाले च म्रियेते पितृमातरौ ।।३६

अब गण्डान्त को कहते है। जो नक्षत्र के मध्य में स्थित होता है। रेवती के अन्त मे चार और अश्विनी आदि चार इन दोनों चौकड़ाओं के एक-एक प्रहर का त्याग प्रयत्नपूर्वक कर देना चाहिए। आश्लेषा नक्षत्र के अन्त में तथा मघा नक्षत्र के आदि में चार घड़ी गण्ड होती है–यह दूसरा गण्डान्ति बता दिया गया है। हे भैरवि ! अब तीसरा गण्डान्त बताते हैं उसका तुम श्रवण करो—ज्येष्ठा और मूल इन दोनों नक्षत्रों के मध्य का जो याम (प्रहर) होता है वह अत्यन्त उग्र रूप वाला होता है ।।३३।।३४।।३५।। यदि अपना जीवन चाहता है तो मनुष्यको इस प्रहर मे कोई भी शुभ कर्म नहीं करना चाहिए। इस समय से यदि कोई बालक उत्पन्न हो जावे तो उसके माता-पिता दोनों मर जाया करते हैं ।।३६।।

५६ मन्वन्तराणि

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्यः स्वायंभुवो मनुः ।
आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः ॥१
औवर्याद्याश्च सप्तर्षय इन्द्रश्चैव शतक्रतुः ।
पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२
विपश्चित्तत्र देवेन्द्र ऊर्जस्तम्भादयो द्विजाः ।
चैत्रकिंपुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ॥३
सुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च सुधामाद्या वशि(सि)ष्ठजाः ।
सप्तर्षयोऽजाद्याः पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ॥४
स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखरिन्द्रः सुरेश्वरः ।
ज्योतिर्होमादयो विप्रा नव ख्यातिमुखाः सुताः ॥५
रैवते वितथश्चेन्द्रो अमिताभास्तथा सुराः ।
हिरण्यरोमाद्या मुनयो बलबन्धादयः सुताः ॥६
मनोजवस्तथाक्षुषेऽप्य इन्द्रः स्वात्यादयः सुताः ।
सुमेधाद्या महर्षयः पुरुप्रभृतयः सुताः ॥७
विवस्वतः सुतो विप्रः श्राद्धदेवो मनुस्ततः ।
आदित्यवसुरुद्राद्या देवा इन्द्रः पुरंदरः ॥८

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं मन्वन्तरों को बतलाऊँगा—सबसे आदि में होने वाला प्रथम स्वायम्भुव नाम वाला मनु हुआ था। आग्नीध्र आदि उसके सब पुत्र थे जिसका नाम यम था। फिर सब देवगण उत्पन्न हुए ॥१॥ औवर्याद्य सात ऋषियों का वर्ग और शतक्रतु (सौ क्रतु) अर्थात् यज्ञ करने वाला इन्द्र हुआ। पारावत—स्तुषित देव हुए। ये सब स्वारोचिष मन्वन्तर में उत्पन्न हुए थे ॥२॥ देवेन्द्र विपश्चित् था अर्थात् उनमें देवेन्द्र विद्वान् हुआ था। ऊर्जस्तम्भादि द्विज हुए। चैत्र और किंपुरुष पुत्र हुए थे। फिर उत्तम नाम वाला तीसरा मनु हुआ था ॥३॥ इस मन्वन्तर में सुशान्ति इन्द्र और वशिष्ठ से उत्पन्न हुए अजाद्य सप्तर्षि वर्ग पुत्र तथा सुधामादि देवता हुए थे।

इसके अनन्तर चौथा तामस नाम का मनु हुआ था ॥४॥ इस मन्वन्तर में स्वरुपाद्य देवता हुए, सुरेश्वर शिखरी इन्द्र हुआ तथा ज्योतिर्होम आदि विप्र हुए एवं ख्याति मुख नौ उनके पुत्र हुए थे ॥५॥ फिर पञ्चम रैवत नाम वाला मनु हुआ। इस रैवत मन्वन्तर में वितथ इन्द्र हुआ तथा अमिताभ सुर हुए, हिरण्य रोमादि मुनिगण हुए और बल बन्ध आदि पुत्र हुए थे ॥६॥ इसके पश्चात् चाक्षुष मनु हुए। इस चाक्षुष मन्वन्तर में मनोजव इन्द्र हुए और स्वात्याादि सुत हुए तथा सुमेधा आदि महर्षिगण हुए एवं पुरु प्रभृति उनके पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥७॥ विवस्वान् का पुत्र विप्र श्राद्धदेव मनु इसके उपरान्त हुए थे। इस मन्वन्तर मे आदित्य वसु रुद्र आदि देवगण हुए और पुरन्दर इन्द्र हुए थे ॥८॥

वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगोतमः ।
विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त सांप्रतम् ॥९
इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत् ।
स्वायंभुवे मानसोऽभूदजितस्तदनन्तरे ॥१०
सत्यो हरिर्देववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात् ।
छायाजः सूर्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ॥११
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिर्भविताऽष्टमः ।
सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः ॥१२
मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः ।
नवमो दक्षसावर्णिः पाराद्याश्च तदा सुराः ॥१३
इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः ।
धृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ॥१४
सुखादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः ।
हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ॥१५
धर्मसावर्णिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः ।
गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ॥१६

अब वाशिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज ये सात मुनिगण सप्तर्षि हुए थे ।।६।। इक्ष्वाकु जिनमें प्रधान थे, वे पुत्र हुए जहाँ अंश से हरि हुए थे। स्वायम्भुव मे मानस हुए और उस अन्तर में अजित हुए थे ।।१०।। सत्य देववर हरि तथा क्रम से वैकुण्ठ वामन हुए। छाया से जन्म लेने वाले सूर्य के पुत्र अष्टम मनु होगा ।।११।। यह पूर्वज का सवर्ण है अतः अष्टम सावर्णि होगा। इसमें सुतपा आदि देवगण और दीप्तिमद् द्रौणिक आदि मुनिगण एवं बलि इन्द्र और विरज प्रमुख सुत हैं। नवम अर्थात् नौवाँ दक्ष सावर्णि मनु है। इस मन्वन्तर में उस समय पाराद्य सुरगण हैं। ।।१२।१३।। उनका इन्द्र अद्भुत है और सवनादि द्विज श्रेष्ठ हैं। धृत केतु आदि पुत्र हैं। इसके उपरान्त ब्रह्म सावर्णि हुए ।।१४।। इसमें सुखादि देवगण हैं और उनका शान्ति नामक शतक्रतु है। हवि व्याघ्र पुत्र हैं और सुक्षेत्रादि उनके पुत्र हैं ।।१५।। इसके अनन्तर धर्म सावर्णिक मनु हुए। उस समय में विहङ्ग आदि देवता हैं। गण इन्द्र है तथा निश्चर आदि मुनिगण मनु के पुत्र हैं ।।१६।।

सर्वत्रगाद्या रुद्राख्यः सावर्णिर्भविता मनु.।
ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ।।१७
तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः।
मनुस्त्रयोदशो रौच्यः सूत्रामाणादयः सुराः ।।१८
इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादिविमर्दनः।
निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ।।१९
मनुश्चतुर्दशो भौत्यः शुचिरिन्द्रो भविष्यति।
चाक्षुषाद्याः सुरगणा अग्निवाह्वादयो द्विजाः ।।२०
चतुर्दशस्य भौत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः।
प्रवर्तयन्ति वेदांश्च भुवि सप्तर्षयो दिवः ।।२१
देवा यज्ञभुजस्ते तु भूः पुत्रैः परिपाल्यते।
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ।।२२
मन्वाद्याश्च हरिर्वेदं द्वापरान्ते विभेद सः।
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः ।।२३

एकश्चाऽऽसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
आध्वयवं यजुभिरतु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ॥२४
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ।
प्रथमं व्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः ॥२५

उन पुत्रों के नाम सर्वत्रगादि हैं। रुद्र नामक सावर्णि मनु होगा। ऋतधामा इस मन्वन्तर मे सुरेन्द्र होगा और हरितादि देवगण हैं॥१७॥ तपस्यादि सप्तर्षिगण हैं और देववन्मुख पुत्र हैं। अब तेरहवाँ मनु रौच्य नामक है। जिसके सूत्र माणादि देवगण हैं। उनका इन्द्र दिवस्पति है जो दानवादि का विशेष रूप से मर्दन करने वाला है। निर्मोह आदि सप्त ऋषिगण हैं और चित्रसेनादि उनके पुत्र हैं॥ १८।१९॥ चौदहवाँ मनु भौत्य है। इस मन्वन्तर में शुचि नाम वाला इन्द्र होगा तथा चाक्षुषादि देवगण और अग्निबाह्वादि द्विज होंगे ॥२०॥ चौदहवें मनु के जिसका नाम भौत्य है उरुमुख पुत्र है। ये सप्तर्षिगण दिवलोक से इस भूमण्डल मे वेदो का प्रवर्त्तन करते हैं ॥२१॥ वे यज्ञों को भोग करने वाले देवता उन पुत्रों के द्वारा इस भूमण्डल का परिपालन करते हैं। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा के एक दिन में ये चौदह मनु होते हैं॥२२॥ मन्वादि द्वापर के अन्त में हरि ने वेद का विभेद किया था, आद्य वेद चतुष्पाद तथा शतसहस्र समित था ॥२३॥ एक यजुर्वेद ही था, उसको चार भागों में विरचित किया था। यजुओं से आध्वर्यवऋगों से होत्र तथा मुनि ने सामों से औद्गात्र और अथर्वों से ब्रह्मत्व किया था। प्रथम व्यासशिष्यपैल ऋग्वेद का पारगामी विद्वान् था ॥२४।२५॥

इन्द्रः प्रमतये प्रादाद्बाष्कलाय च संहिताम् ।
बौध्यादिभ्यो ददौ सोऽपि चतुर्धा निजसंहिताम् ॥२६
यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामतिः ।
वैशम्पायननामाऽसौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥२७
काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः ।
सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ॥२८

सुमन्तुश्च सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः ।
गृह्णते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ॥२९
सुमन्तुश्चाथर्वतरुं व्यासशिष्यो विभेद तम् ।
शिष्यानध्यापयामास पैप्पलादीन्सहस्रशः ॥३०
पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः ॥३१

इन्द्र ने प्रमिति के लिये और वाष्कल के लिये संहिता को दिया था । उनसे भी बोध्यादिक के लिये चार प्रकार से अपनी संहिता दिया था ॥२६॥ महती मति वाले व्यासजी के शिष्य वैशम्पायन नामक ने यजुर्वेद रूपी इस वृक्ष की सत्ताईस शाखाऐं कर दी थीं ॥२७॥ काण्व वाजसनेय आदि याज्ञवल्यादि के द्वारा कही गई हैं । सामवेद वृक्ष की शाखाऐं व्यासजी के शिष्य जैमिनी ने की थीं ॥२८॥ सुमन्तु और सुकर्मा ने फिर एक-एक संहिता को ग्रहण करते हैं । सुकर्मा नामक गुरु ने सहस्र संहिता का ग्रहण किया था ॥२६॥ फिर व्यास मुनि के शिष्य सुमन्तु ने अथर्ववेद स्वरूपी वृक्ष का विभेद किया था । पैप्पल आदि हजारों शिष्यों को उन्हें पढ़ाया था ॥३०॥ फिर व्यास महामुनि की कृपा से एवं प्रसाद से सूतजी ने पुराण संहिता की रचना की थी ॥३१॥

५७ गृहस्थवृत्तिः

आजीवं तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
क्षत्रविट्शूद्रधर्मेण जीवमेव तु शूद्रजात् ॥१
कृषिवाणिज्यगोरक्ष्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् ।
गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ॥२
भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा हत्वा कीटपिपीलिकान् ।
पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात् ॥३
हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघातिनाम् ॥४

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ।।५

अब गृहस्थ वृत्ति के विषय में बतलाया जाता है । पुष्कर ने कहा— ब्राह्मण को अपने कर्म के द्वारा जैसाकि शास्त्र में उसका कहा गया है, अपनी जीविका चलानी चाहिये । यदि उसका जीवन अपने कर्म द्वारा नही चलता हो तो उसे क्षत्रिय, वैश्य आदि के धर्म से जीवन रखता हुआ रह सकता है किन्तु शूद्र का कर्म नही करना चाहिए ।।१।। कृषि, गोपालन, वाणिज्य और कुसीद का कर्म भी द्विज करे । गोरस अर्थात् गाय का दूध-दही, घृत आदि गुड़, लवण (नमक) लाख और मांस इनका व्यवसाय नही करना चाहिये ।।२।। कृषक अर्थात् खेती का काम करने वाले किसान भूमि का भेदन किया करते हैं अर्थात् हल से उसे जोतते हैं और ओषधियों का छेदन करते हैं अर्थात् खेतों की जुताई के समय समस्त प्राकृतिक उत्पन्न जड़ी बूटियो को काटकर फेंक देते हैं । ये दोनों ही पाप कर्म उनसे बनते हैं क्योंकि खेती के काम में बहुत-से कीड़े और चींटियो का भी हनन होता है । उनका इस पाप से उद्धार, यज्ञ और देवताओं के पूजन से होता है । ३।। हल मे अर्थात् हल के चलाने के काम में आठ बैलों को रखना ही धर्म से युक्त होता है । दिन भर में आठ बैलों को पारी-पारी से जोतना चाहिये । जो छै बैलों से अर्थात् तीन जोड़ियों से ही काम करते हैं वे जीवित रखने के अर्थी लोग माने गये हैं । तात्पर्य यह है कि छै बैलों से कृषि कर्म करना कोई धर्मयुक्त तो नही है किन्तु इतना भर ही है कि वे जीवन रख सकते हैं । चार गो सुन अर्थात् बैलों से काम करने वाले क्रूर पुरुष कहे गये हैं और जो केवल एक ही जोड़ी से सब कृषि का काम करते हैं और रात-दिन उन दो ही बैलों को जोतते रहते हैं वे पूरे धर्मघाती लोग माने गये हैं ।।४।। ऋत और अमृत के द्वारा जीवित रहना चाहिये अथवा मृत और प्रमृत से तथा सत्यानृत से जीवन रखे किन्तु श्ववृत्ति से (कुत्ते की सी वृत्ति से) कदापि जीवन नहीं रखना चाहिये ।।५।।

५८—ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः

धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
षोडशर्तु निशाः स्त्रीणामाद्यास्तिस्रस्तु गर्हिताः ॥१
व्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी कर्माऽऽधानिकमिष्यते ।
गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने सवनं स्पन्दनात्पुरा ॥२
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभम् ।
अच्छिन्ननाड्यां कर्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ॥३
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥४
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ।
बालं निवेदयेद् भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ॥५
यथाकुलं तु चूडाकृद् ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे गर्भादेकादशे नृपे ॥६
गर्भात्तु द्वादशे वैश्ये षोडशाब्दादितो न हि ।
मुञ्जानां वल्कलानां तु क्रमान्मौञ्ज्यः प्रकीर्तिताः ॥७
मार्गवैयाघ्रबास्तानि वर्माणि व्रतचारिणाम् ।
पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥८

अब ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के धर्मों के विषय में बतलाते हैं। पुष्कर ने कहा—अब मैं आश्रमों में रहने वाले मानवों के धर्म को बतलाऊँगा उसे तुम श्रवण करो। स्त्रियों की सोलह ऋतु हैं आदि में होने वाली तीन निशाएँ निन्दित मानी गई हैं ॥ १ ॥ जो गृहस्थ पुत्र के प्राप्त करने की इच्छा वाला है उसे युग्म रात्रियों में अर्थात् स्त्री के ऋतुकाल के आरम्भ होने के बाद पूरी संख्या वाली निशाओं में गमन करना चाहिए। यही आधानिक कर्म (गर्भाधान) कहा जाता है। अब गर्भ की स्थिति हो जाने के स्पष्ट ज्ञान होने से स्पन्दन से पूर्व सवन कर्म करना चाहिए अर्थात् पुंसवन संस्कार होता है ॥२॥ गर्भ स्थिति से छटवें अथवा अष्टम मास में सीमन्त किया जाता है। यह पुत्रीय शुभ नक्षत्र

होता है। विद्वान् पुरुषों को अच्छिन्न नाड़ी मे जात कर्म करना चाहिए ॥३॥ अशौच अर्थात् जात की शुद्धि के समाप्त हो जाने पर नाम कर्म अर्थात् नामकरण संस्कार किया जाता है। ब्राह्मण के नाम के आगे 'शर्म्मा' लगाकर कहना चाहिए और क्षत्रिय का नाम 'वर्मा' के अन्त वाला होना चाहिए ॥४॥ वैश्य का नाम 'गुप्त' शब्द के अन्त वाला तथा शूद्र के नाम के पीछे 'दास'— यह होना चाहिए। यही नामकरण की प्रशस्त प्रक्रिया है। बालक को स्वामी के लिये यह आपका पुत्र है—यह कहते हुए निवेदन करना चाहिए ॥५॥ कुल के अनुसार चूडा कर्म करना चाहिए। ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से अष्टम वर्ष में अथवा जन्म से अष्टम वर्ष में करना चाहिए। क्षत्रिय का यज्ञोपवीत संस्कार ग्यारहवें वर्ष में करे। यहाँ भी गर्भ से या जन्म से वर्ष लेने चाहिए। गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का उपनयन करावे। सोलह वर्ष से आगे विधान नहीं है। नियत वर्षों के पश्चात् प्रायश्चित्त होता है। मूजों की अथवा बल्फलों की क्रम से मौञ्जी कही गई हैं ॥६-७॥ मृग की या व्याघ्र की खाल ब्रह्मचारियों के चर्म होते हैं। ब्रह्मचारियों के दण्ड क्रम से पर्ण—पीपल और वेल के होते हैं ॥८॥

केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ।
अवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निप्लुष्टास्तु दण्डकाः ॥६
वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ।
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥१०
प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षा ध्रुवं भवेत् ।
स्त्रीणाममन्त्रतस्तानि विवाहस्तु समन्त्रकः ॥११
उपनीय गुरुः शिष्यंशिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च सध्योपासनमेव च ॥१२
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्त ऋतं भुङ्क्त उदङ्मुखः ॥१३
सायं प्रातश्च जुहुयात्रामेध्यं व्यस्तहस्तकम् ।
मधु मांसं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत् ॥१४

हिंसां परापवादं वा अश्लीलं च विशेषतः ।
दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वाऽन्यधारणम ॥१५
वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः ।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्त निवसेद्गुरौ ॥१६

दण्ड मस्तक बाल-ललाट और मुख के बराबर प्रमाण वाले क्रम से बनाये गये हैं अर्थात् तीनों वर्णों का क्रम होना है। दण्ड अवक्र अर्थात् सीधे-सरल और त्वचा (वक्कल) से युक्त सभी होने चाहिए। अग्नि से दग्ध दण्डों का विधान नहीं है ॥९॥ वस्त्र और उपवीत (जनेऊ) क्रम से कपास (सून) के क्षौम और ऊर्ण (ऊन) के होने चाहिए। जब ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यावस्था में उपनयन सस्कार के पश्चात् वेदारम्भ के समय में भिक्षा को जावे तब उसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी को 'भवति ! भिक्षां देहि'—यह क्षत्रिय को 'भिक्षा भवति ! देहि'—यह और वैश्य को 'भिक्षां देहि भवति !' यह क्रम से भवत् शब्द का प्रयोग आदि मध्य और अवसान मे करना चाहिए ॥१०॥ सबसे प्रथम वहाँ भिक्षा की याचना करे जहाँ पर निश्चित रूप से युक्त भिक्षा प्राप्त हो जावे। स्त्रियों के वे अमन्त्रित अर्थात् मन्त्रों से रहित होते हैं केवल विवाह संस्कार ही मन्त्रों से युक्त होता है ॥११॥ गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य का उपनयन संस्कार करके फिर उसे आदि से शौच अर्थात् शुद्धि के लिये शिक्षा देनी चाहिए। आचार की शिक्षा देवे—अग्नि के हवन आदि की तथा सन्ध्योपासना के विधि-विधान की शिक्षा देनी चाहिए ॥१२। पूर्व की ओर मुख करके भोजन करना आयु की वृद्धि करने वाला होता है—दक्षिण मुख वाला यश का भोग करता है—पश्चिम की ओर मुख वाला श्री का भोग करता है और उदङ् मुख अर्थात् उत्तर की ओर मुख वाला ऋतका भोग किया करता है ॥१३॥ सायङ्काल और प्रातःकाल में हवन करना चाहिए अमेध्य (अपवित्र) और व्यस्त हाथ वाला होकर नहीं करे। मधु-मांस का सेवन तथा मनुष्यों के साथ गीत गाना या नृत्य करना त्याग देना चाहिए। १४॥ किसी भी प्राणी की हिंसा करना (शारीरिक तथा मानसिक क्लेश पहुँचाना भी हिंसा कही जाती है) अथवा दूसरों की बुराई करना और विशेष रूप से अश्लील *(लज्जा उत्पन्न करने वाले)*

शब्द मुँह से न निकाले। ब्रह्मचारी को दण्ड आदि धारण करते रहना चाहिए यदि नष्ट हो जावे तो उसे जलाशय में डाल देवे और अन्य नूतन धारण करे ।।१५।। साङ्ग वेद का गुरु से अध्ययन करके स्नान करना चाहिए अर्थात् समावर्तन करे और गुरु को दक्षिणा देवे। समावर्त्तन का तात्पर्य ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति कर गृहस्थ में प्रवेश करना है। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता है उसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए देह के अन्त तक गुरु के ही समीप में निवास करना चाहिए अर्थात् पूरे जीवन वहीं रहे ।।१६।।

५६—विवाह

विप्रश्चतस्रो विन्देत भार्यास्तिस्रस्तु भूमिपः ।
द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्यैकामपि चान्त्यजः ।।१
धर्मकार्याणि सर्वाणि न कार्याण्यसवर्णया ।
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ।।२
वैश्या प्रतोदमादद्याद्दशां वै चान्त्यजा तथा ।
सकृत्कन्या प्रदातव्या हरस्तां चौरदण्डभाक् ।।३
अपत्यविक्रयासक्ते निष्कृतिर्न विधीयते ।
कन्यादान शचीयोगो विवाहोऽथ चतुर्थिका ।।४
विवाहमेतत्कथितं नाम कर्मचतुष्टयम् ।
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।।५
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।
मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया ।।६
पूर्वात्रितयमाग्नेयं वायव्यं चोत्तरात्रयम् ।
रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ।।७
नैकगोत्रां वरयेन्नैकार्षेयां च भार्गव ।
पितृतः सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा ।।८
आहूय दानं ब्राह्मः स्यात्कुलशीलयुताय तु ।
पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्याप्रदानतः ।।९

अब विवाह के विषय में बतलाया जाता है। पुष्कर ने कहा—विप्र चार भार्याओं को प्राप्त कर सकता है अर्थात् ब्राह्मण सवर्णाभार्या के अतिरिक्त अन्य वर्णों की भार्या भी ग्रहण कर सकता है। क्षत्रिय इसी तरह तीन भार्या रख सकता है और वैश्य दो तथा अन्त्यज (शूद्र) एक ही अपने वर्ण की भार्या बना सकता है ॥ १ ॥ धर्म के समस्त कार्य असवर्णा भार्या के साथ नहीं करने चाहिए। सवर्णाओं में पाणि का ग्रहण करना चाहिए। क्षत्रिया भार्या शर को ग्रहण करती है ॥ २ ॥ वैश्या प्रतोद (पैना-चाबुक) का आदान करे तथा अन्त्यजा शूद्रा दशा का ग्रहण करे। कन्या का एक बार ही प्रदान करना चाहिए। उसका हरण करने वाला चोर के दण्ड का भागी होता है ॥ ३ ॥ सन्तति की दिक्रिया सक्त में किसी भी निष्कृति का विधान नहीं किया जाता है। कन्यादान–शचीयोग–विवाह और चतुर्थिका यह चार प्रकार के कर्म को विवाह कहा गया है। नष्ट हो जाने पर–मृत होने पर–छोड़कर कहीं निकल जाने पर संन्यास ग्रहण कर लेने पर—क्लीव (नपुंसक) हो जाने पर और पति के पतित होने पर इन पाँच प्रकार की आपत्ति के कालों में स्त्रियों के अन्य पति बनाने का विधान होता है। मृत पति के होजाने पर देवर (पति के छोटे भाई) को दे देनी चाहिए। यदि उसका अभाव हो तो जैसी भी इच्छा हो उसके अनुसार ही देना चाहिए ॥४-५-६॥ तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी–पूर्वाषाढ़ा–पूर्वाभाद्रपदा) आग्नेय–वायव्य—तीनों उत्तरा और रोहिणी चरण में यह भगण सर्वदा प्रशस्त माना जाता है ॥ ७ ॥ हे भार्गव ! एक गोत्र वाली और एक ऋषि वाली का कभी वरण नहीं करना चाहिए। पिता के गोत्र से सात पीढ़ी से ऊपर और माता के गोत्र से पाँच पीढ़ी से ऊपर वाले वर को बुलाकर दान करना अर्थात् कन्या का दान देना ब्राह्म विवाह कहा जाता है वर कुल और शील से समन्वित होना चाहिए। इस प्रकार के विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह कन्या के दान के माहात्म्य से पुरखाओं का उद्धार कर देता है ॥८-९॥

तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्ष उच्यते ।
प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृत् ॥१०

शुल्केन चाऽऽसुरो मन्दो गान्धर्वो वरणान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥११
वैवाहिकेऽन्हि कुर्वीत कुम्भकारमृदा शचीम् ।
जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यैः स्त्री गृहं नयेत् ॥१२
प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्य एव हि ।
पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ॥१३
न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहार्दिते ।
अर्कार्किभौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ॥१४
सौम्यं पित्र्यं च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा ।
उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभम् ॥१५
मानुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषाख्यांशकः शुभः ।
तृतीये च तथा षष्ठे दशमैकादशेऽष्टमेः ॥१६
अर्कार्किचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः ।
सप्तान्त्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ॥१७
तेषामपि तथा मध्यात्षष्ठः शुक्रो न शस्यते ।
वैवाहिके भे कर्तव्या तथैव च चतुर्थिका ॥१८
न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः ।
पर्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत्तया दत्ता सदा रतिः ॥१९

गौओं के जोड़े के प्रादान से जो विवाह किया जाता है वह पार्ष विवाह कहा जाता है। कन्या की प्रार्थना की जावे कि यह कन्या मुझे दे दीजिए तब जो विवाह किया जाता है वह प्राजापत्य विवाह होता है और वह धर्म के करने वाला होता है ॥ १० ॥ शुल्क (धन) देकर जो विवाह किया जाता है वह प्रासुर विवाह मन्द होता है। जो कन्या और वर दोनों अपनी इच्छा से एक दूसरे से रजामन्द होकर विवाह करते हैं वह गान्धर्व नामक विवाह कहा गया है। युद्ध करके कन्या का हरण किया जावे और उसमें विवाह किया जाता है वह राक्षस नाम वाला कहा जाता है। काम के वशीभूत होकर छल करके जो कन्या को लाकर विवाह होता है वह पैशाच विवाह

होता है। विवाह के निश्चित दिन में कुम्हार के यहाँ की मिट्टी से शची की रचना करनी चाहिए। उसका जलाशय में पूजन करके बाजे आदि के द्वारा स्त्री को घर में ले जाना चाहिए ॥११-१२॥ केशव भगवान् के प्रसुप्त हो जाने पर अर्थात् देवों की शयन हो जाने के पश्चात् विवाह नहीं करना चाहिए। पौष और चैत्र में मङ्गलवार के दिन में रिक्त इष्टि तिथि में भी विवाह नहीं करे ॥१३॥ शुक्र और गुरु के अस्त होजाने पर और चन्द्रमा के ग्रहों से अर्दित होने पर विवाह नहीं करना चाहिए। अर्काकि के भौम (मङ्गल) से युक्त नक्षत्र में और व्यतीपात से हत होने पर विवाह वर्जित है ॥१४॥ सौम्य-पित्र्य-वायव्य सावित्र-रोहिणी-तीनों उत्तरा-मूलमैत्र और पौष्ण ये विवाह करने के नक्षत्र होते हैं ॥१५॥ मानुष नामक लग्न और मानुषाख्य का अंशक शुभ होता है। तृतीय-षष्ठ-दशम-एकादश और अष्टम घर में अर्काकि चन्द्र तनय प्रशस्त है और आठवाँ मंगल शुभ नहीं होता है। सात-अन्त्य (द्वादश) अष्टम वर्गों में शेष ग्रहोत्तम प्रशस्त होते हैं ॥१६-१७॥ उनमें भी मध्य से छटा शुक्र प्रशस्त नहीं माना जाता है। इसी प्रकार से चतुर्थिका वैवाहिक नक्षत्र में करनी चाहिए ॥ १८ ॥ अनुराधा तथा एक घर में स्थित हों तभी कन्या नहीं देनी चाहिए अर्थात् विवाह नहीं करे। पर्व काल का त्याग करके स्त्री का गमन करे। उसके द्वारा दी हुई जो है उसमें सर्वदा रति होती है ॥१९॥

६० — आचारः

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय विष्ण्वादीन्देवतान्स्म (दिदेवताः स्म)रेत्।
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥१
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे संध्ये यथा दिवा।
न मार्गादौ जले वीथ्यां सतृणायां सदाऽऽचरेत्) ॥२
शौचं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥३
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्।
अस्नातस्याफलं कर्म प्रातः स्नानं चरेत्ततः ॥४

भुमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ।
ततोऽपि सारस पुण्य तस्मान्नादेयमुच्यते ॥५
तीर्थतोय ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः ।
सशोधितमलः पूर्वं निमग्नश्च जलाशये ॥६
उपस्पृश्य ततः कुर्यादम्भसः परिमार्जनम् ।
हिरण्यवर्णास्तिसृभि. श नो देवीति चाप्यथ ॥७
आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव ।
ततो जलाशये मग्नः कुर्यादन्तर्जलं जपम् ॥८

अब आचार के विषय मे वर्णन किया जाता है । पुष्कर ने कहा—ब्रह्म मुहूर्त मे शय्या से उठकर विष्णु आदि देवताओं का स्मरण करना चाहिए । मूत्र का त्याग और मल का त्याग दिन के समय में उत्तर दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए ॥ १ ॥ रात्रि के समय मे मल-मूत्र का त्याग दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे । जिस प्रकार दिन मे करे वैसे ही दोनों सन्ध्याओं के समय मे मल-मूत्र विसर्जन करे । मार्ग आदि में–जल में–गली मे और तृण युक्त स्थान मे कभी नही करना चाहिए ॥२॥ मिट्टी से शुद्धि करके आचमन (कुल्ली) करे और इसके पश्चात् दन्तधावन (दांतुन) करे । स्नान छै प्रकार का होता है—नित्य स्नान–(जो रोज एक नियम से किया जाता है) नैमित्तिक स्नान—(ग्रहणादि किसी भी हेतु के होने पर किया जाता है) काम्य स्नान (जो किसी विशेष कामना के मन मे रख कर किया जाता है) क्रियाङ्ग स्नान–(वह स्नान जो किसी भी कर्म के अङ्ग स्वरूप होता है) मलकर्षण स्नान–(वह स्नान जो केवल शरीर के मैल के छुड़ाने के लिए ही किया जाता है) क्रिया स्नान छटवां स्नान है । बिना स्नान किये हुए कर्म करने से कोई भी फल नही प्राप्त होता है अतः प्रातःकाल के समय मे अवश्य ही स्नान करना चाहिए ॥३-४॥ भूमि मे स्थित जल लाये हुए या खींच कर निकाले हुए जल से पवित्र होता है । इससे भी अधिक पवित्र तथा पुण्य जल झरने का होता है । इससे ज्यादा पुण्य जल सरोवर का है । सरोवर से अधिक पवित्र जल नदी का माना जाता है ॥ ५ ॥ साधारण नदी से भी अधिक पुण्य जल तीर्थ का कहा

गया है। गङ्गा का जल तो सभी से अधिक महत्त्व रखने वाला पवित्र एवं पुण्य माना गया है। पहिले शरीर के सब प्रकार के मलों से शुद्ध होकर फिर जलाशय में डुबकी लगाकर स्नान करना चाहिए ॥६॥ फिर उपस्पर्शन करके जल से परिमार्जन करे। "हिरण्यवर्णा" इन तीनों से तथा "शन्नो देवी" इत्यादि से और "आपोहिष्ठा" इत्यादि के तीन के द्वारा एवं "इदमापः" इसके द्वारा परिमार्जन करना चाहिए। इसके अनन्तर जलाशय में मग्न होकर अर्थात् डुबकी लगाकर जल के अन्दर जप करे ॥७-८॥

तत्राऽघमर्षणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत्।
युञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाऽप्यथ पौरुषम् ॥९
गायत्रीं तु विशेषेण अघमर्षणसूक्तके।
देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥१०
छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः।
आपीडमानः शाटीं तु देवतापितृतर्पणम् ॥११
पौरुषेण तु सूक्तेन दद्येच्चैवोदकाञ्जलिम्।
ततोऽग्निहवनं कुर्याद्दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥१२
ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम्।
आसनं शयनं यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ॥१३
आत्मनः शुचिरे (चीन्ये) तानि परेषां न शुचिर्भवेत्।
भाराक्रान्तस्य गुर्विण्याः पन्था देयो गुरुष्वपि ॥१४
न पश्येच्चार्कमुद्यन्तं नास्तं यान्तं न चाम्भसि।
नेक्षेन्नग्नां स्त्रियं कूपं शून्यस्थानमघोघिनम् ॥१५
कार्पासास्थि तथा भस्म नाऽऽक्रामेद्यच्च कुत्सितम्।
अन्तःपुरं वित्तगृहं परदौत्यं व्रजेन्न हि ॥१६

वहाँ पर अर्थात् जल के अन्दर गोता लिये हुए अघमर्षण सूक्त अथवा द्रुपदा का जप करे। युञ्जते मन" इस सूक्त को अथवा पुरुष सूक्त को जपे ॥९॥ गायत्री मन्त्र का अघमर्षण रूप से विशेष रूप से जाप करना चाहिए। देवता—भाववृत्त और ऋषि अघमर्षण होता है। उसका छन्द अनुष्टुप् है और

भाववृत्त हरि कहे गये हैं । साटी को आपीड़गान होता हुआ देवता और पितृगण का तर्पण करे ॥१०-११॥ पुरुष सूक्त के द्वारा जल की अञ्जलियों को देना चाहिए । इस सर्व कर्म–कलाप को सम्पादन करने के पश्चात् हवन करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार दान देवे ॥१२॥ इसके उपरान्त अपने योगक्षेम के लिये ईश्वर के सम्मुख उपस्थित हो जाना चाहिए । आसन–शयन–यान–जाया–अपत्य–कमण्डलु ये सब अपने शुचि होते हैं । दूसरों के शुचि नहीं होते हैं । कोई भार लेकर आरहा हो तथा कोई गर्भवती स्त्री आ रही हो और गुरु वर्ग मे से कोई भी आता हो तो मार्ग छोड़कर उन्हें जाने के लिये रास्ता दे देना चाहिए ॥१३-१४॥ कभी भी उगते हुए रक्त वर्ण की आभा वाले तथा अस्त होते हुए सूर्य का दर्शन नही करना चाहिए । इसी प्रकार से जल में जाते हुए सूर्य बिम्ब को भी नहीं देखना चाहिए । किसी समय स्नानादि करने के समय में नग्न हुई स्त्री को नही देखना चाहिए । कूप अर्थात् कुए को भी झुक कर नहीं देखे । शून्य स्थान और अपोधि को नहीं देखना चाहिए ॥ १५ ॥ कपास–अस्थि–भस्म और निन्दित वस्तु को कभी नहीं लाँघना चाहिए । अन्तःपुर (जनान खाना)–वित्तगृह और पर दौत्य में नही जाना चाहिए ॥१६॥

नाऽऽरोहेद्विपमां नाव न वृक्षं न च पर्वतम् ।
अर्थायतनशाज्नेपु तथैव स्यात्कुतूहली ॥१७
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति ।
मुखादिवादन नेहेद्विना दोपं न रात्रिगः ॥१८
नाद्वारेण विशेद्वेश्म न च वक्त्र विरागयेत् ।
कथाभङ्गं न कुर्वीत न च वासोविपर्ययम् ॥१९
भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्नानिष्टं कीर्तयेत्क्वचित् ।
पालाशमासन वर्ज्यं देवादिच्छायया व्रजेत् ॥२०
न मध्ये पूजयोर्यायानोच्छिष्टस्तारकादिदृक् ।
नद्यां नान्यां नदी ब्रूयान्न कण्डूयेद्वि हस्तकम् ॥२१
असंतर्प्य पितृन्देवान्नदीपारं च न व्रजेत् ।
मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥२२

नहीं करनी चाहिए। उनके साथ कृच्छ्रता में,प्रदेश में और वैद्य-राजा तथा नदी से हीन देश में तथा ऐसे देश में जहाँ म्लेच्छ हों और स्त्रियाँ ही हों एव बहुत से नायक हों निवास नहीं करना चाहिए ।।२४।।

रजस्वलादिपतितैर्न भाषेत्केशवं स्मरेत् ।
नासंवृतमुख कुर्याद्ग्रास जृम्भां तथा क्षुतम् ।।२५
प्रभोरप्यवमान च गोपयेद्वचनं बुधः ।
इन्द्रियाणा नानुकूली वेगरोध न कारयेत् ।।२६
नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्रिपुरल्पोऽपि भार्गव ।
रथ्यातिगः सदाऽऽचामेद्बिभृयान्नाग्निवारिणी ।।२७
न हुं कुर्याच्छिव पूज्य पादे नाऽऽक्रमेत् ।
प्रत्यक्ष वा परोक्ष वा कस्यचिन्नाप्रिय वदेत् ।।२८
वेदशास्त्रनरेन्द्रर्षिदेवनिन्दां विवर्जयेत् ।
स्त्रीणामीर्पा (र्ष्या) न कर्तव्या विश्वास तासु वर्जयेत् ।।२९
धर्मश्रुति देवरति कुर्याद्धर्मादि नित्यशः ।
सोमस्य पूजां जन्मर्क्षे विप्रदेवादिपूजनम् ।।३०
षष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा ।
दूराद् गृहान्नोपविशेन्नो त्तमैर्नो रमाच्चरेत् ।।३१

रजस्वला स्त्री आदि और पतितों के साथ कभी भाषण नही करना चाहिए। केशव का सर्वदा स्मरण करना चाहिए। असंवृत (खुला हुआ) मुख वाला होते हुए ग्रास–जँभाई और क्षुत् नही करना चाहिए ।।२५।। स्वामी का तथा अपना अपमान, वचन को छिपाना चाहिए। विद्वान् का कर्तव्य है। इन्द्रियों के अनुकूल चलने वाला नही रहना चाहिए। इन्द्रियों के वेग का अवरोध नहीं करना चाहिए ।।२६।। हे भार्गव ! अपने शरीर में होने वाली व्याधि की लापरवाही नहीं करे अर्थात् उसके हटाने का उपाय अवश्य करे और छोटे-से-छोटे शत्रु को भी उपेक्षित न करे अर्थात् चाहे शत्रु छोटा-मामूली भी क्यों न हो उसकी लापरवाही नही करे। रथ्या अर्थात् गली में गमन करने के पश्चात् सर्वदा आचमन करना चाहिए और अग्नि तथा जल का भरण न

करना चाहिए ।।२७।। 'हु'—इसका उच्चारण नहीं करे और शिव–पूज्यजन को चरण से आक्रान्त नहीं करे। प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से अर्थात् मुँह के सामने और पीठ पीछे भी किसी के प्रति अप्रिय वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।।२८।। वेद–शास्त्र–राजा–ऋषि–देवता की निन्दा नहीं करे। स्त्रियों के साथ ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए और उनमें विश्वास भी न करे ।।२९।। धर्मशास्त्र का श्रवण और देवताओं में रति करना चाहिए। धर्म कार्य नित्य ही करने चाहिए। जन्म के नक्षत्र में चन्द्रमा की पूजा तथा ब्राह्मण और देवता आदि की पूजन करे ।।३०।। छट–चौदस और अष्टमी को अभ्यङ्ग (तैल मर्दन) नहीं करना चाहिए। दूरी से गृहों में प्रवेश न करे और उत्तम पुरुषों के साथ वैर नहीं करना चाहिए ।।३१।।

६१—द्रव्यशुद्धि

द्रव्यशुद्धि प्रवक्ष्यामि पुनःपाकेन मृन्मयम् ।
शुध्येन्मूत्रपुरीषाद्यैः स्पृष्टं ताम्रं सुवर्णकम् ।।१
आवर्तितं चान्यथा तु वारिणाऽम्लेन ताम्रकम् ।
क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ।।२
अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।
शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च ।।३
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
उष्णाम्बुना सस्नेहानां शुद्धिः संमार्जनाद्गृहे ।।४
शोधनान्म्रक्षणाद्वस्त्रे मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम् ।
बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च तक्षणात् ।।५
प्रोक्षणात्संहतानां तु द्रवाणां च तथोत्प्लवात् ।
शयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ।।६
शुद्धिः संप्रोक्षणाज्ज्ञेया पलालेन्धनयोस्तथा ।
सिद्धार्थकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ।।७

गोवालैः पलपात्राणामस्थ्नां स्याच्छृङ्गवत्तथा ।
निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात् ॥८

पुष्कर ने कहा—अब मैं द्रव्य की शुद्धि को बतलाता हूं—जो पदार्थ मिट्टी के विरचित होते हैं वे यदि अशुद्ध हो जाते हैं तो उनकी शुद्धि दुबारा पका देने से हुआ करती है। मूत्र तथा मल से स्पर्श किया हुआ सुवर्ण एवं ताम्र अशुद्ध हो जावे तो उसको आवर्त्तित करने शुद्धि होती है। खटाई के साथ जल से ताम्र की शुद्धि भी होती है। क्षार से कांस और लोहे के पात्रों की तथा मोती आदि की केवल जल से धोने से होती है ॥१-२॥ कमलों की और पत्थर के बने हुए सबका तथा शाक–रज्जु–मूलफल और वैदलों की शुद्धि भी केवल जल से धो लेने से होती है ॥३॥ यज्ञ के पात्रों की शुद्धि हाथ से मांजने से यज्ञ कर्म के समय में होती है। जो चीकने पात्र होते हैं उनकी शुद्धि गर्म पानी से घर मे मांजने से ही हो जाती है ॥४॥ वस्त्र में शोधन तथा मृत्तिका से क्षालण करने से शुद्धि होती है। यदि बहुत से वस्त्र हों तो केवल प्रोक्षण करने से अर्थात् जल के छींटे मार देने से शुद्धि होती है। लकड़ी के पदार्थों की शुद्धि उनके तक्षण (छिलाई) कर देने से हो जाती है। अथवा प्रोक्षण से ही उसी समय होती है ॥५॥ जो बहुत से संहत अर्थात् एक ही ढेर में एकत्रित पदार्थ हो तो उनकी शुद्धि भी प्रोक्षण मात्र से हो जाती है। जो द्रव पदार्थ हों उनके उत्प्लवन करने से शुद्धि होती है। शयन–आसन और यानों की—सूप की और गाडी की शुद्धि भली भांति सम्प्रोक्षण से जान लेनी चाहिए। पलाल और ईंधन की शुद्धि भी इसी प्रकार से हुआ करती है। जो सिद्ध अन्न हो उनकी शुद्धि कल्क से तथा सींग और दांत के बने हुए पदार्थों की शुद्धि गौ के बालों से होती है। पलपात्रों की—अस्थियों की शृङ्ग के समान ही शुद्धि है। निर्यास (गोंद आदि की) गुड़—लवण की शुद्धि शोषण करने से होती है ॥६-७-८॥

कुसुम्भकुसुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ।
शुद्ध नदीगतं तोयं पण्यं तद्वत्प्रसारितम् ॥९

मुखवर्जं च गौः शुद्धा शुद्धमश्वाजयोर्मुखम् ।
नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखम् ॥१०
मुखैः प्रस्रवणे वृत्ते मृगयायां सदा शुचि ।
भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ॥११
रथ्यामाक्रम्य चाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च ।
मार्जारश्चङ्क्रमाच्छुद्धश्चतुर्थेऽन्हि रजस्वला ॥१२
स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१३
एकां लिंगे मृदं दद्यात्करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः ।
ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥१४
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ।
शुद्धिः पर्युक्ष्य तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्तिता ॥१५
पुष्पाणां च फलानां च प्रोक्षणाज्जलतोऽखिलम् ॥१६

कुसुम्भ के कुसुमों की तथा ऊन और कपास की शुद्धि शोषण से होती है। नदी में रहने वाला जल शुद्ध होता है। इसी भाँति बाजार में फैलाई हुई विक्रय की वस्तु भी शुद्ध होती हैं ॥६॥ मुख को छोड़कर गौ का समस्त शरीर शुद्ध होता है। अश्व और बकरी का मुख शुद्ध माना गया है। स्त्रियों का—शकुनिओं को और कुत्ते का मुख शुद्ध होता है ॥१०॥ मुखों के द्वारा प्रस्रवण होने पर शिकार में सर्वदा शुचि होता है। सोकर—जँभाई लेकर सोकर—जल पीकर और विगाहन करके—रथ्या (गली) का आक्रमण करके आचमन करना चाहिए तथा वस्त्र का विपरिधान करके भी आचमन करे। मार्जारी चक्रमण में और रजस्वला चौथे दिन स्नान से शुद्ध होती है ॥११-१२॥ स्नान की हुई अर्थात् रजस्वला धर्म के पश्चात् स्नान करने वाली स्त्री पाँचवें दिन में दैव और पितरों के कर्म करने के योग्य होती है। अपान में पाँच—एक में दश और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है। लिङ्ग में एक बार में ही लगा के और हाथों में तीन बार मिट्टी लगावे। ब्रह्मचारी—वानप्रस्थ और यतियों को चौगुनी बार मिट्टी लगानी चाहिए ॥१३-१४॥ अंशु पट्टों की शुद्धि

श्रीफनों से तथा क्षौम वस्त्रों की शुद्धि सफेद सरसों से होती है। मृग लोमो के वस्त्रों की शुद्धि जल से पर्युक्षण करके बताई गई है ॥१५॥ पुष्प और फलों की शुद्धि केवल जल से प्रोक्षण कर देने से होजाती है ॥१६॥

६२--शावाशौचादि ।

प्रेतशुद्धि प्रवक्ष्यामि सूतिकाशुद्धिमेव च ।
दशाह्नं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥१
जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम ।
द्वादशाह्लेन राजन्यः पक्षार्द्धं श्योऽथ मासतः ॥२
(* शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यं त्वशौचकम् ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु) ॥३
ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्य तथैव च ।
विट्शूद्रयोनिः शुद्धिः (द्धः) स्यात्क्रमात्परशुरामकः (?) ४
षड्रात्रेण त्रिरात्रेण षड्भिः शूद्रे तथा विशः ।
आ दन्तजनात्सद्य आ चूडान्तं शिकीश्रुतिः ॥५
त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ।
ऊनत्रैवार्षिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥६
द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये ॥
गतैः सवत्सरैः षड्भिः शुद्धिर्मासेन कीर्तिता ॥७
स्त्रीणातमतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
तथा च कृतचूडानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥८

अब शव से होने वाले आशौच आदि के विषय में कहते हैं। पुष्कर ने कहा—अब मैं प्रेत की शुद्धि तथा सूतिका की शुद्धि को बतलाता हूँ। जो सपिण्ड हों उनकी मृत्यु से होने वाली शुद्धि दश दिन में हो जाती है। सात पीढ़ी तक रहने वाले लोग सपिण्ड कहे जाते हैं। ॥१॥ हे भृगूत्तम ! इसी प्रकार से जनना शौच में भी ब्राह्मणों की दश दिन मे शुद्धि होती है किन्तु क्षत्रियों की बारह दिनों में और वैश्यों की पन्द्रह दिन मे एवं शूद्र की एक

मास में जनन तथा मरण दोनों में शुद्धि होती है। अनुलोम से जो दास हों उनकी स्वामी के तुल्य ही शुद्धि शास्त्र बताता है छै–तीन और एक दिन से क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र योनि में आशौच होता है ॥२।३॥ ब्राह्मण और इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र योनि की क्रम से पद शुरामक शुद्धि होती है ॥४। छै रात्रि–तीन रात्रि-छै से शूद्र तथा वैश्य को दाँत जब तक निकलें तब तक सद्यः शुद्धि हो जाती है और चूड़ाकर्म तक एक रात्रि को अशुचिता रहा करती है ॥५॥ जब तक व्रतवन्ध हो तब तक तीन रात्रि की अशुद्धि होती है और इससे ऊपर दशरात्रिमक आशौच रहता है। यह बालक के मृतकाशौच के विषय में बताया गया है। तीन वर्ष से कम शूद्र की पाच दिन में शुद्धि होती है और तीन वर्ष के ऊपर हो जाने पर बारह दिन में शुद्धि होती है। छै वर्ष के समाप्त हो जाने पर एक मास में शुद्धि बताई गई है ॥६।७॥ जिनका चूड़ा कर्म नहीं हुआ है उन स्त्रियों की विशुद्धि एक रात्रि में होती है। चूड़ाकर्म हो जाने वालियों के तीन दिन में बान्धव शुद्धि को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥८॥

विवाहितासु नाऽऽशौचं पितृपक्षे विधीयते ।
पितुर्गृहे प्रसूतानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥९
सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नोति नान्यथा ।
विवाहिता हि चेत्कन्या म्रियते पितृवेश्मनि ॥१०
तस्यास्त्रिरात्राच्छुध्यन्ति बान्धवा नात्र संशयः ।
समानं लघ्वशौच तु प्रथमेन समापयेत् ॥११
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ।
देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥१२
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।
अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥१३
—तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुध्यति ।
मातामहे तथाऽतीत आचार्ये च तथा मृते ॥१४

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशोधनम् ।
सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषत. ॥१५
दशरात्रेण शुद्धयन्ति द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ॥१६

जो विवाहित हों उनके विषय में पिता के पक्ष में आशौच नहीं होता है। पिता के घर मे प्रसूतों की विशुद्धि एक रात्रि में हो जाती है ॥९॥ सूतिका दशरात्रि मे शुद्धि को प्राप्त होती है अन्यथा शुद्धि नहीं होती है। विवाहित कन्या यदि पिता के घर में मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो उस आशौच से तीन रात्रि मे बान्धव गण शुद्ध हो जाते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है। समान लम्बा शौच तो प्रथम दिन में समाप्त कर देना चाहिए ॥१०।११॥ जो असमान हो वह धर्मराज के वचन के अनुसार दूसरे दिन में समाप्त कर देवे। यदि देशान्तर में स्थित हो और कुल के मरण एवं जनन का श्रवण करे तो दश रात्रि होने में जितना भी शेष समय रहे उतनी रात्रि तक आशौच रहा करता है। यदि दश रात्रि भी व्यतीत हो जावें तो केवल श्रवण के पश्चात् तीन रात्रि तक आशौच रहता है ॥१२।१३॥ एक वर्ष व्यतीत होने पर केवल स्नान कर लेने पर ही शुद्धि होती है। मातामह (नाना) तथा आचार्य के मृत हो जाने पर मासो के तुल्य रात्रियों में शुद्धि होती है। गर्भ स्राव मे जो विशोध होता है वह भी सपिण्ड ब्राह्मण और अन्य सभी वर्ण अविशेष रूप से दश रात्रि मे शुद्ध होते हैं—बारह दिन में क्षत्रिय-पन्द्रह दिन में वैश्य और एक मास में शूद्र हे भार्गव ! शुद्ध हुआ करते हैं ॥१४।१५।१६॥

उच्छिष्टसंनिधावेवं तथा पिण्डं निवेदयेत् ।
कीर्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ॥१७
भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु धनेन च ।
विसृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्तनैः ॥१८
चतुरंगुलविस्तारं तत्खातं तावदन्तरम् ।
वितस्तिदीर्घं कर्तव्यं विकर्षूणां तथा त्रयम् ॥१९

विकर्पूणां समीपे च ज्वालयेज्ज्वलनत्रयम् ।
सोमाय वन्हये रामयमाय च समामतः ॥२०
जुहुयादाहुतीः सम्यक्सर्वत्रैव चतुस्त्रयः ? ।
पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्प्राग्वदेव पृथक्पृथक् ॥२१
अन्नेन दध्ना मधुना तथा मांसेन पूरयेत् ।
मध्ये चेदधिमासः स्यात्कुर्यादभ्याधिकं तु तत् ॥२२
अथ वा द्वादशाहेन सर्वमेतत्समापयेत् ।
संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ॥२३
तदा द्वादशके श्राद्धे कार्यं तदधिकं भवेत् ।
सवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ॥२४

उच्छिष्ट की सन्निधि में इस प्रकार से पिण्ड का निवेदन करे और उसके नाम तथा गोत्र का समाहित होते हुए कीर्त्तन करना चाहिए ॥ १७ ॥ ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर और धन दान के द्वारा पूजा कर लेने पर अक्षत और जल के विसर्जन करने पर नाम तथा गोत्र के अनुकीर्त्तनों के द्वारा चार अगुल के विस्तार वाला गर्त्त करना चाहिए और एक वितस्त दीर्घ बनावे तथा विकर्षुओं के समीप में तीन की रचना करे और ती नहीं अग्नियों का ज्वालन करे। सोम-वह्नि और रामयम के लिए संक्षेप से सभी जगह भली-भाँति आहूतियाँ देवे। प्रथम की भाँति ही पृथक् पृथक् बार तीन पिण्डों का निर्वापण करे। अन्न-दधि-मधु तथा मांस से पूरित करना चाहिए। मध्य में यदि अधिमास हो तो अधिक वह करना चाहिए ॥ १८ । १९ । २० । २१ । २२ ॥ अथवा द्वादश के दिन के द्वारा ही यह सब समाप्त कर देना चाहिए। सम्वत्सर के बीच में यदि कोई अधिक मास हो तो द्वादशक श्राद्ध में वह अधिक करना चाहिए। सम्वत्सर के समाप्त होने पर श्राद्ध की भाँति ही श्राद्ध करना चाहिए ॥२३।२४॥

प्रेताय तत ऊर्ध्वं च तस्यैव पुरुषत्रये ।
पिण्डानिवनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ॥२५
संपूज्य दत्त्वा पृथिवी समाना इति चाप्यथ ।
योजयेत्प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ॥२६

प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् ।
पृथक्पृथक्प्रकर्तव्य कर्मैतत्कर्मपात्रके ॥२७
मन्त्रवर्जमिदं कर्म शूद्रस्य तु विधीयते ।
सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्यमेवं तदा भवेत् ॥२८
श्राद्धं कुर्याद् प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भान्नमब्दकम् ।
गङ्गायाः सिकता धारा यथा वर्षति वासवे ॥२९
शक्या गणयितु लोके न त्वतीता: पितामहाः ।
काले सततगस्थैर्यं नास्ति तस्मात्क्रियां चरेत् ॥३०
देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं लभेत ।
नोपकुर्यान्नरः शोचन्प्रेतस्याश्मन एव वा ॥३१
भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानां च नाऽऽशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये ॥३२

प्रेत के लिए और उसके ऊपर उसके ही तीन पुरुषों को पिण्डों का विनिर्वपन करे और इस प्रकार से समाहित होकर चार करने चाहिए ॥ २५ ॥ हे भार्गव ! भली-भाँति पूजा करके और देकर "पृथिवी समाना" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अन्य पिण्डो के साथ प्रेत के लिये दिये हुए पिण्ड को योजित करना चाहिए ॥२६॥ उसी प्रकार से पात्रों जो प्रेत का पात्र है उसको विनियोजित करे। कर्म पात्र मे यह कर्म अलग-अलग करना चाहिए ॥२७॥ यह कर्म मन्त्रो के द्वारा त्रिवर्णवालों को करना चाहिए। केवल शूद्र ही बिना मन्त्र के भी इसे कर सकता है। उसी समय में इस प्रकार से स्त्रियों का सपिण्डीकरण कार्य होता हैं ॥२८॥ प्रतिवर्ष श्राद्ध करना चाहिए और प्रेत में कुम्भों को सालाना देवे। जिस तरह इन्द्र के बरसने पर गङ्गा की सिकता की धारा होती है उसी भाँति शक्ति से पितामहों की जो कि अलीन हो चुके हैं गणना नही की जा सकती है। किसी भी समय निरन्तर होने वाले इस कर्म की स्थिरता नहीं होती है अतः इस क्रिया को बराबर करे ॥ २९ । ३० ॥ चाहे देवता के स्वरूप में हो अथवा नरक की यातना भोगने के स्थान मे हो प्रेत किये हुए श्राद्ध को प्राप्त किया करता है। अपने प्रेत के विषय में चिन्ता करते

मानव उपकार नहीं कर सकता है। ३१॥ भृगु-अग्नि-नाश और जल के द्वारा मृतों का—आत्मघात करने वालों का—पतित होजाने वालों का और बिजली या शस्त्र से हत होने वालों का आशौच नहीं होता है ॥३२॥

यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।
राजाज्ञाकारिणो ये च स्नायाद्वै प्रेतगाम्यपि ।॥३३
मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते ।
द्विजं न निर्हरेत्प्रेतं शूद्रेण तु कथचन ॥३४
न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते ।
अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात्स्वर्गलोकभाक् ॥३५
सङ्ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः ।
संकल्प्य वान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिम् ॥३६
परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्युः सर्वे सवाससः ।
प्रेताय च तथा दद्युस्त्रींस्त्रींश्चोदकाञ्जलीन् ॥३७
द्वार्यश्मनि पदं दत्त्वा प्रविशेयुस्तथा गृहम् ।
अक्षतान्निक्षिपेद्वन्हौ निम्बपत्रं विदश्य च ॥३८
—पृथक् शयीरन्भूमौ च क्रीतलब्धा (न्न) शना भवन् ।
एकः पिण्डो दशाहे तु श्मश्रुकर्मकरः शुचिः ॥३६
सिद्धार्थकैस्तिलैर्विद्वान्मज्जेद्वाससाऽपरं दधत् ।
अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भस्रुते तथा ॥४०
कार्या नैवाग्निसंस्कारा नच वास्योदकक्रिया ।
चतुर्थे च दिने कार्यस्तथाऽस्थ्नां चैव संचयः ॥४१
अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४२

यति-व्रती ब्रह्मचारी-नृप-कारुक-दीक्षित और राजा की आज्ञा का पालन करने वाले प्रेतगामी होने पर स्नान सबको करना चाहिए ॥ ३३ ॥ मैथुन करने पर और कटधूम में तुरन्त स्नान करना चाहिए। द्विजाति के प्रेत का शूद्र के द्वारा कभी भी निर्हरण नही करना चाहिए ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार से द्विज को भी शूद्र प्रेत का निर्हरण नहीं करना चाहिए। उन दोनों

को ही इस तरह करने से दोष होता होता है। जो प्रेत अनाथ हो उसके वहन करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥३५॥ अनाथ प्रेत के लिये लकड़ी देने वाला पुरुष संग्राम मे विजय प्राप्त किया करता है। जो प्रेत अपना बान्धव हो उसके लिये संकल्प करके अपसव्यता से चिता की परिक्रमा करे और फिर सबको वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। इसके उपरान्त सभी बान्धवों को प्रेत के लिये तीन-तीन जल की अञ्जलि देनी चाहिये ॥ ३६ ॥ ॥३७॥ प्रेत क्रिया करके जब वापिस लौटे तो द्वार पर पत्थर पर पैर रखकर घर में प्रवेश करे। अग्नि मे अक्षतों का क्षेप करना चाहिए और नीम के पत्ते चबाने चाहिएँ ॥ ३८ ॥ प्रेत कर्म करने वाले को भूमि में अलग शयन करना चाहिए और कुछ क्रय करके भोजन कर लेना चाहिए। दशवें दिन एक क्रिया वाला व्यक्ति श्मश्रु कर्म करके अर्थात् दाढ़ी-मूछ आदि सबका मुण्डन करने के पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥ विद्वान् पुरुष सिद्धार्थक तिलों से मज्जन करे और दूसरे वस्त्र धारण करे। जिसके दाँत न निकले हों ऐसे पुत्र का तथा गर्भस्राव मे एवं बहुत छोटे बच्चे का अग्नि संस्कार नहीं करे और जलाञ्जलिही देवे। चौथे दिन में अस्थियों का संचय करे। अस्थि संचय के बाद अङ्ग स्पर्श करना चाहिए ॥४०। ४१। ४२॥

६३ असंस्कृतादिशौचम्

संस्कृतस्यासस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः।
अस्थ्नां गङ्गाम्भसि क्षेपात्प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ॥१
गगातोये नरस्यास्थि यावत्तावद्दिवि स्थितिः।
आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ॥२
तेषामपि तथा गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितम्।
तेषां दत्तं जल चान्नं गगने तत्प्रलीयते ॥३
अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च।
नारायणबलिः कार्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ॥४

अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तव दत्तं न नश्यति ।
पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रं जनार्दनः ॥५
पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम् ।
दृष्ट्वा लोकान्म्रियमाणान्सहायं धर्ममाचरेत् ॥६
मृतोऽपि बान्धवः नानुगन्तुं नरं मृतम् ।
जायावर्ज हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥७
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचमगामिनम् ।
श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽपराह्णिकम् ॥८

अब जो असंस्कृत हैं उनके शौच के विषय मे बतलाया जाता है। पुष्कर ने कहा—भगवान् हरि के स्मरण करने मे चाहे कोई संस्कार किया हुआ हो या असंस्कृत हो सबका मोक्ष होता है और सब को स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है। गङ्गा के जल में अस्थि यों के डाल देने से जो मृत पुरुष है उसका अभ्युदय अर्थात् सद्गति होती है ॥ १ ॥ गङ्गा के जल मे जब तक मनुष्य की अस्थियाँ रहा करती हैं तब तक वह स्वर्ग में अपनी स्थिति रहता है। जो आत्म घाती हैं तथा पतित हैं उनकी ऐसी क्रिया नहीं होती है ॥ २ ॥ उनकी भी अस्थियों का भी गङ्गा जल में डाल देना हितकर ही होता है। ऐसे लोगों को दिया हुआ अन्न और जल आकाश में जाकर प्रलीन हो जाया करता है ॥ ३ । पतित प्रेत के ऊपर महान् अनुग्रह ही होगा अगर उसके लिये नारायण बलि का कर्म कर दिया जावे। ऐसे प्रेतों की भलाई के लिये नारायण बलि अवश्य ही करनी चाहिए। इससे वे अनुग्रह का भोग किया करते हैं ॥ ४ ॥ पुण्डरीकाक्ष भगवान् नारायण अक्षय हैं इसलिये यह आपको दिया हुआ कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है। पतन होने से रक्षा करते हैं इसी कारण से जनार्दन भगवान् पात्र हैं ॥ ५ ॥ पतन शील मानवों को मुक्ति-भुक्ति के प्रदान करने वाले एक मात्र हरि ही ध्रुव होते हैं। मरते हुए लोगों को देखकर सहायक धर्म का आचरण अवश्य ही करना चाहिए । ६ ॥ जो कोई मर गया उसके शोक में या सहायता के लिये कोई बान्धव मर भी जावे

अर्थात् अपने प्राण भी होम देने को प्रस्तुत हो तब भी मरे हुए का अनुगमन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। जाया को छोड़कर सबका याम्य मार्ग विभिन्न हो जाता है।। ७ ।। जहाँ कहीं भी गमन करने वाले मृत प्राणी के साथ एक धर्म ही जाता है। जो कार्य कल करने को है उसे आज ही कर डालना चाहिए। जो धार्मिक कार्य दोपहर बाद करना है उसे दोपहर के पहिले ही पूर्वाह्न में कर लेना चाहिए ॥ ८ ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥९
वृकीवारेणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥१०
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् ।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ॥११
कुशाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।
औषधानि न मन्त्राद्यास्त्रायन्ते मृत्युनाऽन्वितम् ॥१२
वत्सवत्प्राकृतं कर्म कर्तारं विन्दति ध्रुवम् ।
अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ॥१३
यौवनादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः ।
नवमन्यद्यथा वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकम् ॥
देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोकं ततस्त्यजेत् ॥१४

मृत्यु जब आने वाला होता है तो किसी की प्रतीक्षा नहीं किया करता है कि इसने धर्म के कृत्य को कर लिया है अथवा नहीं किया है। क्षेत्र, बाजार, घर में कामकाज में व्यस्त तथा अन्य किसी में मन लगाये रहने वाले मानव को भेड़िया के बार की भाँति आकर मृत्यु झट से उठा कर चला जाया करता है। मृत्यु को न तो कोई प्राणी प्रिय है और न कोई इसका शत्रु है। आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर यह प्राणी का जबर्दस्ती से हरण कर लिया करता है। चाहे सैकड़ों ही शर क्यों न लग कर विद्ध हो गया हो जिसका समय नहीं

आता है वह किसी भी प्रकार से नहीं मरता ।।६।।१०।। कुशा के अग्रभाग के स्पर्श होने मात्र से ही जिसका समय आ गया है प्राप्त काल वह फिर किसी भी उपाय से जीवित नहीं रहा करता है। जिसकी मृत्यु का निश्चित समय आ गया है वह बढ़िया-बढ़िया औषधों से तथा मन्त्र आदि अन्य उपायों से रक्षित नहीं रहा करते है ।। १२ ।। वत्स की भाँति प्राकृत कर्म करने वाले को भी निश्चय ही मृत्यु प्राप्त होता है। यह जगत् अव्यक्त आदि वाला, अव्यक्त मध्य वाला और अव्यक्त निधन वाला है ।। १३ ।। जिस प्रकार से इस शरीर में बचपन, यौवन और प्रौढ़ता तथा वृद्धता आदि अनेक अवस्थाएँ स्वयं ही आ जाया करती हैं। उसी तरह इस जीवात्मा को मृत्यु प्राप्त कर अन्य देह की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे कोई पुराना वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र धारण किया करता है ठीक वैसे ही मौत के द्वारा इस पुराने शरीर को छोड़कर यह प्राणी नया शरीर प्राप्त किया करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मरकर आत्मा का नाश नहीं होता है केवल इस चोला का परिवर्तन होता है। यह देही अर्थात् जीवात्मा तो सर्वदा अवध्य अर्थात् मरने मारने के अयोग्य होता है। इसी कारण से किसी की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए ।।१४।।

६४ वानप्रस्थाश्रमः

वानप्रस्थमतीनां च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु ।
जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याऽजिनधारणम् ।।१
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ।
प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिः स्नानं ब्रह्मचारिता ।।२
देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ।
गृही ह्यपत्यापत्यं च दृष्ट्वाऽरण्यं समाश्रयेत् ।।३
तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभार्यकः ।
ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।।४
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रं चरेद्बली ।
अपरावृत्तिमास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ५

पुष्कर ने कहा—अब मैं वान प्रस्थ वासियों के धर्म को बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण करो। जो वन मे जाकर निवास किया करते हैं उनको पालन करने के लिये बहुत-से आवश्यक धर्म होते हैं। उन्हें जटा धारण करना—नित्य अग्नि होत्र करना-भूमि पर ही शयन करना-धर्म के वस्त्र धारण करना—वन मे ही सदा निवास करना—दूध, मूल, नीवार और फल का भोजन करना-प्रतिग्रह (दान) न लेना-दिन मे तीन वार स्नान करना-ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना-देवता और अतिथियों का पूजा सत्कार करना इन समस्त नियमो का पालन करना वनवासी को आवश्यक है। जो गृहस्थाश्रम मे रहना है। उसको अपने पुत्र के पुत्र को देख कर अर्थात् नाती उत्पन्न हो जाने पर वन मे जाकर अपना आश्रय बना लेना चाहिए ।।१।।२।।३।। अपनी आयु के तीसरे भाग मे अकेला अथवा अपनी भार्या के साथ रहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि वानप्रस्थ आश्रम मे भार्या के साथ भी वन मे रह सकता है। ग्रीष्म ऋतु मे पांच अग्नि तपना चाहिए और नित्य ही तपना चाहिए। वर्षा ऋतु अभ्र (बादल) के नीचे अर्थात् बरसते हुए बादलों में रहना चाहिए ।। ४ ।। हेमन्त ऋतु मे गीले वस्त्र धारण करके उग्र तपश्चर्या करनी चाहिए। अयश वृत्ति मे स्थित होते हुए सीधे दिशाओं में गमन करने वाला रहे ।५।।

६५ धर्मशास्त्रकथनम्

मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्क्यो हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः ।
वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ।।१
आपस्तम्बोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती ।
गोतम शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ।।२
तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविध कर्म वैदिकम् ।।३
काम्यं कर्म प्रवृत्त स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकम् ।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च सयमः ।।४

देखना अर्थात् अपनी ही आत्मा के समान समझ लेना और समस्त प्राणी मात्र को अपनी आत्मा मे देखना, तात्पर्य यह है कि सबको सम भाव से ही देखना इस प्रकार से आत्मा का यजन करने वाला स्वाराज्य को प्राप्त किया करता है। वह सदा समान स्वरूप से आत्म ज्ञान मे रहता है और वेदों के अभ्यास मे यत्न करने वाला होता है ॥६॥७॥ यह द्विजन्मा की शक्ति विशेष रूप से ब्राह्मण की ही हुआ करती है। वह वेद और शास्त्र के तत्व का ज्ञाता जिस-जिस आश्रम मे भी रहता है वह यहाँ पर ही रहता हुआ ब्रह्मा के समान माना जाता है। श्रवण से युक्त श्रावणी में उपा कर्म करे और स्वाध्यायों का अर्थात् वेदों के अध्ययनों का चन्द्रवार से युक्त हस्त नक्षत्र में अथवा श्रावण मास की पञ्चमी तिथि मे—पौषमास की रोहिणी में—अथवा अष्टका में, जलान्त में बाहिर विधि के साथ छन्दों का उत्सर्ग करना चाहिए अर्थात् वेदों के अध्ययन की समाप्ति करे ॥८॥९॥१०॥

जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः।
त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ॥११
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा।
संध्यागर्जितनिर्घाते भूकम्पोल्कानिपातने ॥१२
समाप्य वेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च।
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ॥१३
ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च।
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः ।।१४
कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये।
श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकमासबाणर्तुनिस्वने ॥१५
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ।
अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसम्प्लवे ॥१६
भुक्त्वाऽर्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते।
पांशुवर्षे दिशां दाहे सध्यानीहारभीतिषु ॥१७

धावत: प्राणिवाधे च विशिष्ये गृहमागते ।
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे ॥
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदु: ॥१८

शिष्य ऋत्विग् और गुरु के प्रेत होने पर तीन दिन का वेदाध्ययन का अनध्याय होना चाहिए। उपाकर्म मे, उत्सर्ग मे, अपनी शाखा श्रोत्रिय में सन्ध्या समय गर्जित के निर्घात मे, भूकम्प और उल्का पात मे वेद के अध्ययन को समाप्त कर देवे। अनिश्च आरण्यक का अध्ययन करे। पूर्णिमा मे—चतुर्दशी मे, अष्टम मे, राहु ग्रहण के सूतक मे—ऋतुओ के सन्धिकालों मे तथा श्राद्धिक भोजन करके और दान ग्रहण करके अनध्याय करना चाहिए। पशु मैंढक नकुल (न्योला) कुत्ता, सर्प बिल्ली और शूकरो के द्वारा अन्तर होने पर एक अहोरात्र का अनध्याय होता है। शक्र बात मे तथा उच्छ्रय मे और कुत्ता, गीदड़, गधा, उल्लू साम, वाण और ऋतृ की ध्वनि होने पर तात्कालिक अर्थात् उसी समय मे होने वाली अनध्याय होती है ॥११ १२।१३।१४।१५॥ अपवित्र शव, शूद्र, अन्त्य श्मशान और पतित के समोप मे, अशुभ ताराओं मे तथा विद्युत् और स्तनित (मेघगर्जन) के संप्लव मे तात्कालिक अनध्याय है ॥१६॥ खाकर गीले हाथों के रहने वाले का, जल के भीतर रहने पर, अर्ध-रात्रि में अत्यन्त वायु के चलने पर, धूलि वर्षण होने पर, दिशाओं के दाह मे, सन्ध्या समय नीहार और भय में, धावन करने वाले का, प्राणि के वाध होने पर और किसी विशिष्ट पुरुष के घर में आने पर, गधा, ऊँट के यान पर गधा हाथी, घोड़ा, नाव और वृक्ष आदि के चढ़ने पर यु सैंतीस कुल अनध्याय तात्कालिक हुआ करती हैं ॥१७ १८॥

६६—श्राद्धकल्पकथनम्

श्राद्धं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रद शृणु ।
निमन्त्र्य विप्रान्पूर्वेद्यु: स्वागतेनापराह्णत: ॥१
प्राच्योंपवेशयेत्पीठे युग्मान्दैवेऽथ पित्र्यके ।
अयुग्मान्प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन्पित्र्ये चैकमेव वा ॥२

मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।
पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।।३
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवास इत्यृचा ।
यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।।४
शं नो देव्या पय: क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ।
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ।।५
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपकं ।
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ।।६
द्विगुणांस्तु कुशान्कृत्वा ह्य शन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ।
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः ।।७
यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ।
दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवान्शेषान्पात्रे कृत्वा विनतः ।।८

पुष्कर ने कहा–अब मैं श्राद्ध कल्प को बतलाता हूँ जो कि मुक्ति (सब तरह के सांसारिक सुखों का उपभोग करना) और मुक्ति (संसार में जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा पाकर परमात्मा के स्वरूप एवं समीप में पहुँच जाना) दोनों की प्राप्ति कराने वाला होता है। उसका तुम अब श्रवण करो। श्राद्ध के पहिले दिन में सुयोग्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सविधि निमन्त्रण देना चाहिए। जिस दि श्राद्ध हो उस दिन मे अपराह्न काल में अर्थात् दो पहर के बाद उन्हें बुलाकर ब्राह्मणों का भली भाँति स्वागत, सत्कार करना चाहिए। निमन्त्रित ब्राह्मणों की अर्चना करके उन्हें उच्चासन पर बिठाने। देव कार्य में युग्म (पूर्ण संख्या संयुक्त) और श्राद्ध अर्थात् पितृ कार्य में अयुग्म (अपूर्ण संख्या वाले अर्थात् १–३–५ आदि) ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए। पूर्व की ओर मुख करके देव कार्य में उन्हें बिठावे। पित्र्य कार्य मे तीन अथवा एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रण देवे ।।१।२।। इसी तरह से माता मह आदि के श्राद्ध में करें। अथवा वैश्व देविक तन्त्र को करे। हाथो को धुला कर विष्टर के लिये कुशाओं को रक्खें ।।३।। आज्ञा प्राप्त के "विश्वे देवास" इत्यादि ऋचा के द्वारा आवाहन करना चाहिए। सपवित्रक पात्र में जौ को अवकीर्ण करके

"शंनो देव्या पयः क्षिप्ता यवोऽसीति" इससे यवों को तथा "या दिव्या" इस मन्त्र से हस्त में अर्घ्यका विनिक्षेप करना चाहिए ॥४।५॥ जल, गन्ध, माला, धूपदान और प्रदीप ये सब देकर फिर अप सव्य करके पितरों की प्रदक्षिणा करे ॥६॥ कुशाग्रों को दुगनी करके "ह्य शन्त स्त्वेनु" इस ऋचा से पितृगणों का आवाहन करके फिर आज्ञा प्राप्त करे और जब अनुज्ञात हो जावे तो "अय-तु नः" इत्यादि का जप करना चाहिए ॥७। यवार्थ सब कार्य तिलों के द्वारा करने चाहिए और अर्घ्य–गन्ध माल्यादि का समर्पण सब पहिले की भाँति करना चाहिए। अर्घ्य देकर शेष सस्रवों को पात्र में विधि-विधान के साथ करना चाहिए ॥८॥

पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्र करोत्यधः ।
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ॥६
कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हुत्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् ।
हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ॥१०
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः ।
दत्त्वाऽन्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ॥११
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ।
सव्याहृतिकां गायत्रीं मधु वाता इति त्र्यृ (तृ) चम् ॥१२
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ।
अन्नामिष्टं हविष्यं च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकम् ॥१३
अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवान्नमस्य च ।
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥१४
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ॥१५
मातामहानामप्येवं दद्यादाचमन ततः ।
स्वस्तिवाच्य ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥१६

"पितृभ्यः स्थानमसि" इत्यादि मन्त्र से न्युब्ज पात्र को नीचे की ओर कर देवे। "अग्नौ करिष्ये" इससे घृतप्लुत अन्न को लेकर पूछना चाहिए।

"कुरुष्व"—अर्थात् करो–इस प्रकार से अनुज्ञात होते हुए पितृयज्ञ की तरह अग्नि में हवन करे। हवन करने से जो शेष रहे उसे पूर्ण तथा सावधान होते हुए पात्रों मे रख देना चाहिए ।।६-१०।। यथालाभ जोभी उस समय मे उपपन्न पात्र हों सकें उन्हे ले लेवे विशेष रूप से चाँदी के पात्र होने चाहिए। अन्न को देकर "पृथिवी पात्रम्' इस मन्त्र से पात्र का अभिमन्त्रण करे ।।११।। पात्र का अभिमन्त्रण करके 'इद विष्णु." इस मन्त्र से ब्राह्मण का अंगूठा अन्न मे निवेशित कराना चाहिए। व्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र और "मधुवाता" इत्यादि तीन ऋचाओं का जाप करना चाहिए ।।१२।। जप करने के पश्चात् सुख पूर्वक भोजन करे —ऐसा कहना चाहिए। वे ब्राह्मण भी मौन रहते हुए भोजन करें। इच्छित अन्न और हविष्य उन्हे देवे पवित्र जप करते हुए रहे ।।१३।। अन्न लेकर आप लोग तृप्त होगये हैं—ऐसा कहकर शेष जो अन्न है उसको लेकर भूमि में विकीर्ण कर देवे और एक-एक बार जल देवा चाहिए ।।१४।। सम्पूर्ण अन्न को लेकर तिलो के सहित दक्षिण दिशा की ओर मुख करते हुए जो ब्राह्मणों का उच्छिष्ट है उसके पास मे ही पितृ यज्ञ की भाँति पिण्डों को देना चाहिए ।।१५।। इसी तरह माता मह आदि (नाना आदि) को भी देवे और इसके उपरान्त आचमन करावे फिर स्वस्ति वाचन करे और अक्षय्य जल देवे ।।१६।।

दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यताम् ।।१७
कुर्यु रस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
प्रीयन्तामिति वा दैवं विश्वे देवा जल ददेत् ।।१८
दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा. संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देय च नोऽस्त्विति ।।१९
इत्युक्त्वा तु प्रिया वाच प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
वाजे वाज इति प्रीतपितृपूर्वं विसर्जनम् ।।२०
यस्मिस्तु सस्रवाः पूर्वमर्घपात्रे निपातिताः ।
पितृपात्रं तदुत्तान कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ।।२१

प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ।।२२
एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान्पितृन् ।
यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान्पिण्डान्यवैः क्रिया ।।२३
एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ।।२४

इस सब कृत्य कर लेने के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए तथा स्वधा–शब्द का उच्चारण करो। 'बोलो'—इस तरह से अनुज्ञा प्राप्त करके अपने पितृगण के लिये स्वधा बोलो ।।१७।। करना चाहिए–स्वधा–ऐसा कहने पर फिर भूमि मे जल का सिञ्चन करे। प्रीयन्ताम् अर्थात् तृप्त होइये—यह कहकर दैव को और विश्वेदेवाओं को जल देवे ।।१८।। हमारे दाता लोगों की अभिवृद्धि होवे वेद और सन्तति की वृद्धि होवे। आप लोगों की श्रद्धा का नाश न होवै, हमको देने के लिये आपके पास बहुत कुछ होवे ।।१९।। इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर प्रणाम करे "वाजे वाजे"—इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पितरों की प्रसन्नता के साथ उनका विसर्जन करना चाहिए ।।२।। पहिले जिस अर्घपात्र में संस्रवों को गिराया था उस पितृपात्र को उत्तान करके ब्राह्मणों को विदा करना चाहिए ।।२१।। प्रदक्षिणा करके कुछ दूर उनके पीछे जाकर उन्हे विसर्जित करे और फिर जो पितृगण द्वारा सेवित है उसे स्वयं खाना चाहिए। उस दिन रात्रि में ब्रह्मचारी रहे और ब्राह्मणों को भी जिन्होंने श्राद्ध का भोजन किया है ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए ।।२२।। इस प्रकार से वृद्धि मे नान्दी मुख पितरों को प्रदक्षिणा करके दही–कर्कन्धु मिश्रित पिण्डों की यवों के द्वारा क्रिया का यजन करना चाहिए ।।२३।। एकोद्दिष्ट दैव रहित एकार्घ एक पवित्र वाला तथा आवाहन और अग्निकरण रहित अपसव्य-वत् होना है ।।२४।।

उपातिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने पितृविसर्जने ।
अभिरम्यतामिति वदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ।।२५

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥२६
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह ॥२७
अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् ।
तस्याप्यान्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥२८
मृताहनि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सर ।
प्रतिसंवत्सर कार्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ॥२९
हविष्यान्नेन वै मास पायसेन तु वत्सरम् ॥३०
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते ।
तथा वर्षात्रयोदश्या मघासु च न संशयः ॥३१
कन्यां प्रजां बन्दिनश्च पशून्मुख्यान्सुतानपि ।
धृत कृषि च वाणिज्य द्विशफैकशफं तथा ॥३२
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥३३

"उपतिष्ठताम्"—इसको अक्षय्य स्थान में और पितृ विसर्जन में "अभिरम्यताम्"—यह कहे । उन ब्राह्मणों को "अभिरताः स्म"—यह कहना चाहिए ॥२५॥ गन्धोदन और तिलों से युक्त चार पात्रों को करे । अर्घ के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसेचन करना चाहिए ॥ २६ ॥ 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रों से करे और शेष समस्त कार्य पूर्व की ही भांति करे । यह सपिण्डीकरण स्त्री के साथ एकोद्दिष्ट है ॥२७॥ जिसका सपिण्डीकरण है वह संवत्सर से अर्वाक् होता है अर्थात् वर्ष से पूर्व ही होता है । इसको भी जल के कुम्भ के सहित अन्न देना चाहिए और सम्वत्सर तक ब्राह्मण को देवे ॥२८॥ मृत्यु के दिन में वर्ष भर तक हर एक मास में यह करे और मासिक श्राद्ध की भांति प्रति वर्ष भी इसी विधि को वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए ॥२९॥ मास में हविष्यान्न के द्वारा पितृगण को सतृप्त करे और पायस के द्वारा वार्षिक श्राद्ध में तृप्ति करे ॥३०॥ गया में स्थित होकर अर्थात् जाकर जो भी श्राद्ध में दिया

जाता है वह अनन्तता को प्राप्त होता है। वर्षा की त्रयोदशी में और मघा में करने से निश्चय ही आनन्त्य होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ श्राद्ध देने वाला पुरुष कन्या-प्रजा-वन्दीगण-पशु-मुख्य सुत-धृत-कृषि-वाणिज्य-दो एक और एक खुर वाले पशु—ब्रह्मवर्चसी पुत्र-सुवर्ण-चाँदी कुप्य सहित-अपनी ज्ञाति की श्रेष्ठता और समस्त मनोरथों का लाभ किया करता है।३२-३३॥

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ॥३४
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ।
पुत्रश्रैष्ठ्यं ससौभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ॥३५
प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान्वाणिज्यं प्रभुतां तथा ।
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥३६
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकम् ।
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥३७
कृत्तिकादिभरण्यन्ते स कामानाप्नुयादिमान् ।
वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥३८
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ्श्राद्धेन तर्पिताः ।
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥३९
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥४०

प्रतिपदा आदि में इनका त्याग कर दे। जो शस्त्र से हत हुए हैं उनका श्राद्ध चतुर्दशी को दिया जाता है। श्राद्ध करने का बहुत अधिक फल होता है। इसके करने से स्वर्ग—अपत्य (सन्तान) ओज-शूरता-क्षेत्र-बल-श्रेष्ठ पुत्र-सौभाग्य वाली सन्तति-प्रमुखता-बहुत से पुत्र-प्रवृत्तचक्रता-वाणिज्य-स्वामित्व रोग हीनता-यश-शोक का अभाव-परमगति धन-विद्या-भिषक् होने की सिद्धि-गौ-अजाविक-अश्व-आयु और विधि वश की प्राप्ति हुआ करती है। ये सभी वस्तुएँ श्राद्ध दे देता है ॥३४-३५ ३६-३७॥ कृत्तिका से आदि भरणी के अन्त तक में कामनाओं को प्राप्त करता है। वसु रुद्र अदिति पुत्र श्राद्ध देवता

पितर हैं। पितृ श्राद्ध से तर्पित होकर प्रसन्न होते और मनुष्यों को आयु-प्रजा-धन-विद्या-स्वर्ग-मोक्ष और सुख दिया करते हैं। पितामह प्रसन्न होकर मनुष्यों को राज्य भी देते हैं। ३८-३९-४०।।

६७—नाना धर्माः

ध्येय ग्रूर्तिमाः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ।
अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिः स्मृतीन्द्रियम् ।।१
श्राद्ध तु ध्यायिने देय गव्य दधि घृत पयः ।
प्रियंगवो मसूराश्च वार्ताकुः कोद्रवो न हि ।।२
संहिकेयो यदा सूर्य ग्रसते पर्वसधिषु ।
हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ।।३
पित्रे (त्र्ये) चैव यदा सोमो हसे चैव करे स्थिते ।
तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ।।४
अग्नौकरणशेष तु न दद्याद्वैश्वदेविके ।
अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ।।५
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ।
बलात्कारोपभुक्ता चेद्वैरिहस्तगताऽपि वा ।।६
सन्त्यजेद्दूषितां नारीमृतुकालेन शुध्यति ।
य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीय नात्र पश्यति ।।७
ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चाऽऽत्मरतोऽमलः ।
विषयेन्द्रियसयोगात्को चियोग वदन्ति वै ।।८

अब नाना धर्मों के विषय में बतलाया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा जो हृदय में दीपक की भाँति प्रभु आत्मा के स्वरूप में स्थित है उसी का ध्यान करना चाहिए और मन को तथा बुद्धि को एवं स्मृतीन्द्रियों को अनन्य विषय युक्त करके अर्थात् समस्त अन्य सांसारिक विषयों से हटाकर केवल एक ही प्रभु की ओर लगाते हुए ध्यान करना चाहिए ।।१।। श्राद्ध जो भी दिया जाता है वह ध्यायी के लिये ही दिया जाना चाहिए। श्राद्ध में गव्य-दधि-घृत और

दूध देना चाहिए। प्रियङ्गव–मसूर–वार्त्ताकु और कोदव नहीं देना चाहिए ॥२॥ सिंह राशि पर स्थित सूर्य जब पर्व रुन्वियों में ग्रसित होता है उसे हस्तिच्छाया कहते हैं। यह श्राद्ध दानादि में अक्षया मानी गई है ॥३॥ पितृ पक्ष में जब कर स्थित सूर्य में सोम हो और वैवस्वनी तिथि हो तो वह कुञ्जर छाया होती है ॥४॥ वैश्वदेविक में अग्नौकरण शेष नहीं देना चाहिए। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के दाहिने हाथ में देना चाहिए ॥५॥ स्त्री जार के द्वारा दूषित नही होती है तथा विप्र वेद कर्म से कभी दूषित नहीं होता है। यदि बलात्कार से स्त्री का उपभोग किया गया हो अथवा किसी वैरी के हाथ में स्त्री पड गई हो तो उस दूषित स्त्री का त्याग कर देवे। जब ऋतु काल उसको हो जावे तो फिर शुद्ध हो जाया करती है। जो अपने आपके अतिरिक्त दूसरे को नहीं देखना है वह इस संसार में ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप के समान योगी–प्रात्मरत और मल रहित होता है। कुछ विद्वान् विषयेंद्रिय के संयोग से योग को कहते हैं ॥६-७-८॥

अधर्मो धर्मबुद्धया तु गृहीतस्तैरपण्डितैः।
आत्मनो मनसश्चैव सयोगं च तथाऽपरे ॥९
वृत्तिहीन मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि।
एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः ॥१०
कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामैः प्रठस्तत्र महत्तरः।
देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते ॥११
बहिर्मुखानि (णि) सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै।
मनस्येवेन्द्रियग्राम मनश्चाऽऽत्मनि योजयेत् ॥१२
सर्वभावाविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत्।
एतज्ज्ञान च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥१३
यन्नाति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते।
कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ॥१४
स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि गृहं यथा ॥१५

संन्यसन्त द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डल भित्त्वा पर ब्रह्माधिगच्छति ॥१६

जो पण्डित नही है उनके द्वारा यह अधर्म भी धर्म की बुद्धि से ग्रहण किया गया है । दूसरे लोग आत्मा और मन के सयोग को कहते हैं ॥६॥ वृत्ति हीन मन को करके क्षेत्रज्ञ को परमात्मा मे एक करके बन्धन विमुक्त होजाना चाहिए । यह उत्तम योग होता है ॥१०॥ पाँच कुटुम्बियो से छूटा अधिक बड़ा ग्राम होता है । वह देव और असुरों के द्वारा भी जीता नहीं जा सकता है ॥ ११ ॥ जो इन्द्रियाँ बहिर्मुख होती हैं अर्थात् बाहिर सांसारिक विषयों के ग्रहण करने को जिन इन्द्रियो की प्रवृत्ति रहा करती है उन समस्त इन्द्रियों को अभिमुख अर्थात् अन्तर्मुख कर लेने अर्थात् मन में ही इन्द्रियों के समूह को लगा देवे और फिर उस मन को आत्मा मे योजित कर देना चाहिए ॥१२॥ सब प्रकार के भावो से छुटकारा पाये हुए क्षेत्रज्ञ को ब्रह्म मे न्यस्त कर देना चाहिए यह इतना ही ज्ञान है और यही ध्यान बताया गया है बाकी अन्य सब बातें तो केवल ग्रन्थो का फैलाव मात्र ही होता है । सार की बात तो वास्तव मे इतनी ही होती है ॥ १३ ॥ जो समस्त लोक का नही है अर्थात् जिसका सब लोक वाले अनुभव नही करते हैं यदि वह है—ऐसा कहा भी जाता है तो विरुद्ध सा प्रतीत होता है । अन्य के विषय मे कथन किया भी जावे तो वह किसी के भी हृदय मे स्थान नही प्राप्त किया करता है ॥ १४ ॥ वह ब्रह्म तो अपने आपके द्वारा ही अनुभव मे लाने के योग्य वस्तु है जिस प्रकार से कुमारी स्त्री के सुख का स्वयं ही अनुभव करती है । तात्पर्य यह है कि यह कहने की वस्तु नहीं है और न इसे बचनों से कोई ठीक-ठीक कह ही सकता है । जो योगी नहीं है उसे तो इसका ज्ञान ही नहीं होता है जिस तरह से जो जन्म से ही अन्धा है उस घर का ज्ञान नही हो सकता है क्योंकि उसे कभी घर देखकर उसे जानने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ है ॥ १५ ॥ सन्यसन्त ब्राह्मण को देखकर सूर्य अपने स्थान से डिगने लगता है । उसे भय हो जाता है कि यह मेरे मण्डल का भेदन करके परब्रह्म की प्राप्ति करेगा ॥१६॥

उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थं फलं तपः ।
द्विजसंपादन चैव संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥१७
एकाक्षरं पर ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु पर नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ।.१८
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः ।
भुञ्जते मानुषा पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ॥१९
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ।
अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्य न मुञ्चति ॥२०
निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुध्यते ततः ।
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥२१
श्वपाकेनापि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुध्यति ।
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णु फलं हरिः ॥२२

जिस ब्राह्मण ने अपने कर्त्तव्य कर्म का पूर्ण पालन किया है उसने उपवास–व्रत–स्नान–तीर्थफल–तप इन सभी के फल की प्राप्ति करली है। एकाक्षर अर्थात् प्रणव परमब्रह्म है और प्राणायाम परम तप होता है तथा ब्राह्मण के लिये सावित्री से अधिक परम पावन अन्य कुछ भी नहीं है। गायत्री मन्त्र पवित्र बनाने में सर्वोत्तम एवं सर्व शिरोमणि माना गया है ॥१७-१८॥ पहिले स्त्रियों का उपभोग देवों द्वारा किया गया है जिनमें सोम–गन्धर्व और वह्नि हैं। इसके पश्चात् मनुष्य स्त्रियों को भोगते हैं। अतएव ये दूषित किसी के द्वारा भी नहीं हुआ करती हैं ॥१९॥ यदि किसी असवर्ण पुरुष के द्वारा स्त्रियों की योनि में गर्भ डाल दिया जावे तो वह स्त्री अशुद्ध हो जाती है किन्तु उसकी अशुद्धि तभी तक रहा करती है जब तक वह उदर स्थित गर्भ को त्यागती नहीं है ॥२०॥ जब उसके गर्भ से बालक निकल आवे तो फिर वह जब रजोधर्म हो तब शुद्ध हो जाती है। ध्यान से अधिक पाप कर्मों का अन्य कोई भी शोधन करने वाला कार्य नहीं है ॥२१॥ श्वपाक (मेहतर) के साथ भी खाने वाला मनुष्य ध्यान करने से शुद्ध हो जाता है। आत्मा तो ध्याता अर्थात् ध्यान करने

वाला है, मन ही ध्यान होता है, ध्यान करने के योग्य भगवान् विष्णु हैं और इसका फल हरि हैं ॥२२॥

अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः ।
आरूढो नैष्ठिक धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ॥२३
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा ।
ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां बीजसंततिः ॥२४
विदुरा नाम चण्डाला जायन्ते नात्र संशयः ।
शतिको म्रियते गृध्रः श्वासी द्वादशिकस्तथा ॥२५
चापो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा ।
अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥२६
ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः ।
ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥२७
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः ।
प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥
योगेनेव निषेवेत नान्य मन्त्रमघापहम् ॥२८

श्राद्ध में यति अक्षय के लिये होता है क्योंकि वह पङ्क्ति पावन होता है । जो द्विज नैष्ठिक धर्म पर तो आरूढ हो किन्तु फिर वह उस धर्म से च्युत हो जावे तो उसका बड़ा भारी पाप होता है । ऐसे आत्म हत्यारे का कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं होता है जिसके करने पर वह नैष्ठिक धर्म के पतन पाप से छुटकारा पा सके और जो प्रव्रजित होगये हैं अर्थात् संन्यास ग्रहण कर चुके हैं और फिर पत्नी में जो बीज सन्तति उत्पन्न कर देते है वे विदुर नाम वाले चाण्डाल ही उत्पन्न हुआ करते है । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । शतिक गृध्र मरता है अर्थात् सौ वर्ष तक गृध्र होकर मृत्यु को प्राप्त होता है, बारह वर्ष तक कुत्ता होकर मरता है । चाप बीस वर्ष तक और शूकर दश वर्ष तक रह कर मरता है । जो वृक्ष बिना फूल वाला है और बिना फलों वाला है केवल काँटे ही उसमें हों—ऐसा वृक्ष बनकर उत्पन्न होता है अर्थात् ऊपर कही हुई योनियों में जन्म लेकर अन्त में वह कण्टक वाला जड़ वृक्ष होता है । वह भी

दावाग्नि से जलकर मनुजों के सहित स्थाणु (ठूँठ) हो जाता है। इस तरह एक सहस्र वर्ष तक वह इस अचेतन दशा में जीवन बिताया करता है। फिर जब पूरे एक हजार वर्ष हो जाते हैं तब फिर अन्त में ब्रह्म राक्षस होता है। जब प्लव होता है तभी मोक्ष प्राप्त करता है अथवा कुल के उत्सादन होने से छुटकारा होता है। अतः योग का सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी पापों का हरण करने वाला नहीं है ॥२३ से २८॥

६८—वर्णधर्मादिकथनम्

वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतम्।
वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ॥१
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु।
यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः सविधीयते ॥२
उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा।
उभयेन निमित्तेन यो विधिः संप्रवर्तते ॥३
नैमित्तिकः स विज्ञेय प्रायश्चित्ताविधिर्यथा।
ब्रह्मचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ॥४
उक्त आश्रमधर्मस्तु धर्मः स्यात्पञ्चधाऽपरः।
षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः ॥५
स त्रेधा मन्त्रयागाद्यदृष्टार्थं इति मानवाः।
उभयार्थो व्यवहारो दण्डधारणमेव च ॥६
तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद्यागमूलः प्रकीर्तितः।
वेदे तु विहितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव च ॥७
अनुवाद स्मृतिः सूते कार्यार्थमिति मानवाः।
गुणार्थः परिसंख्यार्थो वाऽनुवादो विशेषतः ॥८

अब वर्ण धर्म आदि के विषय में बतलाया जाता है। पुष्कर ने कहा—अब मैं वैदिक और स्मार्त धर्म को बतलाऊँगा जो कि पाँच प्रकार का बताया गया है। एक वर्ण का आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है वह वर्ण धर्म

जानना चाहिए । जिस प्रकार से तीन वर्णों में उपनयन संस्कार होता है । जो किसी भी आश्रम का आश्रय ग्रहण करके जिस पदार्थ का विधान किया जाता है वह आश्रम कर्म कहा गया है जिस प्रकार से भिक्ष विएड आदि होता है । वर्ण और आश्रम दोनों निमित्तों से जिस विधि की प्रवृत्ति होती है वह नैमित्तिक धर्म कहा जाता है । जिस तरह प्रायश्चित्त की विधि होती है । हे नृप ! ब्रह्मचारी–गृही–वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम हैं ॥१-२-३-४॥ इस प्रकार से आश्रमों का धर्म तो बता दिया गया है अब दूसरा पाँच प्रकार का धर्म होता है उसे कहते हैं । षाड्गुण्य के अभिधान में जो दृष्टार्थ है वह उदाहृत कर दिया गया है ॥५॥ वह मन्त्रयागादि अदृष्टार्थ इस प्रकार से तीन प्रकार का होता है । ये मानव है । जो उभयार्थ है वह व्यवहार और दण्ड धारण ही है ॥६॥ जो तुल्यार्थ हैं उनका विकल्प होता है और वह याग मूल वाला कहा गया है वेद में धर्म को विदित किया गया है और स्मृति में वैसा ही होता है ॥७॥ अनुवाद को ही स्मृति कहते हैं अर्थात् जो वेद ने धर्म का विधान बताया है उसी का लौकिक संस्कृत मे अनुवाद स्मृतियो ने किया है । सूत के विषय मे कार्य के लिये है यह मानव हैं । गुणार्थ अथवा परिसंख्या के लिये विशेष रूप से अनुवाद किया गया हे ॥८॥

विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थ इति मानवाः ।
स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥६
गर्भाधान पुंसवनं सीमन्तोन्नयन ततः ।
जातकर्म नाम कृतिरन्नप्राशनचूडकम् ॥१०
संस्कारश्चोपनयन वेदव्रतचतुष्टयम् ।
स्नानं स्वधर्मचारिण्याः योगः स्याद्यज्ञपञ्चकम् ॥११
देवयज्ञः पितृयज्ञोत मनुष्यभूतयज्ञकौ ।
ब्रह्मयज्ञः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः पुरोष्टकाः ॥१२
पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि ।
आश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः ॥१३

अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शः स्यात्पौर्णमासकः ।
चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः ॥१४

मनु आदि कहते हैं कि यह विशेष इष्ट ही फलार्थ है। अब चालीस संस्कारों के द्वारा ब्रह्मलोक में गमन करने वाला है ॥६॥ उन संस्कारों को बतलाया जाता है—गर्भाधान–पुंसवन–सीमन्तोन्नयन–जात कर्म–नामकरण–अन्न प्राशन–चूड़ाकर्म–उपनयन–वेदारम्भ–समापवर्त्तन–गार्हस्थ्य अर्थात् अपनी धर्मचारिणी पत्नी के साथ योग करना—(विवाह) इसके पश्चात् पञ्चयज्ञ होते हैं—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, भूत यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—सात पाक यज्ञ संस्था हैं—पुरोष्टक, पार्वण श्राद्ध, श्रावणी आग्रहायणी–चैत्री, आश्व युजी। इनके पश्चात् सात हविर्यज्ञ संस्था बताई गई हैं ॥६ से १३॥ अग्न्याधेय–अग्नि होत्र–दर्श–पौर्णमस–चतुर्मास्य–आग्रहायणेष्टि–निरूढ़–पशुबन्धक ॥१४॥

सौत्रामणि सप्तसोमसंस्थाऽग्निष्टोम आदितः ।
अत्यग्निष्टोम उक्थश्च षोडशी वाजपेयकः ॥१५
अतिरात्रोऽप्तोर्यामो ह्यष्टौ चाऽऽत्मगुणास्ततः ।
दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलम् ॥१६
अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स पर व्रजेत् ।
प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ॥१७
स्नानभोजनकाले च षटसु मौन समाचरेत् ।
पुनर्दानं पृथक्पाक सामिष पयसाऽन्वितम् ॥१८
दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त शत्रुषु वर्जयेत् ।
स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयाद्देवायोग्यं तदीरितम् ॥१९
अन्यगोत्रोऽप्यसंवद्धः प्रेतस्याग्नि ददाति यः ।
पिण्डंचोदक दानं च स दशाहं समापयेत् ॥२०
उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च ।
एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥२१
पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठयोगतः ॥२२

अग्निष्टोम आदि से सौत्रामणि सात सोम संस्थायें हैं। अत्यग्निष्टोम-उक्थ्य-षोडशी-वाजपेयक-अतिरात्र-आप्त-याम। इसके अनन्तर फिर आठ आत्म गुण होते हैं। उनके नाम बताये जाते हैं—दया, क्षमा, अनसूया (किसी की निन्दा या बुराई न करना) अनायास (अधिक श्रम न करना) मङ्गल-अकार्पण्य (अत्यन्त कँजूसी न करना—अस्पृहा और शौच। जिसके अन्दर ये गुण होते हैं वह परमगति को प्राप्त होता है। प्रचार में—मैथुन के समय में—प्रस्राव करने में—दाँतुन करने के समय में—स्नान में—भोजन करने के समय में इन छै कर्मों के करने में मौन रहना चाहिए। पुनर्दान-पृथक्पाक सामिष और पथ से अन्वित-दन्त छेदन-उष्ण ये सात शत्रुओं के विषय में वर्जित करने चाहिए। स्नान करके पुष्पों का ग्रहण न करे। वह देवता के अयोग्य कहा गया है। जो अन्य गोत्र का हो और कोई सम्बन्ध न रखता हो वह प्रेत को अग्नि देवे तो उसे पिण्ड और जलदान दश दिन में समाप्त कर देना चाहिए। जल-तृण-भस्म-द्वार-पन्था इनसे अन्तरित कर देने पर पंक्ति दोष नहीं रहा करता है। अनामांगुष्ठयोग से पाँच प्राणाहुतियाँ देनी चाहिए ॥१४ से २२॥

६६—प्रायश्चित्तानि

एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते ।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥१
भिक्षेताऽऽत्मविशुद्धयर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्रिरवाक्शिराः ॥२
यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥३
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम् ॥४
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबे त् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥५

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥६
दिवाऽनुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
वृषभैकादश गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः ॥७
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ।
पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥८
योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ।
कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ॥९
यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते ।
घण्टाभरणदोषेण तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ॥१०

पुष्कर ने कहा—जो ये बहुत से पाप हुआ करते हैं उनके प्रायश्चित्त अब मैं बतलाता हूँ उन्हें सुनो—जो ब्रह्महा हो अर्थात् जिसने किसी ब्राह्मण का हनन किया हो उसे बारह वर्ष तक वन में कुटी बनाकर निवास करना चाहिए ॥१॥ शव का शिरोध्वज लगाकर आत्मा की विशुद्धि के लिए भिक्षा करनी चाहिए । अपने आप को प्रास्य करे अथवा अवाक् शिर वाला होकर तीन बार अग्नि में समिद्ध करना चाहिए ॥२॥ अथवा अश्वमेध के द्वारा यजन करे या स्वर्जित गोसवन के द्वारा यजन करना चाहिए। अथवा अन्य तम अर्थात् चारों वेदों में से किसी भी एक का जाप (पाठ) करते हुए सौ योजन तक जाना चाहिए। चार कोस का एक योजन होता है ॥ ३ ॥ किम्बा किसी भी वेद के ज्ञाता ब्राह्मण के लिये अपना सर्वस्व (सभी कुछ) उपपादन कर देवे । इन व्रत-नियमों का पालन करने से महान् पातक करने वाले भी मनुष्य पाप के मल को दूर कर दिया करते हैं ॥ ४ ॥ जो उपपातक से संयुक्त हो और गौ का हनन करने वाला हो उसे एक मास तक यवों का पान करना चाहिए । कृतवाप होकर उस चर्म से संयुक्त होते हुए गोष्ठ में ही वास करना चाहिए । ॥५॥ चौथे काल में मित बिना क्षार और लवण का पदार्थ खावे । दो मास तक नियत इन्द्रियों वाला होकर गो मूत्र से ही स्नान करना चाहिए ॥६॥ दिन में गायों के पीछे जाना चाहिए और ऊपरी भाग पर स्थित

होते हुए रज का पान करे । विचरित व्रत वाला होकर वृषभ और एकादश गौओं का दान करना चाहिए ॥७॥ अविद्यमान होने पर : वेद के ज्ञाताओं को सर्वस्व निवेदन कर देना चाहिए । एक पाद रोध में चरण करे और दो पाद वन्धन में चले । योजन मे याद हीन चरण करे । निपातन में चरण करे । जगलों में दुर्गों में–विषम स्थलो में–भयद स्थानों में चरण करे ॥ ८ ॥ ॥६॥ यदि वहा पर विपत्ति हो तो एक पाद का विधान किया जाता है । घण्टाभरण दोष से उसी प्रकार से आधे का विनिर्देश करे ॥१०॥

दमने दामने रोधे शकटस्य नियोजने ।
स्तम्भशृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ॥११
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा ।
यावकं तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गौर्भवेत् ॥१२
गोमती च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत् ।
एका चेद्वहुभिर्देवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ॥१३
पादं पादं तु हत्याया श्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ।
उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥१४
एतदेव व्रतं कुर्यु रुपपातकिनस्तथा ।
अवकीर्णी च शुद्धयर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥१५
अवकीर्णी तु कालेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥१६
कृत्वाऽग्निं विधिवद्धीमानन्ततस्तु समित्यृचा ।
चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतिम् ॥१७
अथ वा गार्दभं चर्म वसित्वाऽब्दं चरेन्महीम् ।
हत्वा गर्भमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१८
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥१९
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥२०

७० सर्वपापप्रायश्चित्तानि

परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा ।
प्रवर्तते नृणां चित्त प्रायश्चित्त स्तुतिस्तदा ॥१
विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम् ॥२
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।
विष्णुमीड्यमशेषेण ह्यनादिनिधनं विभुम् ॥३
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् ।
यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥४
करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत्पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥५
ध्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् ।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥६
जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः ।
हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥७
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज ।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥८

अब समस्त प्रकार के पापों के प्रायश्चित्तों के विषय में बतलाते हैं। पुष्कर ने कहा— पराई स्त्री, पराया धन और जीव-हिंसा आदि के पाप जब हो जावें तो मनुष्यों के चित्त की शुद्धि का प्रायश्चित स्तुति होता है ॥१॥ "विष्णवे विष्णवे विष्णवे नित्य नमः"—यह कहे अर्थात् भगवान् विष्णु के लिए मेरा नित्य ही नमस्कार है। चित्त में स्थित विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ और महङ्कार में रहने वाले हरि को प्रणाम करता हूँ। चित्त मे स्थित ईश को जो अव्यक्त हैं, अनन्त हैं और अपराजित हैं उनको मेरा नमस्कार है। पूर्णतया पूजा करने के योग्य विष्णु को नमस्कार करता हूँ। अनादि निधन और विभु अर्थात् व्यापक भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥२।३॥ भगवान् विष्णु मेरे चित्त

में रहने वाले हैं तथा मेरी बुद्धि में भी गत हैं, जो विष्णु मेरे ग्रहङ्कार में रहने वाले है और जो विष्णु मेरी ग्रात्मा में विराजमान हैं। यह कर्म भून स्थावर और जङ्गम के हैं वहीं करते हैं। वह पाप नाश को प्राप्त हो जावे जबकि उनका चिन्तन किया जावे ॥४.५॥ वह भगवान् विष्णु ध्यान किये जाने पर पाप का हरण किया करते हैं। स्वप्न मे भी देखे जाने पर भावना मात्र से वे पाप को दूर कर देते हैं। उन उपेन्द्र विष्णु को जो प्रणतों के दुःख को दूर करने वाले हैं ऐसे हरि को मैं प्रणाम करता हूं ॥६॥ इस निराधार जगत् में जो कि नीचे ग्रन्धकार में डूब रहा है, हाथ का ग्रवलम्बन स्वरूप परात्पर विष्णु हैं उनको मैं प्रणाम करता हूं ॥७॥ हे सब ईश्वरों के भी ईश्वर ! हे विभो !, हे परमात्मन् ! हे ग्रधोक्षज ! हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये बारम्बार नमस्कार है॥ ८॥

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तु ते ॥९
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना ।
ग्रकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥१०
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥११
यथाऽपराह्ने सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥१२
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥१३
शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥१४
यद्भुञ्जन्यत्स्वपंस्तिष्ठन्गच्छञ्जाग्रद्यदा स्थितः ।
कृतवान्पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥१५
यत्स्वल्पमपि यत्स्थूलं कुयोनिनरकावहम् ।
तद्यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥१६

हे नृसिंह ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे केशव ! जो भी मेरी दोषयुक्त उक्ति हो या कोई पाप हो, ध्यान किये गये आप उस पाप को शान्त कर देवें, आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।६।। जो भी कुछ मैंने अपने चित्त के वशवर्त्ती होकर किसी भी दोष के विषय मे विचार किया है जो कि मुझे नहीं करना चाहिये था और जो बहुत ही अधिक उग्र है, हे केशव ! उसका आप शमन कर दीजिये ।।१०।। हे ब्रह्मण्यदेव ! हे गोविन्द ! हे परमार्थ परायण ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत् के धाता ! हे अच्युत ! मेरे पाप का प्रशमन कर दो ।।११।। जो भी अपराह्न में अर्थात् दोपहर बाद के समय में, सन्ध्या के समय मे, मध्याह्न मे तथा रात्रि में शरीर-मन और वाणी से न जानते हुए पाप किया है और जो जानते हुए पाप मुझसे बन गया है, हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव ! आज उस समस्त पाप का प्रशमन कर देवें। आपके शुभ नाम के उच्चारण से मेरा सारा पाप क्षय को प्राप्त हो जावे ।।१२।। ।।१३।। हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव ! आप मेरी वाणी से किये हुए पाप का नाश कर देवें ।।१४।। मैंने खाते हुए, सोते हुए, खड़े होते हुए, जाते हुए और जागते हुए तथा स्थित होकर जो भी पाप किया है तथा शरीर, मन और वाणी से पाप किया है, चाहे वह थोड़ा हो या बहुत बड़ा पाप हो और बुरी योनि तथा नरक में जाने लायक हो वह सभी भगवान् वासुदेव के कीर्तन से आज प्रशम को प्राप्त हो जावे ।।१५।१६।।

पर ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् ।
तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पाप तत्प्रणश्यतु ।।१७
यत्प्राप्य न निवर्तते गन्धस्पर्शादिवर्जितम् ।
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं शमयत्वघम् ।।१८
पापप्रणाशन स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।
शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ।।१९
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् ।
तस्मात्पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ।।२०
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम् ।

प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ।
ततः कार्याणि संसिद्धयै तानि वै भुक्तिमुक्तये ॥२१

परम ब्रह्म, परमधाम, पवित्र और परम जो प्रभु हैं उन भगवान् विष्णु के प्रकृष्ट रूप से कीर्तन करने पर वह सभी पाप नष्ट हो जावे ॥१७॥ जो धाम गन्ध और स्पर्श आदि से रहित है और जिसको यह प्राणी एक बार प्राप्त करके फिर नहीं वापिस लौटता है, विद्वान् लोग उसे ही विष्णु का धाम कहा करते हैं। वह हमारे समस्त पापों का शमन करे ॥१८॥ यह पापों के प्रणाश करने वाला स्तोत्र है। इस स्तोत्र को जो भी कोई पढ़ता है या श्रवण किया करता है वह शरीर से होने वाले, मानस और वाणी जन्य पापों से निश्चय ही मुक्त हो जाता है ॥१९॥ समस्त पाप और ग्रह आदि से प्रमुक्त होकर भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाता है। इसलिये पाप के करने पर इस अघ-मर्दन स्तोत्र का जप करना चाहिये ॥२०॥ पापों के समूहों का प्रायश्चित्त यह स्तोत्र है जो व्रतादि से भी श्रेष्ठ है। प्रायश्चित्तों से, स्तोत्र जप से, पातकों से मुक्त होता है और व्रतों से भी पाप नाश हो जाता है। भुक्ति और मुक्ति के लिये और संसिद्धि के वास्ते इन सबको अवश्य ही करना चाहिये ॥२१॥

७१—व्रतपरिभाषा

तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्कसंक्रमे ।
नृस्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वसिष्ठ शृणु तत्क्रमात् ॥१
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रत तच्च तपो मतम् ।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥२
व्रतं हि कर्तृसंतापात्तप इत्यभिधीयते ।
इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥३
अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ।
व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विजः ॥४
ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः ।
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥५

उपवास स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।
कांस्य मांस मसूर च चणकं कोद्रदूपकम् ॥६
शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् ।
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ॥७
उपवासे न शस्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ।
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्य कृत्वा प्रातर्व्रत चरेत् ॥८

अब व्रतों की परिभाषा के विषय में बतलाया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं हे द्विज ! तुम श्रवण करो, तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष और सूर्य का सङ्क्रमण में जो स्त्री और पुरुषों के व्रत आदि होते हैं उनके विषय में बताऊँगा और क्रम पूर्वक कहूँगा ॥१॥ शास्त्र में कहा हुआ जो नियम है वह व्रत होता है और बहुत बड़ा तप माना गया है। व्रत के नियम होते हैं और कुछ दम आदि विशेष नियम माने जाया करते हैं ॥२॥ व्रत यह इसका नाम करने वाले के सन्ताप होने से एक प्रकार तप ही होता है और यह तपश्चर्या कहा जाता है। इन्द्रियों के समूह को नियम में रखने से यह नियम भी कहा जाता है ॥३॥ जो ब्राह्मण निरग्नि होते हैं उनके लिये यह परम कल्याण करने वाला कहा जाता है। द्विजगण व्रत, उपवास नियमों के द्वारा तथा अनेक तरह के दानों के द्वारा अपना कल्याण अवश्य करना चाहिये। इनसे देवगण परम प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति को दिया करते हैं। पापों से उपावृत्त या गुणों के साथ जो वास है वही समस्त भोगों से रहित उपवास कहा जाता है। जो उपवास करे उसे कांस्य, मांस, मसूर, चणक, कोद्रूपक, शाक, मधु, परान्न और स्त्री का त्याग कर देना चाहिये। उपवास करने के समय में पुष्प, अलङ्कार और नूतन वस्त्र, धूप, गन्ध और अनुलेपन भी प्रशस्त नहीं माने जाते हैं। दन्तधावन (दाँतून), अञ्जन भी प्रशस्त नहीं होते हैं। दन्तकाष्ठ पञ्चगव्य करके प्रातः व्रत का चरण करना चाहिये ॥४॥ ॥५।६।७।८॥

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ।
उपवासः प्रदुष्येत दिवा स्वप्नाच्च मैथुनात् ॥६

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाऽग्निहरणं संतोषोऽस्तेयमेव च ॥१०
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ।
पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥११
नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः ।
क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥१२
तिलमुद्गादृते शस्यं शस्ये गोधूमकोद्रवौ ।
चीनकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् ॥१३
मितधान्य तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ।
व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ॥१४
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ।
कूष्माण्डालाबुवार्ताकान्पालङ्कीं पूतिकां त्यजेत् ॥१५
चरुर्भैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं पयः ।
श्यामाकशालिनीवारा यं वकं मूलतण्डुलम् ॥१६
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ।
मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम् ॥१७

बार-बार अर्थात् एक बार से अधिक बार जल पीने से और एक बार ताम्बूल चर्वण से उपवास दूषित हो जाया करता है। दिन में सोने से तथा मैथुन करने से भी उपवास खण्डित हो जाया करता है ॥६॥ समस्त प्रकार के व्रतों में दश प्रकार का साधारण धर्म माना जाता है जिसका पूर्ण पालन करना चाहिए, वे दश धर्म ये हैं—क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियों को संयम में रखना, देव की पूजा, अग्नि हरण, सन्तोष और अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। उपवास के दिन पवित्र मन्त्रों का जप करना चाहिए और यथाशक्ति हवन भी करे ॥१०।११। नित्य स्नान करे, मित आहार करे तथा गुरु देव और ब्राह्मणों की अर्चना करे। क्षार, मधु, लवण, मांस इनको वर्जित रखना चाहिये ॥१२॥ तिल और मूँग के बिना शस्य, शस्य में गोधूम और कोद्रव, चीनक, देवधान्य, शमीधान्य तथा ऐक्षव (ईख का निर्मित), मित-

धान्य, पण्य मूल और क्षारगण कहे गये हैं। व्रीहि, षष्टिक और मूँग और कलाके तिल सहित यव, श्यामाक, नीवार और गोधूम आदि व्रत में हितकर बताये गये हैं। कूष्माण्ड, अलावु, वार्ताक, पातङ्करि और पूतिका इनका त्याग कर देना चाहिये ।१३।१४।१५॥ चरुभक्ष, सक्तुकण, शाक, दधि, घृत, दूध, श्यामाक (समा), शालि, नीवार, यवक और मूल तण्डुल यह हविष्य हैं। व्रत और नक्तादि में तथा अग्नि कार्य आदि में ये हित माने गये हैं। मधु तथा मांस का त्याग करके अन्य अथवा व्रत में हित कहे गये हैं ॥१६।१७॥

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥१८
एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥१९
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥२०
पृथक्सांतपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनोऽघहा ॥२१
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा ।
महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः ॥२२
पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः ।
एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ॥२३
कपिलागोः पल मूत्रमर्धाङ्गुष्ठं च गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम् ॥२४
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ।
गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥२५
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ।
तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्येति कुशोदकम् ॥२६

तीन दिन तक प्रातःकाल में, तीन दिन तक सायङ्काल में, और तीन दिन तक अयाचित (बिना माँगा हुआ) और तीन दिन तक पराया नहीं

खाना चाहिए। जो द्विज प्रजापत्य व्रत करता है उसके लिये यह नियम है ॥१८॥ एक-एक ग्रास तीन दिन तक खाने और तीन पूर्व की भाँति करे और इसके उपरान्त तीन दिन तक बिल्कुल उपवास करे इस तरह अन्त में होने वाला यह प्रति कृच्छ्र व्रत होता है। ब्राह्मण को इसे भी करना चाहिए ॥१९॥ गो मूत्र, गोमय (गोबर), क्षीर (दूध), दही, घृत और कुशाओं का जल इन्हें क्रम से एक-एक दिन ग्रहण करे और एक रात्रि उपवास करे इस प्रकार के व्रत को कृच्छ्र सान्तपन व्रत कहा गया है ॥२०॥ पृथक्-पृथक् सान्तपन व्रत में बताये हुए द्रव्यों के द्वारा रहे और छः दिन उपवास करे। यह सप्ताह का कृच्छ्र व्रत होता है। यह महा सान्तपन व्रत कहा गया है जो कि पापों का नाश करने वाला होता है ॥२१॥ बारह दिन का भी उपवास वाला व्रत पराक व्रत नाम वाला होता है जो समस्त पापों का हनन करने वाला कहा गया है। पराक व्रत को ही तिगुना कर देने से महराक नाम वाला व्रत होता है जो स्वयं ही पापनाशक कहा गया है ॥२२॥ पूर्णिमा में पन्द्रह ग्रास और अमावस्या में बिस्कुल भोजन न करे। एक-एक ग्रास रोज कम करता चला जावे। इसी तरह फिर प्रतिदिन प्रतिपदा से एक एक ग्रास की वृद्धि करता रहे यह चन्द्रायण व्रत कहा गया है। अन्यथा दूसरा विधान यह है कि कपिला गौ का एक पल मूत्र और आधे अंगूठा के बराबर गोतप, सात पल दूध, दो पल दधि देवे तथा घृत एक पल और कुशोदक लेवे। गायत्री मन्त्र से गोघत्र ग्रहण करे—"गन्धद्वारां इत्यादि मन्त्र से गोमय को लेवे. "आप्यायस्व" इत्यादि मन्त्र से दूध, "दधिक्राव्णो", इत्यादि मन्त्र से दही, 'तेजोऽसीति' इस मन्त्र से घृत और "देवस्येति" इस मन्त्र से कुशोदक का ग्रहण करना चाहिए ॥२३।२४।२५।२६॥

ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हि ष्ठेत्यृ चं जपेत् ।
अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा ॥२७
पीत्वा सर्वाघनिर्मुक्तो विष्णुलोकी ह्युपोषितः ।
उपवासी सायंभोजी यतिः षष्ठारमकालवान् ॥२८

दो तिथियाँ हो जावें यानी तिथि बढ़ जावे तो वहाँ पर जो उत्तरोत्तर अर्थात् बाद की ही वही उत्तमा जननी चाहिए। पहिली तिथि तो मलिम्बुचा होती है।।३४।।

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः।
दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ।।३५
युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याऽथ पूर्णिमा ।।३६
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्।
लतद्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।३७
नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु।
सद्यः शौच समाख्यातं कान्तारापदि संसदि ।।३८
आरब्धदीर्घतपसां न राजा व्रतहा स्त्रियाः।
गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ।।३९
यदाऽशुद्ध तदाऽन्येन कार्यंत क्रियाः सदा।
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।।४०
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डन शिरसोऽथ वा।
असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयत्सुतम् ।।४१

उस नक्षत्र का व्रत करना चाहिए जिससे सूर्य अस्त होता है। तिथियाँ दिन की पुन्य मानी गई हैं। यदि रात्रि का व्रत हो तो रात्रि में वे शुभ होती हैं ।।३५।। तृतीय और पञ्चमी का युग्म, छट और सप्तमी, अष्टमी और नवमी तथा एकादशी के साथ द्वादशी, चतुर्दशी से पूर्णिमा एवं प्रतिपदा के साथ अमावस्या इन दो तिथियों का युग्म महान् फल देने वाला होता है। इससे विपरीत युग्म का होना महा घोर होता है जो पुराकृत पुण्य का भी नाश कर देता है ।।३६।३७।। राजा, मन्त्री और व्रतियों का विवाहोपद्रवादि में सद्यः शौच शुद्धि बताई गई है। कालान्तर प्रापत्ति और संसद में तथा जिन्होंने दीर्घ तप आरम्भ कर दिया है उनके व्रत का हनन करने वाला राजा नहीं होता है एवं स्त्री के व्रत का भी हनन नहीं होता है। गर्भिणी, सूतिका और कुमारी

मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिव व्रजेत् ।
आग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ॥२९
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरमेखलाः ।
माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥३०
दर्शाद्दर्शस्ते चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहश्चैव सावनः ।
मास. सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ॥३१
सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥३२
आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।
कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः गच्छतु वा न वा ॥३३
मासि संवत्सरे चैव तिथिद्वैध यदा भवेत् ।
तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ॥३४

इस प्रकार से ब्रह्म कूर्च होता है । इसके उपरान्त "आपोहिष्ठा" इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए । अघमर्षण सूक्त से संयोजित करके अथवा प्रणव से योजित करके पीवे और समस्त पापों से निर्युक्त, विष्णु लोक में जाने वाला, उपोषित, उपवासी और सायकाल में भोजन करने वाला यति तथा षष्ठ आरम बल वाला, मांस को वर्जित करने वाला, अश्वमेध करने वाला और सत्यवादी स्वर्ग लोक को जाता है । अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडा करण, मेखला, माङ्गल्य और अभिषेक ये समस्त कार्य मलमास में वर्जित कर देना चाहिए ॥२७।२८।२९।३०॥ दर्श (अमावस्या से) से दर्शतक चान्द्र होता है और तीस दिन का सावन मास होता है और सौर मास तो सङ्क्रान्ति से होता है और नाक्षत्र मास भविवर्त्तन से हुआ करता है ॥३१॥ विवाह आदि कार्यों मे सौर मास ग्रहण किया जाता है तथा यज्ञ आदि कर्मों में सावन मास बताया गया है । और वार्षिक पितृ कार्य में चान्द्र मास प्रधान माना जाता है ॥३२॥ आषाढ़ी को अवधि बना कर जो पाँचवाँ पक्ष होता है उस समय में श्राद्ध करना चाहिए चाहे सूर्य कन्या राशि पर जावे या न जावे ॥३३॥ मास में और सम्वत्सर मे जब तिथिद्वैध अर्थात्

को पहिले निम्न प्रकार से प्रार्थना एवं संकल्प करना चाहिए, हे व्रतपते ! मैं कीर्ति, सन्तान, विद्या आदि, सौभाग्य और आरोग्य की वृद्धि के लिये निर्मलता, भोग और मुक्ति के अर्थ में व्रत करता हूं ॥४३।४४॥ मैंने यह श्रेष्ठ व्रत हे जगत्पते ! आपके समक्ष में ग्रहण किया है। मेरी प्रार्थना है आपके प्रसाद से निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त होवे ॥४५॥ इस श्रेष्ठ व्रत के ग्रहण करने पर यदि अपूर्ण रहे और मेरी मृत्यु हो जावे तो सत्पति आपके प्रसन्न होने पर वह सब पूर्ण हो जावे ॥४६॥ मण्डल में व्रत मूर्ति जगन् मूर्ति का समस्त सिद्धि प्राप्त करने के लिये आवाहन करता हूँ। आपके लिये मेरा नमस्कार है। हे केशव ! आप सान्निधि में स्थित रहें ॥४७॥ मन के द्वारा कल्पित और भक्ति पूर्वक समर्पित पञ्चगव्यों से, शुभ जलों से और पञ्चामृतों से मैं आपका स्नान कराता हूं। आप ही मेरे पापों के हनन करने वाले होवें ।४८॥ आपके लिये गन्ध और पुष्पोदक से युक्त यह शुभ अर्घ्य अर्पित किया जाता है। इस अर्घ्य को और पाद्य तथा आचमन को आप ग्रहण करें और सर्वदा मुझे अर्घ्य देने के योग्य बना देवें ॥४९॥ हे वस्त्र पते ! इस परम पवित्र वस्त्र को स्वीकार करें और सर्वदा अच्छे वस्त्र आदि तथा सुन्दर भूषण आदि से हे व्रत सत्पते ! मुझे समाच्छादित करें ॥५०॥

सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते गृहाण वै ।
पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकम् ॥५१
पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा ।
पुष्पगन्धं सुविमलमायुरारोग्यवृद्धये ॥५२
दशाङ्गं गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै ।
स धूपधूपितं मां त्वं कुरु धूपित सत्पते ॥५३
दीपमूर्ध्वंगिख दीप्तं गृहाणाखिलभासकम् ।
दीपमूर्ते प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्ध्वंगतिं कुरु ॥५४
अन्नादिकं च नैवेद्यं गृहाणान्नादिसत्पते ।
अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदादकम् ॥५५

रजस्वला जब अशुद्ध हों तो सद्य किसी अन्य के द्वारा क्रिया करानी चाहिए। क्रोध से, प्रमाद (लापरवाही) से, लोभ से यदि व्रत कार्य भङ्ग हो जावे तो तीन दिन तक भोजन न करे अथवा शिर का मुण्डन करावे। यदि स्वयं व्रत करने में समर्थ न हो तो अपनी पत्नी या पुत्र से कराना चाहिए ॥३८।३९।४०।४१॥

सूतके मृतके कार्यं प्रारब्धं पूजनोज्झितम् ।
व्रतस्थं मूर्छितं दुग्धापानाद्यैरुद्धरेद्गुरुः ॥४२
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥४३
कीर्तिसततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।
नैर्मल्यभुक्तिमुक्त्यर्थं कुर्वे व्रतपते व्रतम् ॥४४
इदं व्रतं मया श्रेष्ठ गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥४५
गृहीतेऽस्मिन्व्रतवरे यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ॥४६
व्रतमूर्ति जगद्मूर्ति मण्डले सर्वसिद्धये ।
आवाहये नमस्तुभ्यं सनिधौ भव केशव ॥४७
मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यैर्जलैः शुभैः ।
पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वमेव भव पापहा ॥४८
गन्धपुष्पादेर्कैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते शुभम् ।
गृहाण पाद्यमाचममर्घ्यार्हं कुरु मां सदा ॥४९
वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा ।
भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यं द्यादितं जगत्पते ॥५०

जलपात्रं चान्नपात्रमृत्तिकाछत्रमासनम् ।
शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिमापेयमीरिता ॥६२

आप मुझे धम को प्रदान करें, धन देवें और सफल सद्गुणों से युक्त सन्तान देवें, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष को मुझे प्रदान करें ॥५७॥ हे व्रतों के स्वामिन् ! मेरी समर्पित इस अर्चना को ग्रहण करके अब आप यहाँ से पधारें । हे प्रभो ! आपको विसर्जित तो करता हूँ किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वरों को प्रदान करेंगे इसी भावना को साथ में लेकर आपको इस समय विदा कर रहा हूँ ॥५८॥ व्रत करने वाले पुरुष को स्नान करके समस्त व्रतों में इसी प्रकार से व्रत मूर्तियों की पूजा कर भी चाहिए । व्रत मूर्नियाँ सुवर्ण निर्मित अथवा रजत निर्मित होनी चाहिए जैसी भी व्रती की शक्ति हो उसके अनुसार रचना करावे । व्रत करने वाले को भूमि में शयन करना चाहिए । सामान्य व्रत के अन्त में जप, होम और दान करना चाहिए । चौबीस या द्वादश, पाँच, तीन अथवा एक ही विप्र का पूजन अवश्य करे । और भोजन करावे । साथ ही गुरु वर्ग का यजन भी करे । अपनी शक्ति के अनुसार सबको दक्षिणा भी देनी चाहिए । गौरे देव तथा सुवर्ण आदि की दक्षिणा देवे, पादुका, उपानह (जूता) आदि पृथक् देवे ॥५९॥६०॥६१॥ जल का पात्र अन्न का पात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, को वस्त्र अर्थात् धोती और दुपट्टा और परिमापेय कुम्भ इन सबका दान बताया गया है ॥६२॥

७२ शिवरात्रिव्रतम् ।

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥१
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती ।
शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥२
रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती ।
आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३

मन्त्रहीनं क्रियाहीन भक्तिहीनं मया प्रभो ।
यत्पूजितं व्रतपते परिपूर्ण तदस्तु मे ।।५६

हे गन्धमूर्त्ते ! आप इस सुगन्धित और विमल गन्ध को ग्रहण कीजिये और आप मुझे पापों की गन्ध से विहीन कर दीजिये। आप इन परम सुगन्धित पुष्पों को स्वीकार कीजियेगा और सर्वदा मुझे आप पुष्पादि से परिपूर्ण करने की कृपा करें। यह पुष्पों की गन्ध सुविमल है जो कि आयु और *आरोग्य की वृद्धि करने वाली है ।।५१।५२।। दशाङ्ग* गुग्गुलु और घृत से युक्त इस धूप को ग्रहण करें। हे धूपित ! हे सत्पुरुषों के स्वामिन् ! आप मुझे सुन्दर धूप से सदा धूपित करें ।।५३।। यह ऊपर की ओर शिखा वाला दीप्त दीप है इस सब को प्रकाश देने वाले दीपक को आप स्वीकार करें। हे दीप मूर्त्ते ! आप मुझे प्रकाश से समन्वित और सर्वदा उर्ध्वगति वाला कर देवें ।।५४।। हे अन्नादिसत्पते ! आप मेरे द्वारा समर्पित अन्न आदि नैवेद्य को ग्रहण करें। आप मुझे अन्नादि से परिपूर्ण तथा अन्न का दान करने वाला सर्वदायक बना देवें ।।५५।। हे प्रान्ते ! मन्त्रों से रहित, क्रिया से हीन और भक्ति से शून्य मैंने जो आपकी पूजा की है हे व्रतपते ! वह सब परिपूर्ण होना चाहिए ।।५६।।

धर्मं देहि धन देहि सौभाग्यं गुणसंततिम् ।
कीर्ति विद्यां देहि चाऽऽयुः स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।।५७
इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा व्रज सांप्रतम् ।
पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ।।५८
स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।
पूज्याः सुवर्णरजता वै शक्त्या वै भूमिशायिना ।।५९
जपो होमश्च स।मान्यव्रतान्ते दानमेव च ।
चतुर्विशा द्वादश वा पञ्च वा त्रय एकशः ।।६०
विप्रा प्रपूज्या गुरवो भोज्याः शक्त्या तु दक्षिणा ।
देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक् ।।६१

जलपात्रं चान्नपात्रमृत्तिकाछत्रमासनम् ।
शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिमापेयमीरिता ॥६२

आप मुझे धन को प्रदान करें, धन देवें और सफल सद्गुणों से युक्त सन्तान देवें, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष को मुझे प्रदान करें ॥५७॥ हे व्रतों के स्वामिन् ! मेरी समर्पित इस अर्चना को ग्रहण करके अब आप यहाँ से पधारें । हे प्रभो ! आपको विसर्जित तो करता हूँ किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वरों को प्रदान करेंगे इसी भावना को साथ में लेकर आपको इस समय विदा कर रहा हूँ ॥५८॥ व्रत करने वाले पुरुष को स्नान करके समस्त व्रतों में इसी प्रकार से व्रत मूर्तियों की पूजा कर भी चाहिए । व्रत मूर्तियाँ सुवर्ण निर्मित अथवा रजत निर्मित होनी चाहिए जैसी भी व्रती की शक्ति हो उसके अनुसार रचना करावे । व्रत करने वाले को भूमि में शयन करना चाहिए । सामान्य व्रत के अन्त में जप, होम और दान करना चाहिए । चौबीस या द्वादश, पाँच, तीन अथवा एक ही विप्र का पूजन अवश्य करे । और भोजन करावे । साथ ही गुरु वर्ग का यजन भी करे । अपनी शक्ति के अनुसार सबको दक्षिणा भी देनी चाहिए । गौरे देव तथा सुवर्ण आदि की दक्षिणा देवे, पादुका, उपानह (जूता) आदि पृथक् देवे ॥५९।६०।६१॥ जल का पात्र अन्न का पात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, को वस्त्र अर्थात् धोती और दुपट्टा और परिमापेय कुम्भ इन सबका दान बताया गया है ॥६२॥

७२ शिवरात्रिव्रतम् ।

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥१
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती ।
शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥२
रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती ।
आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३

नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते ।
नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ॥४
सौभाग्यारोग्यविद्याद स्वर्गमार्गप्रदायिने ।
धर्मं देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ॥५
गुणकीर्तिसुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।
लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापी सुन्दरसेनकः ॥६

अग्नि देव ने कहा—अब भोगों और मोक्ष को प्रदान करने वाले शिवरात्रि के व्रत के विषय मे बताऊँगा । इसका श्रवण करो । माघ और फाल्गुन के मध्य में कृष्ण पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होती है वह कामनाओं से युक्त होती है । उस दिन उपवास करना चाहिए और व्रत धारण करना करने वाले को उस रात्रि में जागरण भी करना चाहिए । महा शिवरात्रि एक चार महा रात्रियों में से एक है । इस दिन चतुर्दशी को मैं भोजन नही करूँगा–ऐसा संकल्प पूर्वक निवेदन करे ॥१२॥ व्रती को चाहिए कि वह प्रार्थना करे कि मैं आज रात्रि में जागरण करके भगवान् शिव का पूजन करता हूँ । मैं भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाले भगवान् शम्भु का आवाहन करता हूं ॥ ३ ॥ नरक रूपी समुद्र से तारने के लिये नौका के सदृश शिव को मेरा नमस्कार है । शान्त स्वरूप शिव के लिये जो कि प्रजा और राज्य आदि को प्रदान करने वाले हैं ॥ ४ ॥ सौभाग्य-आरोग्य और विद्या देने वाले भगवान् शिव के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है । हे शिव ! आप कृपा करके मुझे धर्म प्रदान करें–धन देवें तथा काम भोग आदि सब प्रदान करें । सद्गुण-कीर्ति और सुख का दान करें । मुझे स्वर्ग देवें और संसार के आवागमन के जन्म-मरण से छुटकारा भी प्रदान करें । इस व्रत से लुब्धक पापी भी सुन्दर सेना एवं परम पुण्य प्राप्त किया करता है ॥५।६॥

७३ वारव्रतानि ।

वारव्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ।
करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ॥१

श्राद्धी चाऽऽदित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक् ।
सङ्क्रान्तौ सूर्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ॥२
कृत्वा हस्ते सूर्यवारं नक्तेनाब्दं स सर्वभाक् ।
चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ॥३
स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यार्तिवर्जितः ।
विशाखायां बुधं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥४
अनुराधे देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।
शुक्रं ज्येष्ठाभ संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।
मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥५

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं वारों के व्रतों को बताऊँगा। ये व्रत भी भुक्ति तथा मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं। सूर्य में पुनर्वसु हो तब स्नान करने में सर्वौषधी शुभ होती हैं ॥ १ ॥ आदित्य वार में श्राद्ध करने वाला स्नान करे तो सात जन्म तक वह रोगी नहीं रहता है। संक्रान्ति के दिन सूर्य का वार हो तो वह सूर्य का शुभ हृदय माना जाता है। हस्त नक्षत्र में सूर्य का वार हो उस दिन रात्रि मे करके एक वर्ष तक समस्त पदार्थों भाजन हो जाता है। चित्रा नक्षत्र के दिन चन्द्रवार हो तो सातवार करके मनुष्य परम सुखी होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ स्वाती में भौम वार हो तो सात रात्रि करके समस्त दु.खों से रहित होता है। विशाखा नक्षत्र में बुध हो तो सात रात्रि करने पर ग्रहों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४ ॥ अनुराधा में गुरु हो तो सात वार करने से ग्रहों की आर्ति का नाश होता है। ज्येष्ठा शुक्र युक्त हो तो सप्तनक्तो ग्रहार्त्तिव्रत होता है। मूल में शनिवार हो सात रात्रियों ग्रह दुःखों से मुक्त होता है ॥४॥५॥

७४ नक्षत्रव्रतानि ।

नक्षत्रव्रतकं वक्ष्ये भे हरिः पूजितोऽर्थदः ।
नक्षत्रपुरुषं चाऽऽदौ चैत्रमासे हरिं यजेत् ॥१

मूलो पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीष्वर्चयेद्धरिम् ।
जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढासूरुसंज्ञके ॥२
मेढ्ं पूर्वोत्तरास्वेव कटिं वै कृत्तिकासु च ।
पार्श्वे भाद्रपदाभ्यां तु कुक्षिं वै रेवतीषु च ॥३
स्तनौ चैवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकम् ।
भुजौ पूज्यौ विशाखासु पुनर्वस्वङ्गुलीर्यजेत् ॥४
अश्लेषासु नखान्पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् ।
श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुष्ये हरिर्यजेत् ॥५
यजेत्स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणभेऽर्चयेत् ।
मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकम् ॥६
चित्रासु चाऽऽर्द्रासु कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिम् ।
गुडपूर्णे घटेऽभ्यर्च्य शय्यागोर्थादि दक्षिणा ॥७
नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः ।
शांभवायनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिम् ॥८

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं नक्षत्रों के विषय में बतलाता हूँ। विशेष नक्षत्र में पूजित होने पर हरि अर्थ के प्रदान करने वाले होते हैं। *नक्षत्र पुरुष हरि को आदि में चैत्र मास मे पूजित करना चाहिए* ॥ १ ॥ मूल में चरणों का यजन करे और रोहिणी में हरि भगवान् के जंघाओं का अर्चन करना चाहिए। अश्विनी नक्षत्र के योग में जानुओं का तथा आषाढ़ मे ऊरुओं का यजन करे ॥२॥ पूर्वोत्तरा में मेढ्र का यजन करे और कृत्तिका नक्षत्र में कटिका पूजन करना चाहिए। भाद्र पदा पूर्वा उत्तरा दोनों में दोनों पार्श्व भागों का क्रम से अर्चन करे। तथा रेवती में कुक्षि का यजन करे। धनिष्ठा में हरि के पृष्ठ भाग का अर्चन करना चाहिए। विशाखा नक्षत्रों में दोनों भुजाओं का तथा पुनर्वसु में अंगुलियों का यजन करे ॥ ४ ॥ अश्लेषा मे नखों का पूजन करके ज्येष्ठा में कण्ठ का अर्चन करना चाहिए। श्रवण में विष्णु के श्रोत्रों का तथा पुष्य नक्षत्र मे हरि के मुख का पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ दाँतों अग्रभाग का स्वाति में तथा वारुण नक्षत्र में आस्य का पूजन

करे। मघा में नासिका का यजन मृगशीर्ष में दोनों नेत्रों का एवं चित्रा में ललाट का यजन करे। आर्द्रा में भगवान् के केशों का अर्चन करे। इस प्रकार से वर्ष के अन्त में स्वर्णांक हरि को गुड़ से पूर्ण घर में अर्चना करके शय्या-गौ और अर्घ आदि की दक्षिणा देनी चाहिए ॥ ६ । ७ ॥ इस विधि से शिवात्मक नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु पूजा करने के योग्य हैं। शाम्भवायनीय व्रत करने वाले को मास नक्षत्र में हरि का पूजन करना चाहिए ॥८॥

कार्त्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृनास्यके ।
नामभिः केशवाद्यै स्तु अच्युताय नमोऽपि वा ॥९
कार्तिके कृत्तिकाभेऽन्हि मासनक्षत्रगं हरिम् ।
शांभवायनीव्रतक करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०
केशवादिमहामूर्तिमच्युत सर्वदायकम् ।
आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥११
कार्तिकादौ सदा देयमन्नं मासचतुष्टयम् ।
फाल्गुनादौ च कृशरमाषाढादौ च पायसम् ॥१२
देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तं नैवेद्यमाशयेत् ।
पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥१३
अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्य नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥१४
नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्तादि सदाऽक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥१५
यथाऽच्युतस्त्वं परतः परस्तात्स ब्रह्मभूतः परात्मन् ।
तथाऽच्युतं त्वं कुरु वाञ्छितं मे मया कृत पापहराप्रमेय ॥१६

कार्त्तिक में कृत्तिका में तथा मृनास्यक में मृगशीर्ष में केशव आदि नामों के द्वारा अच्युत भगवान् के लिए नमस्कार करे ॥ ९ ॥ कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र वाले दिन में मास नक्षत्र में गमन करने वाले हरि का भोगों और मोक्ष को प्रदान करने वाले शाम्भवायनीय व्रत को करूंगा—ऐसा निश्चयात्मक संकल्प करना चाहिए ॥ १० ॥ मैं सभी कुछ के प्रदान करने वाले

केशवादि महामूर्त्ति भगवान् अच्युत का आवाहन करता हूं जो देव आयु, आरोग्य और वृद्धि को प्रदान करने वाले हैं ॥ ११ ॥ कार्तिक आदि में चारमास तक सदा अन्न का दान करना चाहिए। फाल्गुन आदि मासों में कृशर का दान करे और आषाढ़ आदि मासों में पायस देना चाहिए ॥ १२ ॥ देव के लिये और ब्राह्मणों के लिये रात्रि में नैवेद्य खिलाना चाहिए। पंचगव्य के जल में स्नान किया हुआ होकर उसके ही प्राशन से शुचि होता है ॥ १३ ॥ विसर्जन से पूर्व सर्व द्रव्य नैवेद्य कहा जाता है। जगन्नाथ देव के विसर्जित हो जाने पर तुरन्त वह सब निर्माल्य हो जाता है ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त व्रती को प्रार्थना करनी चाहिए—हे अच्युत ! आपको मेरा नमस्कार है। मेरे समस्त पापों का क्षय हो जावे और मेरा पुण्य वृद्धि को प्राप्त होवे। मेरा ऐश्वर्य एवं धन आदि सब सर्वदा अक्षय होवे तथा मेरी सन्तति कभी क्षीणता को प्राप्त न होवे। जिस तरह अच्युत भगवान् आप पर से भी पर हों और पर से पर ब्रह्मभूत परमात्मा हैं उसी प्रकार से आप मेरे वाञ्छित को अच्युत कर दो जो भी मैंने वाञ्छित किया है। आप पापों के हरण करने वाले और अप्रमेय हैं ॥१५।१६॥

अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
अक्षयं माममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१७
सप्त वर्षाणि सं पूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
अनन्तव्रतमाख्यास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदम् ॥१८
मार्गशीर्षे मृगशिरे गोमूत्राशी यजेद्हरिम् ।
अनन्त सर्वकामानामनन्तो भगवान्फलम् ॥१९
ददात्यनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि ।
अनन्तपुण्योपगमं करोत्येतन्महाव्रतम् ॥२०
यथाभिलषितप्राप्ति करोत्यक्षयमेव च ।
पादादि पूज्य नक्तं तु भुञ्जीयात्तैलवर्जितम् ॥२१
घृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयम् ।
चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु) ॥२२

मांधाताऽभूद्यु वनाश्वादनन्तव्रतकात्सुत. ॥२३

हे अमेयात्मन् ! हे पुरुषोत्तम ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें और जो भी मेरा अभीप्सित है वह मुझे प्राप्त हो ॥ १७ ॥ इस प्रकार सात वर्ष भली-भाँति पूजन करके मुक्ति और मुक्ति व्रत को बताऊँगा ॥ १८ ॥ मार्गशीर्ष मास में गोमूत्र का अशन करने वाला भगवान् हरि का यजन करना चाहिए। भगवान् अनन्त समस्त कामनाओं का अनन्त फल देने वाले हैं ॥ १९ ॥ यह अनन्त भगवान् का पूजन अनन्त देता है और दूसरे जन्म में भी वह ही दिया करता है। यह महाव्रत अनन्त पुण्य का उपचय किया करता है ॥ २० ॥ यह व्रत जो भी कुछ इच्छित हो उसे देता है और उन दिये हुए को अक्षय किया करता है। पादादि का अर्चन कर के रात्रि में तैल मिश्रित पदार्थों का त्याग करना चाहिए ॥ २१ ॥ भगवान् अनन्त देव का उद्देश्य करके घृत से चार मास तक होम करना चाहिए। चैत्रादि मास में होम करे और श्रावण आदि में पय से होम करना चाहिए ॥ २२ ॥ अनन्त भगवान् को व्रत से यवनाश्व से मान्धाता पुत्र हुआ था। ॥ २३ ॥

७५-दिवसव्रतानि ।

दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे ।
यश्चोभयमखी दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ॥१
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ।
त्र्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ॥२
दत्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतम् ।
दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ॥३
दिनं पयोव्रतास्तिष्ठेद्रुद्रगः स्याद्दिवाव्रती ।
पक्षे पक्षे त्रिरात्रं च भक्तेनैकेन यः क्षपेत् ॥४
विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृद्दिनम् ।
मासे मासे त्रिरात्राशी एकभक्ती गणेशताम् ॥५

यस्त्रिरात्रं व्रतं कुर्यात्समुद्दिश्य जनार्दनम् ।
कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥६
नवम्यां च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ ।
प्रारभेत त्रिरात्राणां व्रतं तु विधिवद्व्रती ॥७
ओं नमो वासुदेवाय सहस्रं वा शतं जपेत् ।
अष्टम्यानेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ॥८

अग्नि देव ने कहा—अब दिवस व्रत मैं बताऊँगा और धादि में धेनु व्रत कहता हूं । जो प्रभूत सुवर्ण से युक्त उभय मुखी को देवे ॥ १ ॥ दिन में तो पयोव्रत रखकर रहे परम पद को जाता है । इसी तरह तीन दिन पर्यन्त पयोव्रत करके कञ्चन निर्मित कल्प पादप का दान करे तो वह ब्रह्म पद को प्राप्त किया करता है । यह कल्प वृक्षव्रत कहा गया है । काञ्चनी भूमि बनवा कर तीस पल से ऊपर का दान करना चाहिए । इस प्रकार पक्ष-पक्ष में तीन रात्रि तक जो एक भक्त से रहे वह विपुल (बहुत) धन की प्राप्ति किया करता है । तीन रात्रि व्रत करने वाला मास मास मे उत्पत्ति प्रत्येक महीना में तीन रात्रि में अशन (भोजन) करने वाला एक भक्ताशी है वह गणेशता को प्राप्त करता है अर्थात् गणेश जैसा स्वरूप एवं शक्ति उसे प्राप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ जो त्रिरात्र व्रत करे और भगवान् जनार्दन का उद्देश्य लेकर करे वह सौ कुलों को साथ लेकर हरि भगवान् के निवास स्थान को चला जाता है ॥ ६ ॥ शुक्ल पक्ष की नवमी को मार्ग शीर्ष मास में मनुष्य को यह व्रत विधि-विधान के साथ व्रती को प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ७ ॥ "ॐ नमो वासुदेवाय" इस मन्त्र का एक सहस्र या एक माला जप करना चाहिए । अष्टमी तिथि में एक वक्त भोजन करते हुए तीन दिन तक उपवास करना चाहिए ॥ ८ ॥

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कार्तिके कारयेद्व्रतम् ।
विप्रान्संभोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥९
छत्रोपवीतपात्राणि ददत्संप्रार्थयेद्द्विजान् ।
व्रतेऽस्मिन्दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ॥१०

पीकर फिर दही के आहार वाला उपोषित रहे। कार्त्तिक में एकादशी तिथि मे यह कृच्छ्र भास्कर नाम वाला व्रत होता है जो धन देने वाला है ॥ १५ ॥ यवागू–यावक–शाक–दही–दूध–घृत और जल पञ्चमी आदि तिथि में कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष मे लेवे तो यह व्रत कृच्छ्र सान्तपन नाम वाला कहा गया है ॥ १६ ॥

76 मासव्रतानि

मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेत्सुधीः ॥१
वैशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् ।
गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ॥२
आषाढादिचतुर्मासं प्रातः स्नायी च विष्णुगः ।
माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥३
गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती ।
मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णुलोकभाक् ॥४
एकभक्तव्रती तद्वद्द्वादशीव्रतक पृथक् ।
फलव्रती चतुर्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ॥५
श्रावणादिचतुर्मास व्रतैः सर्वं लभेद् व्रती ।
आषाढस्य सिते पक्ष एकादश्यामुपोषितः ॥६
चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् ।
आषाढ्यां चाथ सङ्क्रान्तौ कर्कटस्य हरिं यजेत् ॥७
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥८

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान कराने वाला मास व्रत को बताऊँगा। आषाढ़ मास से आरम्भ कर चार मास तक (चातुर्मास्य मे) विद्वान् पुरुष को तैल-उबटना आदि अभ्यङ्ग का त्याग कर देना चाहिए ॥ १ ॥ वैशाख मास मे पुष्प और लवण का त्याग करके

गायका दान करने वाला राजा होता है। गाय का दान करने वाला और एक मास तक उपवास करने वाला भीम (भीष्म) व्रत के करने वाला हरि होता है ॥ २ ॥ आषाढ़ से आदि लेकर चातुर्मास तक प्रातःकाल में स्नान करने वाला विष्णु लोक में गमन करने वाला होता है। माघ मास में अथवा चैत्र मास में गुड़ तथा धेनुका प्रदान करने वाला होना चाहिए। इस तरह गुड़व्रत करने वाला महाव्रती तृतीया में करे तो गौरीश होता है। तात्पर्य यह है कि शिव के समान हो जाता है। मार्गशीर्ष आदि मासों में रात्रि का व्रत करने वाला विष्णु लोक को सेवन करने वाला होता है ॥३।४॥ एक भक्त व्रत वाला और उसी भाँति पृथक् द्वादशी का व्रत तथा फलों के व्रत वाला चातुर्मास में फल का त्याग कर उन्हें खिलाना चाहिए ॥ ५ ॥ श्रावण से आदि लेकर चार मास तक व्रतों के द्वारा व्रत करने वाला सब का लाभ किया करता है। आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी में उपोषित रहते हुए चातुर्मास्य को व्रतों का परि कल्पन करे। आषाढ़ी में और कर्क की संक्रान्ति में भगवान् हरि का भजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥ हरि के अर्चन के उपरान्त निवेदन करे कि हे देव ! आपके समक्ष में मैंने यह व्रत ग्रहण किया है इसकी सिद्धि बिना किसी विघ्न बाधा के हे केशव ! आपके प्रसन्न होने पर हो जावे ॥ ८ ॥

गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्य पूर्णे म्रिये ह्यहम् ।
तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥६
मांसादि त्यक्त्वा विप्रः स्यात्तैलत्यागी हरि यजेत् ।
एकान्तरोपवासी च त्रिरात्री विष्णुलोकभाक् ॥१०
चान्द्रायणी विष्णुलोकी मौनी स्यान्मुक्तिभाजनम् ।
प्राजापत्यव्रती स्वर्गी सक्तुयावकभक्षकः ॥११
दुग्धाद्याहारवान्स्वर्गी पञ्चगव्याम्बुभुक्तया ।
शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरी व्रजेत् ॥१२
मांसवर्जी यथाहारो रसवर्जी हरिं व्रजेत् ।
कौमुदव्रतमास्यास्ये आश्विने समुपोषितः ॥१३

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः ।
घृतेन तिलतैलेन दीपनैवेद्यमर्पयेत् ॥१४
ओं नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् ।
धर्म का कामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात्कौमुदव्रती ॥१५
सर्वं लभेद्धरिं प्राच्यं मासोपवासकव्रती ॥१६

हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर फिर इसके पूर्ण न होने पर मैं यदि बीच में ही मर जाऊँ तो हे जनार्दन ! मेरी यह आपके चरणों में प्रार्थना है कि आप के प्रसाद से वह सम्पूर्ण हो जाना चाहिए अर्थात् अपूर्ण रहने पर उसका पूर्ण फल प्राप्त हो जावे ॥ ९ ॥ मांस आदि दूषित वस्तुओं का त्याग करके ब्राह्मण को तैल के प्रयोग को भी त्याग देना चाहिए और हरि का यजनार्चन करे । एकान्त स्थल में रहे तथा उपवास करे । इस तरह तीन रात्रि तक करे तो वह विष्णु लोक जाने का अधिकारी हो जाता है ॥ १० ॥ जो चान्द्रायण व्रत करता है वह भी विष्णु लोक वासी होता है । जो मौन होकर रहता है व मोक्ष का अधिकारी होता है । प्राजापत्य व्रत करने वाला स्वर्गगामी होता है । सक्तु और यावक का खाने वाला और दुग्ध आदि के आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य और जल का आहार करने वाला भी स्वर्ग निवास प्राप्त करता है । शाक तथा मूल एवं फल का आहार करने वाला मनुष्य विष्णु लोक को जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ मांस का त्याग कर औषधों का आहार करने वाला तथा रसों को वर्जित करने वाला हरि के लोक को प्राप्त करता है । अब कौमुद व्रत को बताया जाता है जो आश्विन मास में समुपोषित होकर किया जाता है । कमल उत्पल आदि से प्रलेपन करके द्वादशी तिथि में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । घृत अथवा तिलों के तैल के द्वारा दीप बनावे और नैवेद्य समर्पित करे । "ओं नमो वासु देवाय"—इस मन्त्र के द्वारा मालती की माला से यजन करना चाहिए । इस प्रकार से कौमुद नामक व्रत करने वाला पुरुष धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति किया करता है । एक मास तक उपवास का व्रत लेने वाला पुरुष

भगवान् हरि का अर्चन करके सभी कुछ का लाभ प्राप्त करता है ॥१३॥१४॥
॥ १५ ॥ १६ ॥

71 नानाव्रतानि

ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते ।
इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादिचतुरो ह्यृतून् ॥१
घृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत् ।
कृत्वा मौनं तु संध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ॥२
तिलघण्टावस्त्रदाता सुखी सारस्वतव्रती ।
पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वाऽब्दं धेनुदो नृपः ॥३
एकादश्यां तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत् ।
हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ॥४
पायसाशी गोयुगदः श्रीभाग्देवीव्रती भवेत् ।
निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ॥५
वर्षव्रतानि चोक्तानि संक्रान्तिव्रतकं वदे ।
संक्रान्तौ स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्नदः ॥६

अब नाना प्रकार के व्रतों के विषय में बताते हैं। अग्नि देव ने कहा—भोगों और मोक्ष के देने वाले ऋतु व्रतों को तुमको बतलाऊँगा। जो वर्षा आदि चार ऋतुओं में इन्धन का दान किया करता है और अन्त में धेनु का प्रदान करता है वह ब्राह्मण अग्नि के व्रत वाला होता है। मौन व्रत धारण कर मास के अन्त में सन्ध्या के समय में घृत का पूर्ण कुम्भ देता है, तिल, घण्टा, वस्त्रों का दान करने वाला पुरुष परम सुखी होता है और सारस्वत व्रती होती है। पंचामृत से स्नपन करके एक वर्ष पर्यन्त धेनु के दान करने वाला राजा होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ एकादशी तिथि में रात्रि में अशन करने वाला चैत्र मास में हैम भक्त को निवेदन करे तो मास के अन्त में वह विष्णु का सद्व्रत करने वाला विष्णु के पद को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ पायस (क्षीर) का अशन (भोजन) करने वाला और दो गौओं का दान

७८ दीपदानव्रतम्

दीपदानव्रत वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥१
चातुर्मासे विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि ।
दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२
दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् ।
सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३
विदर्भराजदुहिता ललिता दीपदानभाक् ।
चारुधर्मक्ष्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥४
ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती ।
पृष्टा सा दीपमाहात्म्य सपत्नीभ्य उवाच ह ॥५
सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत्पुरोहितः ।
तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥६
कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः सप्रेरितो मया ।
वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ॥७
निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्या मूषिकया तदा ।
मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥८

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला दीपदान के व्रत को बतलाता हूं। देवों और द्विजातियों के घर में दीपदान करने वाला पुरुष समस्त पदार्थों के प्राप्त करने वाला होता है ॥१॥ यह दीपदान चातुर्मास मे करने वाला पुरुष विष्णु लोक में जाने वाला तथा केवल कार्तिक मास मे करने वाला स्वर्ग लोक मे गमन करने वाला होता है। दीपदान का बहुत बड़ा माहात्म्य होता है। ऐसा दान है कि जो न हुआ और न होगा ॥२॥ दीप के दान से आयु बढ़ती या प्राप्त होती है, दीपदान से नेत्रों की ज्योति की प्राप्ति एवं रक्षा होती है, दीपदान से लक्ष्मी की वृद्धि तथा प्राप्ति हुआ करती है और सुत आदि का भी लाभ होता है। दीपदान करने वाला

करने वाला पुरुष श्री भाग्देवी के व्रत वाला होता है। वह पितृगण और देवताओं को निवेदन करके भोजन किया करता है वह राजा होता है ॥ ५ ॥ ये पूरे वर्ष पर्यन्त करने वाले व्रत अब मैंने बतला दिये हैं। अब संक्रान्ति में किये जाने वाला व्रत बतलाता हूँ। सक्रान्ति के दिन रात्रि है ॥ ६ ॥

अमावस्या तु संक्रान्तौ शिवार्कयजनात्तथा।
उत्तरे त्वयने चेज्यः प्रातःस्नानेन केशवम् ॥७
द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
घृतक्षीरादिनाऽऽस्नाप्य प्राप्नोति विषुवादिषु ॥८

अमावस्या तिथि में सक्रान्ति में भगवान् शङ्कर और सूर्यदेव का याजनार्चन करने से तथा उत्तरायण सूर्य के होने के समय में इज्या करे और प्रातः काल मे स्नान करे और केशव का बत्तीस पल के मान द्वारा पूजन करे तो समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। घृत और क्षीर क्षीर आदि से स्नान करा के विषुवाद में प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

स्त्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च
गौरीं महेश्वरं चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात् ॥९
उमामहेश्वरौ प्रार्च्य अवियोगादि चाऽऽप्नुयात्।
मूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ॥१०
सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ॥११

स्त्रियों का उमाका व्रत श्री का देने वाला होता है। तृतीया और अष्टमी तिथियों मे गौरी और महेश्वर का जो यजन किया करती है वह सौभाग्य को प्राप्ति करती है ॥ ९ ॥ उमा और महेश्वर दोनों का पूजन करने वाली कभी भी पति का वियोग आदि प्राप्त नहीं किया करती है। मूल व्रत करने वाली स्त्री उमेश के व्रत करने वाली होती है ॥ १० ॥ जो नारी सूर्य की भक्त होती है वह निश्चय ही पुरुष हुया करती है अर्थात् अगले जन्म में वह पुरुष के रूप मे उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

७८ दीपदानव्रतम्

दीपदानव्रत वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥१
चातुर्मासे विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि ।
दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२
दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् ।
सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३
विदर्भराजदुहिता ललिता दीपदानभाक् ।
चारुधर्मक्ष्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥४
ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती ।
पृष्टा सा दीपमाहात्म्य सपत्नीभ्य उवाच ह ॥५
सौवीरराजस्य पुरा मंत्रेयोऽभूत्पुरोहितः ।
तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥६
कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः सप्रेरितो मया ।
वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ॥७
निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्या मूषिकया तदा ।
मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥८

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला दीपदान के व्रत को बतलाता हूँ। देवों और द्विजातियों के घर में दीपदान करने वाला पुरुष समस्त पदार्थों के प्राप्त करने वाला होता है ॥१॥ यह दीपदान चातुर्मास मे करने वाला पुरुष विष्णु लोक मे जाने वाला तथा केवल कार्तिक मास मे करने वाला स्वर्ग लोक में गमन करने वाला होता है। दीपदान का बहुत बड़ा माहात्म्य होता है। ऐसा दान है कि जो न हुआ और न होगा ॥२॥ दीप के दान से आयु बढ़नी या प्राप्त होती है, दीपदान से नेत्रों की ज्योति की प्राप्ति एवं रक्षा होती है, दीपदान से लक्ष्मी की वृद्धि तथा प्राप्ति हुआ करती है और सुत आदि का भी लाभ होता है। दीपदान करने वाला

स्त्री हो या पुरुष सौभाग्य को प्राप्त करता है और अन्त में स्वर्ग में जाकर प्रतिष्ठित होता है ॥३॥ विदर्भ देश के राजा की पुत्री ललिता दीपदान करने वाली थी तथा चारुधर्म नामक भूपति की पत्नी शतभार्या आदि हुई थी ॥ ४।५ ॥ उस सती ने भगवान् विष्णु के आलय में एक सहस्र दीपों का दान किया था। जब उससे दीपों के दान करने का माहात्म्य पूछा गया तो उसने अपनी सपत्नियों से कहा, ललिता बोली—पहिले पुराने समय मे सौवीर देश के राजा का पुरोहित मैत्रेय हुआ था। उसने देविका के तट पर विष्णु का देवालय अर्थात् मन्दिर बनवाया था ॥६॥ मेरे द्वारा प्रेरणा प्राप्त करने वाले उसने कार्त्तिक मास में दीपदान किया था। उस समय में मुख की ओर से नष्ट होने वाली बत्ती से मार्जार (बिल्ली) के भय से चुहिया के द्वारा वह दीप निर्वाण वाला प्रदीप्त हो गया था। इसका फल यह हुआ कि वह मरकर राजा की बेटी हुई और शताधिका राजा की पत्नी हुई थी ॥७।८॥

असंकल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत्कृतं मया।
विष्णवायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ॥६
जातिस्मरा ह्यतो दीपान्प्रयच्छामि त्वहर्निशम्।
एकादश्यां दीपदो वै विमाने दिवि मोदते ॥१०
जायते दीपहर्ता तु मूको वा जड एव च।
अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ॥११
विक्रोशमानांश्च नरान्यमकिंकर आह तान्।
विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलम् ॥१२
यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः।
जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्यो ह्येकस्मिन्मानुषो यदि ॥१३
तत्राप्यतिविमूढात्मा किं भोगानभिधावति।
स्वहित विपयारवादैः क्रन्दनं तदिहाऽऽगतम् ॥१४

असङ्कल्पित हमारी प्रेरणा मैंने की थी। विष्णु के मन्दिर में दीप जलाने का यह फल भोगा जाता है ॥६॥ इसलिये जाति स्मरा अहर्निश (रात-

दिन) दीपों को देती हूँ। एकादशी तिथि में दीपों का दान करने वाला पुरुष विमान में बैठकर स्वर्ग लोक में आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१०॥ जो कोई दीपों का हरण किया करता है वह या तो मूक (गूँगा) होता है या जड़ (अत्यन्त मूर्ख) हुआ करता है और वह महा कठिन अन्ध तमस नामक नरक में जाकर निश्चय ही गिरता है ॥ ११॥ वहीं नरक की यातनाओं को भोगने में रोते-चीखते हुए मनुष्यों से यम के दूत कहते हैं—यहाँ रुदन मत करो–यहाँ विलाप करने का क्या फल होगा अर्थात् अब रोने-पीटने से इस दुःख से छुटकारा नहीं हो सकता है। यहाँ तो किये हुए पापों का फल तुम्हे भोगना ही होगा ॥१२॥ जब पहिले प्रमाद करने वालों के द्वारा यह जीव अत्यन्त समुपेक्षित हो जाता है और सहस्रों जन्म निकल जाया करते हैं फिर यदि एक मनुष्य जन्म प्राप्त कर यह मानव एक जन्म में भी विमूढ़ात्मा आकर भोगों की ओर ही दौड़ लगाता है तो विषयों के आस्वादों से अपने हित का नाश कर देता है और उन पापों का फल भोगने के लिये यहाँ आकर रोता है ॥१३।१४॥

भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्किं वो न चिन्तितम् ।
परस्त्रीषु कुचाभ्यङ्ग प्रीतये दुःखदं हि वः ॥१५
मुहूर्तविषया वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः ।
परस्त्रीहारि यद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ॥१६
कोऽतिभारो हरेर्नाम्नि जिह्वया परिकीर्तने ।
वर्तितैलेऽल्पमूल्येऽपि यदग्निर्लभ्यते सदा ॥१७
दानाशक्तैर्हरेर्दीपो हृतस्तद्वोऽतिदुःखदम् ।
इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ॥१८
ललितोक्तं च ताः श्रुत्वा दीपदानाद्दिवं ययुः ।
तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलम् ॥१९

यह सब पहिले अपने किये हुए कर्मों का फल भोगा जाता है, क्या तुमने कभी यह नहीं विचार किया है। पराई स्त्रियों के कुचों का अभ्यङ्ग करना उस समय प्रीति उत्पन्न करता है किन्तु वह आप लोगों को दुःख देने वाला ही परिणाम में हुआ करता है ॥१५॥ एक मुहूर्त (घड़ी) भर तक जो

विषय का जापक होता है वह अनेक करोड़ों वर्ष तक दुःख देने वाला होता है। पराई स्त्री का हरण करने वाला जो गीत है अब हाय मैंय्या !–ऐसा कहकर क्यों विलाप करते हो ? ॥१६॥ अन्य बहुत से विषय रस के गान तो किया जाता है किन्तु इस जीभ से भगवान् के नाम का कीर्त्तन नहीं किया जाता है, क्या हरि के नाम लेने में कुछ बोझ मालुम होता है ? बहुत ही अल्पमूल्य वाले बत्ती के तेल में जो सदा अग्नि प्राप्त किया करता है। दीपों का स्वयं तो दान करने में असमर्थ हैं किन्तु दूसरों के किये हुए दीपों का हरण करता है जो कि हरि के लिये दीपदान किया जाता है वह अत्यन्त दुःख देने वाला होता है। इसलिये अब विलाप करने से क्या फल है ? अब तो जो भी तुमने किया उसका फल सहन करो ॥१७।१८॥ अग्नि ने कहा—उन सपत्नियों ने ललिता के कथन को सुनकर दीपदान से स्वर्ग की प्राप्ति की थी। इसलिये दीप प्रदान करने का फल व्रतों से भी अधिक होता है ॥१६॥

७६—पुष्पवर्गकथनम्

पुष्पगन्धधूपनैवेद्यैस्तुष्यते हरिः ।
पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ॥१
पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान् ।
मल्लिका सर्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ॥२
अतिमक्तमयं तद्वत्पाटला विष्णुलोकदा ।
करवीरैर्विष्णुलोकी जपापुष्पैश्च पुण्यवान् ॥३
पावन्तीकुब्जकाद्यैश्च तगरैर्विष्णुलोकभाक् ।
कर्णिकारैर्विष्णुलोकः कुरुण्ठैः पापनाशनम् ॥४
पद्मैश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पैः परा गतिः ।
बाणपुष्पैर्बर्वराभिः कृष्णाभिर्हरिलोकभाक् ॥५
अशोकैस्तिलकैस्तद्वदाटरूपभवैस्तथा ।
मुक्तिभागी बिल्वपत्रैः परा गतिः ॥६

विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा ।
तुलसी कृष्णगौराख्या कल्हारोत्पलकानि च ।।७

विष्णुलो की भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा हरिः ।
नीपार्जुनकदम्बैश्च वकुलैश्च सुगन्धिभिः ।।८

अब पुष्प वर्ग के विषय में कथन किया जाता है । अग्नि देव ने कहा—पुष्प-गन्ध-धूप-दीप और नैवेद्य इनके द्वारा भगवान् हरि सन्तुष्ट हुआ करते हैं । देवता के योग्य जो पुष्प होते हैं उन्हें और जो देव पूजन के अयोग्य होते हैं उन्हें बताता हूं ।।१।। मालती का पुष्प श्रेष्ठ माना जाता है । तमाल का पुष्प भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है । मल्लिका लता के पुष्प समस्त प्रकार के पापों का नाश करने वाले हैं । यूथिका के पुष्प विष्णु लोक को प्रदान करते हैं ।।१-२।। उसी प्रकार अति भक्तमय होता है । पाटला के पुष्प विष्णु लोक के देने वाले हैं । कणि कार पुष्पों से विष्णु लोक को प्राप्त होता है । जपा के पुष्पों से मानव पुण्यवान् होता है ।।३।। पावन्ती और कुब्जादि के द्वारा तथा तकार के पुष्पो से विष्णु लोक मिलता है । कणिकार फूलों से विष्णु लोक प्राप्त होता है तथा कुरण्ट पुष्पों से पापों का नाश होता है ।।४।। पद्मों से—केतकी पुष्पों से और कुन्द के फूलों के द्वारा देव यजन करने से परागमति होती है । वाण पुष्प-बर्बर पुष्प तथा इनके पुष्पों से हरिलोक का सेवन करने वाला होता है ।।५।। अशोक-तिलक-अटाट रूप सम्भव पुष्पों से मुक्ति की प्राप्ति हुआ करती है । विल्व पत्र और शमी पत्र से परागति होती है ।।६।। भंगु राजा के पुष्पों के चढ़ाने से तथा तमाल दलों से विष्णु लोकी होता है । तुलसी श्यामा और गौर दो प्रकार की होती है ये दोनों तरह की केवल और कल्हार उत्पलों से भी विष्णु लोक से भो हो जाता है ।।७।। भृगराज और तमाल के दलों से भी हरि की प्राप्ति होती है । कदम्ब-अर्जुन और नीप तथा सुगन्धित बकुलों के द्वारा भी हरि प्रसन्न होते हैं ।।८।।

किंशुकैर्मुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागकर्णकैः ।
संध्यापुष्पैर्बिल्वतकै रञ्जनीकेतकीभवैः ।।९

कूष्माण्डतिमिरोत्थैश्च कशकाशशरोद्भवैः ।
चूतादिभिर्मरुवकैः पत्रैरन्यैः सुगन्धकैः ॥१०
भुक्तिमुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वैस्तु तुष्यति ।
स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिका ॥११
स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं वनजैः फलम् ।
विशीर्णैर्नार्चयेद्विष्णुं नाधिकाङ्गैर्न मोदितैः ॥१२
काञ्चनीरस्तयोन्मत्तैर्गिरिकर्णिकया तथा ।
कटजैः शाल्मलीयैश्च शिरीषैर्नरकादिकम् ॥१३॥
सुगन्धैर्ब्रह्मपद्मैश्च पुष्पैर्नीलोत्पलैर्हरिः ।
अर्कमन्दारधत्तूरकुसुमैरर्च्यते हरः ॥१४
कुटजैः कर्कटीपुष्पैः केतकीं न शिवे ददेत् ।
कूष्माण्डनिम्बसम्भूतं पैशाचं गन्धवर्जितम् ॥१५
अहिंसा इन्द्रियजयः क्षान्तिर्ज्ञानं दया श्रुतम् ।
भावाष्टपुष्पैः सपूज्य देवान्स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१६

किंशुक (ढाक) मुनिपुष्प–गोकर्ण–नागकर्ण–सन्ध्यापुष्प–बिल्व–तक्र–रञ्जनी–केतकी–कूष्माण्ड–तिमिर–कुश–काश–सरोद्भव–चूतादि–मरु–वक इनको पुष्प दलों से जो कि सुगन्ध युक्त हैं, यजनार्चन करने से समस्त सांसारिक सुखों के उपभोग तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है और पापों की हानि होती है। भक्ति के साथ उक्त समस्त प्रकार के पुष्पादि से भगवान् सन्तुष्ट हुआ करते हैं। सुवर्ण लक्ष से अधिक पुष्प का फल होता है और माला का करोड़ गुणा अधिक फल होता है ॥६-१०-११॥ अपने वन में तथा अन्य वन में जो पुष्पों हों उनसे भी अधिक वनजों का फल होता है। जो पुष्प विशीर्ण (टूटे कुचले) हों उनसे विष्णु का अर्चन नहीं करना चाहिए। जिनमें अधिक अंग हो उनसे तथा जो मोदित हों उनसे भी अर्चन नहीं करे ॥१२॥ काञ्जासार–उन्मत्त–गिरिकर्णिक कटज–शाल्मलीय और शिरीष इनसे नरकादि का अर्चन करे। जो सुगन्ध युक्त ब्रह्म पद्म नीलोत्पल पुष्प हों उनसे हरि का अर्चन करे। आक–मन्दार–धतूरा इनके पुष्पों से शिव का अर्चन किया जाता है अन्य देव का नहीं ॥१३-१४॥

कुटज और कर्करी के पुष्पों से तथा केतकी के पुष्पों से कभी शिव का अर्चन नहीं करना चाहिए। कूष्माण्ड और निम्ब सम्भूत तथा गन्ध रहित पुष्प पैशाच होते हैं ॥१५॥ अहिंसा-इन्द्रिय-जय-क्षान्ति-दया श्रुत-भाव—इन आठ प्रकार के पुष्पों के द्वारा देवता का यजनार्चन कर मानव भोगों के सुख और मुक्ति दोनों का प्राप्त किया करता है ॥१६॥

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ॥१७
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम् ।
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥१८
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः ।
पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम ॥१९
भक्त्या दयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति) ।
वारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ॥२०
प्राजापत्यं तथाऽन्नादि आग्नेयं धूपदीपकम् ।
फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम् ॥२१
पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनम् ।
श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पं च सर्वदा चाष्टपुष्पिका ॥२२
आसनं मूर्तिपञ्चाङ्गं विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः ।
विष्णोस्तु वासुदेवाद्यैरीशानाद्यैः शिवस्य वा ॥२३

अहिंसा यह सबसे प्रथम एवं श्रेष्ठ पुष्प होता है—इसके अनन्तर इन्द्रियों को संयम में रखना यह पुष्प है जिसकी देवार्चन करने के समय नितांत आवश्यकता होती है। प्राणिमात्र पर दया रखना यह सर्व श्रेष्ठ पुष्प है। शान्ति को पूर्णतया हृदय में रखना यह भी एक विशेष प्रकार का पुष्प है जो कि देवता का अर्चन करने के समय में याजक के हृदय में रखना बहुत ही जरूरी है ॥१७॥ शम-तप और ध्यान ये भी परमश्रेष्ठ एवं अत्यावश्यक पुष्प के समान होते हैं। सत्य—यह आठवाँ पुष्प होता है। पवित्र पुष्प जो भी ऊपर बताये गये हैं उनके अतिरिक्त इन आठ प्रकार के पुष्पों की परम आवश्यकता

देव के अर्चन में होती है। इन भावात्मक पुष्पों से भगवान् केशव बहुत ही सन्तुष्ट होते हैं। अर्चक को इन पुष्पों की बहुत ही अधिक आवश्यकता होती है ॥ १८ ॥ इन आठ प्रकार के भावस्वरूप पुष्पों से अर्चित हरि निश्चय ही सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करते हैं। हे मनुजों में श्रेष्ठ ! अन्य पुष्प तो यहाँ अर्चन में वाह्य होते हैं, परम मुख्य पुष्प तो यह आन्तरिक पुष्प ही होते हैं ॥१६॥ भक्ति के साथ दया से युक्त इन पुष्पों से पूजित भगवान् विष्णु परितुष्ट हुआ करते हैं। वारुण जल पुष्प है और घृत-पात्र और दधि सौम्य पुष्प हैं ॥२०॥ अन्न आदि प्राजापत्य हैं तथा धूप और दीप आग्नेय होते हैं। फल और पुष्पादि वानस्पत्य पाँचवें पुष्प हैं ॥२१॥ कुश मूल आदि पार्थिव पुष्प हैं। गन्ध चन्दन वायव्य पुष्प कहे जाते हैं। श्रद्धा—इस नाम वाला पुष्प विष्णु पुष्प होता है। इस नाम वाला पुष्प विष्णु पुष्प होता है। इस प्रकार से देवार्चन में ये आठ प्रकार के पुष्प हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ आसन मूर्ति पञ्चाङ्ग अथवा विष्णु यह भी अष्ट पुष्पिका है। विष्णु-वासुदेवादि-ईशा आदि अथवा शिव इन सबके ही अर्चन में यह अष्ट पुष्पिका होती है ॥२३॥

८०—नरकस्वरूपम्

पुष्पाद्यै. पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे ।
आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते ॥१
जलमग्निर्विषं शस्त्र क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः ।
निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥२
अन्यच्छरीरमादत्तं यातनीयं स्वकर्मभिः ।
भुङ्क्तेऽथ पापकृद्दुःखं सुखं धर्माय सगतः ॥३
नीयते यमदूतैस्त यमं प्राणिभयंकरैः ।
कुपथे दक्षिणद्वारि धार्मिकः पश्चिमादिभिः ॥४
यमाज्ञप्तैः किंकरैस्तु पात्यते नरकेषु च ।
स्वर्गे तु नीयते धर्माद्वसिष्ठाद्युक्तिसंश्रयात् ॥५
गोघाती तु महावीच्यां वर्षलक्षं तु पीडयते ।
ताम्रकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा भूमिहारकः ॥६

महाप्रलयक यावद्रौरवे पीड्यते शनैः ।
स्त्रीबालवृद्धहन्ता तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।७
महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः ।
दह्यते कल्पमेक स चौरस्तामिस्रके पतेत् ।।८

अब नरकों के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। अग्नि देव ने कहा—भगवान् विष्णु के पुष्प आदि के द्वारा पूजन करने से मनुष्य नरकों में नहीं जाता है—यह मैं अब बताता हूं। जब मानव की यहाँ की जीवन-यात्रा समाप्त होने वाली होती है और आयु की समाप्ति हो जाती है तो आयु के अन्त मे मनुष्य की इच्छा इस सांसारिक शरीर के न छोड़ने की इच्छा होते हुए भी उसे यह छोड़ ही देना पड़ता है ।।१।। मानव के इस पार्थिव देह के छोड़ने के कुछ निमित्त हुआ करते हैं जिनके होने पर यह शरीर प्राणों से वियुक्त होता है। उन निमित्तों में जल–अग्नि–विष–शस्त्र-भूख-व्याधि-पर्वत से पतन आदि हुआ करते हैं। इनमें किसी भी एक कारण की प्राप्ति होने से यह देही प्राणों को त्याग किया करता है ।।२।। इस शरीर के त्याग देने के पश्चात् जैसे भी उस प्राणी के अपने कर्म होते हैं उनके फलों को भोगने के लिये वह अन्य यातनीय शरीर को ग्रहण करता है। यदि पाप कर्म होते है तो वह फिर अन्य शरीर पाकर नारकीय दुःखों को भोगता है और अच्छे कर्म होते हैं तो धर्म से सगत होता हुआ स्वर्गादि के सुखों का उपभोग किया करता है ।।३।। जब यह प्राणी इस सांसारिक पार्थिव शरीर का त्याग करता है तो अत्यन्त भयङ्कर यम के दूतों के द्वारा वह प्राणी यहाँ से ले जाया जाता है। जो पापी होता है उसे कुमार्ग वाले दक्षिण द्वार से ले जाया करते हैं और धर्मात्मा प्राणी होता है उसे पश्चिम आदि के द्वार से वहाँ ले जाते हैं ।।४।। यमराज के सामने पहुँचने पर उसकी आज्ञा पाकर किङ्करों के द्वारा यह प्राणी नरकों में डाल दिया जाता है। जो धार्मिक प्राणी है उसे युक्ति संश्रय वसिष्ठ धर्म से स्वर्ग आदि में ले जाया जाता है ।।५।। जो गौ का घात करने वाला होता है उसे एक लाख वर्ष तक महा वीचि नामक नरक में पीड़ा दी जाया करती है। ब्राह्मण का हनन

करने वाला तथा भूमि का हरण करने वाला पुरुष महाद्वीप्त ताम्र कुम्भ नाम वाले नरक में डाला जाता है ॥६॥ स्त्री—बालक और वृद्ध का हनन करने वाला पुरुष जब तक चौदह इन्द्र अपना इन्द्रासन का भोग किया करते तब तक महाप्रलयक रौरव नामक नरक में धीरे-धीरे बताया जाता है ॥७॥ घर और क्षेत्र आदि में आग लगाने वाला प्राणी महा रौरव नामक महान् रौद्र नरक में एक कल्पपर्यन्त जलाया जाता है। जो चोर होता है वह तामिस्र नाम वाले नरक में डाला है ॥८॥

नैककल्प तु शूलाद्यैर्भिद्यते यमकिंकरैः।
महातामिस्रके सर्पजलौकाद्यैश्च पीड्यते ॥६
यावद्भूमिर्मातृहाद्या असिपत्रवनेऽसिभिः।
नैककल्प तु नरके करम्भवालुकासु च ॥१०
येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते वालुकादिभिः।
काकोले कृमिविष्ठाशी एकाकी मिष्टभोजनः ॥११
कट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः।
संदुर्गन्धे रक्तभोजी भवेन्नाक्ष्यभक्षकः ॥१२
तैलपाके तु तिलवत्पीड्यते परपीडकः।
तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ॥१३
निरुच्छ्वासे दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे।
नाम्ना वज्रकटाहे च महापाते तदाऽनृती ॥१४
महाज्वाले पापबुद्धिः क्रकचेऽगम्यगामिनः।
संकरी गुडपाके च प्रतुदेत्परमर्मकृत् ॥१५
क्षारह्रदे प्राणिहन्ता क्षुरधारे च भूमिहृत्।
अम्बरीषे गोस्वर्णहृद्द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके ॥१६

महा तामिस्र नामक नरक में यम के दूतों के द्वारा अनेक कल्प तक शूल आदि के द्वारा भेदन किया जाता है और वहाँ सर्प तथा जलौकादि के द्वारा पीड़ा दी जाया करती है ॥६॥ जो माता का हनन करने वाला होता है उसके नरक में पड़ने की भूमि असिपत्र वन में चारों ओर तलवारों से युक्त

पूतिवक्त्रे कूटसाक्षी परिलण्ठेद्धनापहा ।
बालस्त्रीवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणार्तिकृत् ॥१९
विलेपे मद्यपो विप्रो महाप्रेते तु भेदिनः ।
तथाऽऽक्रम्य पारदाराञ्ज्वलन्तीमायसी शिलाम् ॥२०
शाल्मलाख्ये तमालिङ्गेन्नारी बहुनरंगमा ।
आस्फोटजिह्वोद्धरणं स्त्रीक्षणान्नेत्रभेदनम् ॥२१
अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः ।
चौराः क्षुरैश्च भिद्यन्ते स्वमांसाशी च मांस भुक् ॥२२
मासोपवासकर्ता वै न याति नरकं नरः ।
एकादशीव्रतकरो भीष्मपञ्चकसद्व्रती ॥२३

मधु का हरण करने वाला परीताप मे और पराये धन का लेने वाला काल सूत्र नर मे यातनाऐं भोगता है। जो अत्यन्त मांस का अशन (भोजन) करने वाला होता है कश्मल नरक मे आता है। जो पिण्ड नही देता है अर्थात् पुरखाओं का श्राद्ध नही करता है वह उग्रान्ध नरक में दुःख भोगता है ।।१७।। जो उत्कोच भक्षी होता है अर्थात् रिश्वत लेने वाला पुरुष है वह और जो वन्दियो के ग्राह करने मे रत होते हैं वे दुर्धार नामक नरक मे जाते हैं। जो वेद की निन्दा किया करता है वह अप्रतिष्ठ लोह मञ्जूष नाम वाले नरक मे जाया करता है। झूंठी गवाही देने वाला पतिवक्त्र नरक मे गिरता है। जो धन का अपहरण करने वाला है वह भी वहाँ पर ही परिलण्ठित होता है। बालक–वृद्ध और स्त्री का घात करने वाला कराल नरक में तथा ब्राह्मणों को सताने वाला विलेप मे और मदिरा का पान करने वाला विप्र महा प्रेत मे जाता है। जो आक्रामण करके पराई स्त्रियों का भोग करता है वह शाल्मल नामक नरक मे लोहे की या पत्थर की जलती हुई स्त्री का आलिंगन किया करता है। जो पर स्त्री का चुम्बन करता है या उससे अश्लील वचन कहता है उसकी जिह्वा निकाल ली जाती है और पराई स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है उसके नेत्रो का भेदन किया जाता है ।।१७ से २१।। माता तथा पुत्री आदि के गमन करने वाले को अगारों के ढेर मे गिरा दिया जाता है। जो चोर होते हैं

उन्हें छुराओं से काटा जाता है। अपने मांस के खाने वाले को मांस खाना होता है। जो एक मास तक उपवास कर लेता है वह पुरुष फिर किसी भी नरक में जाकर यातनाऐं नहीं सहन किया करता है। जो एकादशी का व्रत करने वाला या भीष्म पञ्चक का व्रत करने वाला है वह भी नरकों की यातना नहीं भोगता है ॥२२-२३॥

८१ दानपरिभाषाकथनम्

दानधर्मान्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदाञ्छृणु ।
दानमिष्टं तथा पूर्तं धर्मं कुर्वन्हि सर्वभाक् ॥१
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं धर्मं च मुक्तिदम् ॥२
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च प्राहुरिष्टं च नाकदम् ॥३
ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्यसंक्रमणेषु च ।
द्वादश्यादौ च यद्दानं पूर्तं तदपि नाकदम् ॥४
देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत् ।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥५
युगादिषु च संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
सितपञ्चदशीसर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥६
यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।
वैधृते दृष्टदुःस्वप्ने द्रव्यब्राह्मणलाभतः ॥७
श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते ।
अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः ॥८
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादशोत्तमाः ।
कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ॥९

अब दान की परिभाषा का कथन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने

कहा—अब मैं दान के धर्मों को कहता हूँ जो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं। दान इष्ट है तथा धर्म पूर्त है, इसको करने वाला सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ बावड़ी, कूआ, तालाब, देवालय, अन्न का दान और बाग कराना पूर्त धर्म है जो मोक्ष के प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ अग्निहोत्र करना, तपश्चर्या, सत्य व्रत रखना, वेदों का पालन करना, अतिथियों का स्वागत सत्कार करना, बलिवैश्वदेव करना ये सब इष्ट कहे जाते हैं जो कि स्वर्ग के देने वाले हैं ॥३॥ ग्रहण के समय में जो दान दिया जाता है अथवा सूर्य संक्रान्ति पर जो दान देते हैं तथा द्वादशी आदि में जो दान किया जाता है वह भी पूर्त होता है और इससे भी स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है ॥४॥ देश अर्थात् समुचित देश मे, काल मे और योग्य पात्र मे जो दान दिया जाता है वह करोड़ गुना अधिक फल देने वाला होता है। अयन में, विषुव में, पुण्य दिन मे—व्यतीपात में, दिनक्षय मे, युगादि मे, संक्रान्ति में, चतुर्दशी, अष्टमी तिथियों में, शुक्लपक्ष की पञ्चदशी (पूर्णिमा), सर्व द्वादशियों मे, और अष्टकाओं मे, यज्ञ-उत्सव, विवादों में तथा मन्वन्तर आदि मे, वैधृत में, देखे हुए दुःस्वप्न में और द्रव्य ब्राह्मण के लाभ से अथवा श्रद्धा से जिस भी दिन में हो जावे, इस तरह दान दिया जाता है और दान सदा दिया जा सकता है। अयन दो, विषुव दो, षडशीतियाँ चार, विष्णुपदी चार और संक्रान्ति बारह परम उत्तम हैं। कन्या मे, मिथुन मे, मीन मे और धन मे सूर्य की गति होती है ॥५ से ९॥

षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः।
अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने ॥१०
त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशती स्मृताः।
वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥११
षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः।
पुण्याख्या विष्णुपद्यां च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥१२
श्रवणाश्विधनिष्ठासु नागदैवतमस्तके।
यदा स्याद्रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥१३

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात्कृतम् ।
त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ॥१४
दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके ।
कृष्णे कलिं विजानीयाज्ज्ञेया मन्वन्तरादयः ॥१५

ये छियासी मुख कहे गये हैं और फलों से छियासी गुण हैं। अतीत और अनागत पुण्य में दो उत्तरायण और दक्षिणायन हैं ॥१०॥ कर्क में तीस नाड़ियां होती हैं, मकर में बीस कही गई हैं। वर्तमान तुला और मेष में दोनों में दश नाड़ियां हैं ॥११॥ षडशीति के व्यतीत होने पर साठ नाड़ियां कही गई हैं। विष्णुपदी में पहिले और पीछे षोड़श पुण्याम्न होती हैं ॥१२॥ श्रवण, अश्विनी धनिष्ठाओं में नागदैवत मस्तक में जब रविवार होता है तो वह व्यतीपात योग कहा जाता है ॥१३॥ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में नवमी तिथि को कृतयुग समाप्त हुआ था। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि में त्रेता युग समाप्त हुआ था। माघ मास की अमावस्या में द्वापर युग पूरा हो गया था। नभस्य मास में कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी में कलियुग को जानना चाहिये। इस प्रकार से मन्वन्तरादि को जान लेना चाहिये ॥१४।१५॥

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥१६
फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढ़स्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥१७
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा ।
कार्तिके फाल्गुने तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी तथा ॥१८
ऊर्ध्वे चैवाऽऽग्रहायण्या अष्टकास्तिस्र ईरिताः ।
अष्टकाख्या चाष्टमी स्यादासु दानानि चाक्षयम् ॥१९
गयागङ्गाप्रयागादौ तीर्थे देवालयादिषु ।
अप्रार्थितानि दानानि विद्यान्न कन्यकानि हि ॥२०
दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।

आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ।।२१
नाम गोत्रं समुच्चार्य संप्रदानस्य चाऽऽत्मनः ।
संप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम् ।।२२

अश्व से युक्त शुक्ल नवमी कार्तिक मास में द्वादशी–माघ की तृतीया तथा भाद्रपद की तृतीया–फाल्गुन की अमावस्या, पौष मास की एकादशी, आषाढ की दशमी, माघ मास की सप्तमी श्रावण की अष्टमी जो कि कृष्ण पक्ष मे हो, आषाढ की पूर्णिमा, कार्तिक तथा फाल्गुन में तथा उसी तरह ज्येष्ठ मे पञ्चदशी, आग्रहायणी के ऊपर मे तीन अष्टका कही गई हैं। अष्टकाख्या अष्टमी होती है, इन सबमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय होता है अर्थात् उसके पुण्य का कभी क्षय होता ही नही है ।।१६ १७।१८।१६।।

गया, गङ्गा, प्रयाग आदि में, तीर्थ में, देवालय आदि मे दानों को अप्रार्थित जानना चाहिये, कन्या के नही होते हैं। दान सर्वदा पूर्व की ओर मुख करके ही देना चाहिये। जो दान ग्रहण करना है उसे उत्तर की ओर मुख करके ही दान को लेना चाहिये। इससे दानदाता की आयु बढ़ा करती है और दान ग्रहण करने वाले की आयु क्षीण नही होती है ।।२०।२१।। नाम और गोत्र का उच्चारण करके जिसको दिया जावे उसका तथा अपना दोनों का उच्चारण करे और फिर जो भी सम्प्रदेय हो उसे दिया करते हैं। यदि कन्या का दान हो तो अपना, वर का और कन्या का इन तीनों का नाम गोत्रादि लेना चाहिये ।।२२।।

स्नात्वाऽभ्यर्च्य व्याहृतिभिर्दद्याद्दानं तु सोदकम् ।
कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः ।।२३
कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश ।
श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यादुपागतम् ।।२४
शुल्कं धनं हि सकलं शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः ।
कुसीदकृषिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः ।।२५
पाशकद्यूतचौर्यादिप्रतिरूपकसाहसैः ।
व्याजेनोपार्जितं कृत्स्नं त्रिविधं त्रिविधं फलम् ।।२६

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।।२७
ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात् ।
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।।२८
कुलानां तु शतं हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम् ।
देवानां च गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च ।।२६
पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चार्जितं क्वचित् ।
प्रतिलाभेच्छया दत्तं यद्दनं तदपार्थकम् ।।३०

स्नान करके और व्याहृतियों के द्वारा अभ्यर्चना करके जल के सहित दान देना चाहिये । दान बहुत से प्रकार के होते हैं उनमें दश दान महा दान कहे जाते हैं । यथा—सुवर्ण, अश्व तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या, कपिला धेनु ये महादान हैं । श्रुत, शौर्य, तप, कन्या, याज्य और शिष्य से आया हुआ शुल्क यह सभी शुल्क दान है । जो शिल्पानुवृत्ति से प्राप्त हो, कुसीद (ब्याज), कृषि (खेती), वाणिज्य (व्यापार) से प्राप्त हो और जो किसी की भलाई करने पर प्राप्त हुआ हो, पासे के द्वारा द्यूत क्रीडा से प्राप्त; चोरी से लब्ध, प्रतिरूपक से प्राप्त, साहस पूर्ण कार्य से उपलब्ध तथा व्यसन से उपार्जित यह सब तीन प्रकार का होता है और इसका फल भी तीन तरह का होता है ।।२३।२४।२५।२६।। अध्याग्नि और अध्या वाहनिक दिया हुआ तथा प्रीति के किसी काम में दिया हुआ, भ्राता, माता और पिता से प्राप्त इस रीति से छः प्रकार का स्त्री धन कहा गया है ।।२७।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का द्रव्य और इनके अनुग्रह से शूद्र का द्रव्य । बहुतों को नहीं देना चाहिये । गौ, गृह, शयन और स्त्री ये एक को ही देवे । यदि प्रतिश्रुत कर दिया हो और न देवे तो सौ कुलों का हनन होता है । देवों को, गुरु वर्ग को, माता-पिता को जो दिया जाता है वह भी पुण्य है । कही पर अर्जित किया हुआ प्रयत्न पूर्वक देना परम पुण्य है । इनको जो प्रतिलाभ की इच्छा से दिया गया दान है तो वह व्यर्थ होता है ।।२६।२६।३०।।

श्रद्धया साध्यते धर्मो दत्तं वार्यपि चाक्षयम् ।
ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीडाबहिष्कृतः ॥३१
अज्ञानां पालनात्त्राणात्तत्पात्रं परमं स्मृतम् ।
मातुः शतगुणं दानं सहस्रं पितुरुच्यते ॥३२
अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमभयम् ।
अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलम् ॥३३
वर्णसंकरे द्विगुणं शूद्रे दानं चतुर्गुणम् ।
वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोडशत्वं द्विजब्रुवे ॥३४
वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके ।
पुरोहिते याजकादौ दानमक्षयमुच्यते ॥३५
श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं च यज्वनि ।
अतपस्व्यनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥३६
अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति ।
स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात्प्रयतः शुचि ॥३७
प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्तयेत् ।
ततस्तु कीर्तयेत्सार्धं द्रव्येण सह दैवतम् ॥३८
प्रतिग्राही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।
मन्दं पठेत्क्षत्रियात्तु उपांशु च तथा विशः ॥३९
मनसा च तथा शूद्रात्स्वस्तिवाचनकं तथा ।
अभयं सर्वदैवत्य भूमिर्वै विष्णुदेवता ॥४०

धर्म श्रद्धा से साधित किया जाता है । दिया हुआ जल भी अक्षय होता है । ज्ञान और शील गुण से युक्त तथा पराई पीड़ा से बहिष्कृत पात्र होता है जो अज्ञ हैं उनके पालन और रक्षा करने से वह परम पात्र कहा गया है । माता को दिया हुआ दान सौ गुना और पिता को दिया हुआ दान एक सहस्र गुण वाला कहा जाता है ॥३१।३२॥ जो दान अपनी पुत्री को दिया जाता है अनन्त होता है । अपनी सगी बहिन के लिये दिया हुआ दान भय रहित होता है । अमनुष्य में दान सम होता है । पाप में महाफल वाला दान समझना चाहिये ।

॥३३॥ वर्णसङ्कर में द्विगुण और शूद्र में चतुर्गुण, वैश्य में आठ गुना और क्षत्रिय में सोलह गुना होता है। वेद वेदस्वाध्याय करने वाले में सौ गुना तथा जो वेद का बोधक हो उसमें अनन्त होता है। पुरोहित और याजक आदि में जो दान दिया जाता है वह क्षय रहित होता है।.३४।३५॥ जो श्री से विहीन हों तथा यज्वा हों उनमें दिया हुआ दान भी अनन्त होता है। जो द्विज तप से रहित है और अध्ययन न करने वाला हो किन्तु दान ग्रहण करने की रुचि रखता है। वह जल में पत्थर की नौका की भाँति उसी के साथ डूब जाया करता है। स्नान किया हुआ और भली-भाँति उप स्पर्श न करके प्रयत और शुचि होकर ग्रहण करना चाहिये ॥३६।३७॥ जो दान का प्रतिग्रहीता हो उसे सर्वदा गायत्री का जाप करते रहना चाहिये। इसके अनन्तर द्रव्य के साथ एवं देव के सहित कीर्त्तन करना चाहिये अर्थात् सावित्री का जप करे ॥३८॥ प्रतिग्रह लेने वाले को यदि ब्राह्मण से लिया हो तो प्रतिग्रहण करके ऊँचे स्वर से पढ़ना चाहिये। क्षत्रिय से प्रतिग्रह ले तो मन्द स्वर से पढ़े वैश्य से ग्रहण करे तो उपांशु जाप करे और शूद्र से प्रतिग्रह ले तो केवल मन से ही जाप करे तथा स्वस्ति वाचन करे। विष्णु देवता समस्त देवों की भूमि है और भय रहित है ॥३९।४०॥

कन्या दासस्तया दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः ।
प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ॥४१
तथा चैकशफं सर्व याम्यश्च महिषस्तथा ।
उष्ट्रश्च नैर्ऋतो धेनू रौद्री छागोऽनलस्तथा ॥४२
आप्यो मेषो हरिः क्रोड आरण्याः पशवोऽनिलाः ।
जलाशयं वारुणं स्याद्वारिधानीघटादयः ॥४३
समुद्रजानि रत्नानि हेमलोहानि चानलः ।
प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि सत्तम ॥४४
गान्धर्वं गन्धमित्याहुर्वस्त्रं बार्हस्पतं स्मृतम् ।
वायव्याः पक्षिणः सर्वे विद्या ब्राह्मी तथाऽङ्गकम् ॥४५
सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्मा तु शिल्पके ।

वनस्पतिद्रु मादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः ॥४६
छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च ।
उपानहौ तथा यानमुत्तायांगिर ईरितम् ॥४७
रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदैवतम् ।
गृहं च सर्वदैवत्यं सर्वेषां विष्णुदेवता ॥४८
शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यतोऽस्ति हि ।
द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्ददामीति तथावदेत् ॥४६
तोयं दद्यात्ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः ।
विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णामि वै वदेत् ॥५०

कन्या, दास तथा दासी ये प्राजापत्य दान कहे गये हैं। गज का दान भी प्राजापत्य कहा गया है। अश्व यम दैवत कहा गया है। जो एक खुर वाले हैं वे सभी याम्य कहे गये हैं। महिष भी याम्य होता है। उष्ट्र (ऊँट) भी नैऋत दान कहा गया है। धेनु रौद्री होती है। छाग (बकरा) अनल कहा गया है। मेष आप्य दान है। हरि नाम वाला क्रोड़ होता है। पशु वर्ग जो आरण्य (जंगली) हैं वे सब अनिल कहे गये हैं। जलाशय वारुण कहा जाता है। घटादि वारिधात्री हैं ॥४१।४२।४३॥ जो रत्न समुद्र से उत्पन्न होते हैं वे और सुवर्ण तथा लोहा ये सब अनल होते हैं। हे सत्तम ! सस्य सभी प्राजापत्य हैं तथा पका हुआ अन्न भी प्राजापत्य नाम वाला दान होता है ॥४४॥ गन्ध से युक्त सब गान्धर्व और वस्त्र का दान बर्हिस्वत दान कहा गया है। समस्त प्रकार के पक्षियों का दान वायव्य कहा जाता है। विद्या का दान ब्राह्मी कहा गया है तथा अङ्क कहा गया है ॥४५॥ पुस्तक आदि का दान सारस्वत दान होता है। शिल्पक दान विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध है। द्रुमादि का दान वनस्पति कहा जाता है। ये देव द्रव्य हरिका तनु है ॥४६॥ छत्र, कृष्ण अजिन (मृगचर्म), शय्या, रथ, आसन, उपानह, यान ये उत्तायाङ्गिर कहे गये हैं ॥४७॥ रण के उपकरण शस्त्र ध्वजादि के सब देवता होते हैं और गृह भी सर्व दैवत्य होता है। इन सबके विष्णु देवता हैं ॥४८॥ अथवा शिव देवता हैं। उन से व्यतिरिक्त द्रव्य है। दाता का कर्त्तव्य है कि द्रव्य का नाम

था। इसके पश्चात् द्वापर युग आया उसमे ब्राह्मण जब याचना करे तभी उसे दान दिया जाता था, बिना माँगे कोई भी दान नहीं देता था। कलियुग में दान देने की व्यवस्था ही एकदम बदल गई है। इसमें तो हमेशा बराबर पीछे ही लगा रहे उसे दान देते हैं ॥५५॥ मन से पात्र का उद्देश्य करके अर्थात् मन मे यह सोचकर कि मुझे अमुक पात्र को दान देना है फिर भूमि में जल को विक्षिप्त करे। समुद्र का तो अन्त है जो कि इतना विशाल होता है किन्तु दान का कभी भी कोई अन्त नहीं होता है ॥५६॥

अद्य सोमार्कग्रहणसंक्रान्त्यादौ च कालके।
गंगागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणे ॥५७
तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्मणे।
वेदवेदांगयुक्ताय पात्राय सुमहात्मने ॥५८
यथा नाम द्रव्य विष्णुरुद्रादिदैवतम्।
पुत्रपौत्रगृहैश्वर्यपत्नीधर्मसद्गुणाः ॥५९
कीर्तिविद्यामहाकामसौभाग्यारोग्यवृद्धये।
सर्वपापोशान्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ॥६०
एतत्तुभ्यं सम्प्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः।
दिव्यान्तरिक्षभोगादिसमुत्पातौघघातकृत् ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे।
यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ॥६२
एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां ददे।
अनेन दानवाक्येन सर्वदानानि वै ददेत् ॥६३

दान दाता को संकल्प करना चाहिए। जिस दिन भी दान देवे उस तिथि, दिन और पर्व का नाम बोले जैसे आज सोम ग्रहण में या सूर्य ग्रहण में तथा संक्रान्ति आदि काल के श्रेष्ठतन पर्व में, महान् गुण वाले गङ्गा, प्रयाग गया आदि तीर्थ स्थान में, अमुक गोत्र वाले, अमुक शर्मा के लिये जो कि वेद एवं वेदाङ्गों से युक्त, परम पात्र एवं महान् आत्मा वाला है उसके लिये–विष्णु एवं रुद्र आदि देवता वाले अमुक महाद्रव को (उस द्रव्य

निःश्वासोच्छ्वासकासैस्तु प्राणो जीवसमाश्रितः ।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणः प्रकीर्तितः ॥८

इस अध्याय में नाड़ियों के चक्र का पूरा वर्णन किया जाता है । श्री अग्नि देव ने कहा—मैं अब इस शरीर में जो नाड़ियों का चक्र विद्यमान है उसका वर्णन करता हूँ । इसके पूर्ण ज्ञान हो जाने से भगवान् हरि का ज्ञान किया जाता है । इस मानव की नाभि के नीचे जो कन्द है वहाँ से अंकुर निकलते हैं । वे बहत्तर सहस्र नाभि के मध्य मे व्यवस्थित हैं । नीचे ऊपर और तिरछी ओर चारों तरफ उनसे व्याप्त है ॥१॥२॥ यह एक चक्र की भाँति वहाँ पर स्थित हैं इनमें परम प्रधान दस नाड़ियाँ होती हैं । उनके नाम इस प्रकार से हैं, इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, यशा, अलम्बुषा पूषा, हुई, दशमी नाड़ी का नाम शङ्खिनी है ॥३॥४॥ ये दश प्राण वहा नाड़ियाँ बताई गई हैं । उन दश प्रकार की वायुओ के नाम भी इस भाँति से हैं, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और दशवाँ वायु धनञ्जय नाम वाला होता है । इन सब में प्राण प्रथम एवं परम मुख्य वायु होता हैं जो कि इन सब प्रकार के दशो का स्वामी होता ॥५॥६॥ यह प्राण वायु त्याग से पूरणता की ओर प्राण को प्राणित किया करता हैं अर्थात् प्राणी को जीवित बनाये रखता है । यह प्राणियों के उरःस्थल मे स्थित रहता हुआ नित्य ही आपूरित किया करता है ॥७॥ निःश्वास (नीचे की ओर अर्थात् भीतर लेने वाला श्वास) और उच्छ्वास (ऊपर की ओर लेने वाला अर्थात् बाहिर निकलने वाला साँस) तथा कास (खाँसी) से यह प्राण जीव में समाश्रित होता है । यह प्रयाण किया करता है अर्थात् शरीर से निकल कर चला जाता है इसी लिये इसका नाम प्राण कहा गया है ॥८॥

अधो नयत्यपानस्तु आहारं च नृणामधः ।
मूत्रशुक्रवहो वायुरपानस्तेन कीर्तितः ॥९
पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलम् ।
समं नयति गात्रेषु समानो नाम मारुतः ॥१०

स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनम् ।
उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः ॥११
व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः ।
प्रतिदानं यथा कण्ठाद्व्यापनाद्व्यान उच्यते ॥१२
उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्मश्चोन्मीलने स्थितः ।
कृकरो भक्षणे चैव देवदत्तो विजृम्भिते ॥१३
धनजयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति ।
जीवः प्रयाति दशधा नाडीचक्रं हि तेन तत् ॥१४
संक्रान्तिर्विषुवं चैव अहोरात्रायनानि च ।
अधिमास ऋणं चैव ऊनरात्रधन तथा ॥१५
ऊनरात्रं भवेद्धिक्का अधिमासो विजृम्भिका ।
ऋणं चात्र भवेत्कासो निःश्वासो धनमुच्यते ॥१६
उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसंज्ञितम् ।
मध्ये तु विषवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिःसृतम् ॥१७

मनुष्यों के आहार को अपान वायु नीचे की ओर ले जाता है। यह वायु के मूत्र और शुक्र (वीर्य) का वहन करने वाला है। इसी लिये इसको अपान–इस नाम से कहा जाता है ॥६॥ पीया हुआ पदार्थ और खाया हुआ पदार्थ तथा सूंघा हुआ, रक्त, पित्त, कफ, और वायु इन सबको शरीर में जो वायु सम स्वरूप में रखता है वह समान नाम से कहा गया है ॥१०॥ जो अधरों का स्पन्दन किया करता है, मुख और नेत्ररोग के प्रकोपन किया करता है तथा मर्मों का उद्वीजन करता है वह वायु उदान–इस नाम से कहा गया है। ॥११॥ व्यान अङ्ग को विनामयित करता है और व्यान व्याधि का प्रकोपन है। प्रतिदिन की भाँति कण्ठ से व्यापन होने से यह व्यान कहा जाता है। ॥१२॥ उद्गार में इसका नाम नाग होता है। उन्मीलन करने में स्थित यह कूर्म नाम वाला है। भक्षण क्रिया करने में कृकर आदि जँभाई लेने में इसका नाम देवदत्त होता है ॥१३॥ घोष में स्थित वायु धनञ्जय नाम से पुकारा जाता है जो कि मानव के मृत हो जाने पर भी उसे नहीं छोड़ता है। (काल

क्रिया करने पर वह निकल जाता है) इस प्रकार से यह जीव दश से नाया रहता है। इससे वह नाड़ी चक्र है ॥१४॥ संक्रान्ति, विषुव, अहोरात्र, अयन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र, धन ये सब होते हैं ॥१५॥ ऊनरात्र हिचकी है, अधिमास विजृम्भिका है, ऋण कास (खाँसी) है निःश्वास धन है, उत्तर और दक्षिण वाम और दक्षिण संज्ञा वाले जानने चाहिए। मध्य में विषुव बताया गया है। जो पुट द्वय से विनिःसृत होता है ॥१६॥१७॥

संक्रान्तिः पुनरस्यैव स्वस्थानात्स्थानयोगतः ।
सुषुम्णा मध्यमे ह्यङ्ग इडा वामे प्रतिष्ठिता ॥१८
पिंगला दक्षिणे विप्र ऊर्ध्वं प्राणो ह्यहः स्मृतम् ।
अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुर्दशात्मकः ॥१६
आयामो देहमध्यस्थः सोमग्रहणमिष्यते ।
देहातितत्त्वमायाममादित्यग्रहणं विदुः ॥२०
उदर पूरयेत्तावद्वायुना यावदीप्सितम् ।
प्राणायामो भवेदेष पूरको देहपूरकः ॥२१
पिधाय सर्वद्वाराणि निश्वासोच्छ्वासवर्जितः ।
संपूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्प्राणायामः स कुम्भकः ॥२२
मुञ्चेद्वायुं ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् ।
उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ॥२३
उच्चरति स्वयं यस्मात्त्वदेहावस्थितः शिवः ।
तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ॥२४

फिर अपने स्थान से स्थान का योग इसको ही संक्रान्ति है। सुषुम्ना मध्यम अङ्ग में और वाम में इडा प्रतिष्ठित रहा करती है ॥१८॥ पिङ्गला दक्षिण अङ्ग में रहती है। हे विप्र ! ऊर्ध्व है प्राण है जो दिन कहा गया है। अपान रात्रि है। इस प्रकार से एक ही यह वायु दश स्वरूप वाला रहा करता है ॥१६॥ इस देह के मध्य में रहने वाला आयाम ही सोम ग्रहण माना जाता है। देहाति तत्त्व जो आयाम है उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं ॥२०॥ उदर में वायु का जब तक चाहे हो पूरण करना चाहिए। इसे ही प्राणायाम कहा जाता

है। यह देहका पूरक है अतः इसे पूरक कहते हैं। समस्त द्वारों को बन्द करके और निःश्वास तथा उच्छ्वास से रहित होकर सम्पूर्ण कुम्भ की भाँति रहे। इसे ही कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है ॥२१॥२ ॥ फिर इसके पश्चात् एक श्वास से ऊपर को वायु का त्याग करे। मन्त्र के वेत्ता को चाहिए कि उच्छ्वास योग से युक्त होता हुआ वायु को ऊर्ध्व भाग मे छोड़े ॥२३॥ स्वयं तत्व-देह में अवस्थित होता हुआ शिव का उच्चारण करे। इससे तत्व वेताओं का यह ही जप कहा जाता है ॥२४॥

अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च।
अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्या करोति सः ॥२५
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी।
अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ॥२६
चन्द्राग्निरविसंयुक्तो आद्या कुण्डलिनी माता।
हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अंकुराकारसंस्थिता ॥२७
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात्।
स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं साम्बिकोत्तमः ॥२८
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः।
हंस हंसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ॥२९
तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः।
पुरुषस्य तथा देहे सबाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥३०
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः।
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ॥३१
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम्।
पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फलः ॥३२

योगीन्द्र पुरुष रातदिन में इक्कीस हजार छः सौ जप की संख्या करता है वही योगीन्द्र कहा जाता है। अजपा गायत्री का नाम है वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली है। जो उस अजपा का जप करता है उसका

पुनर्जन्म नहीं होता है ।।२५।।२६।। चन्द्र, अग्नि और सूर्य से युक्त आद्या कुण्डलिनी मानी गई है। वह हृत्प्रदेश मे रहती है और अंकुर के आकार मे संस्थित होती है ।।२७।। 'वहाँ पर सृष्टि का न्यास होता है। वह सर्ग के अवलम्बन से उसमें स्रवण करते हुए अमृत का चिन्तन करे यह सात्विकोत्तम है। ।।२८।। यह देह में स्थित सबल समझना चाहिए जो निष्फल है वह देह से वर्जित होता है। जो हंस हंस यह बोलता है वह हस नाम सदा शिव ही हैं। ।।२९।। तिलों में जिस तरह तैल और पुष्पों में जिस प्रकार से गन्ध समाश्रित रहा करता है उसी भाँति से वह पुरुष के देह मे बाहिर और भीतर स्थित रहता है ।।३।। ब्रह्म का स्थान हृदय में है, कण्ठ में विष्णु समाश्रित रहा करते हैं. तालु के मध्य में रुद्र स्थित हैं और ललाट में महेश्वर रहते हैं ।।३१।। प्राण के अग्रभाग को शिव जानना चाहिए और उसके अन्त में परापर को समझो। इस तरह पाँच प्रकार का सकल कहा गया। इसके विपरीत जो है वह निष्कल अथवा निष्फल होता है ।।३२।।

प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि ।
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ।।३३
गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ।
अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ।।३४
स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ।।३५
ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् ।
याप्यायने प्लुतश्चेति मूर्ध्नि विन्दुविभूषितः ।।३६
आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणे हितः ।
आदावन्ते च हृदयमाकृष्टौ सम्प्रकीर्तितम् ।।३७
देवस्य दक्षिणां मूर्ति पञ्चलक्षं स्थितो जपेत् ।
जपान्ते घृतहोस्तु दशसाहस्रिको भवेत् ।।३८
एवमाप्यायितो मन्त्रो वश्योच्चाटादि कारयेत् ।

ऊर्ध्वे शून्यमधः शून्यं मध्ये शून्यं निरामयम् ॥३९
त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः ।
प्रासादं यो ना जानाति पञ्चमन्त्रमहातनुम् ॥४०
अष्टत्रिंशत्कलायुक्तं स आचार्य उच्यते ।
तथोंकारं च गायत्रीं रुद्रादीन्वेत्यसौ गुरुः ॥४१

•

प्रासाद नाद को उठा कर शततन्तु यदि जाप किया जावे तो छः मास में सिद्धि को प्राप्त होता है किन्तु योग से युक्त होकर करे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥३३॥ गम और आगम के ज्ञान से समस्त प्रकार के पापों का क्षय हो जाता है और अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों के गुण एवं ऐश्वर्य को छँ मास में ही प्राप्त कर लेता है ॥३४॥ मैंने स्थूल, सूक्ष्म और पर इस प्रकार से प्रासाद का वर्णन किया है। वह प्रासाद ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इस प्रकार से तीन प्रकार का लक्षित करना चाहिए ॥३६॥ ह्रस्व पापों का दाह करता है—दीर्घ मोक्ष का प्रदान किया करता है और प्लुत है वह आप्याय-यन (तृप्ति) करने में मूर्द्धा में बिन्दु स्वरूप में विभूषित रहता है ॥३६॥ आदि और अन्त में ह्रस्व के फट्कार मारण में हितकारी होता है और आदि तथा अन्त में हृदय को आवर्पण में कहा गया है ॥३७॥ देव की दक्षिणा मूर्ति को स्थित होकर पाँच लाख जप करना चाहिए। जप के अन्त में घृत का होम दश सहस्र करना चाहिए ॥३८॥ इस प्रकार से पूर्ण आप्यायित होने वाला अर्थात् पूर्णतया संतृप्त हुआ मन्त्र वश्य कर्म एवं उच्चाटन आदि सभी कर्मों को करा सकता है। ऊर्ध्व में शून्य, मध्य में शून्य और अधोभाग में निरामय शून्य में ॥३९॥ जो ब्राह्मण इस प्रकार से तीनों प्रकार के शून्य का ज्ञान रखता है वह निश्चय ही छुटकारा पा जाता है। जो प्रासाद को नहीं जानता है जो कि पञ्च-मन्त्र का महातनु होता है और अड़तीस कला से युक्त है वह आचार्य नहीं कहा जाया करता हैं। इसी प्रकार से ओङ्कार और गायत्री एवं रुद्र आदि को भी यह गुरु जानता है ॥४०॥४१॥

८३—गायत्रीनिर्वाणम्

एवं संध्याविधिं कृत्वा गायत्रीं च जपेत्स्मरेत् ।
गायञ्छिष्यान्यतस्त्रायेत्कायः (यं) प्राणांस्तथैव ॥१
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्री ततो यतः ।
प्रकाशनात्सा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥२
तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् ।
भा दीप्ताविति रूप हि भ्रस्ज पाकेऽथ तत्स्मृतम् ॥३
ओषध्यादिकं पचति भ्राज् दीप्तौ तथा भवेत् ।
भर्गः स्याद्भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितम् ॥४
वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ।
स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥५
वृणोतेर्वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ।
नित्य शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ॥६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि विमुक्तये ।
नज्ज्योतिर्भगवान्विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥७
शिवं केचित्पठन्ति स्म शक्तिरूपं पठन्ति च ।
केचित्सूर्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ॥८
अग्न्यादिरूप। विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ।
तत्पदं परम विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ॥९

इस अध्याय में गायत्री के निर्वाण का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव बोले—इस उक्त विधि से सन्ध्या के विधान को पूर्ण करके फिर गायत्री का स्मरण एवं जाप करना चाहिए। शिष्यों को गायन करती हुई यह त्राण किया करती है। शरीर और प्राण दोनों की रक्षा करने वाली है इसी लिये इसे गायत्री नाम से कहा गया है। यह सविता का प्रकाश किया करता है इसलिए इसका नाम सावित्री पड़ा है। यह वाणी के रूप वाली है इसीलिये सरस्वती है ॥१-६॥ उसकी जो ज्योति है वह ही परम ब्रह्म है। इससे भर्ग

तेज कहा गया है। यह "भादीप्तौ" इस धातु का दीप्ति के अर्थ में रूप बनता है। अथवा "भ्रस्ज पाके"—इस धातु से यह रूप बताया गया है ॥३॥ ओषधि आदि का पाचन करती है तथा अन्य "भ्राज् दीप्तौ"—इस धातु से यह 'भर्ग' रूप बनता है। भ्राजते इति भर्ग इस तरह से बहुत प्रकार से छन्द ने कहा है ॥४॥ 'वरेण्यम्'—इसका अर्थ है कि यह समस्त प्रकार के तेजों से श्रेष्ठ परम पद है और स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) कामों के द्वारा सदा ही वरण करने के योग्य होता है ॥ ५ ॥ "वृञ् वरणे"—इस धातु से जिसका अर्थ वरण करना होता है, जो जाग्रत्–स्वप्न आदि से रहित है, नित्य एवं शुद्ध तथा बुद्ध है, एक एवं सत्य स्वरूप है उसका ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥ मैं परं ब्रह्म ज्योति का ध्यान करता हूँ और अपनी विशेष रूप से मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये ही ध्यान कर रहा हूँ। वह ज्योति भगवान् विष्णु हैं जो जगत् के जन्म आदि के कारण स्वरूप हैं। उसी ज्योति को कुछ साधना करने वाले भक्त शिव कहा करते हैं और अन्य भक्त गण शक्ति कहते हैं। कुछ उसे सूर्य और कुछ वेद के ज्ञाता अग्नि होत्र करने वाले अग्नि कहा करते हैं ॥ ७-८ ॥ अग्नि आदि के रूप वाला विष्णु ही वेद आदि में 'ब्रह्म'—इस नाम से गाया जाया करता है। वह ही विष्णु का देव सविता का परम् पद कहा गया है ॥ ९ ॥

महदाद्यं सूयते हि स्वयंज्योतिर्हरिः प्रभुः ।
पर्जन्यो वायुरादित्यः शीतोष्णाद्यं श्च पाचयेत् ॥१०
अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥११
दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि ।
नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः ॥१२
चोदयात्प्रेरयेद्बुद्धीर्भोक्तॄणां सर्वकर्मसु ।
दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्याग्निरूपवान् ॥१३
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।
ईशावास्यमिदं सर्वं महदादि जगद्धरिः ॥१४

स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ॥१५
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च ।
ध्यानेन पुरुषोऽयं च द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले ॥१६
तत्त्वं सदसि चिद्ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकम् ॥१७
देहादिजाग्रदाद्ब्रह्म अहं ब्रह्मेति धीमहि ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमनन्त ओम् ॥
ज्ञानानि शुभकर्मादीन्प्रवर्तयति यः सदा ॥१८

महद् आदि प्रसूत किये जाते है । प्रभु हरि स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। पर्जन्य-वायु और आदित्य शीत और उष्ण आदि से पाचन करते हैं ॥ १० ॥ अग्नि में प्रास्त आहुति जो कि विधिपूर्वक भली भाँति दी जाती है वह आदित्य को पहुंचती है । फिर आदित्य (सूर्य) से वृष्टि होती है । वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है और उस अन्न से प्रजा का उद्भव हुआ करता है ॥ ११ ॥ दधाति (डुधाञ् धारणे) इस धातु से धीमहि प्रयोग होता है । इसका अर्थ होता है कि मन से धारण करें । जो भर्ग है वह 'नः' अर्थात् हमारी समस्त प्राणियों की बुद्धि को प्रचोदित करे अर्थात् प्रेरणा प्रदान करे । भोक्ताओं के समस्त कर्मों में बुद्धि को समुचित प्रेरणा प्राप्त होवे । दृष्ट और अदृष्ट विपाकों मे विष्णु–सूर्य और अग्नि के स्वरूप वाला ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा अभ्र मे जाया करता है । महद् से आदि लेकर यह सम्पूर्ण जगत् ईश का ही आवास है । भगवान् हरि स्वर्ग आदि के द्वारा क्रीड़ा किया करते हैं। जो देव हंस हैं वह प्रभु पुरुष है । आदित्य के अन्तर्गत (मध्य में स्थित) भर्ग नाम वाला तेज है । मुमुक्षुओं (मोक्ष की इच्छा रखने वालों) के द्वारा तीन प्रकार के (आध्यात्मिक–आधिदैविक–आधिभौतिक) दुःख के और संसार में जन्म लेना तथा मृत्यु को प्राप्त होना इसके विनाश के लिए ध्यान से सूर्य मंडल में इस पुरुष का दर्शन करना चाहिए ॥१२ से १६॥ सदस में (सभा में) तत्त्व-विद् ब्रह्म जोकि भगवान् विष्णु का परम पद है, सविता देव का जो भर्ग

तुरीयक एवं वरेण्य होता है। हे देहादि जाग्रद् ब्रह्म पर्यन्त मैं ही ब्रह्म हूँ—इस प्रकार से ध्यान करें। जो यह आदित्य मे पुरुष है वह यह मैं ही हूँ ओम् अनन्त हूँ। जो सर्वदा ज्ञान और शुभ कर्म आदि का प्रवर्त्तन किया करता है ॥१७-१८॥

८४—राजाभिषेककथनम्

पुष्करेण रामाय राजधर्मं हि पृच्छते ।
यथाऽऽदौ कथितं तद्वद्वसिष्ठ कथयामि ते ॥१
राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्माद्राजधर्मतः ।
राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापालः सुदण्डवान् ॥२
पालयिष्यामि दः सर्वान्धर्गस्थान्व्रतमाचरेत् ।
संवत्सरं स वृणुयात्पुरोहितमथ द्विजम् ॥३
मन्त्रिणश्चाखिलात्मज्ञान्महिषीं धर्मलक्षणाम् ।
सांवत्सरं नृपः काले ससंभारोऽभिषेचनम् ॥४
कुर्यान्मृते नृपे नात्र कालस्य नियमः स्मृतः ।
तिलैः सिद्धार्थकैः स्नानं सांवत्सरपुरोहितैः ॥५
घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः ।
अभयं घोषयेद्बद्धान्मोचयेद्राज्यपालके ॥६
पुरोधसाऽभिषेकात्प्राक्कार्यैन्द्री शान्तिरेव च ।
उपवास्याभिषेकाहे वेद्यग्नौ जुहुयान्मनून् ॥७
वैष्णवानैन्द्रमन्त्रांस्तु सावित्रान्वैश्वदेवतान् ।
सौम्यान्स्वस्त्ययनं शर्म आयुष्याभयदान्मनून् ॥८

इस अध्याय में राजा के अभिषेक का वर्णन किया जाता है। श्री अग्नि ने कहा—राजा के क्या-क्या धर्म हुआ करते हैं—यह बात पूछने वाले श्रीराम के लिये पुष्कर ने जो सबसे प्रथम आदि काल में कहा था। हे वसिष्ठ ! ठीक उसी के समान मैं तुमको बतलाता हूं ॥१॥ पुष्कर ने कहा—मैं अब राजा के धर्म को बताऊँगा। पूर्ण राजा धर्म से राजा शत्रुओं का हनन

करने वाला और प्रजा का पालन करने वाला सुदण्ड वाला होता है ॥२॥ समस्त धर्म में स्थित रहने वाले आप लोगों का मैं पालन करूँगा—इस प्रकार के व्रत को ग्रहण करना चाहिए। उस राजा को सम्वत्सर तक ब्राह्मण पुरोहित का वरण करना चाहिए ॥३॥ आत्मज्ञ समस्त मन्त्रियों का और धर्म के लक्षणों वाली महिषी (पट्टाभिषिक्त प्रधान रानी) का वरण करे। समय पर पूरे सम्भार के सहित साम्वत्सर राजा का अभिषेचन होता है ॥४॥ राजा के मृत हो जाने पर ही अभिषेक नहीं करना चाहिए। इसके लिए काल का नियम कहा गया है। सिद्धार्थक तिलों से साम्वत्सर पुरोहितों के द्वारा स्नान कराया जाता है ॥५॥ राजा का जय घोषित करे कि राजा भद्रासन पर स्थित हुआ है। समस्त प्रजा में किसी प्रकार का अब भय नहीं होगा—ऐसी भी सर्वत्र राज्य मे घोषणा करनी चाहिए। जो राज्य के पालन में वृद्ध हों उन्हें छुटकारा दिला देना चाहिए ॥६॥ पुरोहित के द्वारा राज्याभिषेक होने से पूर्व ऐन्द्री शांति कर देनी चाहिए। अभिषेक के दिन में उपवास करके वेदी की अग्नि में मन्त्रों से हवन करना चाहिए ॥७॥ विष्णु सम्बन्धी मन्त्रों का तथा इन्द्र से सम्बन्धित मन्त्रों का और सावित्र एवं वैश्व दैवत सौम्य मन्त्रों का उच्चारण कर हवन करे। स्वस्त्ययन एव कल्याण तथा आयुष्य और अभय देने वाले मन्त्रों से हवन करना चाहिए ॥८॥

अपराजितां च कलशं वन्हेर्दक्षिणपार्श्वगम् ।
संपातवन्तं हैमं च पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥९
प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः ।
रथौघमेघनिर्घोषो विघूमश्च हुताशनः ॥१०
अनुलोमः सुगन्धिश्च स्वस्तिकाकारसन्निभः ।
प्रसन्नार्चिर्महाज्वालः स्फुलिङ्गरहितोहितः ॥११
न व्रजेयुश्च मध्येन मार्जारमृगपक्षिणः ।
पर्वताग्रमृदा तावन्मूर्धानं शोधयेन्नृपः ॥१२
वल्मीकाग्रमृदा कर्णौ वदनं केशवालयात् ।
इन्द्रालयमृदा ग्रीवां हृदयं तु नृपाजिरात् ॥१३

करिदन्तोध्दृतमृदा दक्षिणं तु तथा भुजम् ।
वृषशृङ्गोद्धृतमृदा वामं चैव तथा भुजम् ॥१४
सरोमृदा तथा पृष्ठमुदरं संगमान्मृ दा ।
नदीतटद्वयमृदा पार्श्वे संशोधयेत्तथा ॥१५
वेश्याद्वारमृदा राज्ञः कटिशौचं विधीयते ।
यज्ञस्थानात्तथैवोरू गोस्थानाज्जानुनी तथा ॥१६

अपराजिता–कलश–वह्नि के दक्षिण पार्श्व में स्थित सम्पात वाले हैम कलश का गन्धाक्षत पुष्पों से पूजन करना चाहिए ॥ ९ ॥ उस समय में अग्नि किस प्रकार का हो—यह बताते हैं—दक्षिण की ओर आवर्त्त शिखा वाला तपाये हुए सुवर्ण की प्रभा के तुल्य प्रभा वाला, रथ समूह और मेघ के निर्घोष वाला, धूँआ से रहित हुताशन (अग्नि) होना चाहिए ॥१०॥ अनुलोम, सुन्दर गन्ध युक्त तथा स्वस्तिक (साथिया) के आकार के तुल्य होवे । प्रसन्न अर्चि (लौ) वाला अर्थात् अच्छी तरह से जिसमें लौ निकल रही हो, महान् ज्वाला वाला और स्फुलिंगों (पतिङ्गे) से रहित अग्नि ही उस बेला में हितकारी होता है ॥११॥ राज्याभिषेक के समय पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि मध्य भाग से मार्जार (बिल्ली) मृग और पक्षी न जावें । राजा को पर्वत की चोटी की मिट्टी से अपने मूर्द्धा का शोधन करना चाहिए ॥१२॥ सर्प की बाँबी (रहने का बिल या स्थान) के आगे की मिट्टी से कानों का शोधन करे। भगवान् केशव के देवालय की मिट्टी से मुख का शोधन तथा इन्द्रालय की मृत्तिका से ग्रीवा का और राजा के आंगन की मिट्ठी से हृदय को शोधन करना चाहिए ॥१३॥ हाथी के दाँत से उखाड़ी हुई या खोदी हुई मिट्टी से दाहिनी भुजा का एवं बैल के सींग से खोदी हुई मृत्तिका से बाँई भुजा का शोधन करे ॥१४॥ सरोवर की मृत्तिका से पीठ का और संगम की मिट्टी से उदर का और नदी के दोनों तटों की मिट्टी से दोनों पसवाड़ों का शोधन करना चाहिए ॥१५॥ किसी वेश्या के घर के द्वार की मिट्टी से राजा की कटि (कमर) की शुद्धि करनी चाहिए। यज्ञ स्थान की मृत्तिका से दोनों ऊरुओं का तथा गो-वन्दन के स्थान की मृत्तिका से दोनों घुटनों का शोधन करना आवश्यक है ॥१६॥

अश्वस्थानात्तथा जङ्घे रथचक्रमृदाऽङ्घ्रिके ।
मूर्धानं पञ्चगव्येन भद्रासनगतं नृपम् ॥१७
अभिषिञ्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः ।
पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णेन ब्राह्मणः ॥१८
रूप्यकुम्भेन याम्ये च क्षीरपूर्णेन क्षत्रियः ।
दध्ना च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च ॥१९
मृन्मयेन जलेनोदक्शूद्रामात्योऽभिषेचयेत् ।
ततोऽभिषेकं नृपतेर्बह्वृचप्रवरो द्विजः ॥२०
कुर्वीत मधुना विप्रश्छन्दोगश्च कुशोदकैः ।
संपातवन्त कलशं तथा गत्वा पुरोहितः ॥२१
विधाय वन्हिरक्षां तु सदस्येषु यथाविधि ।
राजश्रियाऽभिषेके च ये मन्त्राः परिकीर्तिताः ॥२२
तैस्तु दद्यान्महाभाग ब्राह्मणानां स्वनैस्तथा ।
ततः पुरोहितो गच्छेद्वेदिमूलं तदेव तु ॥२३
शतच्छिद्रेण पात्रेण सौवर्णेनाभिषेचयेत् ।
या ओषधीत्योषधीभीरथेत्युक्त्वेति गन्धकैः ॥२४

घुड़साल की मिट्टी से दोनों जाँघों का और रथ के पहिये की लगी हुई मिट्टी से पैरों का शोधन करे। भद्रासन पर संस्थित राजा के मूर्द्धा को पञ्चगव्य से अभिषेचन करना चाहिए। यह अभिषेक चार अमात्य (मन्त्री) घटों के द्वारा करें। पूर्व में घृत से भरा हुआ सुवर्ण के घट से ब्राह्मण करे। चाँदी के निर्मित घट से जोकि दूध से भरा हुआ हो दक्षिण में क्षत्रिय अभिषेचन करे। पश्चिम दिशा में स्थित होकर वैश्य ताम्र का बना हुआ दही से परिपूर्ण घट लेकर अभिषेक करे ॥१७।१८।१९॥ मिट्टी के घट को लेकर जोकि जल से भरा हुआ हो उत्तर दिशा में स्थित होकर शूद्र वर्ण वाला अमात्य राजा का अभिषेक करे। इसके अनन्तर बह्वृच श्रेष्ठ द्विज राजा का अभिषेचन करे ॥२०॥ विप्र मधु से और छन्दोग कुशोदक से करे। पुरोहित सम्पात वाले कलश को जाकर वह्नि की रक्षा करके सदस्यों में यथाविधि राज श्री के अभिषेक में जो

भी मन्त्र कहे गये हैं उनके द्वारा तथा महाभाग वाले ब्राह्मणों के शब्दों के द्वारा देना चाहिए। इसके उपरान्त पुरोहित वेदी के मूल के निकट जावे ॥२०।२१। २२।२३॥ सौ छिद्र वाले सुवर्ण के पात्र से अभिषेक करना चाहिए। "या ओषधि स्योषधी भीरथ इस मन्त्र का उच्चारण कर गन्ध के द्वारा स्पर्श करे ॥२४॥

पुष्पैः पुष्पवतीत्येव ब्राह्मणेति च बीजकैः ।
रत्नैराशुः शिशानश्च ये देवाश्च कुशोदकैः ॥२५
यजुर्वेद्यथर्ववेदी गन्धद्वारेति संस्पृशेत् ।
शिरः कण्ठं रोचनया सर्वतीर्थोदकैर्द्विजाः ॥२६
गीतवाद्यादिनिर्घोषैश्चामरव्यजनादिभिः ।
सर्वौषधिमयं कुम्भं धारयेयुर्नृपाग्रतः ॥२७
तं पश्येद्दर्पणं राजा घृतं वै मङ्गलादिकम् ।
अभ्यर्च्य विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान् ॥२८
व्याघ्रचर्मोत्तरां शय्यामुपविष्टः पुरोहितः ।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पट्टबन्धं प्रकारयेत् ॥२९
राज्ञो मुकुटबन्धश्च पञ्चचर्मोत्तरं ददेत् ।
ध्रुवाद्यैरिति च विशेद्वृषजं वृषभांशजम् ॥३०
द्वीपिजं सिंहजं व्याघ्रजात चर्म तदासने ।
अमात्यसचिवादींश्च प्रतीहारः प्रदर्शयेत् ॥३१
गोजाविगृहदानाद्यैः सांवत्सरपुरोहितौ ।
पूजयित्वा द्विजान्प्राच्य ह्यन्यान्भूगोत्रमुख्यकैः ॥३२
वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं नत्वाऽथ पृष्ठतः ।
वृषमालभ्य गां वत्सं पूजयित्वाऽथ मन्त्रितम् ॥३३
अश्वमारुह्य नागं च पूजयेत्तं समारुहेत् ।
परिभ्रमेद्राजमार्गे बलयुक्तः प्रदक्षिणम् ॥३४
पुरं विशेच्च दानाद्यैः प्राच्यं सर्वान्विसर्जयेत् ॥३५

"पुष्पवती" इत्यादि के द्वारा पुष्पों से "ब्राह्मण" इत्यादि के द्वारा बीजों से 'आशु शिशानश्च' इससे रत्नों से 'ये देवाश्च' इत्यादि से कुशोदक के द्वारा, यजुर्वेदी तथा अथर्ववेदी 'गन्ध द्वारा' इत्यादि मन्त्र से संस्पर्श करे। शिर और कण्ठ को रोचना से करें और ब्राह्मण समस्त तीर्थों के लाये हुए जलों से युक्त एवं सर्वौषधि के सहित कुम्भ को राजा के आगे गीत-वाद्य के निर्घोषों द्वारा तथा चामर और व्यजनों के सहित धारण करें ॥२५।२६।२७॥ राजा उसको देखे तथा दर्पण, घृत और मङ्गल वस्तुओं को देखे। फिर भगवान् *विष्णु का अर्चन करे और ब्राह्मणों–इन्द्रादि देवों तथा ग्रहेश्वरों का अभ्यर्चन* करना चाहिए॥ २८॥ व्याघ्रचर्म वाली शय्या पर उपविष्ट पुरोहित मधुपर्क आदि देकर यह बन्ध करे॥ २९ ॥ राजा को मुकुट बन्ध पश्च चर्मोत्तर देवे। 'ध्रुवा द्यौः' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा विशेष्टपज–वृषभांशज–द्वीपिज–सिंहज और और व्याघ्र जात चर्म को उसके आसन पर देवे। फिर प्रतीहार को अमात्य एवं सचिव आदि को दिखलाना चाहिए ॥३०।३१॥ गो–अजादि–गृह आदि के दानों से द्वारा साम्वत्सर पुरोहितों का पूजन करके तथा अन्य द्विजों का यजन करके गोत्र के मुख्य व्यक्तियों के साथ अग्नि की परिक्रमा करे। गुरु का अभिवादन करके पीछे वृष का आलभन कर गौ और वत्स का पूजन करे मन्त्रित अश्व और नाग का पूजन करे और उस पर फिर आरोहण करे। राज मार्ग मे दक्षिण की ओर से भ्रमण करना चाहिए। इसके उपरान्त पुर में प्रवेश करे और दानादि से सबका सत्कार करके विसर्जित करे॥३२ से ३५॥

८५—सहायसंपत्तिः

सोऽभिषिक्तः सहामात्यो जयेच्छत्रून्नृपोत्तमः।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्त्रियोऽथ वा ॥१
कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतीहारश्च नीतिवित्।
दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिबलान्वितः ॥२
ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तः क्लेशसहः प्रियः।
सांधिविग्रहिकः कार्यः षाड्गुण्यादिविशारदः ॥३

और रसोई घर में जाने वाला होना चाहिए ।।४।। राजा के सभा के जो सदस्य हों वे धर्म के ज्ञाता—लेखक और अक्षर वेत्ता एवं मित्र होने चाहिए । जो राजा के दौवारिक अर्थात् द्वारपाल हों वे हितैषी और आह्वान करने के समय को जानने वाले होने चाहिए ।।५।। जो धन का अध्यक्ष अर्थात् कोष (खजाने) का स्वामी अधिकारी हो वह रत्नादि की पूरी जानकारी रखने वाला—अर्थद्वार में हितकारी नर होना चाहिए । जो राज घराने की व्यक्तियों की चिकित्सा करने वाला वैद्य हो वह आयुर्वेद शास्त्र का पूर्ण पण्डित होना चाहिए । हाथीखाने का अधिकारी हस्तिविद्या का पण्डित होना चाहिए । इसमें सुलक्षण–स्वभाव आदि सबके ज्ञान होना आवश्यक है ।। ६ ।। श्रम को जीतने वाला गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष होने चाहिए जो गज और अश्व दोनों का आरोहण भी जानते हैं । दुर्ग का अध्यक्ष हितकारी होवे । जो रथों का पति हो वह वास्तु विद्या का पण्डित होना चाहिए ।।७।। यन्त्र मुक्त–पाणिमुक्त–अमुक्त और मुक्तधारित नियुद्ध में कुशल और राजा का हितैषी एवं अस्त्रों की विद्या का आचार्य होना चाहिए ।।८।।

वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वार्षिकाः स्त्रियः ।
सप्तत्यब्दास्तु पुरषाश्चरेयुः सर्वकर्मसु ।।९
जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वा वृत्तिर्विधीयते ।
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ।।१०
उत्तमाधममध्यानि) पुरुषाणि (न्वि) नियोजयेत् ।
जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानानयेद्धितान् ।।११
धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथा शुचीन् ।।१२
स्त्रीषु पण्ढान्नियुञ्जीत तीक्ष्णान्दारुणकर्मसु ।
यो यत्र विदितो राज्ञा शुचित्वेन तु तं नरम् ।।१३
धर्मे चार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् ।
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ।।१४

॥१३॥१४। राजा और मन्त्री दोनों को न्याय के अनुसार हस्ति वनेचरों की नियुक्ति करे जो उनके पदों के खोजों के ढूँढ़ने में कुशल हों वैसे ही वहाँ अध्यक्ष भी रक्खे ॥१५॥ जिसका जिस काम में कौशल हो उसका उसी के करने में नियोजन करे। जिनके पिता तथा पितामह नौकर रहे हों उनको ही समस्त कार्यों में नियुक्त करने चाहिए ॥१६॥

बिना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समा मताः।
परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनान्संश्रयकाम्यया ॥१७
दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान्संश्रयेत प्रयत्नतः।
दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन्न तद्वृत्ति वर्तयेद्वशे ॥१८
देशान्तरागतान्पार्श्वे चारैर्ज्ञात्वा हि पूजयेत्।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिशमपि चैकतः ॥१९
भृत्या विशिष्टं विज्ञेयाः कुभृत्याश्च तथैकतः।
चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदा चरान् ॥२०
जनस्याविहितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परम्।
वणिजो मन्त्रकुशलान्सांवत्सरचिकित्सकान् ॥२१
तथा प्रव्रजिताकारान्बलाबलविवेकिनः।
नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्छ्रद्दध्याद्बहुवाक्यतः ॥२२
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान्।
शुभानामशुभानां च ज्ञानं कुर्याद्वशाय च ॥२३
अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद्विरागजम्।
जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनरञ्जनात् ॥२४

दायाद कृत्यों के बिना वहाँ पर वे सामान माने गये हैं। दूसरे राजा के यहाँ से प्राप्त होने वाले मनुष्यों को, जोकि यहाँ आश्रय प्राप्त करना चाहते हैं, वे चाहे दुष्ट भी हों या सज्जन हों उनको प्रयत्न पूर्वक अवश्य ही आश्रय दे देना चाहिए। यदि यह ज्ञान हो जावे कि यह दुष्ट है तो उसका विश्वास किसी भी तरह न करे और न उसके व्यवहार में आवे तथा न वशीभूत बने ॥१७-

१८॥ जो अन्य देश से पास में आये हों उनका दूतों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके फिर उनका सत्कार करना चाहिए। शत्रु–अग्नि–विष–सूर्य और निस्त्रिश ये सब एक ओर हैं इन सबसे भृत्य विशिष्ट जानने चाहिए। जो बुरे भृत्य होते हैं वे एक ओर हैं। दूत ही राजा के नेत्र हुआ करते हैं अर्थात् दूतों के द्वारा ही राजा सब कुछ देखा करते हैं। इसलिये सदा अच्छे दूतों की ही नियुक्ति राजा को करनी चाहिए ॥१६।२०॥ जन के अविदित–सौम्य तथा आपस में अज्ञात–वणिज–मन्त्र कुशल–साम्वत्सर चिकित्सक–प्रव्रजित आकार वाले–बलाबल के विवेक रखने वाले दूतों की नियुक्ति करनी चाहिए। राजा को कभी भी एक आदमी पर श्रद्धा (भरोसा) नहीं करना चाहिए। बहुतों के वाक्यों पर भरोसा करना चाहिए ॥२१।२२॥ भृत्यों के राग और अपरागों को तथा जन के गुणों और अगुणों को शुभों का तथा अशुभों का ज्ञान करना चाहिए। वश के लिए ज्ञान करना चाहिए। जो कर्म अनुराग करने वाला हो उसे करे जो विराग करने वाला हो उसे त्याग देवे। जनता के अनुराग पूर्ण लक्ष्मी से और जन रञ्जन से राजा होता है ॥२३।२४॥

८६—दुर्गसंपत्तिः

दुर्गसंपत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः।
वैश्यशूद्रजनप्रायो ह्यनाहार्यस्तथा परैः ॥१
किंचिद्ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्मकरस्तथा।
अदेवमातृको भक्तजलो देशः प्रशस्यते ॥२
परैरपीडितः पुष्पफलाधान्यसमन्वितः।
अगम्यः परचक्राणां व्यालतस्करवर्जितः ॥३
षण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद्बली।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥४
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च भार्गव।
सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभेदनम्) ॥५

पुरं तत्र च हट्टाद्यं देवतायतनादिकम् ।
अनुयन्त्रायुधोपेतं सोदकं दुर्गमुत्तमम् ॥६
राजरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विषादितः ।
पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विषार्दनः ॥७
शतावरी छिन्नरुहा विषघ्नी तण्डुलीयकम् ।
कोषातकी च कल्हारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ॥८
मण्डूकपर्णी वाराही धान्यानन्दकमेव च ।
उन्मादिनी सोमराजी विषघ्नं रत्नमेव च ॥९

पुष्कर ने कहा—अब मैं दुर्ग सम्पत्ति के विषय में वर्णन करता हूँ। राजा को सदा दुर्ग में ही निवास करना चाहिए। जो दुर्ग प्रायः वैश्य और शूद्र जन वाला होता है तथा शत्रुओं के द्वारा आहरण करने के अयोग्य होता है ॥१॥ राजा के निवास का देश वही प्रशस्त होता है जहाँ पर कुछ ब्राह्मणों से संयुक्त हो और बहुत कर्म करने वाले व्यक्ति जहाँ रहते हों। अदेव मातृक और भक्त जल देश होना चाहिए ॥ २ ॥ दूसरो के द्वारा पीड़ा से रहित और पुष्प तथा फल और धान्य से समन्वित स्थान राजा के निवास का होना चाहिए। परचक्रों के गमन न करने के योग्य तथा व्याल और तस्करों से वर्जित होवे ॥३॥ छै प्रकार के दुर्गों में से एक तम दुर्ग बनवाकर बली को निवास करने के योग्य होता है। दुर्ग को छै किस्म ये हैं—धनुदुर्ग-महीदुर्ग-नरदुर्ग-वार्क्ष-अम्बुदुर्ग और गिरिदुर्ग ये छै भेद है। हे भार्गव ! इन छे प्रकार के दुर्गों में सबसे श्रेष्ठ शैल दुर्ग होता है। यह अभेद्य और अन्य भेदन होता है ॥४।५॥ वहाँ पर पुर होना चाहिए जहाँ हट्ट आदि सब हों और देवायतन आदि भी हों यन्त्रायुधों से युक्त होना चाहिए तथा जल के सहित दुर्ग उत्तम दुर्ग होता है ॥६॥ अब राजा की रक्षा के विषय में बताया जाता है। राजा विष आदि से रक्षा करने के योग्य होता है। शिरीष का पञ्चाङ्ग मूत्र के साथ पीसा हुआ विष का नाशक होता है ॥७॥ छिन्न रुहा शतावरी विष के नाश करने वाली होती है। तण्डुलीयक–कोषातकी–कल्हारी–ब्राह्मी–चित्र पटोलिका–मण्डूक

तथा सुरक्षा एवं सुव्यवस्था कर उन्हें पालित रक्खे और देवों की स्थापना करनी चाहिए। देवालय जो मिट्टी का बनवाया जावे उससे पुण्य होता है किन्तु वही यदि काष्ठ से बनवावे तो ज्यादा पुण्यप्रद होता है। लकड़ी से भी अधिक पुण्य ईंटों के बनवाने से होता है ।। १२ ।। ईंटों से भी पत्थरों द्वारा बनवाने से पुण्य होना है। शैलज से भी अधिक पुण्य स्वर्ण एवं रत्नों द्वारा बनवाने से होता है। देवगृह की रचना करके क्रीड़ा करने वाला नृप समस्त सांसारिक सुखोपभोग और अन्त मे मोक्ष अर्थात् ससार के जन्म मरण स्वरूपी आवागमन से छुटकारा दोनों की प्राप्ति किया करता है ।।१३।। चित्र बनाने वाला—गीत और वाद्य आदि तथा प्रेक्षण करने के माग्य आदि एवं दान करने वाला तथा तैल, घृत, मधु और दूध आदि से देवता का स्नान कराके मानव या नृप देवलोक को चला जाता है ।।१४।। राजा का कर्त्तव्य है कि सदा ब्राह्मणों की पूजा करे और उनका पूर्णतया पालन–पोषण भी करता रहे। राजा को कभी भी द्विजत्व का हरण नही करना चाहिए। एक सुवर्ण–एक गो और एक अंगुल भी भूमि का हरण करने वाला नृप जब तक भूत सम्प्लव हो तब तक नरक की यातनाएँ भोगा करता है। दुराचार का द्वेष न करे समस्त पापों में भी स्थित को भी ब्राह्मण के वध से कहीं भी अधिक बड़ा पाप नही होता है। अदैव को दैवत करते हैं और दैवत को अदैवत ब्राह्मण किया करते हैं ।।१५।१६।१७।। ये ब्राह्मण महाभाग वाले हुआ करते हैं उन्हें तो सर्वदा ही नमस्कार ही करना चाहिए। यदि कोई सताई हुई ब्राह्मणी रोती है तो उसके उस रुदन का यह प्रभाव एव परिणाम होता है कि उससे समस्त राज्य–कुल तथा प्रजा का नाश हो जाता है ।।१८।।

साध्वी स्त्रीणां पालनं च राजा कुर्याच्च धार्मिकः ।
स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यैकदक्षया ।।१६
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां शुश्रूषेत्तं पतिं सदा ।।२०
मृते भर्तरि स्वर्गायब्रह्मचर्ये स्थिताऽङ्गना ।
परवेश्मरुचिर्न स्यान्न स्यात्कलहशालिनी ।।२१

मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका ।
देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्तृहिते रता ॥२२
धारयेन्मंगलार्थाय किंचिदाभरणं तथा ।
भर्त्राऽग्नि या विशेन्नारी साऽपि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२३
श्रियः संपूजनं कार्यं गृहसंमार्जनादिकम् ।
द्वादश्यां कार्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत्तथा ॥२४
सावित्र्या रक्षितो भर्ता सत्याचारव्रतेन च ।
सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाकरम् २॥५
पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ॥२६

जो राजा धर्म में निष्ठा रखता है उसका कर्त्तव्य है कि उसे सती-साध्वी स्त्रियों का पालन करना चाहिए। स्त्री जो प्रसन्न होती है और गृह कार्यों में भी उसे दक्ष होना चाहिए ॥१६॥ घर में जो भी सामान हो वह उसे सुसंस्कृत रखना चाहिए। तथा व्यय करने हाथ कभी नहीं भींचना चाहिए। पिता नारी को जिसे भी देवे अर्थात् जिसके साथ विवाह कर कन्या का दान कर देवे उसे अपने पति की स्त्री को भली-भांति सदा सेवा करनी चाहिए।२०। यदि स्त्री का पति मृत हो जावे और और वह उसके मरने के पश्चात् ब्रह्मचर्य में रहे तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है। स्त्री को कभी दूसरे के घर में रुचि नहीं रखनी चाहिए और न उसे कलह करने के स्वभाव वाली ही होना चाहिए ॥ २१ ॥ जब स्त्री का पति परदेश में हो तो उसे अपना शृङ्गार नहीं करना चाहिए। उसे ऐसी स्थिति में सर्वदा देवों का आराधन करते हुए अपने स्वामी के हित में संलग्न रहना चाहिए ॥ २२ ॥ केवल मंगल के लिये कोई साधारण-सा ही आभूषण उस समय उसे धारण करना चाहिए। जो नारी पति की मृत्यु हो जाने पर उसकी ही चिता के साथ जल कर सती हो जाया करती है वह भी स्वर्ग की प्राप्ति किया करती है ॥२३॥ स्त्री को सर्वदा भली प्रकार से श्री का पूजन करना चाहिए और घर का समार्जन आदि कार्य करना चाहिए। कार्तिक मास में द्वादशी के दिन विष्णु को वत्स से युक्त गौ का दान करे। सावित्री ने अपने ही सतीत्व के बल से अपने स्वामी की रक्षा की थी।

यह सच्चे आचार और व्रत का महान् व्रत होता है। मार्गशीर्ष मास की सप्तमी के दिन शुक्ल पक्ष मे सूर्य का पूजन कर नारी पुत्रों का लाभ प्राप्त करती है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२४।२५।२६॥

८७--राजधर्माः (१)

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामाधिपं नृपः।
शतग्रामाधिप चान्य तथैव विषयेश्वरम् ॥१
तेषां भोगविभागश्च भवेत्कर्मानुरूपतः।
नित्यमेव तथा कार्य तेषां चारैः परीक्षणम् ॥२
ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान्ग्रामेशः प्रशम नयेत्।
अशक्तो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत् ॥३
श्रुत्वाऽपि दशपालोऽपि तत्र युक्तिमुपाचरेत्।
वित्ताद्याप्नोति राजा वै विषयात्तु सुरक्षितात् ॥४
धनवान्धर्ममाप्नोति धनवान्काममश्नुते।
उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः क्रिया ग्रीष्मे सरिद्यथा ॥५
विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च।
पतितान्न तु गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥६
धनहीनस्य भार्याऽपि नैव स्याद्वशवर्तिनी।
राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरम् ॥७
नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणी सहधर्मिणी।
यथा स्वं सुखमुत्सृज्य गर्भस्य सुखमावहेत् ॥८

इस अध्याय में राजा के धर्मों का वर्णन किया जाता है। पुष्कर ने कहा—राजा को दस ग्रामों पर एक अधिपति नियुक्त करना चाहिए। यह ग्रामाधिप कहा जाता है। इसी प्रकार इन दस के ऊपर सौ ग्रामों पर एक अधिपति बनावे जो एक प्रकार का राजा के नीचे छोटा-सा राजा ही के समान होता है ॥१॥ उन ग्रामाधिपों का, जो दस ग्राम और ग्राम के अध्यक्ष दो तरह

के बताये गये हैं. भोग और विभाग उनके कार्यों के अनुसार ही होता है। राजा को उनके कार्य-का परीक्षण दूतों के द्वारा नित्य ही करते रहना चाहिए ॥२॥ ग्राम में यदि कोई किसी भी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जावे तो ग्राम के अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि उसे शान्त कर देवे। यदि कोई ऐसा ही दोष है कि दशपाल उसे प्रशान्त करने में असमर्थ है तो ऊपर उसके विषय में जाकर निवेदन कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ दशपाल को भी श्रवण कर प्रशम की युक्ति सोचे और उसी प्रकार से शमनभी करे। अपने सुरक्षित देश से राजा वित्त (धन) आदि प्राप्त किया करता है ॥ ४ ॥ जो धन वाला होता है वही धर्म का लाभ प्राप्त किया करता है और हमेशा धनी पुरुष ही यथेच्छ भोग किया करता है। बिना धन के सारी क्रियाएं छिन्न-भिन्न हो जाया करती है जिस तरह ग्रीष्म काल में नदी की दशा हो जाती है ॥५॥ संसार में एक पतित और निर्धन में कोई भी विशेषता नहीं दिखलाई देती है। पतित से कोई भी कुछ ग्रहण नहीं किया करते हैं और जो दरिद्र है वह स्वयं ही किसी को कुछ नहीं देता है।६। जो धन से हीन होता है उसकी भार्या भी वश में रहने वाली नहीं हुआ करती है अपने राष्ट्र को पीड़ा देने वाला राजा बहुत समय तक नरक में वास किया करता है ॥७॥ राजा को सर्वदा ऐसा ही होना चाहिए जैसे गर्भिणी और सहधर्मिणी होती हैं। वह अपने सुख का त्याग करके गर्भ के सुख का ही सदा ध्यान रक्खा करती है ॥८॥

किं यज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा यस्य न रक्षिता ।
सुरक्षिता प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः ॥९
अरक्षिताः प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम् ।
राजा षड्भागमादत्ते सुकृताद्दुष्कृतादपि ॥१०
धर्मागमो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात् ।
सुभगा विटभीतेव राजवल्लभतस्करैः ॥११
भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याः कायस्थैश्च विशेषतः ।
रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा ॥१२

अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनम् ।
दुष्टसंमर्दनं कुर्याच्छास्त्रोक्तं करमाददेत्) ॥१३
(कोषे प्रवेशयेदर्धं नित्यं चार्धं द्विजे ददेत् ।
निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात्सकलं तथा ॥१४
चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं (कं) द्विजः ।
वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे त धर्मतः ॥१५
अनृतं त वदन्दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम् ।
प्रनष्टस्वामिकमृक्थं राजाञ्यब्दं निधापयेत् ॥१६

उस राजा के यज्ञों और तपश्चर्या से क्या लाभ है जिसकी प्रजा ही रक्षित न रहती हो। तात्पर्य यह है कि बिना प्रजा की रक्षा के यज्ञ तप आदि सभी निष्फल हैं। जिस राजा की प्रजा भली-भाँति रक्षित है उसके लिए स्वर्ग गृह के समान ही होता है ॥९॥ जिस राजा की प्रजा सुरक्षित एवं सुखी नहीं हैं उसका मन्दिर भी नरक के ही तुल्य है। राजा प्रजा के सुकृत और दुष्कृत (पुण्य-पाप) दोनों से छटा भाग लिया करता है ॥ १० ॥ प्रजा के सुरक्षण से ही धर्म का आगम (आना) होता है और प्रजा की रक्षा न करने से पाप की प्राप्ति हुआ करती है। राजा के प्रिय तस्करों के द्वारा सुभगा प्रजा विटों के समान डरी हुई रहती है। विशेष रूप से कायस्थों के द्वारा खाई जाने वाली प्रजा की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिए। उनके भय से सुरक्षित प्रजा राजा की प्रिय होती है ॥११ १२॥ जिस प्रजा की रक्षा नहीं की गई है वह केवल उन लोगों का ही भोजन बन जाया करती है। इसलिए राजा को दुष्टों का भली-भाँति संमर्दन करना चाहिए और शास्त्र में जो भी बताया गया है वह कर प्रजा से लेना चाहिए ॥ १३ ॥ जो करका धान प्रजा से प्राप्त हो उसका आधा भाग कोष में जमा करना चाहिए और अर्धभाग का ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिए। श्रेष्ठ द्विज निधि को प्राप्त कर समस्त को ग्रहण कर लेवे। चतुर्थ-अष्टम और सोलहवाँ भाग ब्राह्मण को क्रम से पात्र को धर्मार्थ निधि का दान कर देना चाहिए ॥१४-१५॥ उसके विषय में झूठ बोलने वाले को दण्ड देना चाहिए। वह दण्ड वित्त का आठवाँ अंश होना चाहिए। जिस सम्पत्ति का

स्वामी नष्ट होगया हो उसे राजा अपने पास तीन वर्ष तक धरोहर के रूप में रक्खे ॥१६॥

अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ।
ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽर्थयुक्तो यथाविधि ॥१७
संपाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ।
बालदायादिकमृक्थं तावद्राजाऽनुपालयेत् ॥१८
यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वाऽतीतशैशवः ।
बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥१९
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ।
जीवन्तीनां तु तासां ये संहरेयुश्च बान्धवाः ॥२०
तान्शिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
सामान्यतो हृतं चौरैस्तद्वै दद्यात्स्वयं) नृपः ॥२१
चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात् ।
अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्डच एव सः ॥२२
न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद्गृहगैर्हृतम् ।
स्वराष्ट्रपण्यादादद्याद्राजा विंशतिम द्विज ॥२३
शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकम् ।
ज्ञात्वा संकल्पयेच्छुल्क लाभं वणिग्यथाऽऽप्नुयात् ॥२४

तीन साल के अन्दर ही स्वामी उसे ले लेवे । इसके ऊपर दूसरे से राजा को ले लेना चाहिए । जब कोई यह कहे कि यह मेरी सम्पत्ति है वह अर्थ से युक्त विधि के अनुसार सम्पत्ति का स्वरूप और संख्या आदि का संपादन करके स्वामी उस द्रव्य के लेने के योग्य होता है । बालक का दायादि जो धन हो उसे राजा उस समय तक अपने पास सुरक्षित रक्खे जब तक वह बालक बालिग अर्थात् समर्थ एवं वयस्क हो ॥ १७।१८ ॥ जब तक वह बालक समावर्त्तन से युक्त हो अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर गार्हस्थ्य में प्रविष्ट हो अथवा

राजा को रक्षा करनी चाहिए। बाल पुत्रों के विषय में और निष्कुलाओं के विषय मे भी इसी प्रकार से रक्षा करनी चाहिए ॥ १६ ॥ पतिव्रता स्त्रियों के विषय में और विधवा तथा आतुरा (रोगिणी) स्त्रियों के जब तक वे जीवित रहें यदि उनके बान्धव धन हरण करें तो उनको चोर के समान दण्ड राजा को देना चाहिए। वही धार्मिक राजा होता है। साधारणतया यदि चोरों के द्वारा धन हरण किया गया है तो राजा को स्वयं ही वह देना चाहिए ॥२०॥ ॥२१॥ चोरों की रक्षा के जो अधिकारी हों उनसे भी उस हृत धन को राजा को ले लेना चाहिए। हरण न करने पर भी जो हरण किया गया है—ऐसा कहे उसे राजा के द्वारा दण्ड देना चाहिए क्योंकि वह दण्ड के ही योग्य है ॥२२॥ वह धन राजा को नहीं देना चाहिए जो गृह के अङ्गों के द्वारा घर में ही हरण किया गया हो। अपने राष्ट्र में पण्य वस्तु (खरीदी हुई वस्तु) से राजा को, हे द्विज ! बीसवाँ भाग शुल्क लेना चाहिए ॥२३॥ और जो पराये देश से वस्तु लाई गई हो उसके क्षय और व्यय के प्रकाश करने वाले शुल्काश को समझ कर जितना वणिक् ने लाभ किया है उसके अनुसार शुल्क निश्चित करना चाहिए ॥२४॥

विंशांश लाभमादद्याद्दण्डनीयस्ततोऽन्यथा ।
स्त्रीणां प्रव्रजितानां च तरशुल्कं विवर्जयेत् ॥२५
तरेषु दासदोषेण नष्टं दासात्त दापयेत् ।
शूकधान्येषु षड्भाग शिम्बिधान्ये तथाऽष्टमम् ॥२६
राजा वन्यार्थमादद्याद्देशकालानुरूपकम् ।
पञ्चषड्भागमादद्याद्राजा पशुहिरण्ययोः ॥२७
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ।
पत्रशाकतृणानां च वंशवैणवचर्मणाम् ॥२८
वैदलानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।
षड्भागमेव चाऽऽदद्यान्मधुमांसस्य सर्पिषः ॥२९
प्रियं चापि न वाऽऽद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा करम् ।
यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ॥३०

तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः ।
श्रुतं वृत्तं च विज्ञाय वृत्तिं तस्य प्रकल्पयेत् ॥३१
रक्षेच्च सर्वशस्त्वेनं पिता पुत्रमिवौरसम् ।
संरक्ष्यमाणो राज्ञा यः कुरुते धर्ममन्वहम् ॥३२
तेनाऽऽयुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ।
कर्म कुर्युर्नरेन्द्रस्य मासेनैकं च शिल्पिनः ॥३३
भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः ॥३४

लाभ जो हो उसका बीसवाँ अंश लेना चाहिए। इसके विपरीत दण्ड देने के योग्य होता है। स्त्रियों से और साधु संन्यासियों तर शुल्क अर्थात् पार जाने का कर नहीं लेना चाहिए ॥२५॥ तरों में दास के दोष से यदि कुछ नष्ट होगया हो तो उसे दास से ही दिलवाना चाहिए। शूकधान्यों पर राजा का कर द्वारा भाग होता है। शिम्बि धान्य में आठवाँ भाग कर है ॥ २६ ॥ जो वन्य (जंगल का) अर्थ है उसे राजा को ही ले लेना चाहिए और जैसा देश तथा समय हो उसके अनुसार ही ग्रहण करना चाहिए। पशु और हिरण्य में राजा को पाँचवाँ या छठा भाग ग्रहण करना चाहिए ॥ २७ ॥ गन्ध–औषध–रस–मूल–फल–पत्र–शाक–तृण–बाँस–वेणु–चर्म–वैदल–भाण्ड और समस्त प्रकार के पाषाण की निर्मित वस्तु एवं मधुमोम और घृत इन सबका शुल्क राजा को छटा भाग ही लेना चाहिए ॥ २८ ॥ २६ ॥ जो वस्तु ब्राह्मणों को प्रिय हो उसका कोई भी कर नहीं लेवे। जिस राजा के देश में श्रोत्रिय ब्राह्मण भूख से पीड़ित रहता हो उसका वह समस्त राष्ट्र ही दुःखित रहा करता है। और वहाँ अनेक व्याधियाँ तथा दुर्भिक्ष (अकाल) और तस्कर उस राजा की प्रजा को सताया करते हैं। राजा का परम कर्त्तव्य है कि ब्राह्मण के शास्त्रीय ज्ञान तथा चरित्र को समझ कर उसकी कोई वृत्ति योग्यतानुसार कर देनी चाहिए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिस तरह पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा किया करता है उसी भाँति राजा को भी सभी प्रजा का अच्छी तरह रक्षण करना चाहिए। राजा के द्वारा संरक्षित होता हुआ जो प्रतिदिन धर्म किया करता है उससे राजा की आयु बढ़ा करती है तथा धनैश्वर्य और राष्ट्र की भी वृद्धि होती है।

शिल्पियों को एक मास पर्यन्त राज्य का काम करना चाहिए और जो अन्य अपने ही शरीर की कमाई से जीवित रहते हैं उन्हें केवल भोजन भर लेकर राजा का काम एक मास तक करना चाहिए ॥३२॥३३॥३४॥

८८—राजधर्माः (२)

पुष्कर उवाच—
राजपुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत् ॥१
शिल्पानि शिक्षयेच्चेनमाप्तैर्मिथ्याप्रियंवदैः ।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥२
न चास्य संगो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः ।
अशक्यं तु गुणाधानं कर्तुं तं बन्धयेत्सुखैः ॥३
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशांस्त्यजेन्नृपः ॥४
दिवास्वप्नं वृथाट्यां च वाक्पारुष्यं विवर्जयेत् ।
निन्दां च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत् ॥५
आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥६
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥७
कामं क्रोधं मदं मानं मोहं दर्पं च वर्जयेत् ।
ततो मृत्युजयं कृत्वा पौरजानपदं जयेत् ॥८

इस अध्याय में राजा के धर्म के विषय में फिर बताया जाता है। पुष्कर ने कहा—जो भी कोई राज्य शासन करता हो उसे राजा के पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। उसे धर्मशास्त्र—अर्थशास्त्र और कामशास्त्र की शिक्षा दिलानी चाहिए ॥१॥ आप्त (यथार्थ वक्ता) और मिथ्या प्रिय बोलने वालों

के द्वारा इस राजा के पुत्रको शिल्पों की शिक्षा दिखवावे। शरीर की रक्षा के बहाने से इसकी रक्षा करने वालों की भी नियुक्ति करनी चाहिए ॥ २ ॥ इस राज कुमार की सोहवत (साथ) क्रोधी, लालची और मानरहित पुरुषों से नहीं होना चाहिए। अशक्य गुणों का आधान करने के लिये उसे सुखों से वञ्चित कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ सब प्रकार के अधिकारों में विनीत राजकुमार को विनियोजित करे। मृगया (शिकार) पान, (मदिरापान) और भक्ष्य अर्थात् अभक्ष्य मांसादि का खाना ये नाश करने वाले हैं इसलिये राजा का कर्त्तव्य है कि इन सबका त्याग कर देवे ॥ ४ ॥ दिन में सोना—इधर इधर-उधर घूमना, वाणी की कठोरता तथा वहुप्रापन का त्याग कर देवे। निन्दा (दूसरों की बुराई करना) दण्ड देने मे कठोरता, अर्थ दूषण को छोड़ देना चाहिए ॥ ५ ॥ प्राकारों का समुच्छेदन, दुर्गा आदि की असत्क्रिया यह अर्थों का दूषण कहा गया है। विप्र कीर्णता, अदेश और अकाल में जो दान दिया जाता है वह और अपात्र अर्थात् अयोग्य व्यक्ति को दिया हुआ दान और असत्कर्म में प्रवृति करना ये सब अर्थों में दूषण कहे गये हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मोह, दर्प का त्याग राजा को कर देना चाहिए। इससे फिर मृत्यु का जय करके फिर पौर जनपद का जय प्राप्त करे ॥ ८ ॥

जयेद्वाह्यानरीन्पश्चाद्वाह्याश्च त्रिविधारयः।
गुरवस्ते यथापूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः ॥९
पितृपैतामहं मित्रं सामन्तश्च तथा रिपोः।
कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते ॥१०
स्वाम्यमात्यौ जनपदा दुर्गो दण्डस्तथैव च।
कोषो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥११
मूलं स्वामी स वै रक्ष्यस्तस्माद्राज्यं विशेषतः।
राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात्काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत् ॥१२
एव लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हास विवर्जयेत्।
भृत्याः परिभवन्तीह नृप हर्षणसत्कथम् ॥१३

लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत् ।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्याल्लोकानां रञ्जनं चरेत् ॥१४
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिध्रुवं भवेत् ।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥१५
अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते ।
गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नाऽऽपदो गुप्तमन्त्रतः ॥१६

पीछे बाहिर होने वाले शत्रुओं को जीत लेना चाहिए। बाहिर होने वाले शत्रु तीन प्रकार के हुआ करते हैं। वे गुरु होते हैं जो यथापूर्व कुल्यानन्तर कृत्रिम हैं अर्थात् कुछ कुल से ही शत्रु हैं और कुछ बाद में बनकर शत्रु हो जाते हैं॥ ६॥ पितृपैतामह मित्र अर्थात् बाप-दादों के समय से बराबर मैत्रीभाव आपस में चला आया हो, सामन्त और रिपुका कृत्रिम मित्र इस तरह मित्र भी तीन प्रकार के होते हैं॥ १०॥ राज्य के प्रधान सात अङ्ग बताये जाते हैं। स्वामी, अमात्य (राजा और मन्त्री), जनपद देश, दुर्ग (किला), दण्ड, कोष, मित्र ये हे धर्मज्ञ ! सात अङ्ग हैं ॥ ११॥ इन सातों प्रकार के अङ्गों में सबसे प्रधान एवं मूल स्वामी ही होता है जो कि राज्य का मालिक राजा है। उसकी पूर्णतया रक्षा करनी चाहिए इसी से विशेष करके राज्य होता है। जो राज्य के अङ्गों का द्रोही हो उस का हनन कर देना चाहिए। समय जैसा हो वैसा ही राजा को बन जाना चाहिए। एक समय तीक्ष्ण तो एक समय अत्यन्त कोमल हो जावे॥ १२॥ इस प्रकार से राजा के दो लोक होते हैं। राजा को अपने भृत्यों के साथ हास्य छोड़ देना चाहिए। जो राजा हास्य कथादि किया करता है उसके भृत्य यहाँ पर उसका परिभव (तिरस्कार) किया करते हैं ॥ १३॥ लोक संग्रह के लिये उसे बनावटी वासना वाला भी होना चाहिए। पहिले मुस्करा कर भाषण करने वाला राजा को रहना चाहिए इससे लोगों का रञ्जन होता है॥ १४॥ जो राजा दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्म की निश्चय ही हानि होती है। लम्बे समय में काम करने वाला दीर्घ सूत्री होता है। राग, दम्भ, मान, द्रोह, पाप कर्म, अप्रिय वक्तव्य में दीर्घसूत्रता का होना प्रशस्त (अच्छा) माना जाता है ॥ १५॥ राजा की मन्त्रणा गुप्त

होनी चाहिए जिससे कोई भी निकट से भी निकटतम व्यक्ति भी न जान सके। गुप्त मन्त्रणा रखने से कभी भी आपत्तियाँ नहीं आती हैं ।। १६ ।।

ज्ञायते हि कृतं कर्म नाऽऽरब्धं तस्य राज्यकम् ।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥१७
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः ।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं न राजा बहुभिः सह ॥१८
बहुभिर्मन्त्रयेत्काम राजा मन्त्रान्पृथक्पृथक् ।
मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्री मन्त्रप्रकाशनम् ॥१९
क्वापि कस्यापि विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयश्च तथा मन्त्रे कार्य एकेन सूरिणा ॥२०
नश्येदविनयाद्राजा राज्यं च विनयाल्लभेत् ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥२१
आन्वीक्षिकीं चार्थविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥२२
पूज्या देवा द्विजाः सर्वे दद्याद्दानानि तेषु च ।
द्विजे दान चाक्षयोऽय निधिः कंश्चिन्न नाश्यते ॥२३
सङ्ग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।
दानानि ब्राह्मणानां च राज्ञो निःश्रेयसं परम् ॥२४

राजा का कर्म ऐसा होना चाहिए कि जब काम हो जावे तभी जाना जावे अर्थात् पहिले से किसी को भी कुछ आभास न होवे। जब राज्य में किसी कर्म का आरम्भ हो तो किसी को भी उसका कुछ भी ज्ञान न हो सके। आकार चेष्टा, गति, इङ्गित, भाषित नेत्र और मुख के विकार से हृदय के अन्दर रहने वाले भाव को ग्रहण किया जाया करता है। राजा को कभी भी एकाकी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए और बहुत सों के साथ भी न करे ।। १७ ।। १८ ।। राजा को बहुतों से पृथक्-पृथक् मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा स्वेच्छया करनी चाहिए। मन्त्री को अन्य मन्त्रियों से भी मन्त्र का प्रकाशन नहीं करना चाहिए ।। १९ ।। यहां ससार में कहीं पर तो किसी का मनुष्यों का सदा

भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ॥३२
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवपौरुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥

कृपण, अनाथ, वृद्ध और विधवा स्त्रियाँ इनके योग क्षम और जीवन निर्वाह के लिये वृत्ति का कल्पना राजा को करनी चाहिए। तपस्वियों का पूजन राजा करे। राजा को सबका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और तापसों पर तो बिल्कुल विश्वास न करे ॥ २६ ॥ तत्वभूत हेतु से पर का विश्वास करावे। किसी भी अर्थ का बगुला की तरह चिन्तन करना चाहिए और सिंह की तरह पराक्रम का कार्य करे ॥ २७ ॥ वृक (भेड़िया) के समान अव लुम्पन करे और राजा खरगोश के सदृश निष्पात करे। भूपको दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए। शूकर की भाँति रहना चाहिए ॥ २८ ॥ मोर के समान चित्रकार तथा अश्व के तुल्य दृढ़ भक्ति वाला होकर रहे। राजा कोयल के समान मधुर भाषण करने वाला होना चाहिए ॥२९॥ कौए को जैसे शङ्का होती रहा करती है उसी तरह शङ्का वाला रहे। राजा को सर्वदा ऐसी जगह पर निवास करना चाहिए जो किसी को ज्ञात न रहे। जिसका पहिले भली-भाँति परीक्षण न किया गया हो ऐसा भोजन राजा न करे और इसी तरह शय्या की भी जाँच कराके स्पर्श करना चाहिए ॥ ३० ॥ जो स्त्री अच्छी तरह परिचित न हो उसका कभी गमन न करे और अज्ञात नौका पर कभी न चढ़े। जो राष्ट्र का कर्षण किया करता है वह भ्रष्ट हो जाता है। राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है इसलिये राज्य का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवित की सफलता है ॥ ३१ ॥ भरण किया हुआ बछा जिस तरह बल-वान् कर्म के योग्य होता है उसी भाँति हे महाभाग ! भली-भाँति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मसह होता है ॥ ३२ ॥ यह सभी कर्म दैव और पौरुष विधान के अधीन होता है। इन दोनों में दैव तो अचिन्त्य होता है अर्थात् उसे कोई

विश्वास होता है। मन्त्रणा के विषय में निश्चय किसी एक ही विद्वान् के साथ बैठकर करे ॥ २० ॥ राजा में यदि अविनय होता है तो वह नाश को प्राप्त हो जाता है और विनय के भाव से राज्य का लाभ होता है। तीन विद्याओं के ज्ञाता पुरुषों से त्रयी विद्या का ज्ञान प्राप्त करे। दण्ड नीति, शाश्वती आन्वि-क्षिकी का ज्ञान ग्रहण करना चाहिए। अर्थ विद्या और वार्त्तारम्भों को लोक से सीखे। जो राजा इन्द्रियों का संयम रखकर जित इन्द्रियों वाला होता है वह ही प्रजा के जनों को अपने वश में रखने मे समर्थ होता है ॥ ११ ॥ २२ ॥ राजा को चाहिए कि देवों का पूजन करे, ब्राह्मणों का अर्चन करे और उन्हें दानादि देवे। ब्राह्मण को दिया हुआ दान एक अक्षय निधि है जो किसी के द्वारा भी नाश को प्राप्त नहीं की जाया करती है ॥ २३ ॥ युद्ध भूमि से मुँह मोड़कर पीछे न लौटना, प्रजाजन का भली-भाँति पालन करना: ब्राह्मणों को दान देना ये तीन कर्म राजा के लिये अत्यन्त कल्याण के करने वाले होते हैं। ॥ २४ ॥

कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।
योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत् ॥२५
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्यं तापसपूजनम् ।
न विश्वसेन्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत् ॥२६
विश्वासयेच्चापि परं तत्वभूतेन हेतुना ।
बकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥२७
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ।
दृढप्रहारी च भवेत्तथा शूकरवन्नृपः ॥२८
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तिस्तथाऽश्ववत् ।
भवेच्च मधुराभाषी तथा कोकिलवन्नृपः ॥२९
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातां वसतिं वसेत् ।
नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं स्पृशेत् ॥३०
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नाज्ञातं नावमारुहेत् ।
राष्ट्रकर्षी भ्रश्यते च राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ॥३१

भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ॥३२
सर्वं कर्मदमायत्तं विधाने दैवपौरुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥

कृपण, अनाथ, वृद्ध और विधवा स्त्रियाँ इनके योग क्षम और जीवन निर्वाह के लिये वृत्ति का कलाना राजा को करनी चाहिए। तपस्वियों का पूजन राजा करे। राजा को सबका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और तापसों पर तो बिल्कुल विश्वास न करे ॥ २६ ॥ तत्वभूत हेतु से पर का विश्वास करावे। किसी भी अर्थ का बगुला की तरह चिन्तन करना चाहिए और सिंह की तरह पराक्रम का कार्य करे ॥ २७ ॥ वृक (भेड़िया) के समान अव लुम्पन करे और राजा खरगोश के सदृश निष्पात करे। भूपको दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए। शूकर की भाँति रहना चाहिए ॥ २८ ॥ मोर के समान चित्रकार तथा अश्व के तुल्य दृढ़ भक्ति वाला होकर रहे। राजा कोयल के समान मधुर भाषण करने वाला होना चाहिए ॥२६॥ कौए को जैसे शङ्का होती रहा करती है उसी तरह शङ्का वाला रहे। राजा को सर्वदा ऐसी जगह पर निवास करना चाहिए जो किसी को ज्ञात न रहे। जिसका पहिले भली-भाँति परीक्षण न किया गया हो ऐसा भोजन राजा न करे और इसी तरह शय्या की भी जाँच कराके स्पर्श करना चाहिए ॥ ३० ॥ जो स्त्री अच्छी तरह परिचित न हो उसका कभी गमन न करे और अज्ञात नौका पर कभी न चढ़े। जो राष्ट्र का कर्षण किया करता है वह भ्रष्ट हो जाता है। राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है इसलिये राज्य का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवित की सफलता है ॥ ३१ ॥ भरण किया हुआ बछा जिस तरह बल-वान् कर्म के योग्य होता है उसी भाँति हे महाभाग ! भली-भाँति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मसह होता है ॥ ३२ ॥ यह सभी कर्म दैव और पौरुष विधान के अधीन होता है। इन दोनों में दैव तो अचिन्त्य होता है अर्थात् उसे कोई सोच ही नहीं सकता है। केवल पौरुष ऐसा होता है जिसमें क्रिया रहा करती

है। राजा की जो राज्य मही थी है वह जनों के उत्पन्न होने वाली होती है।
॥ ३३ ॥

८६ सामाद्युपायकथनम्

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥१
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
सात्त्विकात्कर्मणः पूर्वात्सिद्धिः स्यात्पौरुषं विना ॥२
पौरुष दैवसंपत्त्या काले फलति भार्गव ।
दैवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसः फलावहम् ॥३
कृपेवृष्टिसमायोगात्काले स्युः फलसिद्धयः ।
सधर्मं पौरुषं कुर्यान्नालसो न च दैववान् ॥४
सामादिभिरुपायैस्तु सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथाऽपरौ ॥५
मायोपेक्षेन्द्रजालं च उपायाः सप्त ताञ्छृणु ।
द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च ॥६
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ॥७
सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि ।
तथा तदुपकाराणां कृतानां चैव वर्णनम् ॥८

इस अध्याय में साम आदि उपायों का वर्णन किया जाता है। पुष्कर ने कहा—पूर्व जन्म में देह से किये हुए अपने ही कर्म को दैव इस नाम से कहा जाता है। इसलिये मनीषी (विद्वान्) लोग यहाँ संसार में पौरुष को ही परम श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥१॥ जो दैव प्रतिकूल भी होता है तो वह पौरुष से विघातित हो जाता है। यदि पूर्व कर्म सात्विक होता है तो बिना किसी पौरुष के किये ही सिद्धि हो जाया करती है ॥२॥ हे भार्गव ! पौरुष भी दैव सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है। पुरुष के दैव और पुरुषकार ये दोनों ही

फल प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥३॥ वृष्टि के समायोग से कृषि भी समय पर ही फलासिद्धि किया करती है। धर्म के सहित पुरुषार्थ करना ही चाहिए। पुरुषार्थ करने में आलसी नहीं रहे और न दैव के भरोसे रहने वाला ही बने। ॥४॥ साम-दाम आदि उपायों के द्वारा समस्त उपक्रमों की सिद्धियाँ हुआ हैं। साम-उपप्रदान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा और इन्द्रजाल ये सात उपाय होते हैं। उन्हें अब सुनो। साम एक ही है परन्तु दो प्रकार का बताया गया है। एक तथ्य साम है और दूसरा अतथ्य साम होता है ॥५॥६॥ उनमें भी जो अतथ्य होता है वह साधु प्रकृति वाले पुरुषों को तो आक्रोश के लिये ही होता है। महाकुल में उत्पन्न होने वाले, सरल, सीधे, नित्य धर्म का आचरण करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष ही साम के द्वारा साध्य हुआ करते हैं। अतथ्यों के द्वारा तो राक्षस भी ग्रहण किये जाया करते हैं। इसी प्रकार से किये हुए उनके उपकारों का ही वर्णन होता है ।७।८॥

परस्परं तु ये दिष्टाः क्रुद्धभीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत परमं दर्शयेद्भयम् ॥६
आत्मीयां दर्शयेदाशां येन दोषेण बिभ्यति ।
परास्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वै ज्ञातिभेदकः ॥१०
सामन्तकोपो वाह्यस्तु मन्त्रामात्यात्मजादिकाः ।
अन्तःकोपं चोपशाम्यं कुर्वञ्छत्रोश्च तं जयेत् ॥११
उपायश्रेष्ठं दानं स्याद्दानादुभयलोकभाक् ।
न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते ॥१२
दानवानेव शक्नोति संहतान्भेदितुं परान् ।
त्रयासाध्यं साधयेत्तं दण्डेन च कृतेन च ॥१३
दण्डे सर्वं स्थितं दण्डो नाशयेद्दुष्प्रणीकृतः ।
अदण्ड्यान्दण्डयन्नश्येद्दण्ड्यान्राजाऽप्यदण्डयन् ॥१४
देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः ।
उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान्न पालयेत् ॥१५

तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः ।
लोकप्रसादं गच्छेत दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ॥१७
जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजा समीरणः ।
दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥१८
यदा दहति दुर्बुद्धि तदा भवति पावकः ।
यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥१९
धनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः ।
क्षमया धारयेल्लोकान्पार्थिवः पार्थिवो भवेत् ।
उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥२०

राजा का ऐसा तेज होता है कि वह तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य अर्थात् कठिनाई से देखने के योग्य होता है और राजा सूर्य के समान तेजस्वी होता है। वह लोगों की प्रसन्नता करने वाला है उसका दर्शन चन्द्रमा के समान शीतल भी होता है ॥१७॥ राजा के दूतों से यह समस्त संसार व्याप्त रहता है अर्थात् राजा के दूत सभी जगह व्यापक रूप से रहा करते हैं। इसलिये वह वायु के समान है। समस्त दोषों का निग्रह करने वाला होने के कारण राजा साक्षात् वैवस्वत प्रभु होता है ॥१८॥ जब राजा दुष्ट बुद्धि को जलाकर भस्म करता है तो वह अग्नि के तुल्य होता है। जिस समय राजा ब्राह्मणों को दान देकर सम्मानित किया करता है तो वह साक्षात् दान का ईश्वर कुबेर ही होता है। ॥१९॥ धन की धारा का प्रवर्षण करने से देव आदि में वह वरुण है—ऐसा कहा जाता है। क्षमा के द्वारा समस्त लोकों को धारण किया करता है। क्षमा पृथिवी का महान् गुण है। इसीलिये इसे पार्थिव कहा जाता है। उत्साह, मन्त्र और शक्ति आदि से यह सबकी रक्षा करता है इसीलिये राजा साक्षात् हरि का स्वरूप ही होता है ॥२०॥

६० दण्डप्रणयनम्

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः ।
त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत् ॥१

यस्माददान्तान्दमयत्यदण्ड्यान्दण्डयत्यपि ।
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥१६

आपस में जो भीत (डरे हुए), क्रुद्ध और अवमानित हैं और विद्वेष रखने वाले होते है उनके मध्य में परम भय दिखाकर भेद करने का प्रयोग करना चाहिये ॥६॥ अपनी आशा को दिखावे जिस दोष से दूसरे डरते हैं उसी के द्वारा वे भेदन के योग्य करने चाहिए और ज्ञाति भेदक की रक्षा करनी चाहिये ॥१०॥ सामन्त का कोप तो बाह्य होता है जो मन्त्र, अमात्य और आत्मजादिक हैं । जो अन्त: कोप है उसे उपशमित करना चाहिये और शत्रु का वह करते हुए उस पर जय प्राप्त क नी चाहिए ॥११॥ दान देना भी श्रेष्ठ उपाय है क्योंकि दान से तो दोनों ही लोक में कल्याण होता है । यदि दान से भी वह वश में नहीं होता है तब अन्य उपाय काम में लाया जाता है । दान वाला ऐसा प्रबल होता है कि चाहे दूसरे आपस में कितने ही मिले और संहृत क्यों न हों दान से उनका भी भेदन किया जा सकता है । साम, दाम (दान) और भेद इन तीनो प्रकार के उपायों से भी जो साध्य नहीं होता है उसे चौथे दण्ड नाम वाले उपाय से साधना चाहिये अर्थात् अपने वश में करे । ॥१२।१३॥ दण्ड मे सभी स्थित हैं । दण्ड दुष्प्रणीकृत का नाश कर दिया करता है । किन्तु दण्ड उचित को ही दिया जाना चाहिये । जो दण्ड देने के योग्य न हों ऐसे लोगों को दण्ड देना नाशकारी हो जाता है । राजा को भी उन्ही लोगों को दंड देना चाहिये जो दंड देने के योग्य पात्र होते हैं। यदि दंड देने के योग्यों को दण्ड नहीं दिया जाता है तो राजा भी नष्ट हो जाता है। ॥१४॥ देव, दैत्य, उरग (नाग) और नर, सिद्ध, भूत और पक्षीगण सभी अपनी मर्यादा का उत्क्रमण कर दिया करते हैं यदि दंड के द्वारा पालन न किया जावे ॥१५॥ जो अदान्त होते हैं अर्थात् दमन नहीं किये गये हैं वे दंड से ही दमन किये जाते हैं और जो अदण्ड्य हैं उनको भी दंडित किया जाता है, इसीलिये दमन से और दंडन करने से इसे पंडित लोग दंड कहा करते हैं । ॥ १६ ॥

तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः ।
लोकप्रसादं गच्छेत दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ॥१७
जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजा समीरणः ।
दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥१८
यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः ।
यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥१९
धनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः ।
क्षमया धारयेल्लोकान्पार्थिवः पार्थिवो भवेत् ।
उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥२०

राजा का ऐसा तेज होता है कि वह तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य अर्थात् कठिनाई से देखने के योग्य होता है और राजा सूर्य के समान तेजस्वी होता है। वह लोगों की प्रसन्नता करने वाला है उसका दर्शन चन्द्रमा के समान शीतल भी होता है ॥१७॥ राजा के दूतों से वह समस्त संसार व्याप्त रहता है अर्थात् राजा के दूत सभी जगह व्यापक रूप से रहा करते हैं. इसलिये वह वायु के समान है। समस्त दोषों का निग्रह करने वाला होने के कारण राजा साक्षात् वैवस्वत प्रभु होता है ॥१८॥ जब राजा दुष्ट बुद्धि को जलाकर भस्म करता है तो वह अग्नि के तुल्य होता है। जिस समय राजा ब्राह्मणों को दान देकर सम्मानित किया करता है तो वह साक्षात् दान का ईश्वर कुबेर ही होता है। ॥१९॥ धन की धारा का प्रवर्षण करने से देव आदि में वह वरुण है—ऐसा कहा जाता है। क्षमा के द्वारा समस्त लोकों को धारण किया करता है। क्षमा पृथिवी का महान् गुण है। इसीलिये इसे पार्थिव कहा जाता है। उत्साह, मन्त्र और शक्ति आदि से यह सबकी रक्षा करता है इसीलिये राजा साक्षात् हरि का स्वरूप ही होता है ॥२०॥

६० दण्डप्रणयनम्

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः ।
त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत् ॥१

दंड देने के योग्य होते हैं। जो कूट साक्ष्य अर्थात् झूठी गवाही दिया करते हैं उन तीनो वर्णों वालों को दंड दिलाना चाहिए ॥५।६।७॥ ब्राह्मण यदि इस अपराध में दंडनीय हो तो उसे विवासित कर देवे क्योंकि ब्राह्मण के लिए दंड देने की अन्य कोई विधि नहीं बताई गई है। यदि किसी के पास कोई निक्षेप (धरोहर) रक्खा हो और उसे वह नहीं देवे तो उस अपराध के लिए जितने मूल्य का निक्षेप हो उतना ही निक्षेप के भोग करने का दंड देना चाहिये ॥ ८ ॥

वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते ।
यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥९
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्डचौ वा द्विगुणं दमम् ।
अज्ञानाद्यः पुमान्कुर्यान्परद्रव्यस्य विक्रयम् ॥१०
निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चौरवद्दण्डमर्हति ।
मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद्दण्ड्य एव सः ॥११
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः ।
भृतिं गृह्य न कुर्याद्यः कर्माष्टौ कृष्णला दमः ॥१२

हे धर्मज्ञ ! वस्त्रादि का उस प्रकार से धर्म हीयमान नहीं होता है। जो निक्षेप का घात करता है अर्थात् धरोहर रखकर उसे मारना चाहता है और जो निक्षेप न रखकर ही मिथ्या याचना किया करता है। ये दोनों ही चोर की भाँति शासन करने के योग्य होते हैं और दंड देने के भी योग्य हैं। इनको दुगुना दमन करना चाहिये। जो कोई आदमी अज्ञान से पराये धन का विक्रय कर देता है वह दोष रहित होता है और उसे कोई दंड नहीं देना चाहिए किन्तु जो जान-बूझकर यह अपराध करता है वह तो चोर की भाँति ही दंड के योग्य होता है। मूल्य लेकर भी जो शिल्प न देवे वह भी दंड देने के योग्य होता है ॥९।१०।११॥ जो वचन देकर फिर नहीं देवे उस पर एक सुवर्ण प्रजा को दंड देना करना चाहिए। नौकरी की तनखा लेकर जो कर्म न करे उस पर आठ कृष्णाल का दंड होना चाहिये ॥१२॥

६१ स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनम् ।

स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दु:स्वप्नहरणं तथा ।
नाभिं विनाऽन्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ॥१
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥२
उच्चात्प्रपतनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ॥३
अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणम् ।
रक्तपुष्पद्रुमाणां च चण्डालस्य तथैव च ॥४
वराहश्वखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया ।
भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च ॥५
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ॥६
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम् ।
देवद्विजातिभूपानां गुरूणां कोप एव च ॥७
नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम् ॥८
स्त्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा ।
पङ्कोदकेन च तथा मशी (षी) तोयेन वाऽप्यथ ॥९

इस अध्याय मे स्वप्नों का शुभ और अशुभ तथा दुःस्वप्नों का हरण का विषय वर्णित किया जाता है । पुष्कर ने कहा—अब मैं स्वप्नों के शुभाशुभ को तथा बुरे स्वप्नों के हरण के विषय को बतलाता हूँ । सर्व प्रथम बुरे स्वप्नों को बताते हैं—नाभि को छोड़कर अन्य शरीर के भाग में तृण तथा वृक्ष का उत्पन्न होना-मस्तक में कांस्यों का चूर्णन, मुण्डन तथा नग्न हो जाना-मैले वस्त्रों का धारण करना-अभ्यङ्ग करना-पङ्क (कीच) में दिग्ध होना-ऊँचे से गिरना-विवाह होना-गीत गान होना- तन्त्री वाद्य के द्वारा

विनोद करना–दोला (भूला) पर चढ़कर झूलना–पक्षियों के मांस का भक्षण करना–तथा तैल और कृशर (कसार) का भक्षण करना ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ५ ॥ माता के जठर (पेट) में प्रवेश करना–चिता पर आरोहण करना–शक्रध्वजा का पतन होना–चन्द्रमा और सूरज का नीचे गिर जाना–देवलोक, आकाश और भूमि पर होने वाले उत्पातों का दिखलाई देना–देव, द्विजाति और भूपों का दर्शन–गुरुओं का कोप—नाचना—हँसना—विवाह होना—गीत गायन का होना—तन्त्रीवाद्य से रहित वाद्यों (बाजों) का बजना —स्रोतों वहों का नीचे की ओर वहकर जाना—गोबर पानी से स्नान करना —कीच से युक्त पानी से नहाना—स्याही के पानी से स्नान करना—॥ ६ ॥ ॥ ७ । ८ । ६ ॥

आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम् ।
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥१०
दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा ।
फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ॥११
गुहाणां चैव पतन गृहसमार्जनं तथा ।
क्रीडा पिशाचासक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ॥१२
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ।
कापायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा ॥१३
स्नेहपानावगाही च रक्तामाल्यानुलेपनम् ।
इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभम् ॥१४
भूयश्च स्वपनं तद्वत्कार्यं स्नानं द्विजर्चनम् ।
तिलैर्होमो हरिब्रह्मशिवार्कगणपूजनम् ॥१५
तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा ।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ॥१६

कुमारियों का आलिङ्गन करना—पुरुषों का मैथुन—अपने अङ्गों की हानि का देखना—दस्त या कै हो जाने की क्रिया का देखना—दक्षिण दिशा

की ओर जाना—किसी व्याधि के द्वारा अभिभूत होना—फलों की हानि होना—धातुओं का भेदन होना—घरों का गिर जाना—गृहों का संमार्जन करना—पिशाच, राक्षस, वानर तथा नीच नरों के साथ क्रीड़ा करना—दूसरों से तिरस्कार का होना और पर से किसी व्यसन का उत्पन्न होना—गेरुआ रँगे हुए वस्त्र धारण करना तथा उन वस्त्रों के साथ क्रीड़ा करना—तैलादि का पानं या स्नान करने वाला होना—रक्त माल्य अनुलेपन—ये सब स्वप्न बुरे होते हैं। उनको न कहना ही शुभ होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ इनकी अशुभता के निराकरण करने के लिये फिर सो जाना चाहिए। स्नान करे और द्विजों का अर्चन करे। तिलों से हवन करे तथा हरि–ब्रह्मा–शिव–सूर्य और गणपति का पूजन करना चाहिए ॥ १५॥ देवस्तुतियों का पाठ करे तथा पुरुष सूक्त आदि का जाप करे। प्रथम रात्रि के प्रहर में जो स्वप्न दिखाई दिया करते हैं वे एक वर्ष मे तक अपना फल दिखाते हैं ॥ १६ ॥

षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिका: ।
चतुर्थे त्वर्धमासेन दशाहादरुणोदये ॥१७
एकास्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम्) ।
पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत् ॥१८
यस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते ।
शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ॥१९
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज ।
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च बहुबाहुता ॥२०
तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च ।
सुशक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ॥२१
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ।
शक्रध्वजालिङ्गनं च ध्वजोच्छ्रायक्रिया तथा ॥२२

दूसरे प्रहर में जो रात्रि में स्वप्न दिखाई होते हैं वे छः मास में अपना फल दिखाया करते हैं और तीसरे याम में दिखाई देने वाले स्वप्नों का फल तीन मास तक हुआ करता है तथा चौथे प्रहर के स्वप्न आधे मास में

फल देने वाले होते हैं। जो स्वप्न बिल्कुल अरुणोदय के समय में होते हैं वे दश दिन के अन्दर ही फल दिया करते हैं। एक रात्रि में यदि शुभ स्वप्न दोनों दिखाई देवें तो जो पीछे दीखा करता है वही फल वाला होता है ॥१७॥ ॥ १८ ॥ जब कोई अच्छा स्वप्न दिखाई देवे तो फिर स्वप्न देखने के पीछे सोना नहीं चाहिए। शैल (पहाड़)–प्रासाद (महल)–नाग (हाथी–अश्व–वृषभ (बैल) इन पर आरोहण किया जाना यदि स्वप्न में देखे तो यह हितकारी स्वप्न होता है ॥ १९ ॥ हे द्विज! द्रुमों का जो कि सफेद फूलों वाले हों तथा गगन में आरोहण भी शुभ होता है। नाभि में वृक्ष और तृणों का उत्पन्न होना तथा बहुत-सी बाहुओं का हो जाना एवं बहुत शीर्षों का होना–पलित (सफेद बालका होना) का उत्पन्न होना–सफेद माला का धारण करना तथा अतिश्वेत वस्त्रों का धारण करना–चाँद या सूर्य के ग्रहण होना—शक्रध्वज का आलिङ्गन करना—ध्वज के उच्छ्राय की क्रिया का होना ये स्वप्न शुभ होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

भूम्यम्बुधाराग्रहणं शत्रूणां चैव विक्रिया।
जयो विवादे द्यूते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज ॥२३
भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां पायसस्य च भक्षणम्।
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥२४
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाऽप्यथ।
अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ॥२५
मुखेन दोहनं शस्तं महिस्त्रीणां तथा गवाम्।
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च ॥२६
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज।
अम्भसा चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ॥२७
चन्द्राद्भ्रष्टेन वा राम ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत्।
राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ॥२८
मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु।
लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ॥२९

यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयम् ।
हिरण्यं वृषभं गां च कुटुम्बस्तस्य वर्धते ॥३०
वृषेभगृहशैलाग्रवृक्षारोहणरोदनम् ।
घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ॥३१

भूम्यम्बु धारा का ग्रहण करना–शत्रुओं की किसी विक्रिया का होना–हे द्विजगण ! किसी विवाह में या द्यूत में जीत का होना तथा संग्राम में विजय का लाभ करना–आर्द्र मांस का भक्षण करना–पायस (खीर) का खाना–रुधिर का देखना तथा रुधिर से स्नान करना–सुरा (शराब) रुधिर और मद्य का पान करना–क्षीर का पान करना–अस्त्रों के द्वारा भूमि में विशेष चेष्टा का करना–निर्मल आकाश का देखना–भैंसों और गायों का मुख से ही दोहन करना परम प्रशस्त माना गया है। इसी प्रकार सिंहनियों–हस्तिनियों और घोड़ियों का दोहन भी अच्छा होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे द्विज ! देव और विप्रों के लिये प्रसाद तथा जल से अभिषेक–गौओं के शृङ्ग से च्युत तथा चन्द्र से देखा गया प्रसाद या अभिषेक राज्य का प्रदान करने वाला होता है। राज्याभिषेक तथा शिर का कटना मरण हो जाना–अग्नि से का लाभ–अग्नि से दाह गृहादि में होना–राजचिह्नों की प्राप्ति—तन्त्री वाद्य का अभिवादन यह सब स्वप्न के अन्त में देखता है राजा—हाथी—घोड़ा—सुवर्ण—बैल और गौ को देखता है तो देखने वाले का कुटुम्ब बढ़ता है। वृषभ—हाथी—गृह—शैल की चोटी और वृक्ष का आरोहण तथा रोदन–घृत और विष्ठा से शरीर का अनुलेपन और अगम्या का गमन भी शुभ होते हैं ॥ २७ से ३१ ॥

९२ शकुनानि ।

विशन्ति येन मार्गेण वायसा बहवः पुरम् ।
तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ॥१
सेनायां यदि वा सार्थे निविष्टो वायसो रुदन् ।
वामो भयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरम् ॥२

छायाङ्गवाहनोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने ।
मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभम् ॥३
प्रोषितागमकृत्काकः कुर्वन्द्वारि गतागतम् ।
रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन्वन्हिनिवेदकः ॥४
न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनम् ।
पीतं द्रव्यं तथा रुक्मरूप्यमेव तु भार्गव ॥५
यच्चैवोपनयेद्द्रव्यं तस्य लब्धिं विनिर्दिशेत् ।
द्रव्यं वाऽपनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ॥६
पुरतो धनलब्धिः स्यादाममांसस्य च्छर्दने ।
भूलब्धिः स्यान्मृदः क्षेपे राज्यं रत्नार्पणे महत् ॥७
यातुः काकोऽनुकूलस्तु क्षेमः कर्मक्षमो भवेत् ।
न त्वर्थसाधको ज्ञेयः प्रतिकूलो भयावहः ॥८

इस अध्याय मे शकुनों के विषय मे वर्णन किया जाता है। पुष्कर ने कहा—जिस मार्ग से बहुत-से कौए पुर में प्रवेश किया करते हैं उसी मार्ग से रुद्ध हुए पुर का ग्रहण होता है ॥ १ ॥ सेना में अथवा सार्थ में यदि रोता हुआ कौआ निविष्ट हो जावे तथा वाम भयातुर अर्थात् भय से डरा हुआ हो तो यह शकुन अत्यन्त कठिन भय की सूचना देता है ॥ २ ॥ छाया–अङ्ग–वाहर–उपानत् (जूते)–छत्र और वस्त्र आदि के कुट्टन करने में मृत्यु होती है। उसके पूजन में और उसके इष्ट करने में पूजा करना शुभ होता है ॥ ३ ॥ कौआ यदि द्वार पर जाना-आना करता होतो परदेश गये हुए के आगमन की सूचना देता है। रक्त-दग्ध द्रव्य घर में डालता हुआ अग्नि की सूचना करता है ॥ ४ ॥ यदि आगे रक्त रक्खे तो बन्धन होने की सूचना देता है। हे भार्गव ! पीले रङ्ग का कोई द्रव्य–सुवर्ण–रजत (चांदी) जो भी इनमें से द्रव्य लावे तो यह शकुन उसकी प्राप्ति का सूचक होता है। इसी प्रकार से जिस द्रव्य को वह ले जावे तो उसी द्रव्य की हानि की सूचना देता है ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ आगे कच्चे मांस के छर्दन करने में धन का लाभ होता है। मिट्टी के क्षेप करने में भूमि का लाभ और रत्न के अर्पण करने में महान् राज्य की

प्राप्ति होती है। जाने वाले के काक (कौआ) अनुकूल हो तो क्षेम और कर्म क्षम होता है। यदि वह प्रतिकूल हो तो अर्थ का साधक नहीं होता तथा भय-प्रद होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

संमुखेऽभ्येति विरुवन्यात्राघातकरो भवेत् ।
वामः काकः स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थविनाशकृत् ॥९
वामोऽनुलोमगः श्रेष्ठो मध्यमो दक्षिणः स्मृतः ।
प्रतिलोमगतिर्वामो गमनप्रतिषेधकृत् ॥१०
निवेदयति यात्रार्थमभिप्रेतं गृहे गतः ।
एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावह ॥११
कोटरे वासमानश्च महानर्थकरो भवेत् ।
न शुभस्तूपरे काकः पङ्काङ्कः स तु शस्यते ॥१२
अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः ।
ज्ञेयाः पतत्रिणोऽन्येऽपि काकवद्भृगुनन्दन ॥१३
स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः ।
इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे ॥१४
अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेद्मपन् ।
यस्य जिघ्रति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ॥१५
भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथा भुजमदक्षिणम् ।
यात्राघातकरो यातुर्भवेत्प्रतिमुखो हिसः ॥१६

यदि कौआ बोलता हुआ सामने से आवे तो यह यात्रा का घात करने वाला होता है। कौआ यदि वाम भाग में रहे तो बहुत अच्छा होता है। दक्षिण भाग में कौआ का होना अर्थ के विनाश करने वाला होता है ॥ ९ ॥ वाम भाग में भी जो अनुलोमगमन करने वाला होता है वही श्रेष्ठ कहा गया है। दक्षिण काक मध्यम माना गया है। जो कौआ प्रतिलोम गति वाला हो चाहे वाम भाग में ही हो यह दारुन यात्रा का निषेध करने वाला होता है ॥ १० ॥ गृह में गया हुआ कौआ यात्रार्थ को अभिप्रेत बताता है। यदि कौआ एकाक्षि और एक चरण वाला होकर सूर्य को देखता हो तो बहुत ही

भय देने वाला होता है ॥ ११ ॥ कोटर में वास करता हुआ कौआ महान् अनर्थ के करने वाला होता है। ऊपर भूमि में स्थित काक शुभ नहीं होता है। यदि कौआ कीच से सने हुये शरीर वाला हो तो बहुत ही प्रशस्त शकुन होता है ॥ १२ ॥ अपवित्र वस्तु से परिपूर्ण मुख वाला कौआ समस्त अर्थों का साधक शकुन होता है। हे भृगुनन्दन ! इसी प्रकार से अन्य पक्षी भी शुभ अशुभ शकुन बतलाते हैं जिस तरह कौआ सूचना देता है ॥ १३ ॥ स्कान्धावार और अपसव्य में स्थित कुत्ता विप्रों का विनाशक होता है। राजा के इन्द्र स्थान में और पुरेश के गोपुर में तथा गृह स्वामी के अन्दर गृह में भूँकता हुआ मृत्यु की सूचना कुत्ता दिया करता है। कुत्ता जिसके बाँये अङ्ग को सूँघ लेता है उसके कार्य की निश्चित सिद्धि हुआ करती है ॥ १४ ॥ १५ ॥ यदि दाहिने अङ्ग को सूँघता है तो भय देने वाला होता है इसी तरह से अप्रदक्षिण भुजा को सूँघता है तो वह भी अशुभ है। यदि यात्रा करने वाले के प्रतिमुख कुत्ता होवे तो वह यात्रा का घात करने वाला होता है ॥१६॥

मार्गविरोधको मार्गे चौरान्वदति भार्गव ।
अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचीरमुखस्तथा ॥१७
सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च ।
अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशं चैवाशुभं तथा ॥१८
अवमूत्र्याग्रतो याति यस्य तस्य भयं भवेत् ।
यस्यावमूत्र्य व्रजति शुभं देशं तथा द्रुमम् ॥१९
मङ्गल्यं च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्थसिद्धये ।
श्ववच्च राम विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः ॥२०
भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं रुतं गवाम् ।
निशि चौरभयाय स्याद्विकृतं मृत्यवे तथा ॥२१
शिवाय स्वामिनो रात्रौ बलीवर्दो नदन्भवेत् ।
उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं संप्रयच्छति ॥२२
अभक्ष्यं भक्षयन्त्यश्च गावो दत्तास्तथा स्वकाः ।
त्यक्तस्नेहाः स्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः ॥२३

भूमि पादैर्विनिघ्नन्त्यो दीना भीता भयावहाः ।
आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलग्नमृदः शुभाः ॥२४

हे भगवं ! मार्ग में कुत्ता स्थित होकर मार्ग का अवरोध करने वाला होतो वह चोरों की सूचना दिया करता है । कुत्ते के मुख में हड्डी हो तो लाभ नहीं किया करता है । रस्सी या चीर कुत्ते के मुँह में हो तो यह पाप सूचक होता है ॥१७॥ यदि कुत्ते के मुख में कोई जूता हो तो वह एक अत्यन्त अच्छा शकुन होता है । इसी प्रकार से मांस से पूर्ण मुख वाला कुत्ता भी धन्य होता है । यदि कोई अमङ्गल द्रव्य मुख में हो और केश हों तो वह भी एक अशुभ शकुन होता है ॥ १८ ॥ कुत्ता यदि पेशाव करके आगे से जाता है तो उसको जिसके आगे से वह जाता है भय होता है । जिसके पेशाव करके शुभ देश या वृक्ष के पास जाता है तो वह शुभ शकुन होता है ॥ १९ ॥ यदि मङ्गल्य द्रव्य हो तो उसकी अर्थ की सिद्धि के लिये होता है । हे राम ! कुत्ते के समान ही जम्बुक (गीदड़) आदि को भी इसी प्रकार से शुभ एवं अशुभ शकुन बतलाने वाले जानने चाहिए ॥ २० ॥ बिना किसी कारण के गायों की ध्वनि अर्थात् अचानक रँभाना उसके स्वामी को भय की सूचना दिया करता है अर्थात् अशुभ होता है । रात्रि में रँभावे तो चोरों का भय होता है और विकृत हो तो मृत्यु की सूचना दिया करता है ॥२१॥ यदि बली बर्द रात्रि में नाद करने वाला हो तो वह अपने स्वामी के कल्याण के लिये ही होता है । उत्सृष्ट वृषभ राजा के विजय के देने वाला होता है ॥ २२ ॥ किसी अभक्ष्य पदार्थ का भक्षण करने वाली दी हुईं अपनी गौएँ अपने बछड़ों पर स्नेह न करने वाली गर्भ के क्षय करने वाली बताई गई हैं ॥२३॥ भूमि को पैरों से विपातित करती हुईं—दीन—डरी हुईं भय देने वाली होती हैं । भीगे हुए अङ्गों वाली तथा प्रहृष्ट रोमों वाली और सींगों में मिट्टी लगी रहने वाली गौएँ शुभ होती हैं ॥२४॥

महिष्यादिषु चाप्येतत्सर्वं वाच्यं विजानता ।
आरोहणं तथाऽन्येन सपर्याणस्य वाजिनः ॥२५
जलोपवेशनं नेष्टं भूमौ च परिवर्तनम् ।
विपत्करं तुरंगस्य सुप्तं चाप्यनिमित्ततः ॥२६

यवमोदकयोर्द्वेषस्त्वकस्माच्च न शस्यते ।
वदनाद्रुधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ॥२७
क्रीडन्वकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृतिं वदेत् ।
साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेही विनष्टये ॥२८
वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुंधराम् ।
स्वपेद्वा वामपार्श्वेन दिवा वा न शुभप्रदः ॥२६

इसी तरह से मेंस आदि के विषय में भी वेत्ता पुरुष को यह सभी समझना चाहिए। अन्य के द्वारा आरोहण तथा पर्याण (जीन) के सहित अश्व का जलोपवेशन और भूमि में परिवर्त्तन अर्थात् जल में बैठ जाना या जमीन में लोट लगाना इष्ट नहीं होता है अर्थात् शुभ नहीं होता है। घोड़े का विपरकर तथा बिना किसी कारण के सो जाना एवं जौ और मोदक से द्वेष भाव रखना, जोकि अचानक ही किया गया हो, अच्छा नहीं होता है मुख से खून का निकलना और कम्प युक्त होना भी शुभ नहीं होता है ॥२५।२६।२७॥ बगुला—कबूतर और सारिकाओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्यु की सूचना दिया करता है। आँसुओं से पूर्ण नेत्र वाला तथा जीभ से पैरों को चाटने वाला विनाश की सूचना दिया करता है ॥ २८ ॥ बाँये पैर से भूमि को कुरेदता हुआ अथवा बाँये पसवाड़े से दिन में सोवे तो वह शुभप्रद नहीं होता है ॥२६॥

भयाय स्यात्सकृन्मूत्री तथा निद्राविलाननः ।
आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ॥३०
यात्राविघातमाचष्टे वामपार्श्वं तथा स्पृशन् ।
ह्रेषमाणः शत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः ॥३१
ग्रामे व्रजति नागश्चेन्मैथुनं देशहा भवेत् ।
प्रसूता नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः ॥३२
आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ।
मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरी भवेत् ॥३३
वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः ।
दक्षिणं च तथा दन्तं परिमार्ष्टि करेण च ॥३४

वृषोऽश्वः कुञ्जरो वाऽपि रिपुसैन्यगतोऽशुभः ।
खण्डमेघातिवृद्‌ध्या तु सेना नाशमवाप्नुयात् ॥३५
प्रतिकूलग्रहर्क्षात्तु तथा संमुखमारुतात् ।
यात्राकाले रणे वाऽपि च्छत्रादिपतनं भयम् ॥३६
हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वै जयलक्षणम् ।
काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्‌भिर्मण्डलक्षयः ॥
प्राची पश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ॥३७

एक बार ही मूत्र करने वाला तथा निद्रा से मलिन मुख वाला अन्य भय के लिये होता है । यदि किसी को अपना आरोहण न देवे अर्थात् सवारी न करने देवे तथा उलटा घर की ओर जावे तो यह यात्रा के विधान को बतलाता है । तथा वाम भाग को स्पर्श करता हुआ हिन-हिनाता रहे तो वह शत्रु के युद्ध मे पारदर्शी तथा जय दिलाने वाला है ॥३०।३१॥ हथी ग्राम को जावे यदि मैथुन हो तो वह देश का हनन करने वाला है । नाग वनिता (हथिनी) यदि प्रसूता हो तथा मत्त हो तो राजा का अन्त करने वाली होती है ॥३२॥ आरोहण न करने देवे या वारित घर की ही ओर जावे और हाथी मद का त्याग करे तो राजा के घात करने वाला होता है ॥ ३३ ॥ दाहिने पैर से वाम (बाँये) पैर को आक्रान्त करे तो शुभ शकुन होता है । तथा दाहिनी ओर के दाँत को सूंड से परिमार्जन करे तो शुभ है ॥३४॥ वृष-अश्व अथवा हाथी यदि शत्रु की सेना मे चला जावे तो अशुभ शकुन होता है । खण्ड मेघाति वृष्टि से सेना का नाश होता है । अर्थात् खण्ड २ मेघों से अत्यन्त वृष्टि होवे ॥३५॥ प्रतिकूल ग्रह और नक्षत्र से तथा सामने की वायु से यात्रा के समय में अथवा युद्ध मे छत्रादि के पतन का भय होता है ॥ ३६ ॥ प्रसन्न मनुष्य तथा अनुलोम ग्रह जय का लक्षण होता है । कौवों से योधाओं का अभिभवन (तिरस्कार) और मांसाशी से मण्डल का क्षय होता है । पूर्व-पश्चिम-ईशान दिशा सौम्य-और शुभ होती है ॥३७॥

९३—यात्रामण्डलचिन्तादि

सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात् ।
अस्तं गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ॥१
प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां विवर्जयेत् ।
प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पतौ च तथा ग्रहे ॥२
वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा ।
चतुष्पादे च किंस्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत् ॥३
विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि ।
गण्डे विवर्जयेद्यात्रां रिक्तायां च तिथावपि ॥४
उदीची च तथा प्राची तयोरैक्यं प्रकीर्तितम् ।
पश्चिमा दक्षिणा या दिक्तयोरैक्यं तथैव च ॥५
वाय्वाग्निदिक्समुद्भूतं परिघं न तु लङ्घयेत् ।
आदित्यचन्द्रसौरास्तु दिवसाश्च न शोभनाः ॥६
कृत्तिकाद्यानि पूर्वेण माघाद्यानि च याम्यतः ।
मैत्राद्यान्यपरे चाथ वासवाद्यानि वाऽप्युदक् ॥७
सर्वद्वाराणि शस्तानि च्छायामानं वदामि ते ।
आदित्ये विंशतिर्ज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्तिताः ॥८

अब इस अध्याय में यात्रा मण्डल चिन्ता आदि का वर्णन किया जाता है। पुष्कर ने कहा—मैं सबकी यात्रा के विषय को बतलाता हूँ—जो कि राजधर्म के समाश्रय से होती है। शुक्र ग्रह के अस्त हो जाने पर तथा नीच के घर में रहने पर—विकल होने पर—शत्रु के घर मे रहने पर प्रतिलोम तथा विध्वस्त हो जाने पर कभी यात्रा नहीं करनी चाहिए। बुध और दिगाग्रों के पति गृह के प्रतिलोम होने पर भी यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥१।२॥ वैधृति–व्यतीपात–नाग–शकुनि–चतुष्पाद और किंस्तुघ्न योगों में भी यात्रा को वर्जित कर देनी चाहिए ॥ ३ ॥ विपत्तार–नैधन–प्रत्यरि और जन्म के गण्ड में यात्रा न करे। तथा रिक्ता संज्ञा वाली तिथियों में यात्रा का करना निषिद्ध होता

है ॥४॥ उत्तर और पूर्व इन दोनों दिशाओं की एकता बताई गई है। तथा पश्चिम और दक्षिण इन दिशाओं का भी ऐक्य कहा गया है ॥५॥ वायु–अग्नि दिशाओं में होने वाले परिघ का लङ्घन नहीं करना चाहिए। रवि–चन्द्र और सौर ये दिन भी यात्रा के लिए अच्छे नहीं होते हैं ॥६॥ कृत्तिका आदि पूर्व में तथा मघा आदि दक्षिण में—मैत्रादि पश्चिम में और वासवादि उत्तर में समस्त द्वार शोभन होते हैं। अब छाया मान को बताते हैं। आदित्य में बीस जाननी चाहिए और चन्द्र में सोलह बताई गई हैं ॥७।८॥

भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे।
त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्तिताः ॥९
एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्तिताः।
जन्मलग्ने शक्रचापे संमुखे न व्रजेन्नरः ॥१०
शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरिं स्मरन्।
वक्ष्ये मण्डलचिन्तां ते कर्तव्यं राजरक्षणम् ॥११
स्वाम्यमात्यस्तथा दुर्गः कोषो दण्डस्तथैव च।
मित्रं जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥१२
सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तॄन्विनाशयेत्।
मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्या महीक्षिता ॥१३
आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलं भवेत्।
सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु ॥१४
उपेतस्तु सुहृज्ज्ञेयः शत्रुमित्रमतः परम्।
मित्रमित्र ततो ज्ञेयं मित्रमित्ररिपुस्ततः ॥१५
एतत्पुरस्तात्कथित पश्चादपि निबोध मे।
पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चात्ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ॥१६

भौम में पन्द्रह तथा बुध में चौदह कही गई हैं। गुरु में तेरह और शुक्र में बारह हैं ॥९॥ शनि में बारह सभी कर्मों में बताई गई हैं। जन्म के लग्न में तथा शक्र चाप में सम्मुख रहने पर मानव को कभी यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥१०॥ अच्छे शकुन आदि के होने पर शुभ दिन में यात्रा हरि का

स्मरण करते हुए जय के लिए करनी चाहिए। अब मण्डल चिन्ता को बताया जाता है। राजरक्षण अवश्य ही करना चाहिए ॥ ११ ॥ राज्य का स्वामी (राजा)—अमात्य (मन्त्री)—दुर्ग (किला)—कोष (खजाना)—दण्ड-मित्र (राजा के हित चाहने वाले) और जनपद (देश तथा प्रजाजन) ये राज्य के सात अङ्ग हुआ करते हैं ॥ १२ ॥ इन सातों राज्य के अङ्गों के जो भी विघ्न करने वाले हों उनका समूल विनाश करा देना चाहिए। राजा के द्वारा समस्त मण्डलों में वृद्धि करनी चाहिए ॥१३॥ यहाँ पर सर्व प्रथम आत्म मण्डल ही होता है। उसके सामन्त गण ही शत्रु हुआ करते हैं ॥१४॥ जो उपेत हो वह सुहृत् जानना चाहिए। इससे दूसरे नम्बर शत्रु का मित्र—फिर मित्र का मित्र इसके पश्चात् मित्र के मित्र का शत्रु जानना चाहिए ॥ १५ ॥ यह पहिले कह दिया गया है इसके पीछे मुझसे समझ लो। इसके अनन्तर पार्ष्णिग्राह (पीठ पीछे साथ में रहने वाला हल)और इसके अनन्तर आक्रन्द कहा जाता है ।१६।

आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते।
जिगीषोः शत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ॥१७
नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुंगव।
निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थः परिकीर्तितः ॥१८
निग्रहानुग्रहेऽशक्तः सर्वषामपि यो भवेत्।
उदासीन स कथितो बलवान्पृथिवीपतिः ॥१९
न कस्यचिद्रिपुर्मित्रं कारणाच्छत्रुमित्रके।
मण्डलं तव संप्रोक्तमेतद्द्वादशराजकम् ॥२०
त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः।
पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः ॥२१
अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिमो मतः।
पार्ष्णिग्राहो भवेच्छत्रोर्मित्राणि रिपवस्तथा ॥२२
पार्ष्णिग्राहमुपायैश्च शमयेच्च तथा स्वकम्।
मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रशंसन्ति पुरातनाः ॥२३

मित्रं च शत्रुतामेति सामन्तत्वादनन्तरम् ।
शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात्स्वयं शक्नोति चेद्यदि ॥२४
प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयम् ।
यथाऽस्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत् ॥२५
जिगीषुर्धर्मविजयी तथा लोकं वशं नयेत् ॥२६

इसके अनन्तर आसार और फिर अन्य आक्रान्दासार कहा जाता है। जय की इच्छा रखने वाले, शत्रु से युक्त और विमुक्त के होते हैं ॥१७॥ हे मनुज पुङ्गव ! यहाँ पर भी निश्चय नहीं कहा जा सकता है। निग्रह (दण्ड देना) और अनुग्रह (कृपा कर छोड़ देना) में समर्थ मध्यस्थ कहा जाता है। ॥१८॥ जो सभी के निग्रह तथा अनुग्रह मे अशक्त होता है वह बलवान् राजा भी उदासीन कहा गया है। १९॥ कोई किसी का शत्रु नहीं है और न कोई किसी का मित्र ही होता है। कुछ ऐसे कारण हुआ करते है जिनके वश मित्र और शत्रु यहाँ ससार में बन जाया करते हैं। मैंने तुम्हारे आगे मंडल बता दिया है। यह बारह राज मंडल होते हैं ॥२०॥ तीन प्रकार के शत्रु हुआ करते हैं जो कुल्य अनन्तर और कृत्रिम होते हैं। इन तीनों प्रकार के रिपुओं में जो पहिला पहिला होता है वही गुरु रिपु होता है। जिसकी कोई निवारण क्रिया नहीं होती है और होती भी है तो बहुत कठिन है ॥२१॥ अनन्तर भी जो शत्रु होता है वह भी कृत्रिम ही माना गया है। पार्ष्णि ग्राह होता है। शत्रु के जो मित्र होते हैं वे भी शत्रु ही होते हैं ॥२२॥ अपने पार्ष्णिग्राह को उपायों के द्वारा शमन करना चाहिए। प्राचीन पुरुष मित्र के द्वारा ही शत्रु का उन्मूलन करने की प्रशसा करते हैं ॥२३॥ सामन्तत्व होने से जो मित्र होते हैं वे भी बाद मे शत्रुता को प्राप्त कर लेते हैं। जीत प्राप्त करने की इच्छा वाले को यदि स्वयं शक्तिशाली हो तो शत्रु का उच्छेद कर देना चाहिये। प्रताप की वृद्धि होने पर उससे भी अमित्र से भय उत्पन्न होता है। जिस प्रकार से लोक को इसका उद्वेग न हो और विश्वास हो जावे। जय की इच्छा रखने वाले तथा धर्म की विजय रखने वाले को लोक को वश में कर लेना चाहिए। ॥२४।२५।२६॥

९४ रामोक्तनीतिः

नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या ।
जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्मादिवर्धनीम् ॥१
न्यायेनर्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत् ।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च तिवृत्तं चतुर्विधम् ॥२
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ॥३
शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता ।
उत्साहो वाग्मितौदार्यमापत्कालसहिष्णुता ॥४
प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता ।
कुलं शीलं दमश्चेति गुणा संपत्तिहेतवः ॥५
प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम् ।
ज्ञानाङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम् ॥६
कामः क्रोधस्तया लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
पड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥७

अब राम के द्वारा कही हुई नीति को बताते है। अग्नि-देव ने कहा—पुष्कर के द्वारा कही हुई नीति और श्रीराम ने लक्ष्मण के लिए नीति कही थी उसे जय के लिये तुमको बतलाता हूँ जो कि धर्म आदि के वर्धन करने वाली है। उसको श्रवण करो ॥१॥ श्रीराम ने कहा—न्याय से धन की कमाई करना उस न्यायार्जित धन का बढ़ाना—और उस बढ़े हुए धन की रक्षा करनी चाहिए। इसके पश्चात् उस धन का प्रयोग तथा दान किसी सत्पात्र में (योग्यता सम्पन्न व्यक्ति में) करना चाहिए। धन का यही चार प्रकार का इति वृत्त है ॥२॥ नय (न्याय) का मूल विनय होता है। शास्त्र के निश्चय से विनय आता है। इन्द्रियों की जीत ही तो विनय है। इनसे युक्त होता हुआ मही का पालन करे ॥३॥ सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कुछ गुण हेतु हुआ करते हैं, बिना कारण

के कार्य कभी नही होता है। उन कारण स्वरूप गुणों को बतलाते हैं–शास्त्र का ज्ञान, बुद्धि, धीरज, दक्षता (चतुराई), प्रागल्भ्य (भली प्रकार से खूब बात-चीत करना) धारण करने का स्वभाव, उत्साह, वाग्मिता (बोलने या भाषण की शक्ति), उदारता आपत्ति के समय में सहन करने का स्वभाव प्रभाव, पवित्रता, मित्रता, त्याग, सच्चाई किये हुए उपकार को मानना, सुन्दर कुल, शान्त स्वभाव, इन्द्रियों का दमन ये गुण सम्पत्ति के लाभ में हेतु होते हैं। सम्पत्तिशाली होने को ये गुण होने चाहिए ॥४।५॥ सर्वत्र खुले और फैले हुए विषयों के जङ्गल में दौड़ लगाते हुए विशेष रूप से प्रमादशील इन्द्रियों के हाथी को अर्थात् विभिन्न विषयों में एक दम मग्न एवं विभोर इन्द्रियों के वर्ग रूपी हाथी को ज्ञान रूपी अङ्कुश से अपने वशीभूत करना चाहिये ॥६॥ काम क्रोध, लोभ, हर्षातिरेक, मान, मद इन छः के समूह का त्याग कर देना चाहिए। इनके त्याग देने पर राजा सुखी होता है ॥७॥

आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्तां दण्डनीतिं च पार्थिवः ।
तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥८
आन्वीक्षिक्याऽर्थविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ॥९
अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।
वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०
प्रजाः समनुगृह्णीयात्कुर्यादाचारसंस्थितिम् ।
वाक्सूनृता दया दानं हीनोपगतरक्षणम् ॥११
इति वृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतम् ।
आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ॥१२
को हि राजा शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् ।
न हि स्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणं जनम् ॥१३

अन्विक्षिकी, त्रयीवार्ता, दण्डनीति इन विद्याओं से तथा क्रिया से युक्त विद्याओं से, विनय से अन्वित होकर राजा को चिन्तन करना चाहिए ॥८॥

आन्विक्षिकी से अर्थ का विशेष ज्ञान और त्रयी में स्थित धर्म और अधर्म, वार्त्ता और दण्ड नीति में नय और अनय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥६॥ अहिंसा, मधुर वाणी, सत्य, शौच, दया, क्षमा ये समस्त चारों वर्ण वालों तथा चारों आश्रम वाले लिङ्गियों का साधारण धर्म कहा जाता है ॥१०॥ राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा पर पूर्णतया अनुग्रह रक्खे और आचार की स्थिति भली-भाँति कायम रक्खे। सूनृत वाणी, दया, दान-हीनता वालों की रक्षा करनी चाहिए। ११॥ साधु पुरुषों की भलाई और सत्पुरुषों का व्रत यही सज्जनों का इति वृत्त होता है। आधि (मन की व्यथा) और व्याधि (शारीरिक रोग) से परीत अर्थात् पूर्ण तथा घिरे हुए एवं आज या कल को विनाश हो जाने वाले शरीर के लिए कौनसा ऐसा राजा है जो धर्म से युक्त कर्म का आचरण करता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे शरीर के सुख का त्याग कर धर्म का ही आचरण राजा को करना चाहिए। अपने सुख की इच्छा न करते हुए कृपण जन को पीड़ा नहीं देनी चाहिए ॥१२।१३॥

कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् ।
क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाऽञ्जलिः ॥१४
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनाय शिवार्थिना ।
प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च ॥१५
देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः ।
शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ॥१६
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम् ।
प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽनृपानुचेष्टितैः ॥१७
कुर्वीताभिमुखान्भृत्यैर्देवान्सुकृतकर्मणा ।
सद्भावेन हरेन्मित्रं सम्भ्रमेण च वान्धवान् ॥१८
स्त्रीभृत्यान्प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् ।
अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ॥१९
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः ।

प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ॥२०
गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता ।
स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ॥२१
अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता ।
बन्धुभिर्बद्धसंयोगः स्वजने चतुरस्रता ॥
उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ॥२२

कृपण जब सताया हुआ होता है तो अपने हृदय के क्रोध से राजा का हनन कर देता है । जो स्वजन अभ्यर्हणीय हो उसके लिए अञ्जलि ही की जाया करती है ॥१४॥ जो कल्याण के चाहने वाला है उसे दुर्जन के लिए अधिक अच्छा कार्य करना चाहिए । चाहे सत्पुरुष हों या द्वेष रखने वाले हों सभी के प्रति नित्य प्रिय वचन ही कहने चाहिये, तात्पर्य यह है कि द्वेषियों से भी कभी कटु एवं अप्रिय वचन नहीं बोलने चाहिए ॥१५॥ जो सर्वदा प्रिय वचन ही बोला करते हैं वे साक्षात् देवता के समान होते हैं । जो क्रूर वचन बोलने वाले हैं वे साक्षात् पशु होते हैं । शुचिता से युक्त और आस्तिकता पवित्र आत्मा वाले राजा को सर्वदा देवों का पूजन करना चाहिए ॥१६॥ देवता की भाँति गुरुजन की पूजा करे और अपने आत्मा की भाँति मित्रजन की पूजा करे । प्रणिपात के द्वारा गुरु को और सत्य अनुचेष्टितों वाले भृत्यों के द्वारा सत्पुरुषों को अपने अभिमुख करना चाहिए । सुकृत् कर्म के द्वारा देवों को अपने अनुकूल करे । सद्भाव के द्वारा अपने मित्र के हृदय को वश में करना चाहिए । सम्भ्रम अर्थात् आदर-सत्कार से बान्धवों को, प्रेम और दान के द्वारा स्त्री तथा भृत्यों को और चातुर्य के द्वारा अन्य समस्त लोगों को अपने अनुकूल बना लेना चाहिए ॥१७।१८॥ दूसरों के कृत्यों में अपने धर्म का परिपालन ही अनिन्दा है ॥१९॥ जो कृपण लोग हों उन पर दयालुता करे और सर्वत्र मधुर वाणी बोलनी चाहिए । जो अव्यभिचारी मित्र हों अर्थात् ऐसे मित्र हों जो कभी भी धोखा नहीं दिया करते हैं, उनका प्राणपन से उपकार करना चाहिए । जब घर पर आवे तो मित्र के साथ प्रेमालिङ्गन करे । जितनी अपनी शक्ति हो

उतना बड़े देवे और सहिष्णुता रक्खे। अपनी समृद्धि की दशा में घमण्ड नहीं करना चाहिए, दूसरों की वृद्धि में कभी मत्सरता (डाह) का भाव नहीं रक्खे ॥ २०।२१॥ अपरोक्षता होने पर भी वचन और मौन व्रत की सहिष्णुता रक्खे। बन्धुगण के साथ संयोग को बांधकर रक्खे जो अपने जन हों उनमें अनुरक्तता रखनी चाहिए। चतुरस्रता का अर्थ सब प्रकार की चतुराई होता है। महान् आत्मा वालों का व्रत यही होता है कि वे उचित एवं अनुचित का विचार कर उचित जो होता है उसे ही किया करते हैं ॥२२॥

८५ राजधर्माः (३)

राम—

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गः कोषो बलं सुहृद् ।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१
राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत्सदा ।
कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ॥२
अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता ।
दैवसंपन्नता बुद्धिरक्षुद्रपारिवारता ॥३
शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढभक्तिता ।
दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षिता ॥४
विनीतत्व धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणाः ।
प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ॥५
कुर्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः ।
वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रो बलवान्वशी ॥६
नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पपरिग्रहः ।
पराभियोगप्रसहः सर्वदुष्टप्रतिक्रिया ॥७
परवृत्तान्तवेत्ता च संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
गूढमन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित् ॥८

इस अध्याय में राजधर्म के विषय में बतलाया जाता है। श्री राम बोले—राज्य के सात अंग होते हैं और इन सातों अंगों को ही राज्य कहा जाता है। वे सात अङ्ग, स्वामी, अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल (सेना) मित्र ये होते हैं। ये सभी एक दूसरे के आपस में उपकार करने वाले होते हैं ॥ १ ॥ इन राज्य के अङ्गों में सबसे श्रेष्ठ साधन राष्ट्र होता है। इसलिये इसका सदा भली भाँति पालन करना चाहिए। राजा में. जो कि साधु अर्थात् बहुत अच्छा होता है उसमें कुछ विशेष गुण हुआ करते हैं। वे गुण ये हैं—कुल, शील, अवस्था, सत्व, दाक्षिण्य (कुशलता), क्षिप्रकारिता, (काम को शीघ्रता से पूरा कर देना), अविसंवादिता (जो एक बार मुख से स्वीकार किया है उसका पालन करना), सत्य, वृद्धों की सेवा, किये हुए उपकार का ज्ञान, दैव सम्पन्नता (भाग्यशाली होना), बुद्धि, बड़े परिणाम वाला होना, शक्य सामन्तता, दृढ़ भक्ति रखना, दीर्घदर्शिता (आगे-पीछे की ऊँची-नीची बात को सोचना), उत्साह, पवित्रता, स्थूल लक्षिता, विनीत भाव, धार्मिकता ये गुण अच्छे राजा में होने चाहिए। राजा को अपने पास वाले व्यक्ति भी ऐसे रखने चाहिए जो प्रसिद्ध वंश का हो क्रूरता से रहित हो, लोकसंग्राही हो शुचि हो और आत्म हित की आकाङ्क्षा रखने वाला हो। राजा को वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृति वाला, उदग्र, बलवान्, और वशी होना चाहिए ॥ २ ॥ ॥३॥४॥५॥६॥ दण्ड का नेता, निपुण, शिल्प का परिग्रह करने वाला, पराये अभियोग को सहन न करने वाला, समस्त दुष्टों का प्रतिकार करने वाला, पराये वृत्तान्त को जानने वाला, संधि और विग्रह के तत्व को जानने वाला, गूढ़ मन्त्रणा के प्रचार का ज्ञाता और देश तथा समय के विभाग को समझने वाला राजा को होना चाहिए ॥७॥८॥

आदाता सम्यगर्थानां विन (नि) योक्ता च पात्रवित्।
क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापलवर्जितः ॥९
परोपतापपैशुन्य (मु) न्यमात्सर्येर्ष (र्ष्या) नृतातिगः।
वृद्धोपदेशसंपन्न शक्तो मधुरदर्शनः ॥१०

गुणानुरागस्थितिमानात्मसम्पद्गुणाः स्मृताः ।
कुलीनाः शुचयः शूराः श्रुतवन्तोऽनुरागिणः ११
दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाः स्युर्महीपतेः
सुविग्रहो जानपदः कुलशीलकलान्वितः ॥१२
वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् ।
स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ॥१४
दृढभक्तिरकर्ता च वैराणां सचिवो भवेत् ।
स्मृतिस्तत्परताऽर्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः ॥१५
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसंपत्प्रकीर्तिता ।
त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः ॥१६

अच्छे अर्थों का आद न प्रदान करने वाला पात्र का ज्ञान रखने वाला अर्थों का भली-भांति विनियोग करने वाला तथा क्रोध, लोभ, भय, द्रोह, दम्भ और चपलता से रहित नृप को होना चाहिए ॥६॥ दूसरों के उपताप, पैशुन्य (चुगली या बुराई करना), मात्सर्य, ईर्ष्या और अनृत (मिथ्या) इन दोषों से दूर रहने वाला, वृद्धों के उपदेशों से सम्पन्न, शक्तिशाली होने पर भी मधुर दर्शन वाला राजा को रहना चाहिए ॥ १० ॥ गुणों में अनुराग, स्थिति वाला होना, आत्म सम्पदा ये सब राजा के गुण बताये गये हैं। राजा के मन्त्रीगण भी कुलीन शुचि, शूरवीर, शास्त्रों के ज्ञाता, अनुराग रखने वाले, दण्डनीति के प्रयोग करने वाले ऐसे राजा के मंत्री होने चाहिए।

सुविग्रह जानपद, जो कुलशील और कला से अन्वित हो, वाग्मी, प्रगल्भ, नेत्रों वाला, उत्साह युक्त, प्रतिपत्ति से युक्त, स्तम्भता और चपलता से हीन, क्लेशों के सहन करने वाला और पवित्र राजा का मित्रमण्डल होना चाहिए ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ सत्य, सत्, धृति (धीरज), स्थिरता, प्रभाव, आरोग्य से युक्त शिल्पज्ञाता, दक्ष, बुद्धिवाला और धारणा से युक्त, दृढ़भक्ति वाला, वैर का न करने वाला राजा का सचिव होना चाहिए। मन्त्रियों की सम्पत्ति यह बतलाई गई है कि उनमें पूर्ण दृढ़ता, मन्त्रणा को छिपाकर रखना

संवासियों से बल मन्त्र, आरोग्य, शील स्वभाव, प्रस्तब्धता, अचपलता, वैरों का न करना ये सब बातें प्रत्यक्ष रूप से जान लेनी चाहिए। भद्रता और क्षुद्रता का भी ज्ञान प्राप्त करे। जो परोक्ष गुण वृत्तियाँ होती हैं वे फलों के द्वारा अनुमान करने के योग्य हुआ करती हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ भूमि अच्छे अच्छे आकारों वाली पवित्र, खान में उत्पन्न होने वाले अनेक द्रव्यों से युक्त, बहुत जल वाली और पवित्र देशों से युक्त भूमि हितकारिणी होती है। भूमि गोवंश की भलाई करने वाली होनी चाहिए ॥ २४ ॥

रम्या सकुञ्जरवला वारि थलपयान्विता ।
अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५
शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीवलः ।
सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः ॥२६
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान्वली ।
ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ॥२७
पृथुसीमं महातमुच्चप्राकारतोरणम् ।
पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयम् ॥२८
जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत् ।
औदकं पार्वतं वार्क्षं मैरिणं धन्विनं च षट् ॥२९
ईप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपैतामहोचितः ।
धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये ॥३०
पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः ।
विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ॥३१

रमणीक हाथियों के बल सयुक्त, वारि के जो स्थल हों उनमें पथों वाली हो, अदेव मातृका भूमि ही विशेष विभूति के लिये प्रशस्त कही जाती है ॥ २५ ॥ राजा का जनपद शूद्र, कारीगर और वणिक्जनों से पूर्ण होना चाहिए। उसमें किसान भी ऐसे होवें जो महान् आरम्भ वाले हों। कृषकों में पूर्ण अनुराग, राजा के शत्रु से द्वेष, पीड़ा का सहन करना, तथा अनेक वद्देश्यों से समाकीर्ण होना, धर्मनिष्ठा, पशुपालन, बल ये सब गुण होवें, ऐसा

होना चाहिए। राजा का जो पुरोहित हो वह भी त्रयी और दण्ड नीति मे परम कुशल होवे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथर्ववेदविहित कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् ।
साधुतैषाममात्यानां तद्विद्यैः सह बुद्धिमान् ॥१७
चक्षुष्मत्तां च शिल्प च परीक्षेत गुणद्वयम् ।
स्वजनेभ्यो विजानीयात्कुलं स्थानमवग्रहम् ॥१८
परिकर्मसु दक्षं च विज्ञान धारयिष्णुताम् ।
गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीति (त) तां तथा ॥१९
कथायोगेपु बुध्येत वाग्मित्वं सत्यवादिताम् ।
उत्साहं च प्रभावं च तथा क्लेशसहिष्णुताम् ॥२०
धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्यं चाऽऽपदि लक्षयेत् ।
भक्तिं मैत्रीं च शौचं जानीयाद्व्यवहारतः ॥२१
संवासिभ्यो बलं सत्वमारोग्यं शीलमेव च ।
अस्तब्धतामचापल्य वैराणां चाप्यकीर्तनम् ॥२२
प्रत्यक्षतो विजानीयाद्भद्रतां क्षुद्रतामपि ।
फलानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ॥२३
सस्याकरवती पुण्या खनिद्रव्यसमन्विता ।
गोहिता भूरिसलिला पण्यैर्जनपदैर्युता ॥२४

अथर्व वेद में बताई हुई पौष्टिक शान्ति को करे। अमात्यों की यही साधुता है कि उस विद्या वालों के साथ रहकर बुद्धिमान् चक्षुष्मानों के शिल्प का परीक्षण करे। अपने बनों के दो गुणों को भली-भाँति समझ ले एक तो उनका कुल और अवग्रह स्थान ॥ १७ ॥ १८ ॥ परिकर्मों में दक्षता, विशेष ज्ञान और धारण करने का स्वभाव इन तीन गुणों की जाँच करनी चाहिए प्रगल्भता प्रीति का भी परीक्षण करे ॥ १९ ॥ कथा के योगों मे वाग्मिता और सत्यवादिता उत्साह, प्रभाव का परीक्षण करे। क्लेशों के सहन करने का स्वभाव, धैर्य, अनुराग, स्थिरता इन गुणों की जाँच आपत्ति के समय में की जानी चाहिए। भक्ति मैत्री, शौच इनका ज्ञान व्यवहार से करे ॥ २० ॥ २१ ॥

संवासियों से बल मन्त्र, आरोग्य शील स्वभाव, मस्तव्यता, अचपलता, वैरों का न करना ये सब बातें प्रत्यक्ष रूप से जान लेनी चाहिए। भद्रता और क्षुद्रता का भी ज्ञान प्राप्त करे। जो परोक्ष गुण वृत्तियाँ होती हैं वे फलों के द्वारा अनुमान करने के योग्य हुआ करती हैं॥ २२॥ २३॥ भूमि अच्छे अच्छे आकारों वाली पवित्र, खान में उत्पन्न होने वाले अनेक द्रव्यों से युक्त, बहुत जल वाली और पवित्र देशों से युक्त भूमि हितकारिणी होती है। भूमि गोवंश की भलाई करने वाली होनी चाहिए॥ २४॥

रम्या सकुञ्जरबला वारि थलपथान्विता ।
अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५
शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीवलः ।
सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः ॥२६
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान्बली ।
ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ॥२७
पृथुसीमं महातमुच्चप्राकारतोरणम् ।
पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयम् ॥२८
जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत् ।
औदकं पार्वतं वार्क्षं मैरिणं धन्विनं च षट् ॥२९
ईप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपैतामहोचितः ।
धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये ॥३०
पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः ।
विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ॥३१

रमणीक हाथियों के बल सयुक्त, वारिके जो स्थन्ल हों उनमें पथों वाली हो, अदेव मातृका भूमि ही विशेष विभूति के लिये प्रशस्त कही जाती है ॥ २५॥ राजा का जनपद शूद्र, कारीगर और वणिक्जनों से पूर्ण होना चाहिए। उसमें किसान भी ऐसे होवें जो महान् आरम्भ वाले हों। कृषकों में पूर्ण अनुराग, राजा के शत्रु से द्वेष, पीड़ा का सहन करना, तथा अनेक *बहुदेश्यों से समाकीर्ण होना, धर्मनिष्ठा, पशुपालन, बल ये सब गुण होवें,*

जो आनाद होता है परम प्रशस्त होता है। अब दुर्ग के विषय में बताते हैं, दुर्ग ऐसा होना चाहिए जिसका नायक व्यसनों से रहित एवं विद्वान् होवे। बड़ी सीमा वाला, महान् खाई वाला, ऊँचे प्राकार (चारदीवारी) और तोरण (प्रधान द्वार) वाला जिसमें पुर का समावेश हो सके तथा शैल, नदी और वन के आश्रय वाला हो, जल से और धान्य एव धन से युक्त हो ऐसा काल सह दुर्ग महान् होना चाहिए। यह औदक (जल से सम्बन्धित), पर्वत, वार्क्ष ऐरिण और धन्वि छै प्रकार का होता है ॥२६॥२७॥२८॥२९॥ अब राजा के कोष के विषय में बताया जाता है, जितना भी धन इच्छित हो उस द्रव्य से परिपूर्ण कोष होना चाहिए और बाप दादा के समय से चले आने वाला पुराना हो। जो धन भी राजा के कोष मे सज्जित किया गया हो वह धर्म पूर्वक अर्जित होना चाहिए। इतना धन कोष में रहे जो राज काज मे व्यय होता है उसे सहन कर सके। ऐसा कोष धर्म आदि की वृद्धि करने वाला होता है। पितृ पैतामह वश्य होता है और वेतन जिसने दे दिया है वह संहत होता है। जो स्वयं उत्पन्न करके बनाया जावे वह विख्यात पौरुष तथा शकुनों से वृत्त कुशल नाम वाला कोष होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारदः ।
नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ॥३२
प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः ।
अद्वैधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डवतां मतः ॥३३
योगविज्ञानसत्वाढ्यं महापक्षं प्रियंवदम् ।
आयतिक्षममद्वैधं मित्रं कुर्वीत सत्कुलम् ॥३४
दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा ।
वाक्सत्कृत्य प्रदानं च त्रिविधो मित्रसंग्रहः ॥३५
धर्मकामार्थसंयोगो मित्रात्तु त्रिविधं फलम् ।
औरस तत्र सनद्ध तथा वंशक्रमागतम् ॥३६
रक्षित व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।
मित्रे गुणाः सत्यताद्याः समानसुखदुःखता ॥३७

वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिम् ।
दक्षता भद्रता दाढर्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ॥३८
संतोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम् ।
यथाकालमुपासीत राजानं सेवको नयात् ॥३९

राजा का कोष अनेक प्रकार के प्रहरणों से युक्त होना चाहिए जो कि नाना प्रकार के युद्धों के परिदृत हो। अनेक योधाओं से घिरा हुआ तथा अश्व और हस्तियों के समूह नीराजित हो ॥३२॥ प्रवास के आयास दुःखों में श्रम किया हुआ और क्षत्रिय प्राय दण्ड दण्ड वालों का माना गया है ॥ ३३ ॥ योग, विज्ञान और सत्व से युक्त, महान् पक्ष वाला, प्रिय बोलने वाला तथा आयति (उत्तर काल) में समर्थ कुलवान् एवं अद्वैध (दो तरह का भाव रखने वाला) मित्र राजा का होना चाहिए । ३४ ॥ मित्रों का संग्रह तीन प्रकार का होता है, दूर से ही अभिगमन, स्पष्ट अर्थ वाली तथा हृदय में स्थान बनाने वाली वाणी और सत्कार करके प्रदान ये तीन प्रकार हैं ॥ ३५॥ धर्म, काम और अर्थ का संयोग ये तीन प्रकार का मित्र से फल होता है। औरस, सबद्ध, वंश क्रम से चला आने वाला और व्यसनों से रक्षित चार प्रकार का मित्र जानना चाहिए। मित्र में सत्यता आदि समान दुःखता तथा सुखता गुण होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अब जो राजा के अनुजीवी होते हैं उनका वृत्त बतलाया जाता है। जो सेवा करने वाला होता है उसे राजा की सेवा करनी चाहिए। दक्ष होना, भद्रता, दृढ़ता, क्षान्ति, क्लेश के सहन करने का स्वभाव का होना, सन्तोष, शान्त स्वभाव (शील), उत्साह ये गुण अनुजीवी को भूषित कर देते हैं। सेवक का कर्त्तव्य है समय के अनुसार राजा की सेवा या उपासना करे यही नय (नीति) है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

परस्थानगमं क्रौर्यमौद्धत्यं मत्सरं त्यजेत् ।
विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्याज्ज्यायसा सह ॥४०
गुह्यं मर्म च मन्त्रं च न च भर्तुः प्रकाशयेत् ।
रक्ताद् वृत्ति समीहेत विरक्तं सत्यजेन्नृपम् ॥४१

अकार्ये प्रतिषेधश्च कार्ये चापि प्रवर्तनम् ।
संक्षेपादिति सद्वृत्ति बन्धुमित्रानुजीविनाम् ।४२
आजीव्यः सर्वसत्वानां राजा पर्जन्यवद्भवेत् ।
आयद्वारेषु चाऽप्त्यर्थं धनं चाऽददतीति च ॥४३
कुर्यादुद्योगसंपन्नानध्यक्षान्सर्वकर्मसु ।
कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतु कुञ्जरबन्धनम् ॥४४
खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम् ।
अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत् ॥४५
आमुक्तिकेभ्यश्चौरेभ्यः पौरेभ्यो राजवल्लभात् ।
पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम् ॥४६
अवेक्ष्यैतद्भयं काल आददीत कर नृपः ।
अभ्यन्तर शरीरं स्वं वा (वा) ह्य राष्ट्रं च रक्षयेत् ॥४७
दण्ड्यांस्तान्दण्डयेद्राजा स्व रक्षेच्च विषादितः ।
स्त्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन्न कदाचन ॥४८

पराये स्थान में गमन करना क्रूरता, उद्धतपन और मत्सरता का सेवक को त्याग कर देना चाहिए। किसी के कथन को ग्रहण कर उसे बढ़ा या न करे। तात्पर्य यह है जैसा भी कोई कहे उसे उतना ही कह देना चाहिए ॥ ४० ॥ कोई गुप्त बात हो उसे, मर्म, मन्त्र स्वामी का किसी के आगे प्रकाशित न करे। जो राजा राग से युक्त हो उससे ही अपनी रोजी कमावे तथा जो विरक्त राजा हो तो उसे अनुजीवी को त्याग देना चाहिए ॥ ४१ ॥ जो अकार्य उसमें प्रतिषेध और जो करने के योग्य हो उसमें प्रवृत्ति रखना यह संक्षेप से बन्धु मित्र और अनुजीवियों की सद्वृत्तिता ही गई है ॥ ४२ ॥ राजा समस्त प्राणियों का मेघ की भाँति आजीव्य हुआ करता है। आय के द्वारों में प्राप्ति के लिये धन को राजा लोग आदान किया करते हैं ॥ ४३ ॥ राजा को चाहिए कि सभी कर्मों में अध्यक्ष ऐसे ही व्यक्तियों को बनावे जो उद्योग गुण से सम्पन्न हों। कृषी (खेती), वणिक्पथ, दुर्ग- सेतु, कुञ्जर बन्धन, खान, आकर, बल का आदान, शून्य स्थानों का निवेशन यह अष्ट वर्ग

होता है। राजा को इसका साधु चरित्र वाला होते हुए अनुशासन करना चाहिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ग्रामुक्तिक, चौर, पौर, राजा का प्रिय व्यक्ति, राजा का लालच से प्रजाजन को इन पाँच से भय रहा करता है अर्थात् यह पाँच प्रकार के प्रजा के लिये भय होते हैं ॥ ४६ ॥ राजा का कर्त्तव्य है कि इस भय को देख कर समय पर कर लेना चाहिए। अपने भीतरी शरीर की और बाहिरी राष्ट्र की राजा को रक्षा करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ राजा को दण्ड के देने योग्य व्यक्तियों को दण्ड देना चाहिए और विष आदि से अपनी रक्षा करनी चाहिए। स्त्रियों तथा पुत्रों की रक्षा करे और शत्रुओं का कभी भी विश्वास राजा को नहीं करना चाहिए ॥ ४८ ॥

६६ पुरुपलक्षणम् ।

रामोक्तोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन्नृणां वदे ।
लक्षणं यत्समुद्रेण गोर्गायोक्तं यथा पुरा ॥१
पुंसां च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणां चैव शुभाशुभम् ।
एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रिगम्भीरस्तथैव च ॥२
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा ।
त्रिवलीमांस्त्रिविनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ॥३
पुरुपः स्यात्सुलक्षण्यो विपुलश्च तथा त्रिपु ।
चतुर्लेखस्तथा यश्च तथैव च चतुःसमः ॥४
चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुष्कृष्णस्तथैव च ।
चतुर्गन्धश्चतुर्ह्रस्वः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चसु ॥५
षडुन्नतोऽष्टवंशश्च सप्तस्नेहो नवामलः ।
दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६
चतुर्दशसमद्वन्द्वः षोडशाक्षश्च शस्यते ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो धर्मो ह्येकाधिको मतः ॥७
तारकाभ्यां विना नेत्रे शुक्लदन्तो द्विशुक्लकः ।
गम्भीरस्त्रिश्रवो नाभिः सत्वं चैकं त्रिकं स्मृतम् ॥८

इस अध्याय में पुरुष के लक्षणों के विषय में बताया जाता है। अग्निदेव ने कहा—राम के द्वारा कही हुई नीति मैंने बताई है। अब हे राजन्! स्त्रियों के और पुरुषों के लक्षण बताता हूं। समुद्र ने गर्ग के लिये जिस तरह पहिले बताये थे वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ १ ॥ समुद्र ने कहा—पुरुषों के और स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षण बताता हूँ। एकाधिक-द्विशुक्ल तथा त्रिगम्भीर-त्रित्रिक और त्रिप्रलम्ब जो इन तीनों से व्याप्त होता है। हे सुव्रत! त्रिवलीमान्-त्रिविनत और त्रिकस्वज्ञ जो पुरुष होता है वह पुरुष बहुत अच्छे लक्षणों वाला होता है और तीनों मे विपुल होता है। जो चतुर्लेख तथा चतुःसम-चतुष्किष्कु-चतुर्दंष्ट्र-चतुष्कृष्ण-चतुर्गन्ध और चतुर्हस्त होता है। जो पांचों में सूक्ष्म दीर्घ होता है। षडुन्नत-अष्टवंश-सप्त स्नेह-नवामल-दश पद्म-दशव्यूह-न्यग्रोध परिमण्डल-चतुर्दशसमद्वन्द्व और षोड़शाक्ष पुरुष प्रशस्त कहा जाता है। धर्म-अर्थ और काम से संयुक्त धर्म एकाधिक माना गया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ नेत्रों की पुतलियों को छोड़कर जिसके नेत्र और दन्त शुक्ल होते हैं वह द्विशुक्लक होता है। गम्भीर त्रित्रय नाभि और एक सत्त्व त्रिक कहा गया है ॥ ८ ॥

अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचारयुक्तता ।
शौचं स्पृहा स्वकार्पण्यमनायासश्च शौर्य (शूर) ता ॥९
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बः स्याद्वृषणे भुजयोर्नर ।
दिग्देशजातिवर्गांश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥१०
व्याप्नोति यस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान्नरस्त्वसौ ।
उदरे वलयस्तिस्रो नरं त्रिविनतं शृणु ॥११
देवतानां द्विजानां च गुरूणां प्रणतस्तु यः ।
धर्मार्थकामकालज्ञस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते ॥१२
उरो ललाट वक्त्रं च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान् ।
द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतौ ॥१३
अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटिः शस्तं चतुःसमम् ।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणतः ॥१४

दंष्ट्राश्चतस्रश्चन्द्राभाश्चतुष्कृष्णं वदामि ते ।
नेत्रतारौ भ्रुवौ श्मश्रु: कृष्णाः केशास्तथैव च ॥१५
नासायां वदने स्वेदे कक्षयोर्वेदगन्धकः ।
ह्रस्वं लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद्वेदह्रस्वकः ॥१६

असूया न करना-दया-क्षान्ति-मङ्गल आचारों से युक्त होना शौच स्पृग-कृपणता न करना-अनायास-शूरता ये तीन-तीन का त्रिक होकर कुल त्रित्रिक होता है। वृषभ और दोनों भुजाओं में नर त्रिप्रलम्ब होता है। दिशा, देश, जाति और वर्गों का जो तेज से-यश से और श्री से व्याप्त करता है वह त्रिक व्यापी होता है। जिसके उदर में तीन वलि होती हैं वह नर त्रिवलीमान् होता है। अब त्रिविनत के विषय में श्रवण करो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ जो देवताओं को-ब्राह्मणों को और गुरुवर्ग को प्रणति करने वाला होता है वह त्रिविनत कहा जाता है। धर्म-अर्थ और काम के काल को जानने वाला त्रिकालज्ञ कहा जाता है ॥ १२ ॥ उरःस्थल-ललाट और वक्त्र जिसके चौडे होते हैं। वह त्रिविस्तीर्ण होता है। दो हाथ और दो पैर ध्वज और छत्र आदि से युक्त होता है वह त्रिलेखवान् होता है। ॥ १३ ॥ अंगुलियाँ-हृदय-पृष्ठभाग और कटि ये जिसके प्रशस्त हों वह चतु समः होता है। जिस पुरुष की ऊँचाई छियानवे अंगुल होती है वह प्रमाण से चतुष्किष्कू होता है ॥ १४ ॥ जिसकी चार दाढ़ चन्द्र की सी आभा वाली होती है वह चतुर्दंष्ट्र होता है। अब चतुष्कृष्ण कहते हैं दोनों नेत्रों के तारे-भ्रू-श्मश्रु और केश ये चारों जिसके कृष्ण होते हैं वह चतुष्कृष्ण नाम से कहा गया है। नासिका में-पसीना-वदन (मुख) में और दोनों बगलों में गन्ध वाले को चतुर्गन्ध कहते हैं। जिसका लिङ्ग ह्रस्व हो-ग्रीवा (गरदन) ह्रस्व (छोटी) हो और दोनों जाँघ ह्रस्व हों वह चतुर्ह्रस्वक कहा गया है ॥१५॥१६॥

सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि नखकेशाद्विजत्वचः ।
हनू नेत्रे ललाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरम् ॥१७
वक्षःकक्षौ नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका ।
स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोमदृष्टिर्नखाश्च वाक् ॥१८

जान्वोरूर्वोश्च पृष्ठस्थवंशौ द्वौ कर्णनासयोः ।
नेत्रे नासापुटौ कर्णौ मेढ्रं पायुमुखेऽमलम् ॥१९
जिह्वौष्ठौ तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा ।
शिश्नाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम् ॥२०
पाणिपादं मुख ग्रीवा श्रवणे हृदय शिरः ।
ललाटमुदरं पृष्ठं बृहन्तः पूजिता दश ॥२१
प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरम् ।
उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥२२
पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्वौ वङ्क्षणौ वृषणौ कुचौ ।
कर्णौष्ठे (ष्ठौ) सक्थिनी जङ्घे हस्तौ बाहू तथाऽक्षिणी ॥२३
चतुर्दशसमद्वन्द्व एतत्सामान्यतो नरः ।
विद्याश्चतुर्दश व्यक्षीः पश्येद्य पोडशाक्षकः ॥२४
रूक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांसवर्जितम् ।
दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तं दृष्टया प्रसन्नया ॥२५
धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्मत्तेभसंनिभा ।
एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत्सकृत् ॥२६

जिस पुरुष के अंगुलियों के पर्व तो सूक्ष्म हों और नख-केश-दाँत और त्वचा- ठोड़ी-नेत्र और ललाट सूक्ष्म-नासा दीर्घ और स्तनों का अन्तर दीर्घ हो तथा वक्ष और कक्ष-नख और नाक तथा मुख ऊँचा हो, कृकाटिका स्निग्ध हो, त्वचा, केश और दाँत स्निग्ध हों, लोम दृष्टि, जानु और ऊरुओं तथा कर और नासा के दो पृष्ठस्थ वंश हों-दोनो नेत्र नासिका के नथुने दोनो कान-मेढ्र और पायु मुख में कोई मल न हो ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ जीभ ओठ-तालु-नेत्र-हाथ-पैर-नाखून-शिश्न का अग्रभाग और मुख ये दश देह धारियों के पद्म की-सी आभा वाले प्रशस्त बताये जाते हैं ॥ २० ॥ हाथ-पाद-मुख-गरदन-कान-हृदय-शिर-ललाट-उदर और पीठ ये दश बृहत् हों तो पूजित बताये गये हैं ॥ २१ ॥ भुजा प्रसारित करने वाले के मध्यमा द्वय का अन्तर ऊँचाई से जितना सम हो तो उसे न्यग्रोध मण्डल नामक लक्षण बताया

जाता है । पाद-गुल्फ-स्फिच-पार्श्व-वंक्षण-वृषण-कुच-कान-ओष्ठ-सक्थि-हाथ-बाहु तथा नेत्र ये चौदह अङ्गों का द्वन्द्व समान होतो यह नर सामान्य होता है। दोनों नेत्रों से जो चौदह विद्याऐं जानता है वह षोडशात्मक लक्षण वाला कहा गया है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ स्नायु और मांस से रहित शिरायत गात्र अशुभ कहा जाता है। जो दुर्गन्धि से विपरीत और प्रसन्न दृष्टि से युक्त हो वह प्रशस्त कहा गया है ॥ २५ ॥ वह पुरुष परम धन्य है जिसकी वाणी मधुर हो और गति एक मस्त हाथी के समान हो। एक कूप में होने वाला रोम एक-एक बार भय में रक्षा करता है ॥ २६ ॥

६७ स्त्रीलक्षणम् ।

शस्ता स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी ।
गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ॥१
सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा ।
समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ ॥२
नाभिः प्रदक्षिणावर्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत् ।
गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ॥३
जठरं न प्रलम्बं च रोमरूक्षा न शोभना ।
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ॥४
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता ।
गण्डैर्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ॥५
न संहतभ्रू कुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया ।
अलक्षणाऽपि लक्षण्या यत्राऽऽकारस्ततो गुणाः ॥
भुवं कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन्मृत्युरेव सा ॥६

इस अध्याय में स्त्रियों के लक्षणों के विषय में बताया जाता है। समुद्र ने कहा—वह स्त्री शुभ एवं प्रशस्त होती है जिसके समस्त अङ्ग सुन्दर हों और मस्त हथिनी के समान गमन करने वाली हो। जिसके ऊरू (स्तन)

गुरु हों और मस्त पारावत (कबूतर) के समान नेत्र हों वह स्त्री भी प्रशस्त होती है। सुनील केशों वाली, कृश तनु अर्थात् पतले शरीराङ्गों से युक्त बिना लोम वाले अङ्गों वाली—मन को हरण करने वाली—जिसके पाद भूमिपर समान रूप से स्पर्श करने वाले हों और स्तन संहत हों वह स्त्री शुभ लक्षणा होती है ॥ १ ॥ २ ॥ जिसकी नाभि का आवर्त्त दक्षिण की ओर हो और गुह्य इन्द्रिय पीपल के पत्र के समान हो—गुल्फ निगूढ हों—मध्य से नाभि अंगुष्ठ के मान वाली हो वह स्त्री शुभ होती है ॥ ३ ॥ जिसका उदर लम्बा न हो और जो रोमों से रूक्ष न हो वह शुभ होती है। जो रोमों के कारण रूखे शरीर वाली होती है वह शुभ नहीं होती है। नक्ष-वृक्ष नदी के नाम वाली और सदा कलह से प्यार करने वाली स्त्री भी शुभ नही होती है ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ लोलुप और बुरी भाषा या भाषण कहने वाली शुभ नही होती है। वह देवादिदूषित नहीं कही जाती है। मधूक के फूलों की आभा के तुल्य आभा वाले गण्डस्थलों से शिराला और लोपशा भी शुभ नहीं होती है ॥ ५ ॥ जिसकी भृकुटियाँ जुड़ी हुई और कुटिल हों वह स्त्री भी शोभन नहीं होती है। जो अपने पति को ही अपना प्राण समझती है और पति को प्यारी होती है वह शुभ लक्षणा न होते वाली भी सुलक्षणा होती है। जहाँ आकार होता है वहाँ पर गुण भी हुआ करते हैं। जिसकी कनिष्ठिका अंगुली भूमिका स्पर्श नहीं किया करती है वह तो साक्षात् मृत्यु ही के समान होती है अर्थात् वह बहुत बुरा कुलक्षण स्त्री में होता है ॥६॥

६८ रत्नपरीक्षा ।

रत्नाना लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपैः ।
वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागं च मौक्तिकम् ॥
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्यं गन्धशस्यकम् ।
चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥२
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीरसं द्विज ।
स्फटिकं राजपट्टं च तथा राजम्

सौगन्धिकं तथा गञ्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा ।
गोमेदं रुधिराक्षं च तथा भल्लातकं द्विज ॥३
धूली मरकतं चैव तुत्थकं सीसमेव च ।
पिलुं प्रवालकं चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥५
भुजगमणिं चैव तथा वज्रमणि शुभम् ।
टिट्टिभं च तथा पिण्ड भ्रामरं च तथोत्पलम् ॥६
सुवर्णप्रतिबद्धानि रत्नानि श्रीजयादिके ।
अन्तःप्रभत्व वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ॥७
सुधार्या नैव धार्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तया ।
खण्डाः सशर्करा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम् ॥८

इस अध्याय मे रत्नों की परीक्षा का विषय कहा जाता है। अग्निदेव ने कहा—मैं अब रत्नों के लक्षण बताता हूं। राजाओं को ये रत्न धारण करने चाहिएँ। वज्र (हीरा)-मरकत-पद्मराग और मौक्तिक (मोती)-इन्द्र नील महानील वैडूर्य-गन्ध शस्यक-चन्द्र कान्त-सूर्यकान्त-स्फटिक-पुलक-कर्केतन-पुष्पराग तथा हे द्विज ! ज्योतीरस-स्फटिक-राजपट्ट और राजमय ये शुभ रत्न राजा के धारण के योग्य होते हैं। ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सौगन्धिक-गञ्ज-शङ्ख ब्रह्ममय-गोमेद-रुधिराक्ष भल्लातक-धूली मरकत-तुत्थक-पीलु-प्रवाल (मूंगा) और गिरिवज्र तथा भुजङ्गम मणि (जिस रत्न को विषधर सर्प अपने मुख में रखता है)-वज्रमणि ये रत्न भी परम शुभ होते हैं। टिट्टिभ-पिण्ड और भ्रामर-उत्पल ये रत्न जय आदि के कार्य मे भुजा में बांधे जाने चाहिए। रत्नों के भीतर प्रभा-विमलता और सुसंस्थानता होनी चाहिए। ऐसे ही रत्नों को धारण करना चाहिए। जो निष्प्रभ और मलिन हों या खण्ड के रूप में तथा शर्करा से युक्त हों उन्हें धारण नहीं करे। हीरा का धारण करना तो परम प्रशस्त होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अप्सु तरति यद्वज्रमभेद्य विमल च यत् ।
षट्कोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभम् ॥६

शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा ।
स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैर्मरकतश्च बिन्दुभिः ॥१०
स्फटिकाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्मलाः ।
जातरंगा भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः ॥११
सौगन्धिकोत्थाः काषाया मुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः ।
विमलास्तेम्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने ॥१२
नागदन्तभवाश्चाग्र्याः कुम्भसूकरमत्स्यजाः ।
वेणुनागभवा श्रेष्ठा मौक्तिकं मेघजं वरम् ॥१३
वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छ्यं महत्त्वं मौक्तिके गुणाः ।
इन्द्रनीलः शुभः क्षीरे राजते भ्राजतेऽधिकम् ॥१४
रञ्जयेत्स्वप्रभावेण तममूल्य विनिर्दिशेत् ।
नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत् ॥१५

जिस हीरे में ये गुण हों वह बहुत ही शुभ होता है। देखकर ही धारण करे। जो हीरा अम्भ (पानी) को तरण करता है-अभेद्य होता है और विमल होता है तथा षट्कोण और शक्र धनुष की सी आभा वाला होता है एवं सूर्य के समान कान्ति वाला हो वह शुभ होता है ॥ ९ ॥ इन गुणों के विपरीत हीरा अशुभ होता है उसे नहीं धारण करना चाहिए। अब मरकत नाम वाले रत्न के लक्षण बताते हैं—शुक्ल पक्ष के तुल्य कान्ति वाला हो-स्निग्ध, कान्ति वाला तथा विमल मरकत होना चाहिए। मरकत पर स्वर्ण के चूर्ण के समान सूक्ष्म बिन्दु होते हैं वह मरकत परम शुभ होता है ॥ १० ॥ जो स्फटिक मणि के नाम से प्रसिद्ध रत्न हैं वे पद्मराग होने चाहिए तथा राग वाले होने हुए भी अत्यन्त निर्मल कुरु बिन्द समुद्भव जात रङ्ग होने हैं ॥११॥ सौगन्धिक से उत्पन्न काषाय होते हैं और जो मुक्ता फल अर्थात् मोती हैं वे तो सीप से समुद्र में उत्पन्न हुआ करते हैं। हे मुने ! विमल उनसे भी उत्कृष्ट हुआ करते है जो शङ्ख से उत्पन्न होने वाले हैं ॥ १२ ॥ नागदन्त से उत्पन्न होने से श्याग्र्य हैं। कुम्भ सूकर और मत्स्य से भी मोती होते हैं। वेणु नाग से होने वाले श्रेष्ठ मोती होते हैं। जो मेघज मोती होता है वह भी श्रेष्ठ

होता है ॥ १३ ॥ मोती के विशेष गुणों का परीक्षण करने से ही उनकी श्रेष्ठता का ज्ञान होता है। गोलाई-शुक्लता-स्वच्छता और बड़ा होना ये मोती के विशेष गुण हैं। इसी से मोती के मूल्य की वृद्धि भी होती है। इन्द्रनील वह शुभ होता है जो क्षीर (दूध) में शोभा देता है और अधिक चमकता है ॥ १४ ॥ जो अपनी दीप्ति के प्रभाव से उसको रञ्जित कर देता है उसे तो अमूल्य ही कहना चाहिए। नील रक्त तो वैदूर्य रत्न होता है जोकि हारादिक के लिये परम श्रेष्ठ होता है ॥ १५ ॥

९९ वास्तुलक्षणम्

वास्तुलक्ष्म प्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ॥१
घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढ्या रसतश्च भूः।
मधुरा च कषाया च अम्लाद्युपरसा क्रमात् ॥२
कुशैः शरैस्तथा काशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता।
प्राच्यं विप्रांश्च निःशल्यां खातपूर्वं तु कल्पयेत् ॥३
चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः।
प्राक्तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथार्यमा ॥४
दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा।
उदङ् महीधरश्चैव आपवत्सौ च वह्निगे ॥५
सावित्रश्चैव सविता जयेन्द्रौ नैर्ऋतेऽम्बुपौ।
रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वादौ कोणगाद्बहिः ॥६
महेन्द्रश्च रविः सत्यो भृशः पूर्वेऽथ दक्षिणे।
गृहक्षतोऽर्यमधृती गन्धर्वाश्चाथ वारुणे ॥७
पुष्पदन्तोऽसुराश्चैव वरुणो यक्ष एव च।
सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धनदस्तथा ॥८
नागः करग्रहश्चैशे अष्टौ दिशि दिशि स्मृता।
आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावत्र गृहेश्वरौ ॥९

इस अध्याय में वास्तु का लक्षण बताया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—अब वास्तु का लक्षण मैं बताता हूँ। यहाँ पर विप्र आदि की भूमि यथाक्रम से श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण होती है ॥१॥ घृत रक्त और मद्यों के और रस से गन्धयुक्त भूमि मधुर, कषाय और अम्ल आदि उपरस वाली क्रम से होती है ॥२॥ जो भूमि कुश, शर, बाँस और दूभ आदि से संश्रित है वहाँ विप्रों का पूजन करके खातपूर्वक (खोदने के साथ) निःशल्याक में कल्पित करना चाहिये ॥३॥ मध्य में चौंसठ पद चतुष्पद ब्रह्मा करे। उनके पहिले गृह स्वामी कहा गया है। दक्षिण में अर्यमा, विवस्वान् मित्र पश्चिम में, महीधर उत्तर में, *आपवत्सु वह्निदिशागत, सावित्र और सविता एवं जयेन्द्र वैऋ‌र्त* अम्बुधि में, रुद्र व्याधि वायव्य में, कोण में गमन करने वाले से बाहर, पूर्व आदि में महेन्द्र, रवि, सत्य और भृश पूर्व में, इसके अनन्तर दक्षिण में गृहक्षत और अर्यमा धृति तथा वारुण दिशा में गन्धर्व, पुष्पदन्त, असुर, वरुण और यक्ष, सौम्य दिशा में भल्लाट और सोम, अदिति, धनद, नाग और करगृह ये आठ ऐश दिशा में रक्खे। इस प्रकार से दिशाओं में करे। *उन दोनों के* आदि-अन्त में गृहेश्वर देव बताये गये है ॥४ से ६॥

पर्जन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः ।
महेन्द्ररविसत्याश्च भृशोऽथ गगनं तथा ॥१०
पवनः पूर्वतश्चैव अन्तरिक्षधनेश्वरौ ।
आग्नेये चाथ नैऋ‌र्त्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ ॥११
रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ ।
गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः ॥१२
आप्ये दौवारिकसुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलम् ।
यक्ष्मरोगश्च शेषश्च उत्तरे नाम राजकः ॥१३
मुख्यो भल्लाटशशिनौ अदितिश्च कुबेरकः ।
नागो हुताशः श्रेष्ठो वै शक्रसूर्यौ च पूर्वतः ॥१४
दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः ।
पुष्पदन्तो ह्युदग्द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः ॥१५

पर्जन्य प्रथम देव है। दूसरा देव करग्रह होता है। महेन्द्र, रवि और सत्य, भृश और गगन एवं पवन देव पूर्व में होते हैं। अन्तरिक्ष और अनेश्वर आग्नेय में देव होते हैं और नैऋ्त्य दिशा में मृग सुग्रीवक सुर हैं। रोग और मुख्य वायव्य में और दक्षिण में पुष्प वित्तद देव होते हैं। गृह क्षत, यम, मृश, गन्धर्व और नाग पैतृक होते हैं ॥१०।११।१२॥ आप्य दिशा में दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, असुर, जल, यक्ष्मरोग और शेष है। उत्तर में नाराजक मुख्य है तथा भल्लाट, शशि, अदिति, कुबेर हैं। पूर्व में नाग, हुताश और शक्र एवं सूर्य श्रेष्ठ है। दक्षिण में गृह क्षत और पुष्प उत्तम हैं। आप्य दिशा में सुग्रीव उत्तम देव हैं। उत्तर द्वार में पुष्पदन्त, भल्लाट और पुष्पदन्त उत्तम देव होते हैं ॥१३।१४।१५॥

शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रैः प्राच्यं सुरांश्चरेत्।
नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसाभिः प्रजया सह ॥१६
जये भार्गवदायादे प्रजानां जयमावह।
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥१७
भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम।
सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधैर्वृते ॥१८
रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह।
प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीमये ॥१९
सुभगे सुव्रते भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम्।
पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते ॥२०
भवभूतिकरि देवि गृहे भार्गवि रम्यताम्।
अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ॥२१
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम्।
देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ॥२२
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव।
गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२३

मन्त्रों के द्वारा देवों का अर्चन करके फिर शिला तथा ईंट आदि का

न्यास करना चाहिए। हे नन्दे ! आनन्द करो, हे वासिष्ठे ! प्रजा के साथ धन के साथ जय करो। हे जये ! हे काश्यपदायादे ! मेरी श्रेष्ठ वृद्धि करो। समस्त बीजों से समायुक्त रहने वाली और सम्पूर्ण रत्न एवं औषधियों से पूर्ण रहने वाली ! हे रुचिरे ! नन्दने ! नन्दे ! हे वासिष्ठे ! यहाँ पर रमण करो। हे प्रजापति सुते ! हे महीमये चतुरस्रे देवि ! सुभगे ! सुन्दर व्रत वाली ! हे भद्रे ! हे काश्यपि ! इस गृह में रमण करो। हे परम आचार्यों के द्वारा पूजित होने वाली ! गन्ध और मालाओं से अलंकृत होने वाली ! भव की भूति को करने वाली, हे भार्गवि देवि ! आप यहाँ रमण करें। हे अव्यङ्गे ! हे अक्षते ! पूर्णे ! हे अङ्गिरस मुनि की पुत्री ! हे इष्टके ! तुम मेरे इष्ट को प्रदान करो। मैं प्रतिष्ठा कराता हूँ। देश के स्वामी, पुर के स्वामी और गृह के स्वामी के परिग्रहे ! आप मनुष्य, धन, हस्ती, अश्व और अन्य पशुओं की वृद्धि करने वाली हो जाओ। इसी प्रकार से गृह के प्रवेश करने में भी शिला का न्यास करना चाहिए ॥१६ से २३॥

उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक्स्याद्‌गृहादितः ।
उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तमः ॥२४
वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासं गृहे शुभम् ।
सायं प्रातस्तु घर्माप्तौ शीतकाले दिनान्तरे ॥२५
वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः ।
विडङ्गघृतसंयुक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ॥२६
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।
घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥२७

उत्तर दिशा में प्लक्ष का वृक्ष शुभ होता है। गृहादि से पूर्व में वट, याम्य दिशा में गूलर और पश्चिम दिशा में पीपल का वृक्ष उत्तम होता है। ॥२४॥ वाम भाग में उद्यान को रचना चाहिए। इस तरह से घर में वास करना शुभ होता है। घर्म की प्राप्ति में सायंकाल तथा प्रातःकाल में और शीतकाल के समय में, दिन के मध्य में तथा वर्षा काल में जब भूमि सूख जावे तब रोपे हुए वृक्षों को सींचना चाहिये। विडङ्ग और घृत से संयुतों को शीतल

जल से सिञ्चन करे। फलों के नाश होने पर कुलत्थ, माष, मुद्ग, तिल, यवों के द्वारा धृत शीत जल का सेक सर्वदा फल और पुष्पों के लिए करना चाहिए ॥२५।२६।२७॥

१०० धनुर्वेदः

चतुष्पादं धनुर्वेदं वदे पञ्चविधं द्विज।
रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाऽऽश्रित्य कीर्तितम् ॥१
यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसंधारितं तथा।
अमुक्तं बाहुयुद्धं च पञ्चधा तत्प्रकीर्तितम् ॥२
तत्र शस्त्रास्त्रसंपत्त्या द्विविधं परकीर्तितम्।
ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते ॥३
क्षेपणीचापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्तितम्।
शिलातोमरयन्त्राद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्तितम् ॥४
मुक्तसंधारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत्।
खड्गादिकममुक्तं च नियुद्धं विगतायुधम् ॥५
कुर्याद्योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः।
धनुःश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च ॥६
तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च।
धनुर्वेदे गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ॥७
युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं चाऽऽपदि शिक्षया।
देशस्थैः शंकरै राज्ञः कार्या युद्धे सहायता ॥८

इस अध्याय में धनुर्वेद का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—हे द्विज! चतुष्पाद धनुर्वेद होता है अर्थात् धनुर्वेद के चार पाद हैं किन्तु मैं यहाँ उसे पाँच पाद वाला बताता हूँ। क्योंकि वह यहाँ पर रथ, हाथी अश्व, पैदल और योद्धाओं का आश्रय लेकर कहा गया है ॥१॥ यन्त्र से मुक्त हाथ से मुक्त–मुक्त किये हुए को संधारण किया हुआ अमुक्त और बाहुयुद्ध इस तरह से यह पाँच प्रकार का कहा गया है ॥२॥ वहाँ पर शस्त्र और अस्त्रों

की सम्पत्ति के कारण यह पुनः दो प्रकार का होता है। ऋजु (सरल) और माया के करने के भेद होने से फिर इनके दो भेद होते हैं ॥३॥ क्षेपण करने के योग्य जो चाप (धनुष) आदि यन्त्र से मुक्त होते हैं अर्थात् छोड़ जाया करते हैं वे यन्त्रमुक्त नाम से कहे गये हैं। शिला तथा तोमर यन्त्रादि जो होते हैं वे पाणिमुक्त से बताये गये है ॥४॥ मुक्त संधारित वह होता है जो प्रासाद भी होता है। खड्ग आदि जो शस्त्र हैं वे अमुक्त कहे जाते हैं। जिस युद्ध में कोई भी आयुध (हथियार) नहीं होता है वह नियुद्ध होता है ॥५॥ श्रम को जीतने वाले और युद्ध करने की इच्छा वाले को युद्ध करने के लिये योग्य पात्रों को ही नियुक्त करना चाहिए। धनुष के द्वारा श्रेष्ठ युद्ध-प्रास को मध्य में काम में लाने वाले युद्ध होते हैं। ये उत्तम श्रेणी के युद्ध है। खड्ग (तलवार) से जो युद्ध किये जाते हैं वे जघन्य (नीच) श्रेणी के युद्ध होते हैं। जो युद्ध बाहुओं से किये जाते हैं वे भी प्रत्यवर (तुच्छ) कोटि के युद्ध कहे जाते हैं। धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिये विप्र को ही गुरु बताया गया है। तथा दो वर्ण का कोई हो। शूद्र को युद्ध का अधिकार और स्वयं युद्ध करना आपत्ति के समय में ही होता है। शिक्षा के द्वारा देश मे रहने वाले सङ्करों के द्वारा राजा को युद्ध में सहायता करनी चाहिये ॥६।७।८॥

अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यङ्घ्र्यः श्लिष्टाः स्युः सहिता यदि ।
दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणतस्तथा ॥९
बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ ।
त्रिवितस्त्यन्तरास्थानमेतद्वैशाखमुच्यते ॥१०
हंसपङ्क्तयकृतिसमे दृश्येते यत्र जानुनी ।
अर्तुर्वितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम् ॥११
हलाकृतिमय यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम् ।
वितस्त्यः पञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम् ॥१२
तदेव विपर्यस्तं प्रत्यालीढमिति स्मृतम् ।
तिर्यग्भूतो भवेद्वामो दक्षिणोऽपि भवेदृजुः ॥१३
गुल्फौ पार्ष्णिग्रहो चैव स्थितौ पञ्चांगुलान्तरौ ।

स्थानं जातं भवेदेतद्द्वादशांगुलमायतम् ॥१४
ऋजुजानुर्भवेद्वामो दक्षिणः सुप्रसारितः ।
अथ वा दक्षिणं जानु कुब्ज भवति निश्चलम् ॥१५
दण्डायतो भवेदेष चरणः सह जानुना ।
एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम् ॥१६

अंगूठा, गुल्फ और हाथ तथा पैर सहित होकर यदि श्लिष्ट हों तो लक्षण से यह स्थान समपद देखा गया है ॥९॥ बाह्य अंगुलियों से स्थित रहने वाले पैर हों और दोनों जानुओं (घुटनों) के बल स्तब्ध हों तो यह त्रिवित स्तम्न्तरा स्थान वैशाख नाम से कहा जाता है ॥१०॥ जिसमें हंस पंक्ति की आकृति के समान जानु दिखलाई देते हैं और चार विलस्त विच्छिन्न हो वह मण्डल नाम वाला कहा गया है ॥११॥ जिस युद्ध में हलकी सी आकृति वाले दक्षिण जानु तथा दोनों ऊरु स्तब्ध हों तथा विस्तार में पाँच विलस्त (बिलांद) हो वह युद्ध आलीढ़ नाम वाला कहा गया है ॥१२॥ वह ही इसके विपरीत स्थिति में हो तो प्रत्यालीढ नाम से कहा गया है । वाम तिर्यग्भूत अर्थात् टेढ़ा हो और दाहिना सीधा हो एवं दोनों गुल्फ पार्ष्णिग्रह की स्थिति में हों तथा पाँच अङ्गुल के अन्तर वाले हों तो यह बारह अङ्गुल आयत (चौ ?) स्थान होता है ॥१३।१४॥ बाँया जानु (घुटना) सीधा हो और दाहिना जानु सुप्रसारित हो अथवा दाहिना घुटना कुब्ज (टेढ़ा) निश्चल हो तो जानु के साथ यह चरण दण्ड की भाँति आयत होता है । दो हाथ के अन्तर वाला आयत विकट नाम वाला युद्ध कहा गया है ॥१५।१६॥

जानुना द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ ।
अनेन विधियोगेन संपटं परिकीर्तितम् ॥१७
किंचिद्विवर्तितौ पादौ समदण्डायतौ स्थिरौ ।
दृष्टमेव यथान्यायं षोडशाङ्गुलमायतम् ॥१८
स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथम द्विज ।
कार्मुकं गृह्य वामेन बाणं दक्षिणकेन तु ॥१९
वंशाग्रे यदि वा जाते स्थितो वाऽप्यथ वाऽप्यतो ।

गुणान्तं तु ततः कृत्वा कार्मुके प्रिय कार्मुकः ॥२०
अधःकोटिं तु धनुषः फलदेश तु पत्रिणः ।
धरण्यां स्थापयित्वा तु तालयित्वा तथैव च ॥२१
भुज्याभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत ।
तस्य बाणं धनुःश्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः ॥२२
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशांगुलमन्तरम् ।
ज्यया विशिष्टः कर्त्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ॥२३
निवेश्य कार्मुकं नाभ्यां नितम्बे शरसंकरम् ।
उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः ॥२४

दोनों जानु द्विगुण हों और दोनों चरण उत्तान (ऊँचे उठे हुए) हों इस विधि के योग से जो युद्ध होता है वह सम्वट नाम वाला बताया गया है । ॥ १७ ॥ पैर कुछ निवर्त्तित और समान दण्ड के तुल्य आयत होकर स्थिर हों और न सोलह अंगुल आयत यथा न्याय जो देखा गया है । हे द्विज ! यहाँ पर पहिले स्वस्तिक के द्वारा प्रणाम करना चाहिए । बाँये हाथ से धनुष को ग्रहण करके दाहिने हाथ से बाण ग्रहण करे ।। १८ ।। १६ ।। यदि वैशाख के होने पर दोनों स्थित हो अथवा आयत हों तो धनुष पर प्यार करने वाले योधा को कार्मुक मे गुणान्त करे ।। २० ।। धनुष की कोटि को और पत्री को फल भाग को भूमि से रखकर तथा सन्तुलन करके रक्खे ।। २१ ।। हे शुभ व्रत ! इसमें भुजाओं से और टेडे प्रकोष्ठों से उसके श्रेष्ठ धनुष वाले बाण को पत्री के पुङ्ख भाग में विन्यास करे और धनुष का बारह अंगुल का विस्तार रक्खे । धनुष की डोरी से उसे विशिष्ट करे जो न तो अत्यन्त कम हो और न ज्यादा ही होवे ।। २२ ।। २३ ।। कार्मुक को नाभि में रख कर और नितम्ब और शरों के समूह को ऊपर करके प्रक्षिप्त करे । नेत्र और कानों का अन्तर एक हाथ होना चाहिए ।। २४ ।।

पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यः स्तनाग्रे दक्षिणे शरः ।
हरणं तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वं प्रसारयेत् ॥२५

नाऽभ्यन्तरा नैव बाह्या नोर्ध्वका नाधरा तथा ।
न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ॥२६
समा स्थैर्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता ।
छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वेणानेन मुष्टिना ॥२७
उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः ।
स्रस्तांसो निश्चलग्रीवो मयुराञ्चितमस्तकः ॥२८
ललाटनासावक्त्रांसकूर्परेषु समो भवेत् ।
अन्तरं त्र्यगुलं ज्ञेयं चिबुकस्यांशु (स) कस्य च ॥२९
प्रथमं त्र्यंगुलं ज्ञेयं द्वितीये द्व्यंगुलं स्मृतम् ।
तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतं चिबुकांसयोः ॥३०

पूर्व मुष्टि से उसे ग्रहण करना चाहिए जो कि शर दक्षिण स्तन के अग्र भाग में रक्खे और इसके पश्चात् हरण करके पहिले शीघ्र प्रसारित करे । ॥ २५ ॥ जो अभ्यन्तरा न हो, बाह्य भी न हो, न ऊपर को रहने वाली ही हो और न नीचे की ओर ही रहे । न टेढ़ी हो और न उत्तान (ऊँची) हो । न उत्तानमान हो और न अत्यन्त वेष्टित ही होवे । ऐसी स्थिति में रहे कि सम हो और स्थिरता के गुण से युक्त होवे । जो कि पूर्व दण्ड की भांति स्थित रहे । इस प्रकार से छादन करके इसके अनन्तर पूर्व मुष्टि से लक्ष्य को यन्ता उरःस्थल से उठा हुआ होकर त्रिकोण विनत स्थित होवे । स्रस्त कन्धे वाला निश्चल गरदन से युक्त तथा मयुराञ्चित मस्तक वाला एवं ललाट, नासिका, मुख, अंस और कूर्परों सम होना चाहिए । चिबुक (ठोड़ी) और अंशुक का तीन अंगुल का अन्तर जानना चाहिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रथम तीन अंगुल, द्वितीय में दो अंगुल, और तृतीय में चिबुक और अंस का एक अंगुल आयत कहा गया है ॥ ३० ॥

गृहीत्वा सायकं पुङ्खात्तर्जन्याऽङ्गुष्ठकेन तु ।
अनामया पुनगृ ह्य तथा मध्यमयाऽपि च ॥३१
तावदाकर्षयेद्गाढ़ यावद्बाणः सुपूरितः ।
एवंविधमुपक्रम्य मोक्तव्यं विधिवत्खगम् ॥३२

हृष्टिमुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद्बाणेन सुव्रत ।
मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं क्षिपेद्वेगेन पृष्ठतः ॥३३
एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज ।
कूर्परं तदधः कार्यमाकृष्य तु धनुष्मता ॥३४
ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यमक्षिश्लिष्टं तु मध्यमम् ।
श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदैः ॥३५
ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद्द्वादश मुष्टयः ।
चतुर्हस्तं धनुः श्रेष्ठं त्रयः सार्धं तु मध्यमम् ॥३६
कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः ।
अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्तितम् ॥३७

धनुष को ग्रहण कर पुङ्ख से तर्जनी से और अंगुष्ठ से और फिर अना-मिका तथा मध्यमा से ग्रहण करके तब तक उसे वेग के साथ खींचे जबकि बाण अच्छी तरह से पूरित हो जावे। इस रीति से उपक्रम करके विधि के साथ खग पर छोड़ना चाहिए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे व्रत ! हृष्टि मुष्टि से हृत लक्ष्य को बाण से भेदन करे। पीछे के हाथ को छोड़ कर पीछे से वेग के साथ क्षेपण करना चाहिए ॥ ३३ ॥ यह उच्छेद को चाहते हैं हे द्विज ! तुमको यह जान लेना चाहिए। कूर्पर को उसके नीचे करना चाहिए धनुष धारी को पहिले खींचना चाहिए ॥ ३४ ॥ धनुर्विद्या के पण्डितों को जान लेना चाहिए कि विमुक्त में ऊपर को करना चाहिए। जो अक्षि (नेत्र) क्लिष्ट होता है वह मध्यम तथा प्रकृष्ट श्रेष्ठ होता है ॥ ३६ ॥ सबसे बड़ा सायक वह होता है जो बारह मुट्ठी का होता है। चार हाथ का धनुष श्रेष्ठ हुआ करता है। साढ़े तीन का जो होता है वह मध्यम श्रेणी का कहा गया है। जो तीन हाथ का होता है वह धनुष सबसे कनिष्ठ श्रेणी का कहा गया है। यह धनुष जो सर्वदा पदाति (पैदल) रहता है उसके लिये ही होता है। अश्व, रथ, गज पर तो वह ही श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

१०१ धनुर्वेदकथनम्

पूर्णायतं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान् ।
सुनिर्धौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमौ विधापयेत् ॥१
ततो बाणं समागृह्य दशितः सुसमाहितः ।
तूणमासाद्य वध्नीयाद्दृढांकक्षां च दक्षिणाम् ॥२
विलक्ष्यमपि तद्वाणं तत्र चैव सुसस्थितम् ।
ततः समुद्धरेद्वाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना ॥३
तेनैव सहितं मध्ये शरं संगृह्य धारयेत् ।
वामहस्तेन वै कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत् ॥४
अविषण्णमतिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत् ।
संपीड्य सिंहकर्णेन पुङ्खेनापि समे दृढम् ॥५
वामकर्णोपविष्टं च फल वामस्य धारयेत् ॥६
मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानावित् ।
दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत् ॥७
ललाटपटसंस्थानं दण्ड लक्ष्ये निवेशयेत् ।
आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम् ॥८

इस अध्याय मे भी धनुर्वेद का कथन है। अग्निदेव ने कहा—द्विज को पूर्ण से आयत (विस्तृत) धनुष को करके इसके पश्चात् मांसों से गदायुधों को करे। धनुष को भली भांति निर्धौत करके यज्ञ भूमि मे रक्खे ॥१॥ इसके उपरान्त बाण को लेकर दशित एवं सुसमाहित होते हुए तूणीर (तरकश) लेवे और दक्षिण भाग में दृढ़ कक्षा को बाँधे। वह बाण विलक्ष्य होते हुए भी वहीं पर भली प्रकार से संस्थित रहता है। इसके अनन्तर उसी तूणीर से दाहिने हाथ से बाण को निकालना चाहिए ॥ २।३ ॥ उसी के साथ मध्य में शर का संग्रह करके धारण करे। बांये हाथ मे कक्षा को और उससे धनुष को निकाले ॥४॥ विषाद से रहित मूर्त्ति वाला होकर धनुष की डोरी मे पुङ्ख को रखे। सिंह कर्ण से संपीड़ित कर पुङ्ख को भी दृढ़ता से सम करे ॥५॥ बांये कान

पर उपविष्ट और वाम के फल को धारण करना चाहिए। वहाँ पर मध्यमा से और वाम अंगुलि से वर्णों को धारण करे ॥६॥मन को एकदम लक्ष्य पर लगाये जाने वाली करके विधान के ज्ञाता को दाहिने शरीर के भाग में करके वर्ण को छोड़ना चाहिए ॥७॥ ललाट पर संस्थान दण्ड को लक्ष्य में निवेशित करे और वहाँ पर खींचकर ताड़ित करे। चन्द्रक षोडष अंगुल का होना चाहिए ॥८॥

मुक्त्वा वाणं ततः पश्चाद्वर्णांशिक्यं तदा तया ।
निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः ॥६
अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत्तूणाच्चतुरस्रं च दक्षिणम् ।
चतुरस्रगतं वेध्यमभ्यसेन्नाऽऽदितः स्थितः ॥१०
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं मतं च यत् ।
निम्नमुन्नतवेध च अभ्यसेत्क्षिप्रक ततः ॥११
वेध्यस्थानेष्वथैतेषु सत्त्वस्य पुटकाद्धनुः ।
हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्जयेद्दुस्तरैरपि ॥१२
तस्मिन्वेध्यगते विप्र द्वे वेध्ये दृढसंज्ञके ।
द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ॥१३
न तु निम्नं च तीक्ष्ण च दृढवेध्ये प्रकीर्तिते ।
निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्ध्वगतं च यत् ॥१४
मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसञ्ज्ञके ।
एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ॥१५
आरोहेत्प्रथमं वीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः ।
एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोक्तृभिः ॥१६
अधिकं भ्रमण तस्य तस्माद्वेध्यात्प्रकीर्तितम् ।
लक्ष्य स योजयेत्तत्र पत्रिपत्रगत दृढम् ॥१७
भ्रान्तं प्रचलितं चैव स्थिरं यच्च भवेदति ।
समन्तात्ताडयेद्भिन्द्याच्छेदयेद्व्यथयेदपि ॥१८

बाण को छोड़कर फिर उस समय उस मध्यमा अंगुलि से बार-बार वर्ण से शिक्य का ग्रहण करे ॥ ६ ॥ अक्षिलक्ष्य और चतुरस्र दक्षिण का क्षेप

करे। चतुरस्रगत वेध्य (वेधन करने के योग्य को) आदि से स्थित हुआ अभ्यास करे ॥१०॥ इसके उपरान्त उससे तीक्ष्ण और जो परावृत्त माना गया हो—निम्न तथा उन्नत वेध ही उसे क्षिप्र अर्थात् शीघ्रता करने वाले का अभ्यास करना चाहिए ॥ ११ ॥ इन जीव के वेधन करने के योग्य स्थानों में हस्तों को दुस्तर भी अपगत चित्रों के द्वारा पुटक से धनुष को तर्जित करे ॥१२॥ न तो निम्न (नीचा—गहरा) और न तीक्ष्ण ये दृढ़ वेध्य कहे गये हैं। निम्न दुष्कर तथा ऊर्ध्वगत वेध्य जो होता है वह भी दुष्कर कहा गया है। ये दोनों वेध्य दुष्कर तथा चित्र दुष्कर बताये गये हैं ॥१३।१४॥ मस्तकायन के मध्य में चित्र और दुष्कर संज्ञा वाले वेध्य होते हैं। इस रीति से वेध्यगण को करके दक्षिण से और वाम से वीर को पहिले आरोहण करना चाहिए तब मानव लक्ष्य को जीतने वाला होता है। यह ही विधि कही गई है वहाँ पर प्रयोक्ताओं के द्वारा देखी गई है ॥ १६ ॥ उस वेध्य से उसका भ्रमण अधिक बताया गया है। उस वीर को पत्रिपत्रगत लक्ष्य का दृढ योजन करना चाहिए ॥१७॥ भ्रान्त (भ्रमण किया हुआ)—प्रचलित तथा स्थिर जो है वे तो उसे चारों ओर से वेधन करने वाले को उसका ताड़न—भेदन—व्यधन और छेदन भी करना चाहिए ॥१८॥

१०२ व्यवहारकथनम् (१)

व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदम्।
स चतुष्पाच्चतुःस्थानश्चतुःसाधन उच्यते ॥१
चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्यते।
अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ॥२
त्रियोनिर्द्व्यभियोगश्च द्विद्वारो द्विगतिस्तथा।
धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ॥३
चतुष्पाद्व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः।
तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ॥४

चरित्रं सग्रहे पुंसां राजाज्ञायां तु साधनम् ।
सामा द्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ॥५
चतुर्णामाश्रमाणां च रक्षणात्स चतुर्हितः ।
कर्तारं साक्षिणश्चैव सभ्या ग्राजानमेव च ॥६
व्याप्नोति पादशो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः ।
धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकपङ्क्तेस्तथैव च ॥७
चतुर्णां करणादेष चतुष्कारी प्रकीर्तितः ।
राजा सपुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ ॥८
हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः समुदाहृतः ।
कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यस्मात्प्रवर्तते ॥९
त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत् ।
द्वयभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ॥१०

इस अध्याय मे व्यवहार के कथन का वर्णन है । अग्नि देव ने कहा—नय और अनय के विवेक को प्रदान करने वाले व्यवहार को मैं बताता हूं । वह विवेक चार पाद वाला—चार स्थान वाला तथा चार साधन वाला कहा जाता है ॥१॥ वह चतुर्हित—चतुर्व्यापी और चतुष्कारी बताया जाता है । आठ अंगों वाला—अठारह पद वाला और सौ शाखा वाला भी कहा गया है ॥ २ ॥ तीन योनि वाला—दो अभियोग वाला—दो द्वारों से युक्त और दो गति वाला होता है । धर्म और व्यवहार—चरित्र और राज साधन ये होते हैं ॥ ३ ॥ चतुष्पाद व्यवहारों का उत्तर पूर्व का साधक होता है । वहाँ पर सत्य में धर्म स्थित होता है और साक्षियों से व्यवहार होता है ॥४॥ पुरुषों के संग्रहमें चरित्र और राजाज्ञा में साधन होता है । साम—दाम आदि उपायों के द्वारा साध्य होने के कारण यह चार साधन वाला कहा जाता है ॥५॥ चार ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की रक्षा करने के कारण यह चतुर्हित भी कहा जाया करता है । करने वाला—साक्षी-गण—सभ्य लोग और राजा इन चारों को पाद से व्याप्त रहता है । अतएव यह चतुर्व्यापी कहा गया है । धर्म का—यश का—अर्थ का और लोकपंक्ति का इन चारों के करने से इसे चतुष्कारी कहा गया है । राजा वह पुरुष के साथ—

सम्यगण–शास्त्र–गणक–लेखक–हिरण्य–अग्नि और जल इन आठ अङ्गों के रहने के कारण यह अष्टांग बताया गया है। काम–क्रोध और लोभ इन तीनों से यह प्रवृत्त होता है। इसलिये इसे त्रियोनि कहते हैं। यह तीनों विवादकृत हैं। शङ्का और तत्त्व के अभियोग से यह दो अभियोग वाला जानना चाहिए ॥६।७।८।६।१०॥

शङ्का सद्भिस्तु संसर्गात्तत्त्वं पोढ़ाभिदर्शनात् ।
पक्षद्वयाभिसंबन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः ॥११
पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः ।
भूतच्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः सउदाहृतः ॥१२
ऋण देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत् ।
दानग्रहणधर्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥१३
स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः ।
निक्षेप नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥१४
वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वते ।
तत्सभूय समुत्थानं व्यवहारपदं विदुः ॥१५
दत्त्वाद्रव्यं च सम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति ।
दत्त्वाप्रदानिकं नाम तद्विवादपद स्मृतम् ॥१६

सद् पुरुषों के संसर्ग होने से शङ्का होती है और छं के अभिदर्शन से तत्त्व होता है। दोनों पक्षों के सम्बन्ध होने से दो द्वार वाला (द्विद्वार) कहा गया है ॥११॥ उन दोनों का एक पक्ष पूर्ववाद होता है और दूसरा प्रतिपक्ष होता है। प्राणियों के छलों का अनुसरण करने वाला होने के कारण वह द्विगति बताया गया है ॥ १२ ॥ जहाँ जिसके द्वारा जिस प्रकार से जो ऋण है वह देने के योग्य है या अदेय है और दान ग्रहण धर्म है इसलिये ऋण दान यह कहा गया है ॥ १३ ॥ अपने द्रव्य को विश्वास होने के कारण धरोहर रख देता है और कोई भी शङ्का वाला नहीं रहता है। बुध लोगों ने उसे व्यवहार का स्थान निक्षेप यह कहा है ॥१४। वैश्य प्रभृति लोग जिसमें होकर कर्म किया करते हैं। उसे भली भाँति करके उठ जाना व्यवहार का स्थान जाना जाता

है ॥१५॥ अच्छी तरह धन को देकर जो फिर उसे लेने की इच्छा किया करता है उसे दत्ता प्रदानिक नाम वाला विवाद का स्थान कहा गया है ॥१६॥

अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते ।
अशुश्रूषामुपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ॥१७
भृत्यानां वेतनस्योक्तो दानादानविधिश्च यः ।
वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१८
निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वाऽपहृत्य वा ।
विक्रीयते परोक्ष यत्स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रियः ॥१९
विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यन्न न दीयते ।
विक्रीयासंप्रदानं तद्विवादपदमुच्यते ॥२०
क्रीत्वा मूल्येन यः पण्यं क्रेता न बहु मन्यते ।
कृत्वा मूल्यं तु यः पण्यं दुष्क्रीत मन्यते क्रयी ॥२१
पाषण्डनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते ।
समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२२
सेतुकेदारमर्यादा विकृष्टाकृष्टनिश्चयाः ।
क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजस्तु सः ॥२३
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसा च कीर्त्यते ।
स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तु तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२४

जो शुश्रूषा करके उसे प्राप्त नहीं करता है। अशुश्रूषा को प्राप्त होकर यह विवाद का स्थान कहा जाता है ॥१७॥ भृत्यों के वेतन के देने और न देने की जो विधि कही गई है वह वेतन का अनपाकर्म है और विवाद का पद कहा जाता है ॥१८॥ अथवा पराया द्रव्य धरोहर रक्खा गया है। अथवा प्राप्त करके नष्ट हो गया हो अथवा अपहरण करके परोक्ष में (पीठ पीछे) वह बेच दिया जाता है तो हे राम ! वह अस्वामि विक्रय वाला जानना चाहिए। अर्थात् बिना ही धन के स्वामी के किसी दूसरे द्वारा बेचा जाना माना जाता है ॥ १९ ॥ बेचकर (जो मूल्य के द्वारा खरीदने वाले को पण्य नहीं दिया जाता है अर्थात् मूल्य ग्रहण कर वस्तु नहीं दी जाती है वह बेचकर नहीं देना विवाद का एक

स्थान कहा जाता है)॥२०॥ खरीद कर और मूल्य देकर फिर खरीदने वाला उस पण्य को अर्थात् खरीदी हुई वस्तु को अच्छी नहीं मानता है। मूल्य करके जो पण्य को क्रय करने वाला दुष्क्रीत मानता है अर्थात् उस खरीददारी को बुरी समझता है ॥२१॥ पाखण्ड नैगम आदि की स्थिति समय कही जाती है। समय का जो अनपाकर्म है वह विवाद का स्थान होता है ॥२२॥ सेतु–केदार मर्यादा विप्रकृष्टाकृष्ट निश्चय वाली जहाँ क्षेत्र के अधिकार में हों वह क्षेत्रज विवाद होता है ॥२३॥ जहाँ पर स्त्रियों की और पुरुषों की विवाद सम्बन्धी विधि कही गई है वह स्त्री और पुरुष दोनों के योग के नाम वाला विवाद का स्थान कहा गया है ॥२४॥

विभागोऽर्थस्य पैत्रस्य पुत्रैर्यस्तु प्रकल्प्यते ।
दायभागमिति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः ॥२५
सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्बलदर्पितैः ।
तत्साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ॥२६
देशजातिकुलादीनामाक्रोशाद् व्यङ्गसंयुतम् ।
यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥२७
परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः ।
अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥२८
अक्षवज्रशलाकाद्यैर्देवनं द्यूतमुच्यते ।
पशुक्रीडा वयोभिश्च प्राणिद्यूतं समादिशेत् ॥२६
प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः ।
राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणं तथा ॥३०
व्यवहारो दशपदस्तेषां भेदोऽथ वै शतम् ।
क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ॥३१
व्यवहारान्नृपः पश्येज्ज्ञानिविप्रैरकोपनः ।
शत्रुमित्रसमा सभ्या अलोभाः श्रुतिवेदिनः ॥३२

पिता के धन का विभाजन जो पुत्रों के द्वारा किया जाता है वह दाय भाग इस नाम से विद्वानों के द्वारा विवाद (झगड़े) का स्थान बताया गया है

॥२५॥ देश–जाति और कुल आदि का आक्रोश (बुराई) से व्यंग से युक्त अर्थात् ध्वनित अर्थ वाला जो वचन विपरीत अर्थ वाला हो वह वाक्पारुष्य अर्थात् वाणी की कठोरत्व कहा जाता है ॥२७॥ दूसरों के शरीरों पर हाथ-पैर और शस्त्रास्त्र आदि से जो अभिद्रोह है चोर आदि का करना है तथा भाव आदि के उपघातों से किया जाता है वह दण्ड पारुष्य (कठोरता) कहा जाता है ॥२८॥ अक्ष (पांसे) वज्र और शलाका आदि के द्वारा जो खेल किया जाता है वही द्यूत (जूआ) इस नाम से कहा जाता है। पशु के द्वारा और पक्षियों के द्वारा जो क्रीड़ा की जाती है अर्थात् पशु तथा पक्षियों को सावन बनाकर जो जूआ खेला जाता है वह प्राणिद्यूत इस नाम से कहना चाहिए ॥ २९ ॥ जो व्यवहार बिना किसी आश्रय के होता है वह प्रकीर्णक जानना चाहिए। राजाओं की आज्ञाओं का प्रतिघात अर्थात् राजा लोग जो आज्ञा देते हैं उसके विरुद्ध करना तथा उनके काम का न करना यह व्यवहार स्थान दश प्रकार का होता है और उसके भेद सौ प्रकार के होते हैं। मनुष्यों की क्रिया (काम का करना) के भेद से वह सैकड़ों ही शाखा वाला कहा जाता है ॥३०–३१॥ ज्ञान वाले ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहार से विना क्रोध किये हुए राजा को देखना चाहिए। सभ्य (सभा के सदस्य) शत्रु और मित्र को समभाव से बरतने वाले तथा लोभ–लालच से रहित और वेद के ज्ञाता होने चाहिए ॥३२॥

अपश्यता कार्यवशात्सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत् ।
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि श्रुत्यपेतादिकारिणः ॥३३
सभ्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या विवादाद्द्विगुणो दमः ।
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाघर्षितः परैः ॥३४
आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ।
प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ॥३५
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिन्हितम् ।
श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसंनिधौ ॥३६
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ।
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ॥३७

चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ।
अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ॥३८
अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् ।
कुर्यात्प्रत्यभियोग तु कलहे साहसेषु च ॥३९
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्य्यनिर्णये ।
निन्हवे भाविती दद्याद्धन राज्ञे तु तत्समम् ॥४०

कार्य वश से राजसभा के सदस्यों के द्वारा न देखे तो उसे किसी ब्राह्मण को नियोजित कर देना चाहिए। किसी राग द्वेष से—लोभ—लालच से अथवा भय से श्रुति के अभाव के करने वाले जो सभ्य हों उन्हें अलग—अलग दण्ड देना चाहिए। विवाद से दुगुना दम होना चाहिए। स्मृति तथा आचार से रहित मार्ग के द्वारा जो दूसरों से आधर्षित होता हुआ प्रार्थना करता है वह राजा के व्यवहार का स्थान कहा जाता है प्रार्थी के द्वारा जो कुछ भी आवेदित किया गया है वह प्रत्यर्थी के सामने ही लिखाना चाहिए। उसमें वर्ष—मास—पक्ष और दिन—नाम और जाति आदि सबसे युक्त लिखा जाना चाहिए। पहिले जिसने राजा से प्रार्थना की है उस आवेदक की सन्निधि में ही जो भी कुछ सुना गया है उस सबका जवाब भी लिखाना चाहिए ॥३३ से ३६॥ इसके अनन्तर प्रार्थी जो हो उससे जाने हुए अर्थ (विषय) का साधन लिखाना चाहिए। उसके सिद्ध हो जाने पर अर्थात् पूर्णतया भावित होने पर ही वह सिद्धि को प्राप्त होता है अर्थात् भावित होता है कि यह सब कुछ अनुकूल है या विपरीत है ॥३७॥ विवादों के विषय में यह चार पाद (चरण) वाला व्यवहार कहा गया है। अभियोग (मुकदमा) को पूरा न देखकर अर्थात् पूर्णतया मामले को न समझते हुए इसका प्रत्यभि योजन नहीं करना चाहिए ॥३८॥ दूसरे के द्वारा जो अभियुक्त बनाया गया हो उसे छोड़ना नहीं चाहिए प्रत्युत उसे विप्रकृत (दोषारोप से युक्त) किया जाना चाहिए। कलह में और साहस के कर्मों में उस पर विरुद्ध मुकदमा लगाना चाहिए ॥३९॥ दोनों, जिसने अभियोग लगाया है और जिस पर अभियोग लगाया गया है, इन दो चाहे गये विषय का निर्णय करने में समर्थ

।।२५।। देश–जाति और कुल आदि का आक्रोश (बुराई) से व्यंग्य से युक्त अर्थात् ध्वनित अर्थ वाला जो वचन विपरीत अर्थ वाला हो वह वाक्पारुष्य अर्थात् वाणी की कठोरत्व कहा जाता है ।।२७।। दूसरों के शरीरों पर हाथ–पैर और शास्त्रास्त्र आदि से जो अभिद्रोह है चोर आदि का करना है तथा आँच आदि के उपघातों से किया जाता है वह दण्ड पारुष्य (कठोरता) कहा जाता है ।।२८।। अक्ष (पाँसे) वस्त्र और शलाका आदि के द्वारा जो खेल किया जाता है वही द्यूत (जूआ) इस नाम से कहा जाता है । पशु के द्वारा और पक्षियों के द्वारा जो क्रीडा की जाती है अर्थात् पशु तथा पक्षियों को सावन बनाकर जो जूआ खेला जाता है वह प्राणिद्यूत इस नाम से कहना चाहिए ।। २६ ।। जो व्यवहार बिना किसी आश्रय के होता है वह प्रकीर्णक जानना चाहिए । राजाओं की आज्ञाओं का प्रतिघात अर्थात् राजा लोग जो आज्ञा देते है उसके विरुद्ध करना तथा उनके काम का न करना यह व्यवहार स्थान दश प्रकार का होता है और उसके भेद सौ प्रकार के होते हैं । मनुष्यों की क्रिया (काम का करना) के भेद से वह सैकड़ों ही शाखा वाला कहा जाता है ।।३०–३१।। ज्ञान वाले ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहार से बिना क्रोध दिये हुए राजा को देखना चाहिए । सभ्य (सभा के सदस्य) शत्रु और मित्र को समभाव से बरतने वाले तथा लोभ–लालच से रहित और वेद के ज्ञाता होने चाहिए ।।३२।।

अपश्यता कार्यवशात्सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत् ।
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि श्रुत्यपेतादिकारिणः ।।३३
सभ्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या विवादाद्द्विगुणो दमः ।
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः ।।३४
आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ।
प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ।।३५
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिन्हितम् ।
श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसंनिधौ ।।३६
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ।
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ।।३७

चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ।
अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ॥३८
अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् ।
कुर्यात्प्रत्यभियोगं तु कलहे साहसेषु च ॥३९
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ।
निन्हवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम् ॥४०

कार्य वश से राजसभा के सदस्यों के द्वारा न देखे तो उसे किसी ब्राह्मण को नियोजित कर देना चाहिए। किसी राग द्वेष से–लोभ–लालच में अथवा भय से श्रुति के अभाव के करने वाले जो सभ्य हों उन्हें अलग–अलग दण्ड देना चाहिए। विवाद से दुगुना दम होना चाहिए। स्मृति तथा आचार से रहित मार्ग के द्वारा जो दूसरों से आधर्षित होता हुआ प्रार्थना करता है वह राजा के व्यवहार का स्थान कहा जाता है प्रार्थी के द्वारा जो कुछ भी आवेदित किया गया है वह प्रत्यर्थी के सामने ही लिखाना चाहिए। उसमें वर्ष–मास–पक्ष और दिन–नाम और जाति आदि सबसे युक्त लिखा जाना चाहिए। पहिले जिसने राजा से प्रार्थना की है उस आवेदक की सन्निधि में ही जो भी कुछ सुना गया है उस सबका जवाब भी लिखाना चाहिए ॥३३ से ३६॥ इसके अनन्तर प्रार्थी जो हो उससे जाने हुए अर्थ (विषय) का साधन लिखाना चाहिए। उसके सिद्ध हो जाने पर अर्थात् पूर्णतया भावित होने पर ही वह सिद्धि को प्राप्त होता है अर्थात् साबित होता है कि यह सब कुछ अनुकूल है या विपरीत है ॥३७॥ विवादों के विषय में यह चार पाद (चरण) वाला व्यवहार कहा गया है। अभियोग (मुकदमा) को पूरा न देखकर अर्थात् पूर्णतया मामले को न समझते हुए इसका प्रत्यभि योजन नहीं करना चाहिए ॥३८॥ दूसरे के द्वारा जो अभियुक्त बनाया गया हो उसे छोड़ना नहीं चाहिए प्रत्युत उसे विप्रकृत (दोषारराध से युक्त) किया जाना चाहिए। कलह में और साहस के कर्मों में उस पर विरुद्ध मुकदमा लगाना चाहिए ॥३९॥ दोनों, जिसने अभियोग लगाया है और जिन पर अभियोग लगाया गया है, इनको चाहे गये विषय का निर्णय करने में समर्थ

को जमानत ले लेनी चाहिए। अनुचित करने वाला उसके समान राजा को धन देवे ॥४०॥

मिथ्याभियोगाद्द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् ।
साहसस्तेयपारुष्येष्वभिशापात्यये स्त्रियाः ॥४१
विचारयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ।
देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च ॥४२
ललाटं स्विद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च ।
स्वभावाद्विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥४३
अभियोगेऽथ वा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्तितः ।
सदिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ॥४४
न चाऽऽहूतो वदेत्किंचिद्धीनो दण्डचः स स्मृतः ।
साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः ॥४५
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ।
सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनं तु दापयेत् ॥४६
दण्डं पणं वसुं चैव धनिनो धनमेव च ।
छलं निरस्य दूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ॥४७
भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयते व्यवहारतः ।
निह्नुते निखिला ता? नेकमेकदेशविभावितम् ॥४८

यदि अभियोग बिल्कुल झूठा ही साबित हो जावे तो जितने धन का अभियोग किया गया है उससे दुगुना धन उससे ले लेना चाहिए। स्त्री के विषय में साहस—चोरी—पारुष्य (कठोर व्यवहार)—अभिशाप और अत्यय (नाश) के उपस्थित होने पर तुरन्त ही विचार करना चाहिए अर्थात् मुकदमे की सुनाई तथा निर्णय उसी समय शीघ्र करना चाहिए। इनके अतिरिक्त मामलों में इच्छानुसार समय रक्खे। जो देश से अन्य देश को जाता है और जो अपने होठों को चाटता रहता है—जिसके ललाट पर पसीना आजाता है—जिसके चेहरे का रंग पीला पड़ जाता है—जो स्वभाव से मन, वाणी और काया के द्वारा विकृत (बिगड़ा हुआ) स्वरूप में आता है, चाहे उसका कोई अपना अभि-

योग (मुकदमा) हो या उसको किसी अभियोग में गवाही हो, यदि उपर्युक्त लक्षण हों तो वह दुष्ट बताया गया है। सन्देह से युक्त अर्थ को जो स्वतन्त्र होते हुए साधन करे और जो निष्पतित हो जाता है ॥ ४१ से ४४ ॥ जो बुलाया जावे और बुलाये जाने पर भी कुछ भी न कहे और दीन बन जावे वह दण्ड देने के योग्य कहा गया है। साक्षियों के दोनों ओर से हो जाने पर पूर्व वादी के साक्षी पूर्व पक्ष के अधरीभूत होने पर उत्तरवादी होते हैं। विवाद यदि समता हो तो वहाँ पर दीन को दिवाना चाहिए ॥ ४५।४६ ॥ दण्ड पण और वसु तथा धनी का धन छल का निरसन करके राजा को दूत के द्वारा व्यवहार से लेना चाहिए ॥४७॥ अनुपन्यस्त भूत भी अर्थात् जिसका उपन्यास नहीं किया गया ऐसा पहिला भी व्यवहार ने हीयमान होजाता है। एक देश में विभावित एक सबका हनन कर देता है ॥४८॥

दाप्यः सर्वो नृपेणार्थो न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः ।
स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः ॥४९
अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः ।
प्रमाणं लिखितं भक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ॥५०
एपामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ।
सर्वेष्वेव विवादेपु बलवत्युत्तरा क्रिया ॥५१
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ।
पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ॥५२
परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी ।
अधिसीमोपनिःक्षेपजडबालधनैर्विना ॥५३
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि ।
आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनम् ॥५४
दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष्यमथापि वा ।
आगमोऽप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागताम् ॥५५
आगमोऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकाऽपि यत्र न ।
आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥५६

असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ।
प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण धनिने धनम् ॥६१
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दातुमर्हति ।
देय चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय तु ॥६२
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३
सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४
ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिम् ।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥६५
प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् ।
साध्यमानो नृपं गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥६६

अविशुद्ध आगम वाला भोग प्रमाण नहीं होता है। जिसने आगम किया है वह ही अभियुक्त होता है और उसीसे उसको लेना चाहिए ॥५७॥ वहाँ पर उसका पुत्र या पुत्र का भी पुत्र अभियुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि वहाँ तो भोग ही बलवान् माना जाता है। यदि जो भी कोई अभियुक्त (अभियोग अर्थात् मुकदमा चलाये जाने वाला) हो वह मृत होजावे तो उसका जो उत्तराधिकार का धन हो उससे उसका उद्धार करना चाहिए ॥५८॥ आगम के बिना की हुई भुक्ति वहाँ पर कारण नहीं होता है। बल और उपाधि से विनिवृत्त व्यवहारों को निवर्त्तन कराना चाहिए ॥५९॥ स्त्री-रात्रि-अन्तरागार (घर के भीतर)—बाहिर और शत्रु के द्वारा किया हुआ—मत्त-उन्मत्त-आर्त्त-व्यसनी-बालक-डरा हुआ व्यक्ति के द्वारा प्रयोजित तथा जो असम्बद्ध किया हुआ हो ऐसा व्यवहार सिद्ध नहीं होता है। राजा के द्वारा जो धन प्रनष्ट हो गया हो उसको सौ गुना धन धनी के लिये देना चाहिए ॥६०।६१॥ चिह्नों के द्वारा विभावित न होवे तो उसके समान देने के योग्य होता है। जो धन चोरों ने हरण कर लिया है वह राजा को जनपद के लिए देना चाहिए क्योंकि जनपद की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व राजा पर ही होता है ॥ ६२ ॥ जो बन्धक हो अर्थात्

राजा के द्वारा समस्त अर्थ दिला देना चाहिए और जो अग्नि वेदित हो वह नहीं ग्रहण करना चाहिए। स्मृतियों के विरोध होने पर व्यवहार से न्याय बलवान् होता है ।। ४६ ।। निश्चय ही अर्थशास्त्र से धर्म शास्त्र बलवान् होता है, ऐसी स्थिति होती है। प्रमाण के (सबूत मे) रूप में लिखित (लिखे पढ़े हुए कागजात)—भक्ति और साक्षी लोग बताये गये हैं ।। ५० ।। यदि इन उक्त प्रकार के समन्त प्रमाणों में से कोई भी प्रमाण न हो तो अन्य तम दिव्य प्रमाण कहा जाता है। समस्त प्रकार के विवादों मे जो उत्तर क्रिया बतलाई गई है वही बलवती मानी जाती है ।। ५१ ।। आधि-प्रतिग्रह और क्रीत में पूर्व क्रिया बलवत्तरा होती है। देखने और बोलने वाले की भूमि की हानि बीस वर्ष की होती है। ।। ५२ ।। दूसरे के द्वारा भोग की हुई के धन की हानि दश वर्ष की हुआ करती है। अधिसीम-उपनिक्षेप और जड़ तथा बालक के धन के बिना यह हानि मानी जाती है ।। ५३ ।। इसी प्रकार से उपनिधि राजा-स्त्री और श्रोत्रियों के धन के बिना भी होती है। आधि (मानसीव्यथा) आदि के विशेष रूप से हरण करने वाले को धनी के लिये धन को दिलवाना चाहिए ।। ५४ ।। राजा को उसके बराबर दण्ड अथवा शक्ति को अपेक्षानुकूल होना चाहिए। पूर्वक्रम से आगत भुक्ति (भोग करना) के बिना आगम भी अधिक होता है। जहाँ पर भुक्ति थोड़ी-सी भी न हो वहाँ आगम भी बल नहीं होता है। विशुद्ध आगम से भोग प्रमाणता को प्राप्त होता है ।।५५।५६।।

अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति ।
आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ।।५७
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी ।
योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थात्तमुद्धरेत् ।।५८
न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता ।
बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत् ।।५९
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतस्तथा ।
मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः ।।६०

असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ।
प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ॥६१
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दातुमर्हति ।
देय चौरहृतं द्रव्य राज्ञा जनपदाय तु ॥६२
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सवन्धके ।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३
सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४
ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिम् ।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥६५
प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् ।
साध्यमानो नृप गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥६६

अविशुद्ध आगम वाला भोग प्रमाण नहीं होता है । जिसने आगम किया है वह ही अभियुक्त होता है और उसीसे उसको लेना चाहिए ॥५७॥ वहाँ पर उसका पुत्र या पुत्र का भी पुत्र अभियुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि वहाँ तो भोग ही बलवान् माना जाता है । यदि जो भी कोई अभियुक्त (अभियोग अर्थात् मुकदमा चलाये जाने वाला) हो वह मृत होजावे तो उसका जो उत्तराधिकार का धन हो उससे उसका उद्धार करना चाहिए ॥५८॥ आगम के बिना की हुई मुक्ति वहाँ पर कारण नहीं होता है । बल और उपाधि से विनिवृत्त व्यवहारों को निवर्त्तन कराना चाहिए ॥५६॥ स्त्री–रात्रि–अन्तरागार (घर के भीतर)–बाहिर और शत्रु के द्वारा किया हुआ—मत्त–उन्मत्त–आर्त्त–व्यसनी–बालक–डरा हुआ व्यक्ति के द्वारा प्रयोजित तथा जो असम्बद्ध किया हुआ हो ऐसा व्यवहार सिद्ध नहीं होता है । राजा के द्वारा जो धन प्रनष्ट हो गया हो उसको सौ गुना धन धनी के लिये देना चाहिए ॥६०।६१॥ चिह्नों के द्वारा विभावित न होवे तो उसके समान देने के योग्य होता है । जो धन चोरों ने हरण कर लिया है वह राजा को जनपद के लिए देना चाहिए क्योंकि जनपद की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व राजा पर ही होता है ॥ ६२ ॥ जो बन्धक हो अर्थात्

गिरवी हो उस पर प्रत्येक मास में अस्सी भाग की वृद्धि होती है। वर्णों के क्रम से शत–दो–तीन–चार–पाँच है। अन्यथा पशु और स्त्रियों का सत्तर तथा रस का आठगुनी होती है। वस्त्र–धान्य और सुवर्ण की चौगुनी–तिगुनी और दुगुनी वृद्धि हुआ करती है ॥ ६३।६४ ॥ अन्य ग्राम से दस तथा समुद्र से भी बीस गुनी वृद्धि सब समस्त जातियों में देवें ॥ ६५ ॥ प्रत्येक अर्थ का साधन करते हुए राजा से जाकर नहीं कहना चाहिए। जो साध्यमान हो वह राजा के निकट जावे और वह धन दिलाया जाना चाहिए तथा दण्ड भी देने के योग्य भी होवे ॥६६॥

१०३ व्यवहारकथनम्(२)

गृहीतार्थः क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः ।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायाऽऽदौ नृपतेस्तदनन्तरम् ॥१
राज्ञाऽधमर्णिको दाप्यः साधिताद्दशकं स्मृतम् ।
पञ्चकं तु शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥२
हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत् ।
ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ॥३
दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् ।
मध्यस्थस्थापितं तस्माद्वर्धते न ततः परम् ॥४
ऋक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च ।
पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥५
अविभक्तैः कुटुम्बार्थं यदृणं तु कृतं भवेत् ।
दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि ॥
न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता ।
दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ॥७
गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम् ।
ऋणं दद्यात्पतिस्त्वासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥८

इस अध्याय में भी व्यवहार का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—जो अर्थ गृहीत हो वह धनियों को क्रम से अधमर्णिक को दिलाना चाहिए (अधमर्णिक–कर्जा लेने वाला व्यक्ति) देकर सबसे आदि में ब्राह्मण के लिये उसके उपरान्त नृपति का है ॥ १ ॥ राजा के द्वारा अधमर्णिक दिलाने के योग्य होता है। साधित से दश गुना बताया गया है। अर्थ प्राप्त उत्तमर्णिक (कर्जा देने वाला) पाँच सौ दिलाने के योग्य होता है ॥ २ ॥ जो हीन जाति वाला हो उससे यदि क्षीण होने पर ऋण के लिये कर्म करना चाहिए। ब्राह्मण यदि परिक्षीण हो तो उससे धीरे-धीरे दिलाना चाहिए जैसे-जैसे वह दे सके ॥ ३ ॥ जो प्रभु अपने धन को दीयमान होने पर भी ग्रहण नहीं करता है उसे किसी मध्यस्थ के पास रख देना चाहिए फिर उससे आगे उस की कोई वृद्धि नहीं होती है ॥ ४ ॥ जो किसी ऋक्थ (मृत पुरुष के उत्तर सम्पत्ति) को ग्रहण करने वाला है वह ऋण दिलाने के योग्य होता है। इसी प्रकार से स्त्री के धन का ग्रहण करना भी होता है। अनन्याश्रित द्रव्य वाला पुत्र, अर्थात् जिसका धन किसी अन्य के आश्रय मे नहीं हो, पुत्र हीन (बिना पुत्र वाला) ऋक्थी (उत्तराधिकार मे रहने वाली सम्पत्ति को ग्रहण करने वाला) का बिना बटवारा होने वालों के द्वारा कुटुम्ब के लिये जो किया जावे उसे ऋक्थी के मर जाने पर अथवा कुटुम्बी के परदेश चले जाने पर दे देना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥ पति तथा पुत्र के द्वारा किये हुए ऋण को स्त्री को नहीं देना चाहिए अर्थात् स्त्री के पति तथा पुत्र का ऋण स्त्री से नहीं लिया जाता है। इसी तरह पुत्र के किये हुए ऋण का पिता से लेने का भी कोई अधिकार नहीं होता है। कुटुम्ब के लिये हुए ऋण के अतिरिक्त स्त्री के द्वारा किये हुए ऋण को देने का पति भी हकदार नहीं होता है ॥ ७ ॥ गोप (ग्वाला)-शौण्डिक (शराब बनाने या बेचने वाला)-शैलूष (नट)-रजक (धोबी) और व्याध (शिकारी) की स्त्रियों का कर्जा पति को देना चाहिए क्योंकि उनके ही आश्रय वालो उसकी जीविका हुआ करती है॥ ८ ॥

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम् ।
स्वयकृतं वा यदृणं (नान्यस्त्री(स्त्री) दातुमर्हति ॥९

पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथ वा ।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं) निन्हवे साक्षिभावितम् ॥१०
सुराकामद्यूतकृत दण्डशुल्कावशिष्टकम् ।
वृथाऽऽदानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥११
भ्रातृणामथ द्‌म्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि ।
प्रातिभाव्यमृणं साक्ष्यमविभक्तेन च स्मृतम् ॥१२
दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्य विधीयते ।
आद्यौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि ॥१३
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा ।
न तत्पुत्रा धनं दद्युर्दानाय समुपस्थिताः ॥१४
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम् ।
एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥१५
प्रतिभूर्दापितो यत्र प्रकाश धनिनो धनम् ।
द्विगुण प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥१६

स्त्री के द्वारा अथवा पति के साथ अथवा स्वय किया हुआ जो ऋण है वह स्त्री को देना चाहिए ॥ ९ ॥ पिता के प्रोषित (परदेश मे गया) होने पर-मर जाने पर अथवा व्यसनों में अभिप्लुत होने पर पुत्र और पौत्रो के द्वारा ऋण (कर्जा) देना चाहिए जो कि निन्हव मे साक्षियों के द्वारा भावित हो गया हो ॥ १० ॥ मदिरा पान मे-काम वासना की तृप्ति मे-दण्ड तथा शुल्क के अवशिष्ट रह जाने मे व्यर्थ ही लिया हुआ पिता का भी ऋण पुत्र को नही देना चाहिए ॥ ११ ॥ भाइयों का-दम्पति का (स्त्री पुरुष के जोड़े को दम्पति कहते हैं) पिता का और पुत्र का प्रतिभाव्य ऋण (वह ऋण जो प्रतिभू (जमानत देने वाला) होने से हुआ हो अविभक्त होने से साक्षी के योग्य कहा गया है ॥ १२ ॥ दर्शन में-प्रत्यय (विश्वास) में दान में प्रातिभाव्य होता है । वितथ (मिथ्या) आधि (मन की व्यथा) में वितथ के पुत्र भी दिलाने के योग्य हैं ॥ १३ ॥ जहाँ पर दर्शन प्रतिभू अर्थात् केवल देख लेने का जमानत देने वाला हो अथवा केवल विश्वास दिलाने वाला हो और वह मृत्यु गत हो

जावे तो उसके पुत्रों को वह धन नहीं देना चाहिए। यदि देने के लिये बहुत से हों और सब वहाँ उपस्थित हो गये हों तो प्रतिभू का धन उन्हें अपने-अपने हिस्सों से दे देना चाहिए। यदि ये एक ही छाया के आश्रय में रहने वाले हों तो धनिक की जैसी भी रुचि हो ले लेवे। जहाँ धनिक पुरुष का धन प्रकाश में हो वहाँ ही प्रतिभू को धन दिलाना चाहिए। ऋणिकों के द्वारा उसका दुगुना प्रतिदान करना चाहिए॥ १४॥ १५॥ १६॥

ससततिस्त्रीपशव्य धान्यं द्विगुणमेव च ।
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥१७
आधिः प्रणश्येद्द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते ।
काले कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति ॥१८
गोप्याधिभोगिनो वृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते ।
नष्टो देयो विनष्टश्च दैवराजकृताद्दते ॥१९
आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्षमाणोऽप्यसारताम् ।
यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ॥२०
चरित्रं बन्धककृतं सवृद्ध्व दापयेद्धनम् ।
सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥२१
उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिर्दण्डोऽन्यथा भवेत् ।
प्रयोजके सति धन कुलेऽन्यस्याऽऽधिमाप्नुयात् ॥२२
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः ।
विना धारणकाद्वाऽपि विक्रीणीते ससाक्षिकम् ॥२३
यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु।
मोच्यश्चाऽऽधिस्तदुत्पाद्यः प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥२४
व्यसनस्यमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य तदर्पयेत् ।
द्रव्य तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥२५
न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैवततस्करैः ।
प्रेषश्चेन्मार्गिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समः ॥२६

आजीवन्स्वेच्छया दण्डचो दाप्यस्तच्चापि सोदयम् ।
याचितावाहितन्यासनिक्षेपेष्वप्ययं विधिः ॥२७

सन्तति-स्त्री-पशव्य के साथ दुगना धान्य-वस्त्र चौगुना-और रस आठ गुना कहा गया है ॥ १७ ॥ द्विगुण धन पर आधिका नाश हो जाता है। यदि मोक्ष नही होता है तो समय होने पर काल कृत नाश होता है। फल का भोग कभी नाश को प्राप्त नही हुआ करता है ॥ १८ ॥ गुप्त आधि के भोग करने वाले की वृद्धि होती है। उपकार से युक्त के भावित हो जाने पर जो नष्ट हो गया हो वह दे देना चाहिए और जो दैव तथा राजा के द्वारा विशेष रूप से नष्ट किया हो उसे छोड़ देवे ॥ १६ ॥ आधि के स्वीकार करने से सिद्धि है। रक्ष माण यदि अपसारित हो गया हो तो जो अन्य आधिके धन का भागी धनी हो वे ॥ २० ॥ बन्धक किया हुआ (गिरवी रहन हुआ) चरित्र वृद्धि के सहित धन दिलाना चाहिए। सत्यं कार किया हुआ धन दुगुना प्रतिदान करना चाहिए ॥ २१ ॥ उपस्थित की आधि छोड देने के योग्य है। अन्यथा दण्ड होना है। प्रयोजक के होने पर धन अन्य के कुल मे आधि को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ उसी समय मूल्य किया हुआ वहाँ पर विना ही वृद्धि के रहता है। धारण करने वाले के विना भी साक्षी के सहित जब कोई बेच देता है उस समय आधि मे दुगुना हुआ ऋण हो तो आधि का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि धन दुगुने प्रविष्ट होने पर वह उस से उत्पादन के योग्य हो जाता है। ॥ २३ ॥ २४ ॥ व्यसनों में स्थित को न कह कर उसे अन्य के हाथ मे अर्पण कर देना चाहिए। उस समय वह औपनिधिक द्रव्य उसी प्रकार से प्रतिदान करना चाहिए ॥ २५ ॥ जो राजा-दैव और तस्करों के द्वारा अपहरण किया गया हो वह धन नही दिलाने के योग्य होता है। यदि मार्गित के देने पर प्रेष हो तो उसके बराबर दण्ड दिलाना चाहिए ॥ २६ ॥ स्वेच्छा से आजीवन दण्ड देने के योग्य है और वह उदय के सहित दिलाने के योग्य होता है। याचित-आवाहित-न्यास और निक्षेप किये हुओं मे यह ही विधि होती है ॥ २७ ॥

विशेष रूप से कामना को पूर्ण किया करती है ॥३॥ गायत्री मन्त्र का दश सहस्र जप करके जो रात्रि मे भोजन किया करता है, हे द्विज ! और बहुत वार स्नान करने वाला जो है उसका वहाँ पर ही पापों का नाश हो जाता है ॥४॥

दश प्रयुत (दश सहस्र) अर्थात् एक लक्ष गायत्री का जप करके जो होम करता है वह मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। प्रणव निश्चय ही परब्रह्म का स्वरूप है। उसका जप समस्त पापों का हनन करने वाला है। ॥५॥ नाभि मात्र जल मे स्थित होकर ओङ्कार का अर्थात् "ओ३म्" इसका सौ बार जप के द्वारा अभिमन्त्रित किया हुआ जल का पान करना चाहिए। इस प्रकार से करने वाला सब तरह के पापो से मुक्त हो जाता है ॥६॥ तीन मात्रा हैं—तीन वेद, तीन अग्नि तथा सात महाव्याहृतियाँ, सात लोक और होम यह समस्त अघो का नाश करते हैं ॥७॥ हे राम ! गायत्री सबसे श्रेष्ठ जप करने के योग्य है। इसी प्रकार से सात महाव्याहृतियाँ भी जपने के योग्य होती हैं। जल के अन्दर यह जाप अघमर्षण कहा गया है ॥८॥

अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोऽयं वन्हिर्दैवतः।
शिरसा धारयन्वन्हिं यो जपेत्परिवत्सरम् ॥९
होम त्रिपवणं भैक्ष्यमनग्निज्वलनं चरेत्।
अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्तिताः ॥१०
ता जपन्प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते।
मेधाकामो जपेन्नित्य सदसस्पमिति त्र्यृचम् ॥११
अन्वयो यन्निमाः प्रोक्ता नवर्चो मृत्युनाशनाः।
शुनःशेपमृषिं बद्धः संनिरुद्धोऽथ वा जपेत् ॥१२
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदी वाऽप्यगदो भवेत्।
य इच्छेच्छाश्वतं कामं मित्रं प्राज्ञं पुरंदरम् ॥१३
ऋग्भिः षोडशभिः कुर्यादिन्द्रस्येति दिने दिने।
हिरण्यस्तूपमित्येतज्जपञ्शत्रून्प्रबाधते ॥१४
क्षेमी भवति चाध्वनि ये ते पन्था जपन्नरः।
रौद्रीभिः षड्भिरीशानं स्तुयाद्यो वै दिने दिने ॥१५

चरुं वा कल्पयेद्रौद्रं तस्य शान्तिः परा भवेत् ।
उदित्युद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठन्दिने दिने ॥१६

"अग्निमीळे पुरोहितम्"–इस सूक्त का वह्नि देवता होता है। मस्तक पर वह्नि को धारण करके जो इसका जाप पूरे एक वर्ष तक करता है ॥६॥ होम, निषवण, भैक्ष्य और अनग्नि ज्वलन किया करता है। इससे परम वाय्वादि सात ऋचाएँ बताई गई हैं। उनको प्रयत होते हुए नित्य जप करता हुआ पुरुष अपनी इष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। जो पुरुष मेधा (बुद्धि) की कामना रखता है उसे नित्य ही 'सहसस्पम्'–इन तीन ऋचाओं का जाप करना चाहिए ॥१०।११॥ "मन्वयोयन्" ये कही गई हैं। "न वर्चो" ये मृत्यु के नाश करने वाली हैं। पुनः शेष ऋषि से बद्ध अथवा सनिरुद्ध होकर जप करे ॥१२॥ ऐसा करने से सभी पापों से मुक्त हो जाता है। रोगी भी नीरोग होता है। जो शाश्वत कामना चाहता है उसे 'मित्रं प्राज्ञं पुरन्दरम्' इन सोलह ऋचाओं से प्रतिदिन "इन्द्रम्य" इसके द्वारा हिरण्य स्तूप करना चाहिए। इसका जप करने वाला अपने शत्रुओं का बाधा पहुँचाता है ॥१३।१४॥ 'ये ते पन्था' इसका जाप करने वाला मार्ग में क्षेम वाला रहता है। छः रौद्री ऋचाओं के द्वारा जो प्रतिदिन ईशान का स्तवन करता है अथवा रौद्र चरु की कल्पना करता है उसको परम शान्ति होती है ॥१६॥

क्षिपेज्जलाञ्जलीन्सप्त मनोदुःखविनाशनम् ।
द्विपन्तमित्यथार्धर्चं यद्विप्रान्तं जपन्स्मरेत् ॥१७
आगस्कृत्मप्तरात्रेण विद्वेपमधिगच्छति ।
आरोग्यकामा रोगी वा पुष्कर्यारियोभयं जपेत् ॥१८
उत्तमस्तस्य चार्धर्चौ जपेद्वैरिविनाशने ।
उदयत्यायुरक्षय्यं तेजो मध्यंदिने जपेत् ॥१९
अस्तं प्रति गते सूर्ये द्विपन्तं प्रतिबाधते ।
न वयश्चेति सूक्तानि जपञ्शत्रून्नियन्छति ॥२०
एकादश सुपर्णस्य सर्वकामान्विनिर्दिशेत् ।
आध्यात्मिकीः क इत्येता जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१

आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरम् ॥२२
उपतिष्टेत्समित्पाणिर्वासांस्याप्नोत्यसंशयम् ।
आयुरीप्सन्निममिति कौत्सं सूक्तं सदा जपेत् ॥२३

"अदिति" के द्वारा उदय होते हुए सूर्य की जो प्रतिदिन उपस्थान करता हुआ जो सात जलाञ्जलियों का क्षेपण करता है उसके मन के दुःख का विनाश हो जाता है । जो 'द्विषन्तम्' इस आधी ऋचा का विश्रान्त तक स्मरण करता हुआ जप करता है । आगस्कृत् सात रात्रि मे विद्वेष को प्राप्त हो जाता है । आरोग्य की कामना रखने वाला अथवा रोगी पुष्कर्यारय दोनों का जप करे ॥१७॥१८॥ उसकी आधी ऋचा का जाप करना उत्तम है जो कि वैरियों के विनाश करने के लिए जपना चाहिये । "उदयत्यायु रक्षय्य तेजः" इसका मध्य दिन में जाप करना चाहिये ॥१६॥ जब सूर्य अस्ताचलगामी हो उस समय में जप करने से द्वेष करने वाले को प्रतिवाधित करता है । "न वयश्च" इन सूक्तों का जप करता हुआ शत्रुओं का नाश करता है ।२०॥ "एकादश सुपर्णस्य" का जाप समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है । "आध्यात्मिकीः क" इनका जप करने वाला मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥ "आ नो भद्रा" इसके जाप से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है । "त्व सोम" इस सूक्त के जाप के साथ जो नवीन चन्द्र का दर्शन करता है और समित्पाणि होकर उपस्थान किया करता है वह विना किसी सशय के वस्त्रो का लाभ किया करता है । 'आयु रीप्सन्निममिति" इस कौत्स सूक्त का सदा जाप करना चाहिए ॥ ॥ २२॥२३ ॥

अप नः शोशुचदिति स्तुत्वा मध्ये दिवाकरम् ।
यथा मुञ्चति चेषीकां तथा पापं प्रमुञ्चति ॥२४
जातवेदस इत्येतज्जपेत्स्वस्त्ययनं पथि ।
भयैर्विमुच्यते सर्वैः स्वस्तिमानाप्नुयाद् गृहान् ॥२५
व्युष्टायां च तथा रात्र्यामेतद्दुःस्वप्ननाशनम् ।

प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद्गर्भविमोचनम् ॥२६
जपन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवं तु सप्तकम् ।
मुञ्चत्याज्यं तथा जुहु वत्सकलं किल्विषं नरः ॥२७
इमामिति जपञ्शश्वत्कामानाप्नोत्यभीप्सितान् ।
मा नस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ॥२८
औदुम्बरीश्च जुहुयात्समिधश्चाऽऽज्यसस्कृताः ।
छित्वा सर्वान्मृत्युपाशाञ्जीवेद्रोगविवर्जितः ॥२९

"अप नः शोमुचन्" इससे स्तवन मध्य में दिवाकर का करके जैसे ही चैपीका का मोचन करता है वैसे ही पाप से छूट जाता है ॥२४॥ "जातवेदम" इस स्वस्त्ययन का मार्ग में जाप करे तो समस्त प्रकार के भयों से विमुक्त हो जाता है और स्वस्तिमान् (कल्याण वाला) होते हुए अपने घर को प्राप्त हो जाता है ॥२५॥ तथा व्युष्ट रात्रि में इसका जाप करने से बुरे स्वप्नों का नाश होता है । प्रसव करती हुई स्त्री "प्रमन्दिन" इसका जाप करे तो गर्भ का विमोचन हो जाता है ॥२६॥ स्नान करके "इन्द्रम्" इसका जप करता हुआ सप्तक वैश्वदेव को घृत छोड़ता है तथा हवन करता है तो मनुष्य अपने समस्त किल्विष (पाप) का त्याग कर देता है ॥२७॥ "इमाम्" इसका निरन्तर जाप करने वाला अपने इच्छित कामों का लाभ किया करता है । "मानस्तोक" इन दो ऋचाओं के द्वारा तीन रात्रि उपोषित रहकर शुद्ध होते हुए गूलर की समिधा घृत से संस्कार की हुई करके जो हवन करता है वह समस्त मृत्यु के पाशों को काटकर रोग से रहित होते हुए जीवित रहता है ॥२८।२९॥

ऊर्ध्वबाहुरनेनैव स्तुत्वा शंभुं तथैव च ।
मा नस्तोकेति च ऋचा शिखाबन्धे कृते नरः ॥३०
अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशय विना ।
चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसंध्यं भास्करं तथा ॥३१
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात् ।
अधः स्वप्नेति च जपन्प्रातर्मध्यंदिने दिने ॥३२

दुःस्वप्नं चार्दयेत्कृत्स्नं भोजनं चाऽऽप्नुयाच्छुभम् ।
उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ॥३३
उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात् ।
तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ॥३४
कया शुभेति च जपञ्ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नुयात् ।
इमं नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५
पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितम् ।
अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥३६
वीरान्वयमवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत्सदा ।
कङ्कतो नेति सूक्तेन विषान्सर्वान्व्यपोहति ॥३७
यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३८

ऊर्ध्वबाहु (ऊपर की ओर अपनी बाहुओं को करने वाला) भगवान् शम्भु को इसी मन्त्र के द्वारा स्तुति करके और "मानस्तोक" इस ऋचा से शिखा बन्ध करने पर मनुष्य निस्सन्देह समस्त प्राणियों में अधृष्य (असह्य तेज वाला) हो जाता है । "चित्रम्" इससे तीनों सन्ध्याओं के समय में भगवान् सूर्य का उपस्थान करे और समित्पाणि होते हुए नित्य करे तो इच्छित धन की प्राप्ति किया करता है । "अधः स्वप्न" इसका प्रातःकाल में तथा दिन के मध्य काल में प्रति दिन जो जप किया करता है वह पूर्ण दुःस्वप्न का नाश करता है और शुभ भोजन का लाभ किया करता है । "उभेपुमान्" यह राक्षसों का नाश करने वाला है ऐसा बताया गया है ॥३०।३१।३२।३३॥ "उभे वासा" इस ऋचा का जप करते हुए कामनाओं की प्राप्ति होती है । "तमागन्" इसका जाप करते हुए आततायिता के महापाप से मुक्त हो जाता है ॥३४॥ "कया शुभ"—इसका जप करने से अपनी जाति की श्रेष्ठता प्राप्त होती है । "इम नु सोमम्" इसके जाप से समस्त कामनाओं का लाभ होता है ॥३५॥ "पितः" इससे उपस्थान करना चाहिये । "नित्यमर्थमुपस्थित—अग्नेनय" इस सूक्त से

घृत के द्वारा हवन करे—मार्ग में गमन करने वाला जो सदा जप करता है वह लोगों को सुरलोक प्राप्त करा देता है। "कद्रुद्राय"–इस सूक्त से समस्त विपय को दूर कर देता है।।३६।।३७।। 'गेजान'–इस सूक्त के जपादि के द्वारा मानव समस्त कामों की प्राप्ति कराता है। "गणानाम्"–इस सूक्त के जप से सर्व श्रेष्ठ स्नेही का लाभ किया करता है।।३८।।

यो मे राजन्नितीमां तु दुःस्वप्नगमनीमृचम्।
अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम्।।३९
अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदंग इमं जपेत्।
द्वाविंशकं जपन्सूक्त माध्यात्मिकमनुत्तमम्।।४०
पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते।
कृणुष्वेति जपन्सूक्तं जुह् वदाज्य समाहितः।।४१
अरातीनां हरेत्प्राणान्रक्षांस्यपि विनाशयेत्।
उपतिष्ठेत्स्वयं वन्हिं परि (री) त्यृचा दिनेदिने।।४२
तं रक्षति स्वयं वन्हिर्विश्वतो विश्वतोमुखः।
हंसः शुचिषदित्येतच्छुचिरीक्षे द्विवाकरम्।।४३
कृषि प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि।
जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु मुनिः स्वाहान्त पञ्चभिः।।४४
इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च।
यथालिंगं तु विहरेल्लाङ्गलं तु कृषीवलः।।४५
युक्तो धान्याय सीतायै शुनासीरमथोत्तरम्।
गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः।।४६

"यो मे राजन्" —इन दुःस्वप्नों के गमन करने वाली ऋचा को मार्ग में प्रस्थान करता हुआ जो कोई अपने उत्थित शत्रु को देखे। तो उस समय 'अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदङ्ग"—इसका जप करना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक सूक्त को बाईस बार प्रयत होकर पर्वों पर हो जप करने वाला नित्य ही अपनी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करता है। "कृणुष्व" इस सूक्त का जाप करता हुआ समाहित होकर घृत की आहुतियाँ देवे तो शत्रुओं के प्राणों

दुःस्वप्न चार्दयेत्कृत्स्न भोजन चाऽऽनुयाच्छुभम् ।
उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ॥३३
उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात् ।
तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ॥३४
कया शुभेति च जपञ्ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नुयात् ।
इम नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५
पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितम् ।
अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥३६
वीरान्नयमवाप्नोति सुश्लोक यो जपेत्सदा ।
कङ्कतो नेति सूक्तेन विषान्सर्वान्व्यपोहति ॥३७
यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३८

ऊर्ध्वबाहु (ऊपर की ओर अपनी बाहुओं को करने वाला) भगवान् शम्भु को इसी मन्त्र के द्वारा स्तुति करके और "मानस्तोक" इस ऋचा से शिखा बन्ध करने पर मनुष्य निस्सन्देह समस्त प्राणियों मे अधृष्य (असह्य तेज वाला) हो जाता है। "चित्रम्" इससे तीनों सन्ध्याओं के समय में भगवान् सूर्य का उपस्थान करे और समित्पाणि होते हुए नित्य करे तो इच्छित धन की प्राप्ति किया करता है । "अधः स्वप्न" इसका प्रातःकाल मे तथा दिन के मध्य काल में प्रति दिन जो जप किया करता है वह पूर्ण दुःस्वप्न का नाश करता है और शुभ भोजन का लाभ किया करता है । "उभेपुमान्" यह राक्षसों का नाश करने वाला है ऐसा बताया गया है ॥३०।३१।३२।३३॥ "उभे वासा" इस ऋचा का जप करते हुए कामनाओं की प्राप्ति होती है । "तमागन्" इसका जाप करते हुए आततायिता के महापाप से मुक्त हो जाता है ॥३४॥ "कया शुभ"—इसका जप करने से अपनी जाति की श्रेष्ठता प्राप्त होती है । "इम नु सोमम्" इसके जाप से समस्त कामनाओं का लाभ होता है ॥३५॥ "पितः" इससे उपस्थान करना चाहिये । "नित्यमर्थमुपस्थित—अग्नेनय" इस सूक्त से

घृत के द्वारा हवन करे—मार्ग में गमन करने वाला जो सदा जप करता है वह वीरों को सुरलोक प्राप्त करा देता है। "कद्रुनोन"—इस सूक्त से समस्त विषय को दूर कर देता है।।३६।।३७।। 'गेजान'—इस सूक्त के जपादि के द्वारा मानव समस्त कामों की प्राप्ति कराता है। "गणानाम्"—इस सूक्त के जप से सर्व श्रेष्ठ स्नेही का लाभ किया करता है।।३८।।

यो मे राजन्नितीमां तु दुःस्वप्नशमनीमृचम् ।
अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम् ।।३९
अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदंग इम जपेत् ।
द्वाविंशकं जपन्सूक्त माध्यात्मिकमनुत्तमम् ।।४०
पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते ।
कृणुष्वेति जपन्सूक्तं जुहुवदाज्य समाहितः ।।४१
अरातीनां हरेत्प्राणान्रक्षांस्यपि विनाशयेत् ।
उपतिष्ठेत्स्वयं वन्हि परि (री) त्यृचा दिनेदिने ।।४२
तं रक्षति स्वयं वन्हिर्विश्वतो विश्वतोमुखः ।
हंसः शुचिषदित्येतच्छुचिरीक्षे द्दिवाकरम् ।।४३
कृषि प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि ।
जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु मुनिः स्वाहान्त पञ्चभिः ।।४४
इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च ।
यथालिगं तु विहरेल्लाङ्गलं तु कृषीवलः ।।४५
युक्तो धान्याय सीतायै शुनासीरमथोत्तरम् ।
गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः ।।४६

"यो मे राजन्" —इस दुःस्वप्नों के शमन करने वाली ऋचा को मार्ग में प्रस्थान करता हुआ जो कोई अपने उपस्थित शत्रु को देखे। तो उस समय 'अप्रशस्त प्रशस्त वा कुविदङ्ग"—इसका जप करना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक सूक्त को बाईस बार प्रयत होकर पर्वो पर ही जप करने वाला नित्य ही अपनी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करता है। "कृणुष्व" इस सूक्त का जाप करता हुआ समाहित होकर घृत की आहुतियाँ देवे तो शत्रुओं के प्राणों

का हरण करता है और राक्षसों का भी विनाश कर देता है। 'वह्नि परि" इस ऋचा से प्रतिदिन स्वय उपस्थान करे तो विश्वतो मुख वह्नि स्वय विश्व से उसकी रक्षा किया करता है। "हंप शुचिपद्" इस ऋचा को शुचि होकर सूर्य का ईक्षण करे।। ३६। ४०। ४१। ४२। ४३।। कृषि के कार्य में प्रपद्यमान व्यक्ति विधि पूर्वक क्षेत्र (खेत) के मध्य में स्थाली पाक का मुनि स्वाहान्त पाँचो के द्वारा हवन करे। इन्द्र के लिये, मरुद्गण के लिये, पर्जन्य के लिये और भग के लिये यथालिंग किसान हल का विहरण करे। युक्त धान्य के लिये, सीता के लिये और इसके अनन्तर शुनासीर को गन्ध, माल्यो एवं नमस्कारो द्वारा इन देवों का उसे याजन करना चाहिए ।।४४।।४५।।४६।।

प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः ।
अमोघं कर्म भवति वर्धते सर्वदा कृषिः ।।४७
समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् ।
विश्वानि न इति द्वाभ्यां य ऋग्भ्यां वन्हिमर्हति ।।४८
स तरत्यापदः सर्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयम् ।
विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।।४९
अग्ने स्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् ।
प्रजाकामो जपेन्नित्य वरुणदैवतत्रयम् ।।५०
स्वस्त्या त्रयं जपेत्प्रातः सदा स्वस्त्ययन महत् ।
स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान्व्रजतेऽध्वनि ।।५१
विजिहीष्व वनस्पते शत्रूणां व्यापितं भवेत् ।
स्त्रिया गर्भप्रमूढाया गर्भमोक्षणमुत्तमम् ।।५२
अच्छा वदेति सूक्त च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ।
निराहारः क्लिन्नवासा नचिरेण प्रवर्षति ।।५३
मनसः काम इ (मि) त्येतां पशुकामो नरो जपेत् ।
कर्दमेन इति स्नायात्प्रजाकामः शुचिव्रतः ।।५४
अश्वपूर्वां इ (र्णामि) ति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः ।
रोहिते चर्मणि स्नायाद्ब्राह्मणस्तु यथाविधि ।।५५

राजा चर्मणि वैयाघ्रे छागे वैश्यस्तथैव च ।
दशसाहस्त्रिको होमः प्रत्येकं परिकीर्तितः ॥५६

वीरों के प्रवर्तन के समय में तथा प्रनवन के कालों में और सम नौता के अपहार में अमोघ होता है तथा कृषी की सर्वदा वृद्धि होती है ॥४७॥ "नमुद्रान्"—इस सूक्त से पावक ने कामनाओं की प्राप्ति किया करता है। जो "विश्वानि ग"—इन दो ऋचाओं मे वह्नि का यजन करता है वह समस्त आपदाओं से उद्धार प्राप्त किया करता है और उसे अक्षय यश का लाभ होता है। बहुत ही अधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और परम श्रेष्ठ जप का लाभ होता है ॥ ४८ ॥ ४६ ॥ "अग्निस्त्वम्" इसमे स्तुति करके वाञ्छित धन प्राप्त करता है। जो प्रजा अर्थात् सन्तति की कामना रखता हो 'वरुणदैवतत्रयम्' का नित्य जप करना चाहिए ॥ ५० ॥ प्रातःकाल के समय में 'स्वस्त्या त्रय' का जाप करे इससे सदा महान् स्वस्त्ययन होता है। "स्वस्ति पन्था" इसका उच्चारण करना चाहिए तो मार्ग में स्वास्तिमान् होकर गमन किया करता है। ॥ ५१ ॥ "विजहीष्व वनस्पते"—शत्रुओं से व्यापित होता है। गर्भ में प्रमूढ स्त्री के गर्भ के मोक्षण के लिये यह उत्तम है ॥ ५२ ॥ "अच्छावदेन्"— यह सूक्त वृष्टि की कामना वाले के लिये है उसे इसका प्रयोग करना चाहिए। निराहार होकर क्लिन्न वस्त्र धारण करके करे तो अत्यन्त शीघ्र वर्षा होती है। "मनमः कामः"—इस ऋचा का पशु की कामना रखने वाले मनुष्य को जाप करना चाहिए। 'कर्दमेन'—इस ऋचा के द्वारा प्रजा की कामना वाले को शुचि व्रत होकर स्नान करना चाहिए ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जो मानव राज्य पाने की कामना रखता हो उसे "अश्वपूर्वाम्"—इस ऋचा के द्वारा स्नान करना चाहिए। ब्राह्मण को रोहित चर्म में स्नान यथाविधि करना चाहिए। ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय को व्याघ्र के चर्म में तथा वैश्य को याग के चर्म में उसी विधि से स्नान करना चाहिए। प्रत्येक के लिये दश सहस्र की सख्या का हवन बताया गया है ॥ ५६ ॥

आगार इति सूक्तेन गोष्ठे गां लोकमातरम् ।
उपतिष्ठेद्व्रजेच्चैव यदीच्छेत्ताः सदाक्षयाः ॥५७

का ध्यान करे। उससे पूरी सौ आहुतियाँ देकर हवन करे। "त्र्यम्बक"—इस ऋचा से महादेव को उद्देश्य करके हवन करना चाहिए। ऐसा करने से सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहता है। "तच्चक्षुः"—इस ऋचा से स्नान करके सूर्य का उपस्थान करे॥ ६१॥ ६२॥ ६३॥ ६४॥

उद्यन्तं मध्यगं चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः।
न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात्॥६५
सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात्।
इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम्॥६६
यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद्व्रात्यैर्वा समृजेत्सह।
उपोष्याऽऽज्य स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति॥६७
आदित्येत्यृक्च (चं) सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत्।
महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात्॥६८
ऋच जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात्।
द्वाचत्वारिंशत चेन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून्॥६९
वाच महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च।
श नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाऽन्नं प्रयतः शुचिः॥७०
हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते।
उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत्॥७१

उदय होते हुए और मध्याह्नवर्त्ती दिवाकर का उपस्थान करने से जीवित रहने की इच्छा वाला दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है। "न ही"—इन चार ऋचाओं से उपस्थान करने पर महान भय से मुक्ति प्राप्त किया करता है॥ ६५॥ इन दोनों सूक्तों से पर काल में हवन करने से भूति का लाभ होता है। 'इन्द्र सोम'—इस सूक्त के कहने से शत्रु का नाश होता है॥ ६६॥ जिसका व्रत मोह के कारण लुप्त हो गया हो यह व्रात्यों के साथ संसर्ग हो गया हो, उसे उपवास करके "त्वमग्ने व्रतप" इससे घृत का हवन करना चाहिए। "आदित्य सम्राज"—इस ऋचा का जाप करके वाद में विजयी होता है। "मही"—इन चार ऋचाओं के जप करने से बड़े भारी भय से छुटकारा मिल

उपेतितिसृभी राज्ञो दुन्दुभीनभिमन्त्रयेत् ।
तेजो वलं च प्राप्नोति शत्रुं चेव नियच्छति ॥५८
तृणपाणिर्जपेत्सूक्त रक्षोघ्न दस्युभिर्वृतः ।
ये के च ज्मेत्यृच जप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५६
जीमूतसूक्तेन तथा सेनांगान्यभिमन्त्रयेत् ।
यथालिङ्ग ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून् ॥६०
प्राग्नयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयम् ।
अमीवहेति सूक्तेन भूतानि स्थापयेन्निशि ॥६१
सबाधे विषमे दुर्गे,बद्धो व निर्गत क्वचित् ।
पलायन्वा गृहीतो वा सूक्तमेतत्तथा जपेत् ॥६२
त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् ।
तेनाऽऽहुतिशत पूर्ण जुहूयात्त्र्यम्बकेत्यृचा ॥६३
समुद्दिश्य महादेव जीवेदब्दशत सुखम् ।
तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेद्दिवाकरम् ॥६४

'आगार''—इस सूक्त से गोष्ठ मे लोकों की माता गो का उपस्थान करे। यदि उनको सदा अक्षय रहने की इच्छा रखता है तो उनके पास भी जाना चाहिए ॥ ५७ ॥ 'उपेति'—इन तीनों से राजा की दुन्दुभियों का अभिमन्त्रण करें। ऐसा करने वाला तेज, वल को प्राप्त किया करता है और शत्रुओं का नाश करता है ॥ ५८ ॥ हाथ मे तृण लेकर दस्युओ से घिरा हुआ होकर राक्षसों का नाश करने वाले को सूक्त का जप करना चाहिए। 'ये के चज्मा'—इस ऋचा का जप करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति हुआ करती है। ॥ ५६ ॥ जी मूत सूक्त के द्वारा सेना के अङ्गों का अभिमन्त्रण करना चाहिए। राजा को लिङ्गानुसार ऐसा करने से वह रण भूमि में शत्रु का हनन किया करता है ॥ ६० ॥ 'प्राग्नय'—इन तीन सूक्तों के द्वारा अक्षय धन का लाभ किया करता। "अमीवह" इस सूक्त से रात्रि मे भूतों को स्थपित करे। सबाध मे, विषम दुर्ग में बद्ध अथवा कहीं निकला हुआ, भागता हुआ इस सूक्त का जाप करे। तीन रात्रि पर्यन्त नियत रूप से उपवास करके क्षीर के चरु

का अशन करे। उससे पूरी सौ आहुतियाँ देकर हवन करे। "त्र्यम्बक"—इस ऋचा से महादेव को उद्देश्य करके हवन करना चाहिए। ऐसा करने से सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहता है। "तच्चक्षुः"—इस ऋचा से स्नान करके सूर्य का उपस्थान करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

उद्यन्तं मध्यगं चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।
न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६५
सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात् ।
इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम् ॥६६
यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद्व्रात्यैर्वा समृजेत्सह ।
उपोष्याऽऽज्यं स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ॥६७
आदित्येत्यृक्च (च) सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् ।
महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६८
ऋच जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात् ।
द्वाचत्वारिंशत चेन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून् ॥६९
वाच महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च ।
श नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाऽन्नं प्रयतः शुचिः ॥७०
हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते ।
उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत् ॥७१

उदय होते हुए और मध्याह्नवर्त्ती दिवाकर का उपस्थान करने से जीवित रहने की इच्छा वाला दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है। "न ही"—इन चार ऋचाओं से उपस्थान करने पर महान भय से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥ ६५ ॥ इन दोनों सूक्तों से पर काल में हवन करने से भूति का लाभ होता है। 'इन्द्र सोम'—इस सूक्त के कहने से शत्रु का नाश होता है ॥ ६६ ॥ जिसका व्रत मोह के कारण लुप्त हो गया हो यह व्रात्यों के साथ संसर्ग हो गया हो, उसे उपवास करके "त्वमग्ने व्रत्व" इससे घृत का हवन करना चाहिए। "आदित्य मम्र ज"—इस ऋचा का जाप करके वाद में विजयी होता है। "मही"—इन चार ऋचाओं के जप करने से बड़े भारी भय से छुटकारा मिल

जाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ यदि इस ऋचा का जाप करे तो समस्त कामनाओं की उपलब्धि हुआ करती है । बयालीन चन्द्र का जप करके शत्रुओं का नाश किया करता है ॥ ६९ ॥ "वाचं मही"—इसका जप करने से आरोग्य का लाभ होता है । "शनो भव"—इन दो ऋचाओं से अन्न को खाकर प्रयत एवं शुचि होकर हाथ से हृदय का स्पर्श करे तो व्याधियों से अभिभूत नहीं होता है । "उत्तमेदम्"। इससे स्नान करके हवन करे तो शत्रु को प्रभावित किया करता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

शं नोऽग्न इति सूक्तेन हुतेनार्थमवाप्नुयात् ।
कन्यावारितिसूक्तेन दिग्दोषाद्विप्रमुच्यते ॥७२
यदद्य कच्चेत्युदिते जप्ते वश्य जगद् भवेत् ।
यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता ॥७३
वा (व) चोविदमिति त्वेतां जपन्वाच समश्नुते ।
पवित्राणां पवित्रं तु पावमान्यो ह्यृचो मताः ॥७४
वैखानसा ऋचस्त्रिशत्पवित्राः परमा मताः ।
ऋचो द्विषष्टिः प्रोक्ताश्च परस्येत्यृषिसत्तम ॥७५
सर्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च ।
स्वादिष्ठयेति सूक्तानां सप्तषष्टिरुदाहृता ॥७६
दशोत्तराण्यृचश्चैताः पावमान्यः शतानि षट् ।
एतज्जपंश्च जुह्वंश्च घोर मृत्युभयं जयेत् ॥७७
आपो हि ष्ठे ति वारिस्थो जपेत्पापभयार्दने ।
प्रदेवत्रेति नियतो जपेद्व मरुधन्वसु ॥७८
प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायुस्तु विन्दति ।
प्रावेपामित्यृचमेकां जपेद्व मनसा निशि ॥७९
व्युष्टायामुदिते सूर्ये द्यूते जयमवाप्नुयात् ।
मा प्रगामेति मूढश्च पन्थानं पथि विन्दति ॥८०

"शनोऽग्ने"—इस सूक्त से हवन करने पर अर्थ की प्राप्ति होती है । "कन्या वार्"—इस सूक्त के द्वारा दिशाओं के दोष से मुक्ति होती है ॥७२॥

"यदद्य कच्च"—इसके उदय काल में जाप करने के समस्त जगत् वश्य होजाता है। "यद्वाग्"—इसके जप से वाणी अच्छे सस्कार वाली होती है ॥ ७३ ॥ "वाचो विदम"—इस ऋचा का जप करने वाला वाचा को प्राप्त कर लेता है। पवित्रों में पवित्र पावमानी ऋचा मानी गई हैं ॥ ७४ ॥ तीस वैखानश ऋचाऐं परम पवित्र मानी गई हैं। हे ऋषि सत्तम ! परस्य ये वासठ ऋचाऐं कही गई हैं ॥७५॥ स्वादिष्ट्य—इन सूक्तों की मड़सठ ऋचाएँ समस्त कल्मषों के नाश करने के लिए, पावन करने के लिए और कल्याण के लिये कही गई हैं ॥७६॥ ये छै सौ दश ऋचाऐं पावमानी हैं। इनका जप तथा हवन करने वाला मानव घोर मृत्यु के भय पर जय प्राप्त किया करता है ॥७७॥ पापों के भय के मर्दन करने के लिए जल में स्थित होकर "आपो हिष्ठा"—इस ऋचा का जप करना चाहिए। प्राणान्तक भय प्राप्त होने पर 'प्रदेवत्रत्र' इसका तथा मरचन्वसु का—जप करना चाहिए इसके जाप से शीघ्र ही आयु का लाभ होता है। 'प्रावेपाम्' इस एक ऋचा को रात्रि के समय में मानसिक जप करे। व्युष्टा में सूर्य के उदय होने पर द्यूत क्रीड़ा (जुआ) में जीत हुआ करती है। जो मूढ हो और 'माप्रगाम'—इस ऋचा का जप करे तो मार्ग में सही मार्ग प्राप्त हो जाता है ॥७८।७६।८०॥

क्षीणायुरिति मन्येत यं कंचित्सुहृदं प्रियम् ।
यत्ते यममिति स्नातस्तस्य मूर्धानमालभेत् ॥८१
सहस्रकृत्वः पञ्चाहं तेनाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
इदमित्थेति जुहुयाद् घृतं प्राज्ञः सहस्रशः ॥८२
पशुकामो गवां गोष्ठे अर्थकामश्चतुष्पथे ।
वयः सुपर्णा इत्येतां जपन्वै विन्दते श्रियम् ॥८३
हविष्यन्तीयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्धते तथा ॥८४
या ओषधयः स्वस्त्ययनं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
बृहस्पते अतीत्येतद्वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ॥८५

सर्वत्रेति परा शान्तिर्ज्ञेयाऽप्रतिरथस्तथा ।
सूक्तं सांकश्यप नित्यं प्रजाकामस्य कीर्तितम् ॥८६
अहं रुद्रेभिरित्येतद्वाग्मी भवति मानवः ।
न योनौ जायते विद्वाञ्जपन्रात्रीति रात्रिपु ॥८७
रात्रिसूक्त जपन्रात्रौ रात्रि क्षेमी नयेन्नरः ।
कल्पयन्तीति च जपान्नित्य कृत्वाऽरिनाशनम् ॥८८

जिस किसी अपने मित्र को या प्रिय को क्षीण आयु वाला समझले तो स्नान करके "यत्ते यम्"—इससे उसके मूर्द्धा का आलभन करे। पाँच दिन तक एक सहस्र बार करे। इससे महान् आयु का लाभ होता है। पण्डित मनुष्य को 'इदमित्यम्' इससे एक सहस्र बार घृत की आहूतियाँ देनी चाहिए ॥८१।८२॥ जो पशुओं की कामना करने वाले को गौओं के गोष्ठ में करना चाहिए और जो अर्थ की कामना रखता हो उसे चतुष्पथ (चौराहे) पर जाप आदि करना चाहिए। 'वय: सुपर्णा'—इस ऋचा का जप करने वाला श्री का लाभ किया करता है ॥८३॥ "हविष्यन्तीयम्"—इसका जप करने से मानव समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है। उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर की अग्नि की वृद्धि होती है ॥ ८४ ॥ 'या ओषधय' यह स्वस्त्ययन समस्त व्याधियों का विनाश करने वाला होता है। 'बृहस्पते अति'—यह उसे प्रयोजित करना चाहिए जो वृद्धि की कामना रखता हो ॥ ८५ ॥ 'सर्वत्र'—इससे परम शान्ति का होना जानना चाहिए। अप्रतिरथ—यह सूक्त तथा साकश्यप को नित्य करने से प्रजा की कामना की पूर्ति कही गई है ॥ ८६।८७ ॥ 'अहं रुद्रेभिः'—इसके करने से मनुष्य वाग्मी होता है। 'रात्रि'—इसका रात्रि में जप करने वाला विद्वान् फिर योनि में जन्म नहीं लिया करता है। रात्रि सूक्त का रात्रि में जाप करने वाला मनुष्य रात्रि को क्षेम करने वाली बना देता है। 'कल्पयन्ति' इसका जप करने वाला शत्रुओं का नाश कर देता है ॥८८॥

आयुष्यं चैव वर्चस्यं सूक्तं दाक्षायणं महत् ।
उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ॥८९

अयमग्ने जरीत्येतज्जपेदग्निभये सति ।
अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत्तद्भयनाशनम् ॥६०
ब्राह्मीमासाद्य सूक्ते द्वे ऋचं ब्राह्मी शतावरीम् ।
पृथगद्भिर्घृतैर्वाऽथ मेधां लक्ष्मीं च विन्दति ॥६१
शास इत्था सपत्नघ्नं सङ्ग्रामं विजिगीषतः ।
ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं गर्भमृत्युनिवारणम् ॥६२
अपेहीति जपेत्सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनम् ।
येनेदमिति वै जप्त्वा समाधि विन्दते परम् ॥६३
मयोभूर्वात इत्येतद्गवां स्वस्त्ययनं परम् ।
शाम्वरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ॥६४

दाक्षायण सूक्त महान् आयु और वर्चस् का प्रदान करने वाला है। "उतदेवा" इसका जप व्रत धारण करने वाला आमय को नाश किया करता है ॥८६॥ अग्नि के भय होने पर "अयमग्ने जरि" इसका जप करना चाहिए। अरण्यों में 'अरण्यानि'—इसको भय के नाश करने के लिए जपना चाहिए ॥६०॥ 'ब्राह्मीमासाद्य'—ये दो सूक्त और ब्रह्मा शतावरी—इस ऋचा को पृथक् जल से अथवा घृत में करने पर मानव मेधा और लक्ष्मी का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१॥ संग्राम के जीतने की इच्छा रखने वाले को 'शास इत्था' यह सपत्नों (वैरियों) के नाश करने वाला होता है। 'ब्रह्मणाऽग्निः संविदान'—यह गर्भ मृत्यु के निवारण करने वाला है ॥६२॥ शुद्ध—पवित्र होकर दुःस्वप्नों के नाश करने के लिए 'अपेहि'—इस सूक्त का जप करे। 'येनेदम्'—इसके जाप से निश्चय ही परम समाधि की प्राप्ति हुआ करती है ॥६३। 'मयोभूर्वात' यह गायों के लिए परम कल्याण कारक होता है। शाम्वरी अथवा इन्द्रजाल—इससे माया का वारण करना चाहिए ॥६४॥

महित्रीणामवोऽस्त्विति पथि स्वस्त्ययनं जपेत् ।
प्राग्नये विद्विषन्द्वेष्य जपेच्च रिपुनाशनम् ॥६५
वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेच्च गृहदेवताः ।
जपस्यैष विधि प्रोक्तो हुते ज्ञेयो विशेषतः ॥६६

होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुतेन तु ।
हुत शम्यति चान्नेन अन्नं हेमप्रदानतः ।।६७
विप्राशिषस्त्वमोघाः स्युर्बहिः स्नानं तु सर्वतः ।
सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा ।।६८
क्षीरवृक्षास्तथेध्म तु होमे वै सर्वकामदाः ।
समिधः कण्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विषम् ।।६६
अभिचारे तथा शैलमशनं सक्तव· पयः ।
दधि भैक्ष्यं फलं मूलमृग्विधानमुदाहृतम् ।।१००

'महित्रीणामवोऽस्तु'—इसका मार्ग मे कल्याण के लिए जप करे। 'प्राग्नये विद्विषन् द्वेष्यम्'—इसका जप शत्रु करने वाला होता है अत रिपु नाश के लिए जप करना चाहिए ।। ६५ ।। 'वास्तोष्पत' मन्त्र के द्वारा गृह देवो का यजन करे । यह जप की विधि बताई गई है । हवन करने पर विशेष रूप से जानना चाहिए ।।६६।। होम करके अन्त मे दक्षिणा देवे । हवन से पापो की शान्ति होती है । हवन की शान्ति अन्न से होती है और अन्न का शमन हेम (सोना) के दान देने से होता है ।। ६७ ।। विप्रों के आशीर्वाद तो अमोघ होते है । बाहिर स्नान करना सब प्रकार से उत्तम है । जौ का धान्य सिद्धार्थक होता है—पय–दधि–घृत–क्षीर वाले वृक्ष की समिधा होम मे सब प्रकार की कामनाओं के देने वाले होते है । काटे वाली समिधा–राजिक (राई)–रुधिर–विष–तथा शैल ये अभिचार कर्म मे ग्रहण किये जाते हैं । सक्तु (सतुआ)–पय–दधि–भिक्षा से प्राप्त वस्तु—फल और मूल अशन (भोजन) होता है । इस प्रकार से यह ऋग्विधान बताया गया है ।।६८।६६।१००।।

१०५ सामविधानम्

यजुर्विधान कथित वक्ष्ये साम्नां विधानकम् ।
संहितां वैष्णवीं जप्त्वा हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् ।।१
संहितां छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शङ्करम् ।
स्कान्दीं पैत्र्यां संहिता च जप्त्वा स्यात्तु प्रसादवान् ।।२

यत इन्द्र भयामहे हिंसादोषविनाशनम् ।
ग्रवकीर्णी मुच्यते च ग्रग्निस्तिग्मेति वै जपन् ॥३
सर्वपापहरं ज्ञेयं परितोषं च तासु च ।
ग्रविक्रेयं च विक्रीय जपेद्घृतवतीति च ॥४
ग्रद्या नो देव सवितर्ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
ग्रवोध्यग्निरिति मन्त्रेण घृतं राम यथाविधि ॥५
ग्रम्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते ।
स्त्रीणां यासां तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम ॥६
मणि जातस्य बालस्य बध्नीयात्तदनन्तरम् ।
सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥७
सर्पसाम प्रयुञ्जानो नाऽऽप्नुयात्सर्पजं भयम् ।
माऽद्य त्वा वाद्यतेत्येतद्हुत्वा विप्रः सहस्रशः ॥८
शतावरिमणिं बद्ध्वा नाऽऽप्नुयाच्छस्त्रतो भयम् ।
दीर्घतमसोऽर्क इति हुत्वाऽन्नं प्राप्नुयाद्बहु ॥९

पुष्कर ने कहा—मैंने यजुर्वेद का विधान तो बतला दिया है अब सामवेद का विधान बताता हूँ। मामवेद की वैष्णवी संहिता का जप करके और हवन करके समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करने वाला हो जाता है। जो छान्दसी इसकी संहिता है उसका भली भाँति जाप करके भगवान् शंकर की प्रसन्नता प्राप्त किया करता है। स्कान्दी पैत्र्या संहिता का जप करके प्रसाद वाला होता है ॥१॥२॥ "यत इन्द्रभया महे"—यह हिंसा के दोषों को विनाश करने वाली है। "अग्निस्तिग्मे"—इसका जाप करने वाला अवकीर्णी मुक्त हो जाता है ॥३॥ "परितोषं च तासु च"—यह समस्त पापों के हरण करने वाला जानना चाहिए। जो वस्तु विक्रय करने के योग्य नहीं है उसका विक्रय करके "घृतवती"—इसका जाप करना चाहिए ॥४॥ "अद्यानोदेव सवितः"—यह दुःस्वप्नों का नाश करने वाला है। "अवोध्यग्निः"—इस मन्त्र से हे राम ! विधिपूर्वक घृत का अभ्युक्षण करे और घृत शेष से मेखलाबन्ध इष्ट होता है। हे भृगुसत्तम ! जिन स्त्रियों के गर्भों का पात हो जाता है। उनके उत्पन्न हुए

बालक की मणि का बन्धन कर देना चाहिए। इसके अनन्तर "सोमं राजानम्" –इस मन्त्र के द्वारा व्याधियों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥५।६।७॥ 'सर्पमाय' का प्रयोग करने वाला कभी सर्प से उत्पन्न होने वाले भय को प्राप्त नहीं होता है। "माऽपत्वा वाद्यत"–इससे ब्राह्मण को सहस्र बार हवन करके शतावरी मणि को बांधे तो शस्त्र से कोई भय नहीं होता है। "दीर्घतमसोऽर्क"–इस मन्त्र से हवन करने से बहुत अन्न की प्राप्ति होती है ॥८।९॥

समध्यायन्तीति जपन्न म्रियेत पिपासया।
त्वमिमा ह्योषधीत्येतज्जप्त्वा व्याधिं न चाऽऽप्नुयात् ॥१०
पथि देवव्रतं जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते।
यदिन्द्रो मुनये त्वेति हुतं सौभाग्यवर्धनम् ॥११
भगो न चित्र इत्येवं नेत्रयोरञ्जनं हितम्।
सौभाग्यवर्धनं राम नात्र कार्या विचारणा ॥१२
जपेदिन्द्रेति वर्गं च तथा सौभाग्यवर्धनम्।
परि प्रिया हि वः कारिः काम्यां संश्रावयेत्स्त्रियम् ॥१३
सा तं कामयते राम नात्र कार्या विचारणा।
रथतरं वामदेव्य ब्रह्मवर्चसवर्धनम् ॥१४
प्राशयेद्बालकं नित्यं वचाचूर्णं घृतप्लुतम्।
इन्द्रमिद्गाथिनं जप्त्वा भवेच्छ्रुतिधरस्त्वसौ ॥१५
हुत्वा रथंतरं जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयम्।
मयि श्रीरिति मन्त्रोऽयं जप्तव्यः श्री विवर्धनः ॥१६
वैरूप्यस्याष्टक नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत्।
सप्ताष्टक प्रयुञ्जानः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१७

"समध्यायन्ति"–इस मन्त्र का जप करने वाला प्यास (पिपासा) से अर्थात् जल के अभाव में कभी नहीं मरता है। "त्वमिमा ह्योषधी"—इसका जप करने से किसी भी व्याधि की प्राप्ति नहीं होती है ॥१०॥ मार्ग में "देवव्रतम्"—इसका जाप करके भयों से विप्र मुक्त होता है। "यदिन्द्रो मुनयेत्वा"

एतत्कृत्वा बुधः कर्म सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात् ।
गारुडं वामदेव्यं च रथंतरबृहद्रथौ ।
सर्वपापप्रशमनाः कथिताः संशयं विना ॥२४

जो तन्द्रा रहित होकर सायकाल और प्रातःकाल नित्य 'गवेपुणा'—इस मन्त्र से गौओं का उपस्थान करता है उसके घर में सदा गोएँ रहा करती हैं। ॥१८॥ 'वात यात्रान् भेषजम्'—इस मन्त्र से घृत प्रवत यवद्रोण का विधिवत् हवन करके सम्पूर्ण माया को दूर कर देता है ॥१९॥ 'प्रदेवो दासेन'—इस मन्त्र से तिलों का हवन करे और कार्मण कृन्तनं–अभित्वा शूरनोनुमो–इसे वषट्कार समन्वित वामदेव्य का एक सहस्र हवन करे तो युद्ध में जयप्रद होता है। पण्डित पुरुष को पिष्टमय अर्थात् चून के हाथी-घोड़े और सुन्दर पुरुषों को बनावे और परकीय (दूसरे पक्ष वाले) प्रधान पुरुषों को उद्देश्य करके सुस्विन्न पिष्ट कवरों के भाग छुरा से काट-काट कर अभित्वा शूर नो नुमो —इस मन्त्र से मन्त्र के वेत्ता को उन्हें सरसों के तेल में भिगोकर क्रोध पूर्वक हवन करना चाहिए। बुध पुरुष इस कर्म को करके सग्राम मे जय का लाभ करता है। गारुड़—वामदेव्य और रथन्तर तथा बृहद्रथ ये समस्त पापों के शमन करने वाले बताये गये हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२०।२१।२२।२३।२४॥

१०६—अथर्वविधानम्

साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्वणमथ ।
शान्तातीयं गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः ॥१
भैषज्यं च गणं हुत्वा सर्वान्रोगान्व्यपोहति ।
त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२
क्वचिन्नाऽऽप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयं गणम् ।
न क्वचिज्जायते राम गणं हुत्वाऽपराजितम् ॥३
आयुष्यं च गणं हुत्वा ह्यपमृत्युं व्यपोहति ।
स्वस्तिमाप्नोति सर्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनं गणम् ॥४

देने वाली है। "यस्त्वां मृत्युः"—इस मन्त्र का जप करने से मृत्यु का विनाश होता है ॥ ६ ॥

सपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजगैर्नैव बाध्यते ।
इन्द्रेण दत्तामित्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ॥१०
इन्द्रेण दण्डमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।
इमा देवीति मन्त्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ॥११
देवा मरुत इत्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ।
यमस्य लोकादित्येतद्दुःस्वप्नशमनं परम् ॥१२
इन्द्रश्च पञ्च वाणिज्यं पुण्यलाभकरं परम् ।
कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् ॥१३
तुभ्यमेव जपन्नित्यमयुतं सु हुतं भवेत् ।
अग्ने गोभिर्न इत्येतन्मेधावृद्धिकरं परम् ॥१४
ध्रुव ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत् ।
अलक्तजीवेति घृना कृषिलाभकरं भवेत् ॥१५
अह ते भग्न इत्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम् ।
ये मे पाशास्तथाऽप्येतद्बन्धनान्मोक्षकारकम् ॥१६
शपत्वहन्निति रिपून्नाशयेद्धोमजाप्यतः ।
त्वमुत्तमर्मितीत्येतद्यशोवृद्धिविवर्धनम् ॥१७

सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥ १३ ॥ "तुभ्यमेव"—इस मन्त्र का नित्य जप और दस हजार का हवन करना चाहिए। "अग्ने गोभिर्न"—यह मन्त्र मेधा (बुद्धि) की परम वृद्धि करने वाला है ॥ १४ ॥ "ध्रुवं ध्रुवेण"—इस मन्त्र से हवन करने पर स्थान का लाभ होता है। "अलकत्रीव"—इस मन्त्र से सुरा (ध्यान के द्वारा) कृषि का लाभ होता है ॥ १५ ॥ "अहं तेभ्य"—इस मन्त्र से सौभाग्य का वर्धन होता है। "ये मे पाशास्तयापि"—यह मन्त्र बन्धन से मोक्ष कराने वाला है ॥ १६ ॥ "अपत्वहन्"—यह मन्त्र जाप और हवन करने पर रिपुओं का नाश कर देता है। "त्वमुत्तमम्"—इस मन्त्र से यश और वृद्धि की बढ़ोतरी होती है ॥ १७ ॥

यथा मृगमतीत्येतत्स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् ।
येन वेह दिशं चैव गर्भलाभकरं भवेत् ॥१८
अयं ते योनिरित्येतत्पुत्रलाभकरं भवेत् ।
शिवः शिवाभिरित्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम् ॥१९
बृहस्पतिर्नः परिपातु पथि स्वस्त्ययनं भवेत् ।
मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्युनिवारणम् ॥२०
अथर्वशिरसोऽध्येता सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
प्राधान्येन तु मन्त्राणां किंचित्कर्म तवेरितम् ॥२१
वृक्षाणां यज्ञियानां तु समिधः प्रथमं हविः
आज्यं च व्रीहयश्चैव तथा वै गौरसर्षपाः ॥२२
अक्षतानि तिलाश्चैव दधिक्षीरे च भार्गव ।
दर्भास्तथैव दूर्वाश्च बिल्वानि कमलानि च ॥२३
शान्तिपुष्टिकराण्याहुर्द्रव्याण्येतानि सर्वशः ।
तैलं कणानि धर्मज्ञ राजिका रुधिरं विषम् ॥२४
समिधः कण्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत् ।
आर्षं वै दैवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत् ॥२५

"यथा मृगमती"—यह मन्त्र स्त्रियों के सुख, सौभाग्य के देता है। "येन वेह दिशं च"—यह गर्भ के लाभ करने वाला

"अय ते योनिः"--यह मन्त्र पुत्र के लाभ करने वाला होता है। "शिवः शिवाभिः" यह मन्त्र भी सौभग्य वर्द्धक होता है ॥ १६ ॥ "वृहस्पति नः परिपातु"--इससे मार्ग में स्वास्ययन होता है। "मुञ्जामित्वा इसके कहने पर अपमृत्यु (कुमौत) से निवारण हुआ करता है ॥ २० ॥ अथर्व शिरसः--इसका अध्ययन करने वाला पुरुष समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है। यहाँ पर तुमको प्रधानरय से कुछ थोडे से कर्म जो मन्त्रों द्वारा होते हैं बतला दिये गये हैं ॥ २१ ॥ यज्ञिय जो वृक्ष होते हैं अर्थात् यज्ञ में जिन वृक्षों को काम में लाया जाता है उनकी समिधाऐं सबसे प्रथम हवन में हवि होती हैं। फिर घृत, व्रीहि, सफेद सरसों, अक्षत, तिल, दधि और दूध, दर्भ, दूर्वा (दूभ), विल्व (बेल पत्र तथा बेल के फल), कमल के दल ये वस्तुऐं हे भार्गव ! हवन में सब प्रकार से शान्ति तथा पुष्टि के करने वाली कही गई हैं। तैल, कण, राजि का (राई) रुधिर, विष और काँटों से युक्त समिधा इनका प्रयोग अभिचार (मारणादि) कर्म में करना चाहिए। विनियोग के ज्ञान को आर्ष दैवत छन्द का आचरण करना चाहिए ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

॥ समाप्त ॥